M1484
12/05/16

।। श्रीः ।।

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

१५६

वराहमिहिरकृता

# बृहत्संहिता

'भट्टोत्पलविवृति' समन्वित 'विमला' हिन्दीव्याख्यायुता

( पूर्वार्द्धा )

M.Katyayana

व्याख्याकार:

**शर्मोपाह्व पं० अच्युतानन्द झा**

ज्योतिषाचार्य-साहित्याचार्य-पोष्टाचार्याद्युपाधिविभूषित:

प्राक्कथनलेखक:

**प्रो० रामचन्द्रपाण्डेय:**

सङ्कायप्रमुखचर:

संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसङ्काय:

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय:

**चौखम्बा विद्याभवन**

वाराणसी

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| **२९. कुसुमलताध्यायः** | |
| कुसुमलताध्यायप्रयोजनम् | ३९१ |
| केन वस्तुना कस्य वृद्धिः | ३९१ |
| यवादिधान्यवृद्धिकारणम् | ३९१ |
| तिलमाषादिधान्यवृद्धिकारणम् | ३९१ |
| कर्पासादिवृद्धिकारणम् | ३९२ |
| अतस्यादिवृद्धिकारणम् | ३९२ |
| हस्त्यादिवृद्धिकारणम् | ३९२ |
| सुवर्णादिवृद्धिकारणम् | ३९३ |
| मौक्तिकादिवृद्धिकारणम् | ३९३ |
| वणिजादिवृद्धिकारणम् | ३९३ |
| मानवानां क्षेमादौ हेतुः | ३९३ |
| सुभिक्षादिज्ञानम् | ३९३ |
| ईक्षुरादिवृद्धिकारणम् | ३९४ |
| वृक्षपत्रेभ्यो वृष्टिज्ञानम् | ३९४ |
| **३०. सन्ध्यालक्षणाध्यायः** | |
| सन्ध्यालक्षणम् | ३९५ |
| फलकथने आधारभूतवस्तु | ३९५ |
| मृगचेष्टया फलज्ञानम् | ३९५ |
| अन्यच्च सन्ध्यालक्षणम् | ३९६ |
| सन्ध्याकाले वायोर्लक्षणं फलञ्च | ३९६ |
| अन्यच्च सन्ध्यालक्षणम् | ३९७ |
| सान्ध्यसूर्यरश्मिलक्षणं फलञ्च | ३९७ |
| सन्ध्याकाले सूर्यकिरणस्य विशेषलक्षणं फलञ्च | ३९८ |
| अमोघसूर्यकिरणलक्षणं फलञ्च | ३९८ |
| अन्यद्रश्मिलक्षणं फलञ्च | ३९८ |
| ताम्रादिवर्णयुतसूर्यकिरणानां फलानि | ३९९ |
| सन्ध्याकालिकरजोलक्षणं फलञ्च | ३९९ |
| दण्डलक्षणं फलञ्च | ४०० |
| दण्डस्य विशेषफलम् | ४०० |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| अभ्रतरुलक्षणं फलञ्च | ४०० |
| अभ्रवृक्षेणैव यियासोः शुभाशुभज्ञानम् | ४०१ |
| पुनरपि सन्ध्यालक्षणं फलञ्च | ४०१ |
| षट्सु ऋतुषु सन्ध्यालक्षणं फलञ्च | ४०२ |
| मेघादिना सन्ध्यायाः फलम् | ४०२ |
| मेघवर्णेन सन्ध्याफलम् | ४०३ |
| परिघवशेन सन्ध्यायाः शुभाशुभफलम् | ४०३ |
| परिधिवशेन सन्ध्यायाः शुभाशुभफलम् | ४०३ |
| सायङ्कालिकमेघलक्षणं फलञ्च | ४०४ |
| सन्ध्यायाः विशेषलक्षणं फलञ्च | ४०४ |
| सन्ध्यालक्षणोक्तफलानां फलकालनिर्णयः | ४०६ |
| सन्ध्यालक्षणोक्तफलानां प्रदेशाः | ४०६ |
| **३१. दिग्दाहलक्षणाध्यायः** | |
| वर्णभेदेन दिग्दाहफलम् | ४०८ |
| दिग्दाहलक्षणं फलञ्च | ४०८ |
| सर्वासु दिक्षु दिग्दाहफलम् | ४०८ |
| दिग्दाहस्य शुभलक्षणम् | ४०९ |
| **३२. भूकम्पलक्षणाध्यायः** | |
| भूकम्पलक्षणे मतभेदप्रदर्शनम् | ४१० |
| भूकम्पलक्षणे मतान्तराणि | ४१० |
| भूकम्पलक्षणे पराशरादिमतानि | ४११ |
| वायव्यकम्पलक्षणं पूर्वलिङ्गानि च | ४१३ |
| आग्नेयमण्डललक्षणं पूर्वलिङ्गानि च | ४१५ |
| इन्द्रमण्डललक्षणं पूर्वलिङ्गानि फलानि च | ४१६ |
| वरुणमण्डललक्षणं पूर्वलिङ्गानि फलानि च | ४१७ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| मण्डलानां फलकालनियमाः | ४१८ |
| उल्काद्युत्पातानां फलनियमाः | ४१९ |
| वेलामण्डलवशेन कम्पानां निष्फलत्वम् | ४२० |
| वेलामण्डलवशेन कम्पोक्तफले विशेषः | ४२० |
| अनुक्तफलकालनियमाः | ४२१ |
| मण्डलवशेन भूकम्पप्रदेशाः | ४२२ |
| भूकम्पे वृत्ते पुनः भूकम्पे सति फलकालनियमाः | ४२२ |
| **३३. उल्कालक्षणाध्यायः** | |
| उल्कास्वरूपम् | ४२४ |
| उल्काफलसमयनिर्णयः | ४२४ |
| उल्काफलभागनिरूपणम् | ४२५ |
| अशनिलक्षणम् | ४२५ |
| विद्युल्लक्षणम् | ४२५ |
| धिष्ण्यालक्षणम् | ४२६ |
| तारालक्षणम् | ४२६ |
| उल्कालक्षणम् | ४२६ |
| उल्काभेदाः | ४२६ |
| अन्यदप्युल्कालक्षणम् | ४२८ |
| उल्काहतनक्षत्रफलम् | ४३० |
| उल्काहतदेवप्रतिमादिफलम् | ४३१ |
| उल्कापातसमयभूतशब्दफलम् | ४३२ |
| पातसमये उल्कास्थितिफलम् | ४३२ |
| पातसमये उल्कागतिफलम् | ४३३ |
| **३४. परिवेषलक्षणाध्यायः** | |
| परिवेषस्वरूपप्रदर्शनम् | ४३५ |
| परिवेषाणां संज्ञा तेषामधिपतयश्च | ४३५ |
| कुवेरकृतपरिवेषवर्णाः | ४३५ |
| वस्तुवशेन परिवेषस्य शुभफलम् | ४३६ |
| अशुभपरिवेषलक्षणम् | ४३६ |
| परिवेषवर्णेन शुभाशुभफलम् | ४३७ |
| परिवेषेण वृष्टिज्ञानम् | ४३७ |
| भयकृत्परिवेषलक्षणम् | ४३७ |
| परिवेषद्वारा राज्ञो नाशकथनम् | ४३८ |
| परिवेषवशात्सेनापत्यादिभयम् | ४३८ |
| परिवेषवशाद्वृष्ट्यादियोगाः | ४३९ |
| परिवेषगतग्रहफलम् | ४३९ |
| द्व्यादिग्रहेषु परिवेषमध्यगतेषु फलम् | ४४० |
| ताराग्रहाणां नक्षत्राणां वा पृथक्परिविष्टानां फलम् | ४४१ |
| तिथिक्रमेण परिवेषफलम् | ४४१ |
| परिवेषरेखावशेन शुभाशुभफलम् | ४४२ |
| **३५. इन्द्रायुधलक्षणाध्यायः** | |
| इन्द्रधनुःस्वरूपम् | ४४४ |
| अन्याचार्यमतं शुभाशुभफलञ्च | ४४४ |
| इन्द्रधनुषः वर्णपरत्वेन फलम् | ४४४ |
| विदिक्स्थितेन्द्रधनुःफलम् | ४४६ |
| जलादाववस्थितेन्द्रधनुःफलम् | ४४६ |
| दिग्वशेनेन्द्रधनुःफलम् | ४४६ |
| इन्द्रधनुर्द्वारा ब्राह्मणादीनाम-शुभफलम् | ४४७ |
| **३६. गन्धर्वनगरलक्षणाध्यायः** | |
| दिग्वशेन गन्धर्वनगरफलम् | ४४९ |
| उत्तरदिक्स्थितगन्धर्वनगरफलम् | ४४९ |
| सर्वासु दिक्षु सततोत्थितगन्धर्व-नगरफलम् | ४४९ |
| श्वेतवर्णयुतदीप्तदिक्स्थितगन्धर्व-नगरफलम् | ४५० |
| पताकादिसमगन्धर्वनगरफलम् | ४५० |
| **३७. प्रतिसूर्यलक्षणाध्यायः** | |
| प्रतिसूर्यवर्णं शुभाशुभफलञ्च | ४५२ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| पीतवर्णप्रतिसूर्यस्य शुभा-शुभफलम् | ४५२ |
| दक्षिणोत्तरदिक्स्थितप्रतिसूर्यस्य शुभाशुभफलम् | ४५२ |
| **३८. रजोलक्षणाध्यायः** | |
| रजोलक्षणेन राज्ञो नाशः | ४५४ |
| रजःप्रभवेन तद्विनाशेन च फलम् | ४५४ |
| घनौघरजःफलम् | ४५४ |
| एकाधिकदिनरजःच्छन्नाकाशफलम् | ४५४ |
| रात्रिपर्यन्तरजोव्याप्ताकाशफलम् | ४५४ |
| रजःसमूहेन परचक्रागमयोगः | ४५४ |
| त्रिरात्रिपर्यन्तरजोवर्षणफलम् | ४५५ |
| केतूदयानन्तररजोवर्षणाफलम् | ४५५ |
| **३९. निर्घातलक्षणाध्यायः** | |
| निर्घातलक्षणम् | ४५६ |
| वेलावशेन निर्घातलक्षणम् | ४५६ |
| **४०. सस्यजातकाध्यायः** | |
| आगमप्रदर्शनम् | ४५९ |
| ग्रैष्मिकधान्यवृद्धियोगः | ४५९ |
| ग्रहस्थित्या ग्रैष्मिकधान्यवृद्धियोगः | ४६० |
| ग्रहस्थित्या ग्रैष्मिकधान्यनिष्पत्तिः | ४६० |
| ग्रहस्थित्या धान्यनिष्पत्तिः | ४६१ |
| शारदधान्यस्थितिज्ञानप्रकारः | ४६३ |
| रविचारवशेन ग्रैष्मिकधान्यस्य सामर्घ्यं महर्घताञ्च | ४६३ |
| रविचारवशेन शारदधान्यस्य सामर्घ्यं महर्घताञ्च | ४६४ |
| **४१. द्रव्यनिश्चयाध्यायः** | |
| आगमप्रदर्शनम् | ४६५ |
| मेषराशेर्द्रव्याणि | ४६५ |
| वृष्ष-मिथुनयोर्द्रव्याणि | ४६५ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कर्कट-सिंहयोर्द्रव्याणि | ४६६ |
| कन्या-तुलयोर्द्रव्याणि | ४६६ |
| वृश्चिक-धनुषोर्द्रव्याणि | ४६७ |
| मकर-कुम्भयोर्द्रव्याणि | ४६७ |
| मीनराशेर्द्रव्याणि | ४६७ |
| राशिद्रव्याणां शुभाशुभफलम् | ४६८ |
| राशिद्रव्ये विशेषः | ४६९ |
| **४२. अर्घकाण्डाध्यायः** | |
| अर्घकाण्डप्रयोजनप्रदर्शनम् | ४७१ |
| मेष-वृषस्थे सूर्ये करणीयम् | ४७१ |
| मिथुनस्थे सूर्ये करणीयम् | ४७२ |
| कर्कटस्थे सूर्ये करणीयम् | ४७२ |
| सिंहस्थे सूर्ये करणीयम् | ४७२ |
| कन्यागते सूर्ये करणीयम् | ४७३ |
| तुलागते सूर्ये करणीयम् | ४७३ |
| वृश्चिकगते सूर्ये करणीयम् | ४७३ |
| धनुगते सूर्ये करणीयम् | ४७३ |
| मकर-कुम्भगते सूर्ये करणीयम् | ४७४ |
| मीनगते सूर्ये करणीयम् | ४७४ |
| प्रतिराशिगते सूर्ये विशेषः | ४७४ |
| **४३. इन्द्रध्वजसम्पदाध्यायः** | |
| इन्द्रध्वजोत्पत्तिप्रदर्शनम् | ४७६ |
| देवानां कृते ब्रह्मण उपदेशः | ४७६ |
| देवैर्द्वारा नारायणस्तुतिः | ४७६ |
| नारायणप्रदत्तध्वजस्वरूपम् | ४७७ |
| इन्द्रद्वारा ध्वजस्योपयोगः | ४७७ |
| इन्द्रद्वारा चेदिपं प्रति दण्डप्रदानम् | ४७८ |
| इन्द्रप्रसादं ध्वजमाहात्म्यञ्च | ४७८ |
| ध्वजविधानम् | ४७९ |
| इन्द्रध्वजाय वने शुभवृक्षकर्तनम् | ४८० |
| ध्वजाय शुभवृक्षाः | ४८१ |
| शुभवृक्षवर्णनम् | ४८१ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| वृक्षपूजामन्त्रः | ४८१ |
| वृक्षपूजानन्तरं करणीयकृत्यम् | ४८२ |
| कर्तनात्पतितवृक्षस्य शुभाशुभफलम् | ४८२ |
| वृक्षपतनानन्तरं करणीयकृत्यम् | ४८२ |
| कर्तितवृक्षस्य यष्ट्यानयन-कालफलम् | ४८२ |
| यष्टिप्रवेशकालः | ४८३ |
| यष्टिप्रवेशसमये नगरस्थितिः | ४८३ |
| नगरपताकावर्णफलम् | ४८४ |
| नगरे यष्टिं प्रवेशमानायां शुभाशुभफलम् | ४८४ |
| यष्टिप्रवेशानन्तरकृत्यम् | ४८४ |
| अग्नेः शुभाशुभानि चिह्नानि | ४८५ |
| अग्निशब्दफलम् | ४८७ |
| अन्यदप्यग्निलक्षणम् | ४८७ |
| अग्निलक्षणमन्यत्रापि चिन्त्यम् | ४८७ |
| ध्वजोत्थापनविधिः | ४८८ |
| शक्रकुमारीणां लक्षणानि | ४८८ |
| इन्द्रध्वजस्याभूषणम् | ४८९ |
| आभूषणप्रदानक्रमः | ४८९ |
| पिटकपरिमाणम् | ४९१ |
| पिटकैः पूरणसमयः | ४९१ |
| पिटकपूरणमन्त्राः | ४९२ |
| मन्त्रपाठसमयः | ४९३ |
| ध्वजोत्थापनविधिः | ४९३ |
| ध्वजोत्थापनक्रमः | ४९४ |
| नृपद्वारा ध्वजोत्थापनविधिः | ४९४ |
| ध्वजस्य शुभोत्थानम् | ४९५ |
| ध्वजोच्छ्रिते शुभाशुभफलम् | ४९५ |
| ध्वजविसर्जनविधिः | ४९७ |
| इन्द्रध्वजपूजनकर्तुः प्रभावः | ४९७ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| **४४. नीराजनाध्यायः** | |
| नीराजनार्थं कालनियमप्रदर्शनम् | ४९९ |
| नीराजनसमयः | ४९९ |
| तोरणनिर्माणविधानम् | ४९९ |
| शान्तिगृहलक्षणम् | ५०० |
| अश्वादीनां दीक्षाविधानम् | ५०० |
| शान्तिविधिः | ५०० |
| अश्वानां प्रति कृत्यम् | ५०० |
| सप्तदिनानन्तरकृत्यम् | ५०१ |
| सम्भाराणां लक्षणानि | ५०२ |
| सम्भारनिर्माणानन्तरकरणीयकृत्यम् | ५०३ |
| दैववित्कृत्यम् | ५०३ |
| अश्वानां तोरणसमीपानयनम् | ५०४ |
| अश्वगजयोश्चेष्टितम् | ५०४ |
| नीराजनकरणप्रकारः | ५०६ |
| नीराजनानन्तरं राज्ञः गमनम् | ५०७ |
| सैन्यचेष्टितम् | ५०८ |
| **४५. खञ्जनकलक्षणाध्यायः** | |
| आगमप्रदर्शनम् | ५१० |
| चत्वारः खञ्जनकास्तेषां नामानि फलञ्च | ५१० |
| स्वानवशेन खञ्जनकदर्शनफलम् | ५११ |
| खञ्जनकदर्शनस्याशुभस्थानम् | ५१२ |
| खञ्जनकदर्शनस्य शुभाशुभफलम् | ५१२ |
| खञ्जनकदर्शनेन राज्ञः शुभा-शुभफलम् | ५१३ |
| शास्त्रोपरि विश्वासप्रदर्शनम् | ५१३ |
| अन्यच्छुभाशुभफलम् | ५१३ |
| खञ्जनकदृष्टे विधानम् | ५१४ |
| अशुभखञ्जनके दृष्टे विधानम् | ५१४ |
| फलपाकावधिः | ५१४ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| **४६. उत्पाताध्यायः** | |
| आगमस्थवस्तुप्रदर्शनम् | ५१६ |
| उत्पातसम्भवे हेतुः | ५१६ |
| मतान्तरेण दिव्यान्तरिक्षभौमो-त्पातलक्षणं तच्छमनोपायाश्च | ५१७ |
| उत्पातानां कृते स्वमतप्रदर्शनम् | ५१८ |
| दैवोत्पातफलपाकस्थानम् | ५१८ |
| उत्पातप्रदर्शनम् | ५१९ |
| विकृतवस्तुद्वारा उत्पातफल-प्रदर्शनम् | ५१९ |
| उक्तोत्पातशान्तिविधिः | ५२१ |
| शान्तिकालप्रमाणं शान्तिप्रभावश्च | ५२१ |
| अन्योत्पाताः | ५२२ |
| अन्योत्पातलक्षणानि फलानि च | ५२२ |
| अन्योत्पातानां शान्तिविधिः | ५२४ |
| वृक्षविकृतिजन्योत्पातलक्षणं फलञ्च | ५२५ |
| वृक्षविकृतिजन्योत्पातशान्तिविधिः | ५२६ |
| सस्यविकृतिजोत्पातलक्षणं फलञ्च | ५२७ |
| सस्यविकृतिजन्योत्पातशान्तिविधिः | ५२८ |
| वृष्टिसम्बन्ध्युत्पातलक्षणं फलञ्च | ५२८ |
| ऋतुसम्बन्ध्युत्पातलक्षणं फलञ्च | ५२८ |
| वर्षर्तुरतिरिक्तवृष्टिसम्बन्ध्युत्पात-लक्षणं फलञ्च | ५२९ |
| छायासम्बन्धीन्युत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३० |
| इन्द्रधनुःसम्बन्ध्युत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३० |
| उपर्युक्तोत्पातशान्तिप्रकारः | ५३० |
| सरित्सम्बन्ध्युत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३१ |
| कूपसम्बन्ध्युत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३१ |
| ह्रदसम्बन्ध्युत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३१ |
| जलविकृतिजन्योत्पातशान्तिप्रकारः | ५३२ |
| प्रसवविकृतिजन्योत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३२ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| पशुप्रसवसम्बन्ध्युत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३२ |
| प्रसवविकृतिजन्योत्पातशान्त्यर्थं गर्गोक्तविधिः | ५३३ |
| चतुष्पदविकृतिजन्योत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३३ |
| चतुष्पदविकृतिजन्योत्पात-शान्तिविधिः | ५३४ |
| वायव्योत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३५ |
| वाद्यसम्बन्ध्युत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३५ |
| तूर्यनादसम्बन्ध्युत्पात-लक्षणं फलञ्च | ५३५ |
| गृहसम्भारसम्बन्ध्युत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३५ |
| वायव्याद्युत्पातशान्तिविधिः | ५३६ |
| पशुपक्ष्यादिजन्योत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३६ |
| श्वानादिपशुजन्योत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३८ |
| पशुपक्ष्यादिजन्योत्पातशान्तिविधिः | ५३८ |
| इन्द्रध्वजसम्बन्ध्युत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३९ |
| तैजसादिजन्योत्पातलक्षणं फलञ्च | ५३९ |
| राज्ञो व्यवहारेण देशनाशः | ५३९ |
| बालचेष्टाजन्योत्पातफलम् | ५३९ |
| गृहपतिचित्रजन्योत्पातलक्षणं फलञ्च | ५४० |
| गृहविकृतिजन्योत्पातलक्षणं फलञ्च | ५४० |
| राक्षसदर्शनफलम् | ५४० |
| शक्रध्वजेन्द्राद्युत्पातशान्तिविधिः | ५४१ |
| फलरहितोत्पातकालः | ५४१ |
| सर्वर्तुस्वभावजन्योत्पाताः | ५४१ |
| वसन्तर्तौ स्वाभाविकोत्पाताः | ५४१ |
| ग्रीष्मर्तौ स्वाभाविकोत्पाताः | ५४२ |
| वर्षर्तौ स्वाभाविकोत्पाताः | ५४२ |

| विषया: | पृष्ठाङ्का: |
|---|---|
| शरदर्तौ स्वाभाविकोत्पाता: | ५४३ |
| हेमन्तर्तौ स्वाभाविकोत्पाता: | ५४३ |
| शिशिरर्तौ स्वाभाविकोत्पाता: | ५४४ |
| सर्वर्तुस्वभावजन्योत्पाते विशेष: | ५४४ |
| सत्यवक्तारो लोका: | ५४५ |
| सत्यभाषणे हेतु: | ५४५ |
| उत्पातशास्त्रज्ञस्य प्रभाव: | ५४५ |
| **४७. मयूरचित्रकाध्याय:** | |
| मयूरचित्रकलेखने कारणप्रदर्शनम् | ५४७ |
| ग्रहचारोक्तफलम् | ५४८ |
| शुक्र-गुरुसञ्चारोक्तफलानि | ५४८ |
| चन्द्रादिसञ्चारोक्तफलानि | ५४८ |
| ग्रहनक्षत्रबिम्बोक्तफलम् | ५५० |
| द्व्यादिसंख्यकचन्द्रसूर्यदर्शनफलम् | ५५० |
| केतुसञ्चारफलम् | ५५१ |
| शनिसञ्चारफलम् | ५५१ |
| शनिमङ्गलकेतुभिर्वा रोहिणीशकट-भेदने फलम् | ५५२ |
| केतूदयफलम् | ५५२ |
| चन्द्रचारोक्तफलम् | ५५२ |
| परिघादिलक्षणम् | ५५४ |
| सन्ध्यालक्षणं तत्समये विम्बानुसारि फलञ्च | ५५४ |
| वृष्टिज्ञानप्रकार: | ५५५ |
| अर्कचारोक्तफलम् | ५५५ |
| पक्षिगतिवशाद्राज्ञ: शकुनविचार: | ५५५ |
| रविबिम्बवशाद्राज्ञ: शकुनविचार: | ५५६ |
| सन्ध्यावशाद्दैशिकशुभाशुभफलम् | ५५६ |
| स्वदक्षताप्रदर्शनम् | ५५६ |
| **४८. पुष्यस्नानाध्याय:** | |
| आगमप्रदर्शनम् | ५५८ |
| पुष्यस्नानविधि: | ५५९ |

| विषया: | पृष्ठाङ्का: |
|---|---|
| पुष्यस्नानस्थानम् | ५५९ |
| भूलक्षणम् | ५६३ |
| भूमौ विधानम् | ५६३ |
| भूमौ देवावाहनमन्त्र: | ५६४ |
| आवाहितदेवानां प्रति कृत्यम् | ५६४ |
| विविधस्थानकल्पनं नागादीनां स्थापनञ्च | ५६५ |
| स्थापितदेवानां पूजाविधि: | ५६७ |
| देवपूजोत्तरकृत्यम् | ५६८ |
| पुष्यस्नाने द्रव्याणि | ५६९ |
| पुष्यनक्षत्रगतचन्द्रसमये वेद्यामुपरि राजद्वारा चर्मस्थापनम् | ५७१ |
| भद्रासनस्थापनम् | ५७१ |
| भद्रासनोपरि नृपोपवेशनम् | ५७२ |
| राज्ञ: स्वरूपम् | ५७२ |
| पुरोहितेन घृतपूर्णकलशेन राज्ञोऽभिषेचनम् | ५७२ |
| कलशप्रमाणम् | ५७३ |
| अभिषेकार्थं गर्गपठितमन्त्रा: | ५७३ |
| अन्यमन्त्रेण पुनरभिषेचनम् | ५७३ |
| अभिषेचनमन्त्रा: | ५७४ |
| अभिषेकानन्तरमभिमन्त्रिवस्त्रधारणम् | ५७६ |
| नृपेणाभीष्टदेवपूजनम् | ५७७ |
| नृपेणाभूषणधारणम् | ५७७ |
| द्वितीयवेद्यामुपस्थाय नृपेण चर्मधारणम् | ५७७ |
| पुरोधसा अग्नावाहुतिदानम् | ५७८ |
| दैवज्ञकृतदेवविसर्जनम् | ५७८ |
| राजकृतदैवज्ञादिपूजनम् | ५७८ |
| बन्दिमोचनम् | ५७९ |
| पुष्यस्नानमाहात्म्यम् | ५७९ |
| पुष्यस्नानीयोऽन्यो काल: | ५८० |
| पुष्यस्नानफलम् | ५८० |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| अन्यत्पुष्यस्नानमाहात्म्यम् | ५८० |
| **४९. पट्टलक्षणाध्यायः** | |
| पट्टलक्षणव्याख्याने आगमप्रदर्शनम् | ५८२ |
| पट्टप्रमाणं फलञ्च | ५८२ |
| पट्टेन शुभाशुभफलम् | ५८३ |
| पट्टेऽशुभलक्षणदृष्टे सति करणीयकृत्यम् | ५८४ |
| **५०. खड्गलक्षणाध्यायः** | |
| खड्गप्रमाणं व्रणानां शुभाशुभफलञ्च | ५८५ |
| व्रणानामाकृतिलक्षणम् | ५८५ |
| व्रणानामशुभलक्षणम् | ५८५ |
| खड्गलक्षणम् | ५८६ |
| खड्गचेष्टितं फलञ्च | ५८६ |
| खड्गविषये उपदेशाः | ५८६ |
| खड्गस्यान्यलक्षणानि | ५८७ |
| खड्गमुष्टिदर्शनेन व्रणज्ञानम् | ५८८ |
| व्रणज्ञानोपायः | ५८८ |
| खड्गे व्रणज्ञानप्रकारः | ५८८ |
| व्रणानां फलानि | ५९० |
| षट्प्रभृत्यङ्गुलपरिमितव्रणफलम् | ५९० |
| चतुर्दशाद्यङ्गुलपरिमितव्रणफलम् | ५९१ |
| द्वाविंशत्प्रभृतित्रिंशदङ्गुलपरिमितव्रणफलम् | ५९१ |
| त्रिंशदङ्गुलात्परतः परिमितव्रणफलम् | ५९१ |
| खड्गगन्धलक्षणं फलञ्च | ५९२ |
| शस्त्रपानप्रकारः | ५९३ |
| **५१. अङ्गविद्याध्यायः** | |
| अङ्गविद्याकथने प्रयोजनप्रदर्शनम् | ५९५ |
| पृच्छाकरणीयानि स्थानानि | ५९६ |
| पृच्छाकरणीयान्यशुभस्थानानि | ५९६ |

| विषयाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| पृच्छाकरणकदिक्काललक्षणम् | ५९७ |
| प्रश्नकालिकशुभाशुभलक्षणम् | ५९८ |
| पुरुषसंज्ञकान्यङ्गानि | ५९८ |
| स्त्रीसंज्ञकान्यङ्गानि | ५९९ |
| नपुंसकसंज्ञकान्यङ्गानि | ५९९ |
| पृथक्पृथगङ्गस्पर्शफलम् | ६०० |
| वक्षःस्थलाद्यङ्गस्पर्शफलम् | ६०० |
| प्रश्नसमये पिप्पल्यादिदर्शनफलम् | ६०२ |
| प्रश्नसमये न्यग्रोधादिधारणफलम् | ६०२ |
| प्रश्नकाले धान्यपूर्णपात्रदर्शनफलम् | ६०३ |
| प्रश्नकाले पश्वादिदर्शनफलम् | ६०३ |
| वृद्धश्रावकादि(कापालिक)दर्शनफलम् | ६०४ |
| बौद्धादिदर्शनफलम् | ६०४ |
| तापसादिदर्शनफलम् | ६०४ |
| प्रष्टुः शब्दद्वारा प्रष्टव्यज्ञानम् | ६०५ |
| अङ्गस्पर्शनेन चौरज्ञानम् | ६०६ |
| जठरादिस्पर्शनेन चौरज्ञानम् | ६०६ |
| अपहृतस्य लाभज्ञानम् | ६०६ |
| पीडार्तानां मरणज्ञानम् | ६०७ |
| प्रश्नकर्तुर्भोजनज्ञानम् | ६०८ |
| गर्भिण्या जन्मज्ञानम् | ६१० |
| गर्भचिन्ताज्ञानम् | ६१० |
| गर्भस्य गर्भपातस्य च ज्ञानम् | ६११ |
| गर्भग्रहणकालज्ञानम् | ६११ |
| अङ्गस्पर्शनेन सन्ततिसंख्याज्ञानम् | ६१२ |
| सन्तानोत्पत्तौ नक्षत्रज्ञानम् | ६१३ |
| उपसंहारः | ६१४ |
| **५२. पिटकलक्षणाध्यायः** | |
| ब्राह्मणादिवर्णानां पिटकलक्षणम् | ६१५ |
| विशेषेण पिटकफलम् | ६१५ |
| पिटकविशेषे फलम् | ६१८ |
| अन्यपिटके फलनिर्देशः | ६१९ |

M.Katyayana

# अथ कुसुमलताध्यायः

अथ कुसुमलताध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव तत्प्रयोजनप्रदर्शनार्थमाह—

**फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं वनस्पतीनां विलोक्य विज्ञेयम्।**
**सुलभत्वं द्रव्याणां निष्पत्तिश्चापि सस्यानाम् ॥१॥**

वृक्षों में फल और फूलों की वृद्धि देखकर द्रव्यों की सुलभता तथा धान्यों की निष्पत्ति जाननी चाहिये।।१।।

वनस्पतीनां वृक्षाणां फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं फलानां कुसुमानां च पुष्पाणां सम्यक् प्रवृद्धिं विलोक्य दृष्ट्वा द्रव्याणां सर्वेषां सुलभत्वं सामर्थ्यं विज्ञेयं विज्ञातव्यम्। तथा सस्यानामपि निष्पत्तिः सम्पद् ज्ञेयेति।।१।।

अथ केन कस्य वृद्धिर्ज्ञेयेत्येतदाह—

**शालेन कलमशाली रक्ताशोकेन रक्तशालिश्च।**
**पाण्डूकः क्षीरिकया नीलाशोकेन सूकरकः ॥२॥**

शाल वृक्ष पर फल और फूलों की वृद्धि से कलम शाली ( जड़हन धान्य आदि ), रक्त अशोक से रक्त धान्य, दूधी से पाण्डूक और नील अशोक पर फल, फूलों की वृद्धि से सूकरक ( धान्यविशेष ) की वृद्धि जाननी चाहिये।।२।।

शालो वृक्षविशेषस्तस्य फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं दृष्ट्वा कलमशाल्यादीनां निष्पत्तिः सुलभत्वं च ज्ञेयम्। एवं सर्वत्र। तस्माच्छालेन कलमशाली विज्ञातव्या। तथा रक्ताशोकेन रक्तशालिः। पाण्डूकः शालिविशेषः, स च क्षीरिकया दुग्धिकया ज्ञेयः। सूकरकः शालिविशेषः, स च नीलाशोकेन विज्ञेयः।।२।।

अथान्यत्—

**न्यग्रोधेन तु यवकस्तिन्दुकवृद्ध्या च षष्टिको भवति।**
**अश्वत्थेन ज्ञेया निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ॥३॥**

वटवृक्ष से यव, तिन्दुक ( तेंदुआ ) से साठी धान्य और पीपल से सब धान्यों की वृद्धि देखनी चाहिये।।३।।

यवकः शालिविशेषः, स च न्यग्रोधेन विज्ञेयः। षष्टिकः शालिविशेषः, स च तिन्दुकवृद्ध्या भवति। अश्वत्थेन सर्वसस्यानां निष्पतिर्ज्ञेया ज्ञातव्या।।३।।

अथान्यत्—

**जम्बूभिस्तिलमाषाः शिरीषवृद्ध्या च कङ्गुनिष्पत्तिः।**
**गोधूमाश्च मधूकैर्यववृद्धिः सप्तपर्णेन ॥४॥**

जामुन से तिल, माष आदि, शिरीष ( शिरस ) से प्रियङ्गु ( ककुनी = कौनी ), महुए से गेहूँ और सप्तवर्ण वृक्ष पर फल, फूल की वृद्धि से यव की वृद्धि जाननी चाहिये।

जम्बुवृक्षविशेषस्ताभिर्जम्बूभिस्तिलमाषा ज्ञातव्याः। शिरीषो वृक्षविशेषस्तद्वृद्ध्या कङ्गुनिष्पत्तिः। कङ्गुः प्रियङ्गुः। मधूको वृक्षविशेषः। तैर्मधूकैर्गोधूमा ज्ञेयाः। सप्तपर्णो वृक्षविशेषस्तेन यववृद्धिर्भवति।।४।।

अथान्यत्—

**अतिमुक्तककुन्दाभ्यां कर्पासं सर्षपान् वदेदशनैः।**
**बदरीभिश्च कुलत्थांश्चिरबिल्वेनादिशेन्मुद्गान् ॥५॥**

वासन्ती लता और कुन्द पुष्पों में फल-पुष्पों की वृद्धि से कपास, असना से सरसों, बेर से कुलथी और करञ्ज में फल-पुष्पों की वृद्धि से मूंग की वृद्धि जाननी चाहिये।।५।।

अतिमुक्तको वृक्षविशेषः कुन्दश्च यत्र कुन्दपुष्पाणि भवन्ति। ताभ्यामतिमुक्तककुन्दाभयां कर्पासं वदेत् ब्रूयात्। अशनो वृक्षविशेषस्तैः सर्षपान् वदेद् ब्रूयात्। बदरीभिश्च कुलत्थान् वदेत्। चिरबिल्वेन करञ्जेन मुद्गानादिशेद् ब्रूयात्।।५।।

अन्यदप्याह—

**अतसी वेतसपुष्पैः पलाशकुसुमैश्च कोद्रवा ज्ञेयाः।**
**तिलकेन शङ्खमौक्तिकरजतान्यथ चेङ्गुदेन शणाः ॥६॥**

वेतस वृक्ष में फल-पुष्पों की वृद्धि से असली ( तीसी ), पलास से कोदों, तिलक से शंख, मोती और चाँदी की तथा इङ्गुदी वृक्षों में फल-पुष्पों से सन की वृद्धि जाननी चाहिये।

वेतसो वृक्षविशेषस्तत्पुष्पैरतसी ज्ञेया ज्ञातव्या। पलाशकुसुमैः पलाशवृक्षपुष्पैः कोद्रवा ज्ञेया ज्ञातव्याः। तिलको वृक्षविशेषस्तेन शङ्खमौक्तिकरजतानि शङ्खः प्रसिद्धः, मौक्तिकं मुक्ताफलानि, रजतं रूप्यम्, एतानि विज्ञेयानि। अथानन्तरमिङ्गुदेन वृक्षविशेषेण शणा विज्ञेयाः।।६।।

अथान्यत्—

**करिणश्च हस्तिकर्णैरादेश्या वाजिनोऽश्वकर्णेन।**
**गावश्च पाटलाभिः कदलीभिरजाविकं भवति ॥७॥**

हस्तिकर्ण वृक्ष पर फल-पुष्पों की वृद्धि से हाथी, अश्वकर्ण से घोड़ा, पाटला से गाय और कदली वृक्ष पर फल-पुष्पों की वृद्धि से बकरी, भेड़ आदि की वृद्धि होती है।।७।।

हस्तिकर्णैः करिणो गजा आदेश्या वक्तव्याः। वाजिनोऽश्वास्ते चाश्वकर्णेन एतौ द्वावपि सुप्रसिद्धौ। पाटलां वृक्षजातिस्ताभिर्गावः। अजश्छागोऽविर्मेषः। अजाविकं कदलीभी रम्भाभिर्भवति।।७।।

अथान्यदप्याह—

**चम्पककुसुमैः कनकं विद्रुमसम्पच्च बन्धुजीवेन।**
**कुरवकवृद्धा वज्रं वैदूर्यं नन्दिकावर्त्तैः ॥८॥**

चम्पापुष्प की वृद्धि से सोना, बन्धुजीव से मूंगा, कुरवक से वज्र और नन्दिकावर्त्त से वैदूर्य मणि की वृद्धि होती है।।८।।

कनकं सुवर्णं चम्पकपुष्पैः। बन्धुजीवेन विद्रुमस्य सम्पत् सुलभत्वम्। वज्रं मणि-विशेषस्तत्कुरववृद्ध्या। नन्दिकावर्तैर्वैदूर्यम्।।८।।

अथान्यदप्याह—

**विन्द्याच्च सिन्धुवारेण मौक्तिकं कारुकाः कुसुम्भेन।**
**रक्तोत्पलेन राजा मन्त्री नीलोत्पलेनोक्तः ॥९॥**

सिन्धुवास से मोती, कुसुम्भ से केशर, रक्त कमल से राजा और नील कमल से मन्त्री की वृद्धि देखनी चाहिये।।९।।

सिन्धुवारो वृक्षविशेषस्तेन मौक्तिकं विन्द्याज्जानीयात्। कारुकाः शिल्पिनः कुसुम्भेन महारजतेन। राजा नृपो रक्तोत्पलेनोक्तः। नीलोत्पलेन मन्त्री सचिवः।।९।।

अन्यदप्याह—

**श्रेष्ठी सुवर्णपुष्पात् पद्मैर्विप्राः पुरोहिताः कुमुदैः।**
**सौगन्धिकेन बलपतिरर्केण हिरण्यपरिवृद्धिः ॥१०॥**

सुवर्ण पुष्प से व्यापारी, कमल से ब्राह्मण, कुमुद से पुरोहित, सुगन्धित वस्तु से सेनापति और आक से सोने की वृद्धि देखनी चाहिये।।१०।।

सुवर्णपुष्पात् श्रेष्ठी ज्ञेयः। पद्मैः कमलैर्विप्रा ब्राह्मणाः। कुमुदैः कैरवैः पुरोहिता नृपाचार्याः। बलपतिः सेनापतिः सौगन्धिकेन। हिरण्यस्य सुवर्णस्य परिवृद्धिरर्केण।।१०।।

अथान्यत्—

**आम्रैः क्षेमं भल्लातकैर्भयं पीलुभिस्तथारोग्यम्।**
**खदिरशमीभ्यां दुर्भिक्षमर्जुनैः शोभना वृष्टिः ॥११॥**

आम की वृद्धि से मनुष्यों को कुशल, भल्लातक से भय, पीलु से आरोग्य, खैर तथा शमी से दुर्भिक्ष और अर्जुन वृक्ष से सुन्दर वृष्टि कहनी चाहिये।।११।।

आम्रैश्चूतैः क्षेमं विन्द्यात्। भल्लातकैर्भयं भीतिम्। पीलुभिस्तथा आरोग्यमरोगित्वम्। खदिरशमीभ्यां प्रवृद्धाभ्यां दुर्भिक्षं भवति। अर्जुनैः शोभना वृष्टिः, सुवृष्टिर्भवतीत्यर्थः।

अन्यदप्याह—

**पिचुमन्दनागकुसुमैः सुभिक्षमथ मारुतः कपित्थेन।**
**निचुलेनावृष्टिभयं व्याधिभयं भवति कुटजेन ॥१२॥**

निम्ब और नागकेसर पर पुष्पों की वृद्धि से सुभिक्ष, कपित्थ से वायु, निचुल से अवृष्टि का भय और कुटज से व्याधिभय का ज्ञान करना चाहिये।।१२।।

पिचुमन्दो निम्बवृक्षः, नागो नागकेसर इति प्रसिद्धः,तयोः पुष्पैः सुभिक्षं ज्ञेयम्। अथ कपिथेन मारुतो वायुः। कपित्थो वृक्षविशेषः। निचुलेन वृक्षविशेषेण अवृष्टिभयं भवति। निचुलो जलवेतसवृक्षः। कुटजेन व्याधिभयं भवति।।१२।।

अन्यदप्याह—

**दूर्वाकुशकुसुमाभ्यामिक्षुर्वह्निश्च कोविदारेण।**
**श्यामालताभिवृद्ध्या बन्धक्यो वृद्धिमायान्ति ।।१३।।**

दूब और कुश के पुष्पों की वृद्धि से ईख ( गन्ना ), कचनार से आग और श्याम लता की वृद्धि से वेश्या, व्यभिचारिणी आदि स्त्री की वृद्धि होती है।।१३।।

दूर्वा शाद्वलम्। कुशो दर्भः। तत्कुसुमाभ्यां तत्पुष्पाभ्यामिक्षुर्भवति। कोविदारेण च वह्निरग्निः। श्यामालता लतैव प्रसिद्धा। तदभिवृद्ध्या बन्धक्यो वेश्या वृद्धिमायान्ति प्राप्नुवन्ति।

अथैताभिर्वृष्टिलक्षणमाह—

**यस्मिन् काले स्निग्धनिश्छिद्रपत्राः**
**सन्दृश्यन्ते वृक्षगुल्मा लताश्च।**
**तस्मिन् वृष्टिः शोभना सम्प्रदिष्टा**
**यक्षैश्छिद्रैरल्पमम्भः प्रदिष्टम् ।।१४।।**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कुसुमलतानामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।।२९।।**

जिस समय वृक्षगुल्म ( फैली लता ) और लताओं के पत्ते चिकने तथा छिद्ररहित दिखाई दें, उस समय सुन्दर वृष्टि होती है। यदि वे ( पत्ते ) रूक्ष और छिद्रयुत हों तो थोड़ी वृष्टि होती है।।१४।।

**इति 'विमला'हिन्दीटीकायां कुसुमलताध्याय एकोनत्रिंशः ।।२९।।**

वृक्षास्तरवः, गुल्म एकमूलो विटपः, लताः प्रसिद्धाः, एते यस्मिन् काले स्निग्धा निर्मला निश्छिद्रपत्राः, छिद्ररहितैः पत्रैः सन्दृश्यन्ते तस्मिन् काले शोभना वृष्टिः प्रदिष्टा उक्ता। तैरेव रूक्षैरस्निग्धैश्छिद्रैश्चाल्पं परिमितमम्भः पानीयं प्रदिष्टमुक्तम्। तथा च पराशरः—

अच्छिद्रपत्राः सुस्निग्धाः फलपुष्पसमन्विताः।
निर्दिशन्ति शुभं वृक्षा विपरीतं विगर्हिताः।। इति ।।१४।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ कुसुमलता नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ।।२९।।**

# अथ सन्ध्यालक्षणाध्यायः

अथ सन्ध्यालक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव तल्लक्षणमाह—

**अर्द्धास्तमितानुदितात् सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत्।**
**तावत् सन्ध्याकालश्चिह्नैरेतैः फलं चास्मिन् ॥१॥**

अर्द्धास्त सूर्यविम्ब के बाद आकाश में नक्षत्रगण अच्छी तरह नहीं दिखाई देने तक एक सन्ध्या ( सायं सन्ध्या ) और नक्षत्रों के स्वल्प कान्ति होने के बाद अर्द्धोदित सूर्य विम्ब होने तक दूसरी ( सायं सन्ध्या ) होती है। लक्षणों के द्वारा इसका फल आगे कहते हैं।

सूर्याद् आदित्यादर्द्धास्तमितादारभ्य यावन्नभ आकाशमस्पष्टभम्। अस्पष्टान्यस्फुटानि भानि नक्षत्राणि यत्र तत्। तावदेका सायंसन्ध्या। तथा स्पष्टभान्नभस आरभ्य प्रभातकाले यस्मिन् समये भानां स्वल्पा कान्तिर्भवति ततः कालाद्यावत्सूर्य अर्धोदितस्तावद् द्वितीया प्रातःसन्ध्या। एवमर्धास्तमितानुदितात् सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत्तावत्सन्ध्याकालः। तथा च गर्गः—

अहोरात्रस्य यः सन्धिः सा च सन्ध्या प्रकीर्तिता।
द्विनाडिका भवेत् साधुर्यावदाज्योतिदर्शनम्।। इति।

अस्मिन् सन्ध्याकाले एतैर्वक्ष्यमाणैश्चिह्नैर्लक्षणैः शुभाशुभं फलं वाच्यं वक्तव्यम्।।१।।

इत्याह—

**मृगशकुनिपवनपरिवेषपरिधिपरिघाभ्रवृक्षसुरचापैः ।**
**गन्धर्वनगररविकरदण्डरजः स्नेहवर्णैश्च ॥२॥**

अरण्यवासी पशु, पक्षी, वायु, रवि-चन्द्र के परिवेष, प्रतिसूर्य, परिघ, मेघरेखा, वृक्षाकार मेघ, इन्द्रधनु, गन्धर्वनगर, सूर्य की रश्मि, दण्ड ( रविकिरण, जल और वायु का संघात ), धूली—इन सबों के सन्ध्याकालिक स्नेह और वर्णों से फल कहना चाहिये।।२।।

मृगा अरण्यप्राणिविशेषाः, शकुनिः पक्षी, पवनो वायुः, परिवेषोऽर्कचन्द्रमसोः, परिधिः प्रतिसूर्यः, परिघो भास्करस्योदयेऽस्तमये वा तिर्यक्स्थिता मेघरेखा, अभ्रवृक्षो मेघ एव वृक्षाकारः, सुरचापमिन्द्रधनुः, एतैः तथा गन्धर्वनगरं खपुरम्, रविकराः सूर्यरश्मयः, दण्डो रविकिरणजलदमरुतां सङ्घातः, रजः प्रसिद्धम्, स्नेहवर्णैः सर्वेषामेव, एतैश्च सन्ध्याकालं वाच्यमिति।।२।।

तत्र मृगचेष्टितमाह—

**भैरवमुच्चैर्विरुवन् मृगोऽसकृद् ग्रामघातमाचष्टे ।**
**रविदीप्तो दक्षिणतो महास्वनः सैन्यघातकरः ॥३॥**

बार-बार ऊँचा भयंकर शब्द करने वाला मृग ग्रामों के नाश का सूचक है तथा सेना के दक्षिण भाग में स्थित सूर्याभिमुख होकर भयंकर शब्द करे तो सेनाओं को नष्ट करता है।।३।।

मृग उच्चैः कृत्वा भैरवं विरुवन् भयावहं शब्दं कुर्वन्नसकृदनेकवारं ग्रामघातं ग्रामविनाशमाचष्टे कथयति, तथा सैन्यस्य सेनाया दक्षिणतो दक्षिणस्यां दिशि स्थितस्तत्र च रविदीप्तः सूर्याभिमुखो महास्वनो महाशब्दः सैन्यस्य घातं सेनाविनाशं करोति।।३।।

अन्यदप्याह—

**अपसव्ये संग्रामः सव्ये सेनासमागमः शान्ते।**
**मृगचक्रे पवने वा सन्ध्यायां मिश्रगे वृष्टिः ॥४॥**

यदि सन्ध्याकाल में सेनाओं के वाम भाग में सूर्याभिमुख होकर मृगसमूह या वायु हो तो संग्राम, दक्षिण में सूर्याभिमुख नहीं होकर स्थित हो तो सेनाओं का समागम और दोनों तरफ स्थित हो तो वृष्टि होती है।।४।।

सन्ध्यायां सन्ध्याकाले मृगचक्रे मृगसमूहे पवने वायौ वापसव्ये सैन्यस्य वामभागस्थे दीप्ते सूर्याभिमुखे च संग्रामो भवति। तथा सव्ये दक्षिणे शान्ते शान्तदिक्स्थे मधुरस्वरेऽनर्काभिमुखे च सेनासमागमः। द्वयोः सैन्ययोः संयोगो भवति। तथा तस्मिन्नेव मृगचक्रे मृगसमूहे पवने वायुसमूहे वा सन्ध्यायां मिश्रगे शान्तदीप्तदिगुत्थे वृष्टिर्वर्षणं भवतीति।।४।।

अन्यच्च सन्ध्यालक्षणमाह—

**दीप्तमृगाण्डजविरुता प्राक् सन्ध्या देशनाशमाख्याति।**
**दक्षिणदिक्स्थैर्विरुता ग्रहणाय पुरस्य दीप्तास्यैः ॥५॥**

सूर्याभिमुख हुये मृग और पक्षियों के शब्दयुत प्रातः सन्ध्या देश का नाश करती है तथा सूर्याभिमुख होकर दक्षिण दिशा में स्थित मृग और पक्षियों के शब्दयुत सन्ध्या शत्रुओं द्वारा नगर को हस्तगत कराती है।।५।।

प्राक् सन्ध्या पूर्वसन्ध्या दीप्तमृगाण्डजविरुता। दीप्तैर्दीप्तदिक्स्थै रूक्षैः स्वनैः सूर्याभिमुखैर्मृगैरारण्यैः। अण्डजैः पक्षिभिश्च विरुता कृतशब्दा देशस्य नाशमाख्याति कथयति। तथा तैरेव मृगाण्डजैर्दीप्तास्यैः सूर्याभिमुखैर्ग्रामस्य पुरस्य वा दक्षिणदिक्स्थैर्याम्याशासमवस्थितैर्विरुता सन्ध्या पुरस्य ग्रहणाय भवति। तत्पुरमन्यैः शत्रुभिर्गृह्यत इति।

अथ सन्ध्याकाले वायोर्लक्षणमाह—

**गृहतरुतोरणमथने सपांशुलोष्टोत्करेऽनिले प्रबले।**
**भैरवरावे रूक्षे खगपातिनि चाशुभा सन्ध्या ॥६॥**

गृह, वृक्ष और तोरण ( पुरद्वार ) को कम्पित करती हुई, धूली और मृत्खण्डों से युत, प्रवल, भयंकर, रूक्ष तथा आकाश से पक्षियों को गिराती हुई सन्ध्या समय की हवा अशुभ फल देने वाली होती है।।६।।

एवंविधेऽनिले वायौ सन्ध्या अशुभा अनिष्टफला। कीदृशे। गृहतरुतोरणमथने। गृहाणि वेश्मानि। तरून् वृक्षान्। तोरणानि च मथ्नाति यस्तथाभूते। सपांशुलोष्टोत्करे, पांशूनां तथा लोष्टानां मृत्खण्डानां य उत्करः समूहस्तेन संयुते। तथा प्रबले बलवति। भैरवरावेऽतिशब्दे। रूक्षे चाङ्गानामसुखकरे। खगाः पक्षिणस्तान् पातयति नभसस्तथाविधे।

अन्यच्च सन्ध्यालक्षणमाह—

**मन्दपवनावघट्टितचलितपलाशद्रुमा विपवना वा।**
**मधुरस्वरशान्तविहङ्गमृगरुता पूजिता सन्ध्या ॥७॥**

मन्द-मन्द चलती हुई हवा से कम्पित पत्रों से युक्त वृक्ष, वायु से रहित या मधुर शब्द करने वाले, शान्त पक्षी और मृगों से युक्त सन्ध्या शुभ होती है।।७।।

एवंविधा सन्ध्या पूजिता शुभेत्यर्थः। कीदृशी। मन्दपवनावघट्टितचलितपलाशद्रुमा, मन्देनाल्पेन पवनेन वायुना यदवघट्टितं चालनं तेन चलिताः कम्पिताः पलाशाः पर्णानि येषु द्रुमेषु तथाभूता द्रुमा वृक्षा यस्यां सन्ध्यायाम्। विपवना वा वातरहिता। तथा मधुरस्वरैः कलशब्दैः शान्तैरनर्काभिमुखैर्विहङ्गैः पक्षिभिर्मृगैश्च या रुता कृतशब्दा सापि पूजिता।।७।।

अन्यदप्याह—

**सन्ध्याकाले स्निग्धा दण्डतडिन्मत्स्यपरिधिपरिवेषाः।**
**सुरपतिचापैरावतरविकिरणाश्चाशु वृष्टिकराः ॥८॥**

दण्ड, विद्युत्, मछली की आकृति वाला मेघ, प्रतिसूर्य, परिघ, इन्द्रधनु, ऐरावत (४७ अध्याय २०वाँ श्लोक), सूर्यकिरण—ये सब यदि सन्ध्याकाल में निर्मल हों तो वृष्टि करने वाले होते हैं।।८।।

एते सर्व एव सन्ध्याकाले सन्ध्यासमय आशु क्षिप्रमेव वृष्टिकराः। के ते। दण्डतडिन्मत्स्यपरिधिपरिवेषाः, दण्डस्तस्य लक्षणं वक्ष्यति। तडिद् विद्युत्। मत्स्या मत्स्याकारा एव मेघाः। परिधिः प्रतिसूर्यः। परिवेषस्तस्य लक्षणं वक्ष्यति। सुरपतिचापमिन्द्रधनुः। ऐरावतस्तस्य लक्षणं वक्ष्यति—'सुरचापखण्डमृजु यद्रोहितमैरावतं दीर्घम्' इति।

रविकिरणा अर्करश्मयः। एते सर्व एव स्निग्धा यदि भवन्ति तदाशु वृष्टिकराः।।८।।

अथान्यदप्याह—

**विच्छिन्नविषमविध्वस्तविकृतकुटिलापसव्यपरिवृत्ताः।**
**तनुह्रस्वविकलकलुषाश्च विग्रहावृष्टिदाः किरणाः ॥९॥**

सन्ध्याकाल में खण्ड, विषम, वर्णरहित, विकृत, कुटिल, अप्रदक्षिणक्रम से परिवेष्टित, सूक्ष्म, छोटा, शक्तिरहित तथा मलिन सूर्य का किरण हो तो मनुष्यों में परस्पर विरोध और वृष्टि को करता है।।९।।

एवंविधाः किरणा रविरश्मयो विग्रहा वृष्टिदाः, विग्रहं विरोधम्, अवृष्टिमवर्षणं च

ददति। कीदृशाः। **विच्छिन्नविषमेति**। विच्छिन्नाः खण्डशो गताः। विषमा अतुल्याः, विध्वस्ता नष्टवर्णाः। विकृता विकारं गताः। कुटिला अस्पष्टाः। अपसव्यमप्रदक्षिणं कृत्वा परिवृत्ताः परिवेष्टिताः। तनवः सूक्ष्माः। ह्रस्वा अदीर्घाः। विकलाः शक्तिरहिताः। कलुषा अप्रसन्नाः।। ९।।

अथैषामेव विशेषलक्षणमाह—

**उद्द्योतिनः प्रसन्ना ऋजवो दीर्घाः प्रदक्षिणावर्ताः।**
**किरणाः शिवाय जगतो वितमस्के नभसि भानुमतः ॥१०॥**

यदि अन्धकाररहित आकाश में तेजयुत, निर्मल, स्पष्ट, दीर्घ और दक्षिणावर्त क्रम से परिवेष्टित सूर्य का किरण हो तो संसार का कल्याण करने वाला होता है।।१०।।

एवंविधाः किरणा रश्मयो भानुमत आदित्यस्य सम्बन्धिनो वितमस्के तमोरहिते नभस्याकाशे दृष्टा जगतो विश्वस्य शिवाय श्रेयसे भवन्ति। कीदृशाः। उद्द्योतिनो दीप्तिमन्तः। प्रसन्ना निर्मलाः। ऋजवः स्पष्टाः। दीर्घा आयामिनः। प्रदक्षिणावर्ताः प्रदक्षिणेनावर्तो येषां ते तथाविधाः।।१०।।

पूर्वमुक्तं यद्यमोघकिरणः सहस्रगोरिति तत्र न ज्ञायते। तदर्थममोघकिरणानां लक्षणमाह—

**शुक्लाः करा दिनकृतो दिवादिमध्यान्तगामिनः स्निग्धाः।**
**अव्युच्छिन्ना ऋजवो वृष्टिकरास्ते त्वमोघाख्याः ॥११॥**

सम्पूर्ण आकाश को व्याप्त करने वाले, निर्मल, अखण्डित और स्पष्ट सूर्य के किरण अमोघ संज्ञक ( शुभ फल देने वाले ) होते हैं।।११।।

दिनकृत आदित्यस्य शुक्लाः श्वेतवर्णाः करा रश्मयो दिवादिमध्यान्तगामिनः। दिवे नभसि आदौ मध्येऽन्ते च गमनशीलाः। सकलनभोव्यापिन इत्यर्थः। ते च स्निग्धा अरूक्षाः। अव्युच्छिन्ना अखण्डाः। ऋजवः स्पष्टाः। ते त्वमोघाख्या अमोघसंज्ञा रविरश्मयः। ते च दृष्टा वृष्टिकराः।।११।।

अथान्यद्रश्मिलक्षणमाह—

**कल्माषबभ्रुकपिला विचित्रमाञ्जिष्ठहरितशबलाभाः।**
**त्रिदिवानुबन्धिनोऽवृष्टयेऽल्पभयदास्तु सप्ताहात् ॥१२॥**

कल्माष ( पीला, श्वेत और काला वर्ण मिश्रित ), थोड़े पीले, विचित्र, मञ्जीठ ( मजीठ ) की तरह हरे, काला-श्वेत दोनों मिले हुये और सम्पूर्ण आकाशमण्डल को व्याप्त करके स्थित सूर्य के किरण दिखाई दें तो उसके सात दिन वाद से वृष्टि और थोड़ा भय करते हैं।।१२।।

'कल्माषा: पीतगौरकृष्णवर्णा:। बभ्रव ईषत्कपिला: कपिलवर्णा:। विचित्रा नानावर्णा:। माञ्जिष्ठा मञ्जिष्ठाभा:। हरिता: शुकवर्णा:। शबलाभा: कृष्णश्वेतकान्तय:। केषाञ्चित्पाठ: शबला वा। त्रिदिवानुबन्धिनस्त्रिदिवमाकाशं तत्रानुबन्धिनोऽनुबन्धशीला:, सकलमाकाशं व्याप्य स्थिता इत्यर्थ:। ऊर्ध्वगामिनश्च। एते दृष्टा अवृष्टये भवन्ति। तथा सप्ताहाद्दिनसप्तकात् परतोऽल्पमीषद् भयं ददति।। १२।।

अथैतेषामुक्तलक्षणानां फलान्याह—

**ताम्रा बलपतिमृत्युं पीतारुणसन्निभाश्च तद्व्यसनम्।**
**हरिता: पशुसस्यबधं धूमसवर्णा गवां नाशम्॥१३॥**
**माञ्जिष्ठाभा: शस्त्राग्निसम्भ्रमं बभ्रव: पवनवृष्टिम्।**
**भस्मसदृशास्त्ववृष्टिं तनुभावं शबलकल्माषा: ॥१४॥**

सूर्यकिरण यदि ताम्रवर्ण की हो तो सेनापति की मृत्यु, पीले और लालरंग के सदृश हो तो सेनापति को कष्ट, हरे रंग के समान हो तो पशु तथा धान्य का नाश, धूमवर्ण की हो तो गायों का नाश, मजीठ वर्ण की हो तो शस्त्र तथा अग्नि से भय, पीले हों तो वायु के झकोरों से युक्त वर्षा, भस्मसमान हो तो अनावृष्टि, सफेद, काले, नीले, पीले इन सब मिले हुये वर्णों की तरह हो तो बहुत ही कम वर्षा होती है।।१३-१४।।

ताम्रस्ताम्रवर्णाभा रविरश्मयो बलपतेश्चमूनाथस्य मृत्युं मरणं ददति। पीतारुणसन्निभा: पीतवर्णा हरिद्राभा:। अरुणसन्निभा लोहितकान्तयश्च तद्व्यसनं तस्यैव सेनापतेर्व्यसनं दु:खं ददति। केचिद्रुग्व्यसनमिति पठन्ति। हरिता: शुकवर्णा: पशूनां चतुष्पदानां सस्यानां च बधं विनाशं कुर्वन्ति। धूमसवर्णा धूमाभा गवां नाशं कुर्वन्ति।

माञ्जिष्ठाभा माञ्जिष्ठवर्णा: शस्त्राग्निसम्भ्रमं शस्त्रेणाग्निना च सम्भ्रममुद्योगं च कुर्वन्ति। बभ्रव: कपिलवर्णा: पवनवृष्टिं पवनेन वायुना संयुक्तां वृष्टिं कुर्वन्ति। भस्मसदृशा भस्मकान्तय:। अवृष्टिमवर्षणं कुर्वन्ति। शबलकल्माषा: सितकृष्णनीलपीतव्यामिश्रवर्णास्तनुभावमेव वृष्टे: कुर्वन्ति।।१४।।

अन्यत्सन्ध्यालक्षणमाह—

**बन्धूकपुष्पाञ्जनचूर्णसन्निभं सान्ध्यं रजोऽभ्येति यदा दिवाकरम्।**
**लोकस्तदा रोगशनैर्निपीड्यत शुक्लं रजो लोकविवृद्धिशान्तये ॥१५॥**

यदि बन्धूक-पुष्प या अञ्जन की तरह होकर धूली सूर्य की तरफ जाय तो लोग सैकड़ों रोगों से पीड़ित होते हैं तथा श्वेत वर्ण की होकर धूली सूर्य की तरफ जाय तो लोगों की वृद्धि और शान्ति के लिये होती है।।१५।।

बन्धूकपुष्पं प्रसिद्धमतिलोहितम्। अञ्जनचूर्णश्च प्रसिद्धोऽतिकृष्ण एव। तत्सन्निभं तत्सदृशं सन्ध्याकाले रजो यदा दिवाकरमभ्येति सम्मुखमुपगच्छति, तदा लोको जनपदो

रोगशतैर्बहुभिर्गदैर्निपीड्यते उपताप्यते। तथा शुक्लं श्वेतवर्णं सन्ध्यारजो लोकानां विवृद्धये संवर्धनाय। शान्तये शिवाय च भवति। तथा च पराशरः—

बन्धूजीवनिकाशेन तपनीयनिभेन वा।
उदये रजसा सूर्यः संवृतः शस्त्रमावहेत्।।
शङ्खचूर्णनिकाशेन रजसा संवृतो रविः।
राज्ञो विजयमाख्याति वृद्धिं जनपदस्य च।। इति।।१५।।

अधुना दण्डलक्षणमाह—

**रविकिरणजलदमरुतां सङ्घातो दण्डवत्स्थितो दण्डः।**
**स विदिक्स्थितो नृपाणामशुभो दिक्षु द्विजादीनाम् ॥१६॥**

सूर्यकिरण, मेघ, वायु—ये तीनों मिलकर दण्ड की तरह स्थित हों तो उसको दण्ड कहते हैं। यह दण्ड कोणों में स्थित हो तो राजाओं का और दिशाओं में स्थित हो तो चारो वर्णों का अशुभ करता है।।१६।।

रविकिरणाः सूर्यरश्मयः, जलदो मेघः, मरुद्वायुः, एषां त्रयाणां सङ्घात एकीभावो यदा दण्डवत्स्थितो भवति तथा दण्डाकृतिसंस्थानाद्दण्ड इत्युच्यते। स च विदिक्स्थितो विदिक्षु स्थितो नृपाणां राज्ञामशुभोऽनिष्टदः। दिक्षूत्तराद्यासु चतसृषु स्थितः क्रमेण द्विजादीनां चतुर्णां वर्णानामशुभः। केचित् सामान्येन दिक्षु द्विजातीनामेवाशुभमिच्छन्ति।।१६।।

अथास्यैव विशेषमाह—

**शस्त्रभयातङ्ककरो दृष्टः प्राङ् मध्यसन्धिषु दिनस्य।**
**शुक्लाद्यो विप्रादीन् यदभिमुखस्तां निहन्ति दिशम् ॥१७॥**

यदि यह दण्ड सूर्योदय, मध्याह्न या सूर्यास्त काल में दिखाई दे तो शस्त्रभय और उपद्रव करता है तथा श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मणों का, रक्तवर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है। साथ ही यह जिस दिशा के सम्मुख स्थित हो, उस दिशा का नाश करता है। सूर्य के समीप का इसका भाग मूल और दूसरी तरफ मुख होता है।।१७।।

स एव दण्डो दिनस्य प्राङ्मध्यसन्धिषूदयमध्याह्नास्तमयकालेषु दृष्टोऽवलोकितः शस्त्रभयातङ्ककरो भवति, शस्त्रभयमातङ्कमुपद्रवं च करोति। शुक्लाद्यः सितरक्तपीतकृष्णो विप्रादीन् ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रान् निहन्ति घातयति। यस्यां दिश्यभिमुखः सम्मुखः स दण्डस्तां दिशमाशां निहन्ति। अर्कसन्निकृष्टो भागस्तस्य मूलमन्यो मुखमिति।।१७।।

अथान्यल्लक्षणमाह—

**दधिसदृशाग्रो नीलो भानुच्छादी खमध्यगोऽभ्रतरुः।**
**पीतच्छुरिताश्च घना घनमूला भूरिवृष्टिकराः ॥१८॥**

दही के समान अग्र भाग वाले, नील वर्ण के भाग से सूर्य को आच्छादित करने वाले, आकाश के मध्य में स्थित, पीले रङ्ग से रँगे और मूल की तरफ सघन मेघवृक्ष हों तो अधिक वृष्टि करते हैं।।१८।।

अभ्रतरुर्मेघंवृक्षः। दधिसदृशाग्रः दधिसदृशमग्रं यस्य। श्वेताग्र इत्यर्थः। तथा नीलो नीलवर्णो भानुच्छादी सूर्यमाच्छायति तच्छीलः। स च खमध्यग आकाशमध्यभागस्थः। तथा घना मेघाः पीतच्छुरिताः पीतेन पीतवर्णेन छुरिता रञ्जितास्ते च घनमूलाः। घनानि सन्ति तानि मूलानि येषाम्। एते सर्व एव भूरिवृष्टिकराः प्रभूतां वृष्टिं कुर्वन्ति।।१८।।

अथाभ्रवृक्षेणैव सियासोः शुभाशुभमाह—

**अनुलोमगेऽभ्रवृक्षे शमं गते यायिनो नृपस्य बधः।**
**बालतरुप्रतिरूपिणि युवराजामात्ययोर्मृत्युः ॥१९॥**

शत्रु के ऊपर चढ़ाई करने वाले विजयेच्छु राजा के पीछे-पीछे कुछ दूर जाकर यदि मेघवृक्ष नष्ट हो जाय तो उस राजा का मरण होता है। यदि वही मेघवृक्ष बाल ( छोटे ) वृक्ष की तरह हो तो युवराज और मन्त्री का मरण होता है।।१९।।

अभ्रवृक्षे मेघतरौ यायिनो जिगमिषोर्नृपस्य राज्ञोऽनुलोमगे तत्पश्चाद् गम्यमाने शमं गतेऽकस्मान्नष्टे तस्यैव यायिनो बधो मरणं भवति। तस्मिन्नेवाभ्रतरौ बालतरुप्रतिरूपिणि बालवृक्षसदृशे शमं गते युवराजामात्ययोर्मरणं मृत्युर्भवति अर्धराज्यभाग युवराजः। अमात्यो मन्त्री।।१९।।

अथ पुनरपि सन्ध्यालक्षणमाह—

**कुवलयवैदूर्याम्बुजकिञ्जल्काभा प्रभञ्जनोन्मुक्ता।**
**सन्ध्या करोति वृष्टिं रविकिरणोद्भासिता सद्यः ॥२०॥**

नील कमल, वैदूर्य मणि या कमल के केशर की तरह कान्ति वाली, वायु से रहित और सूर्य के किरणों से प्रकाशित सन्ध्या हो तो उसी दिन वृष्टि करती है।।२०।।

एवंविधा सन्ध्या सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि वृष्टिं वर्षणं करोति। कीदृशी। कुवलयं नीलोत्पलम्, वैदूर्यो मणिर्नीलपीतः, अम्बुजकिञ्जल्कं पद्मकेसरम्, एषां सदृशी आभा कान्तिर्यस्याः। तथा प्रभञ्जनोन्मुक्ता प्रभञ्जनेन वातेनोन्मुक्ता रहिता। तथा रविकिरणोद्भासिता प्रकाशीकृता।।२०।।

अन्यल्लक्षणमाह—

**अशुभाकृतिघनगन्धर्वनगरनीहारधूमपांशुयुता।**
**प्रावृषि करोत्यवग्रहमन्यर्तौ शस्त्रकोपकरी ॥२१॥**

गन्धर्वनगर, हिम, धूम और धूली से युक्त सन्ध्या वर्षाकाल में अवृष्टि तथा अन्य ऋतु में शस्त्र-कोप करती है।।२१।।

अशुभा अनिष्टा आकृतिर्येषां घनानां मेघानाम्। गर्दभोष्ट्रकबन्धध्वांक्षमार्जाराकृतय इत्यर्थः। तथा गन्धर्वनगरं खपुरम्। नीहारधूमपांशवः प्रसिद्धाः। एतैर्युक्ता या सन्ध्या सा प्रावृषि प्रावृट्काले वर्षाकालेऽवग्रहमवृष्टिं करोति। वर्षावर्जिते चान्यऋतौ शस्त्रकोपं करोति।।२१।।

अथ षट्सु ऋतुषु लक्षणमाह—

**शिशिरादिषु वर्णाः शोणपीतसितचित्रपद्मरुधिरनिभाः।**
**प्रकृतिभवाः सन्ध्यायां स्वर्तौ शस्ता विकृतिरन्या ॥२२॥**

शिशिर ऋतु में लाल, वसन्त ऋतु में पीला, ग्रीष्म ऋतु में श्वेत, वर्षा ऋतु में चित्र, शरद् ऋतु में कमल की तरह और यदि हेमन्त ऋतु में रुधिर की तरह सन्ध्या का वर्ण हो तो शुभ; अन्यथा अशुभ फल होता है।।२२।।

शिशिरादिषु षट्सु ऋतुषु शोणादयो वर्णाः सन्ध्यायां प्रकृतिभवाः सहजाः स्वर्ता-वात्मीयर्तौ शस्ताः शुभा भवन्ति। तद्यथा—शिशिरे शोणा लोहितवर्णा सन्ध्या शस्ता शुभा। वसन्ते पीता। ग्रीष्मे सिता श्वेतवर्णा। वर्षासु चित्रा नानावर्णा। शरदि पद्मवर्णा रक्तगौरा। हेमन्ते रुधिरनिभा अतिलोहिता। एताः स्वर्तौ आत्मीयर्तौ शस्ताः। अन्या विकृतिर्विकारः। शिशिरादिषु ये वर्णाः क्रमेणोक्तास्त एव यदा विपर्ययेण भवन्ति, तदा विकृतिर्विकारोऽशुभ इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

वसन्ते मधुवर्णाभाऽथवा रुधिरसन्निभा।
ग्रीष्मे श्वेता रजोध्वस्ता पांशुवर्णा च शस्यते।।
नीललोहितशुक्लाभा सन्ध्या वर्षासु वार्षिका।
माञ्जिष्ठवर्णा शरदि पीयूषाभा च शस्यते।।
हेमन्ते बभ्रुवर्णा च पिङ्गला चापि पूजिता।
शिशिरे शोणवर्णा च सन्ध्याक्षेमसुखप्रदा।।
स्निग्धा प्रसन्ना विमला सप्रभा नाकुलापि वा।
सन्ध्या यथर्तुवर्णाभा शान्तद्विजमृगा शुभा।। इति।।२२।।

अथान्यल्लक्षणमाह—

**आयुधभृन्नररूपं छिन्नाभ्रं परभयाय रविगामि।**
**सितखपुरेऽर्काक्रान्ते पुरलाभो भेदने नाशः ॥२३॥**

यदि सन्ध्याकाल में शस्त्र लिये हुए पुरुष की तरह मेघखण्ड दिखाई दे तो शत्रु का भय, सूर्य से आच्छादित और श्वेत वर्ण का गन्धर्व-नगर दिखाई दे तो पुर का लाभ और सूर्य से भेदित गन्धर्व-नगर हो तो पुर का नाश होता है।।२३।।

छिन्नाभ्रं मेघखण्डमायुधभृन्ररूपं सायुधं पुरुषमिव तच्च रविगामि अर्कसमीपवर्ति

यदि भवति, तदा परभयाय भवति। परेणां शत्रूणां सम्बन्धि भयमुत्पद्यते। सितखपुरे शुक्लवर्णे गन्धर्वनगरेऽर्काक्रान्ते, अर्कः सूर्य आक्रान्तो येन, आच्छादित इत्यर्थः। तस्मिन् पुरलाभः, येन पुरं नगरमाक्रान्तं रुद्धं तस्य लाभो भवति। भेदने नाशः, अर्केण यदि मध्यात् खपुरं भिद्यते तदा पुरस्य नाशः, परैर्लुण्ठनं भवति।।२३।।

अन्यदप्याह—

**सितसितान्तघनावरणं रवेर्भवति वृष्टिकरं यदि सव्यतः।**
**यदि च वीरणगुल्मनिभैर्घनैर्दिवसभर्तुरदीप्तदिगुद्भवैः ॥२४॥**

शुक्ल और शुभ्र ( स्वच्छ ) किरण वाले या वीरण ( गांड़र ) के समान कान्ति वाले शान्त दिशा में उत्पन्न मेघ सूर्य के दक्षिण भाग को आच्छादित करे तो वृष्टि करता है।

सिताः शुक्लास्ते च सितान्ताः सितः शुक्लोऽन्तो येषां तैः सितैः सितान्तैर्घनैर्मेघै रवेरादित्यस्य सव्यतो गच्छतो दक्षिणत आवरणमाच्छादनं यदि भवति, तदा वृष्टिकरं भवति। यदि च दिवसभर्तुरादित्यस्य घनैर्मेघैर्वीरणगुल्मनिभैः, वीरणस्तृणविशेषस्तस्य गुल्मः समूहस्तत्सदृशैः। अदीप्तदिगुद्भवैः शान्तदिक्सम्भूतैः सव्यतो दक्षिणेनावरणं भवति तद्वृष्टिकरम्।।२४।।

अथ परिघवशेन शुभाशुभमाह—

**नृपविपत्तिकरः परिघः सितः क्षतजतुल्यवपुर्बलकोपकृत्।**
**कनकरूपधरो बलवृद्धिदः सवितुरुद्गमकालसमुत्थितः ॥२५॥**

सूर्योदयकाल में उत्पन्न मेघरेखा यदि शुक्ल वर्ण की हो तो राजा का नाश, रक्तवर्ण की हो तो सेना का नाश और सुवर्ण की तरह कान्ति वाली हो तो सेनाओं की वृद्धि करती है।

सवितुरादित्यस्य परिघस्तिर्यक् स्थिता मेघरेखेत्यर्थः। उद्गमकाले उदयसमये समुत्थित उत्पन्नः सितः शुक्लो यदि दृश्यते तदा नृपस्य राज्ञो विपत्तिकरो मृत्युदः। क्षतजतुल्यवपू रक्तवर्णसदृशो बलस्य सेनायाः कोपकृद्भङ्गदः। बले स्वामिनो वा कुप्यन्ति। कनकरूपधरः सुर्णसदृशो बलस्य वृद्धिदो भवति।।२५।।

अथ परिधिवशेन शुभाशुभमाह—

**उभयपार्श्वगतौ परिधी रवेः**
**प्रचुरतोयकरौ वपुषान्वितौ।**
**अथ स मस्तककुप्यरिचारिणः**
**परिधयोऽस्ति कणोऽपि न वारिणः ॥२६॥**

यदि सूर्य के दोनों तरफ परिधि ( प्रतिसूर्य ) दिखाई दे तो अधिक वृष्टि होती है तथा यदि परिधि सभी दिशाओं को व्याप्त करके स्थित हो तो जल का एक कण भी नहीं गिरता है अर्थात् अवृष्टि होती है।।२६।।

रवेरादित्यस्य परिधी प्रतिसूर्यावुभयपार्श्वगतौ पार्श्वद्वयस्थौ तौ च वपुषा शरीरेणान्वितौ सूर्यसंयुक्तौ। यतस्तयोः सूर्य एव शरीरम्। तथाभूतौ प्रचुरतोयकरौ बहुजलप्रदौ। अथ परिधयः समस्तककुप्परिचारिणः सकलदिग्व्यापिनो भवन्ति, तदा वारिणो जलस्य कणोऽपि नास्ति। न वर्षतीत्यर्थः।।२६।।

अथ सन्ध्याघनानां लक्षणमाह—

**ध्वजातपत्रपर्वतद्विपाश्वरूपधारिणः ।**
**जयाय सन्ध्ययोर्घना रणाय रक्तसन्निभाः ॥२७॥**

**पलालधूमसञ्चयस्थितोपमा बलाहकाः ।**
**बलान्यरूक्षमूर्त्तयो विवर्धयन्ति भूभृताम् ॥२८॥**

**विलम्बिनो द्रुमोपमाः खरारुणप्रकाशिनः ।**
**घनाः शिवाय सन्ध्ययोः पुरोपमाः शुभावहाः ॥२९॥**

यदि सन्ध्याकाल में ध्वज, छत्र, पर्वत, हाथी या घोड़े की तरह रक्त वर्ण का मेघ दिखाई दे तो युद्ध के लिये होता है। यदि पलाल ( पुअरा = पुआल = भूस = भूसा ), घुयें की तरह निर्मल शरीर वाला मेघ हो तो राजाओं के सेनाओं की वृद्धि करता है। यदि दोनों सन्ध्याओं में लटके हुये, वृक्ष की तरह, अतिलोहित वर्णों से प्रकाशित और पुर की तरह मेघ दिखाई दे तो शुभ करता है।।२७-२९।।

एवंविधा घना मेघाः सन्ध्ययोर्दृष्टा जयाय नृपाणां जनानां च भवन्ति। कीदृशाः? **ध्वजातपत्रेति**। ध्वजः प्रसिद्धो विविधपटनिर्मितं चिह्नम्। आतपत्रं छत्रम्, पर्वतः शैलः, द्विपो हस्ती, अश्वस्तुरगः, एतेषां सदृशरूपधारिणः, तदाकृतय इत्यर्थः। अथ रक्तसन्निभा अतिलोहिता रणाय संग्रामाय भवन्ति।

**पलालधूमेति**। एवंविधा बलाहका मेघाः। अरूक्षमूर्तयः स्निग्धशरीराः। भूभृतां राज्ञां बलानि सैन्यानि विवर्धयन्ति वृद्धिं नयन्ति। कीदृशाः? पलालधूमसञ्चयस्थितोपमाः, पलालस्य धूमः पलालधूमस्तस्य सञ्चयः समूहः, पलालधूमसञ्चयस्थिता इव। तदुपमास्तत्सदृशाः।

**विलम्बिन इति**। एवंविधा घना मेघाः सन्ध्ययोः शिवाय श्रेयसे भवन्ति। कीदृशाः। विलम्बिनो लम्बमानाः। द्रुमोपमा वृक्षाकृतयः। खरारुणप्रकाशिनः खरा अतीव याऽसावरुणता लोहितता तयातिप्रकाशिनो दीप्तिजनकाः, तथा पुरोपमाः पुराकाराः। शुभावहाः शुभमावहन्ति।।२९।।

अथ विशेषलक्षणमाह—

**दीप्तविहङ्गशिवामृगघुष्टा दण्डरजःपरिघादियुता च।**
**प्रत्यहमर्कविकारयुता वा देशनरेशसुभिक्षबधाय ॥३०॥**

यदि सन्ध्याकाल में सूर्य के सम्मुख स्थित हुये पक्षी, शृगाल और मृगों के शब्दों से दण्ड, धूलि, परिघ आदि ( इन्द्रधनु, गन्धर्वनगर या हिम ) से अथवा प्रतिदिन विकारयुक्त सूर्य से युक्त सन्ध्या हो तो देश, राजा और सुभिक्ष का नाश करती है।।३०।।

एवंविधा सन्ध्या देशस्य जनपदस्य नरेशस्य राज्ञ: सुभिक्षस्य च बधाय नाशाय भवति। कीदृशी? दीप्तै: सूर्याभिमुखैर्विहङ्गै: पक्षिभिस्तथा शिवाभिर्दीप्ताभि:। मृगैरारण्य-प्राणिभिर्घुष्टा कृतशब्दा, तथा दण्डेन रजसा परिघेण च युता संयुक्ता। आदिग्रहणात् सुर-चापगन्धर्वनगरनीहारा ज्ञेया:। प्रत्यहं प्रतिदिनमर्कविकारयुता वा। सविकारार्कसंयुक्ता। स्वरूपान्यत्वं विकारता। तथा च पराशर:—

'अथ सन्ध्यासु द्वियोजनान्तरे देश सद्य: फलमादिशेत्। रश्मिसंयुक्तायां तु सप्त-रात्रनिवाते निर्मलस्निग्धायां शान्तमृगद्विजायां प्रसन्नायामनुपहतायां सन्ध्यायां योगक्षेमं विन्द्याद्विपर्ययं विपरीतायाम्। श्वेतायां वसुवृद्धिं तस्यामेव परिमण्डलायां रक्तायाम्। हरितायां शस्त्रकोपम्। माञ्जिष्ठायामग्निं पीतायां चतु:पाद्रोगं श्यावायां चौरतो भयम्। नीलपीतायामीतिं गवाम्। हरितालवर्णायां प्रथमामात्यस्य शस्त्रेण बधम्। आम्रकोरकवर्णायां वर्षं नील-रक्तायामवग्रहं च कृष्णायामवर्षम्। श्यावकृष्णगौर्य्यां पशुघातं विन्द्यात्। वातं कपिला-यामस्तमितमात्रे सूर्ये यातिमात्रप्रकाश: स्यात् प्रभा सा नाम तस्यां वर्षं विन्द्यात्। प्रत्यूषसि तद्रूपायामेव राज्ञ: सेनापतेर्वा बध: स्यात्। महावर्षं रूप्यवर्णायां च तस्यामेव ताम्रमध्यायां कृष्णायामनृतौ वर्षमृतावववग्रहम्। तथा पीतमाञ्जिष्ठा अग्निजीविनां बधाय। लोहितश्यावा चौरवृद्धये। सर्वा एव च त्रिगात्रा: पञ्चरागा वा युद्धाय यच्चालोहितेनैव लिम्पेत्तस्य बधाय। स्निग्धा तु गौरी योगक्षेमाय'। भवति चात्र—

प्रतिसूर्य: शक्रधनुर्दण्डक: परिवेषणम्।
तथैरावतमत्स्याश्च स्निग्धा ये चार्करश्मय:।।
विद्युतो भूरिकाराश्च वर्णा ये च प्रदक्षिणा:।
सन्ध्यासु यदि दृश्यन्ते सद्यो वर्षणलक्षणम्।। इति।

तथा च काश्यप:—

दिनरात्र्यन्तरं सन्ध्या सूर्यस्यार्द्धं प्रदृश्यते।
यावच्च तावदारभ्य शुभा वाप्यशुभापि वा।।
नभोऽमलं शुभदिश: पद्मारुणसमप्रभा:।
मारुतो वाति सुरभि: सुखदो मृदुशीतल:।।
एषा सन्ध्या शुभा ज्ञेया विपरीताऽशुभा स्मृता।
रूक्षा च सविकारार्का क्रव्यादखरनादिता।।
स्निग्धा दण्डपरीवेषा सुरचापविभूषिता।
क्षिप्रं वर्षप्रदा सन्ध्या जयाऽऽरोग्यविवृद्धिदा।। इति।।३०।।

अथैतेषां सन्ध्यालक्षणोक्तानां फलानां फलकालनियमार्थमाह—

**प्राची तत्क्षणमेव नक्तमपरा सन्ध्या त्र्यहाद्वा फलं**
**सप्ताहात् परिवेषरेणुपरिघाः कुर्वन्ति सद्यो न चेत्।**
**तद्वत् सूर्यकरेन्द्रकार्मुकतडित्प्रत्यर्कमेघानिला-**
**स्तस्मिन्नेव दिनेऽष्टमेऽथ विहगाः सप्ताहपाका मृगाः ॥३१॥**

पूर्व सन्ध्या अपने फल को उसी समय में देती है। सायं सन्ध्या रात्रि या तीन दिन में, परिवेष, धूलि, परिघ, अमोघ, सूर्य के किरण, इन्द्रधनु, प्रतिसूर्य, मेघ और वायु उसी समय या सात दिन में, पक्षी उसी समय या आठ दिन में और मृग सात दिन में शुभाशुभ फल करते हैं।।३१।।

प्राची पूर्वा सन्ध्या शुभमशुभं वा फलं तत्क्षणं तस्यामेव वेलायां करोति। नक्तमपरा, अपरा पश्चिमा द्वितीया सन्ध्या शुभमशुभं वा फलं नक्तं रात्रौ करोति। **त्र्यहाद्वा फलमिति**। सन्ध्याफलमुक्तकाले यदि न दृश्यते तदा त्र्यहाद्दिनत्रयेण भवति। **सप्ताहादिति**। परीवेषः सूर्यचन्द्रयोः। रेणुर्धूलिः। परिघस्तिर्यक् स्थिता सूर्यस्योदयेऽस्तमये वा मेघरेखा। एते दृष्टाः सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि फलं कुर्वन्ति। चेच्छब्दो यद्यर्थे। यदि सद्यो न कुर्वन्ति तदा सप्ताहाद्दिनसप्तकेन शुभमशुभं वा फलं कुर्वन्ति। **तद्वदिति**। सूर्यकराः सूर्यरश्मयः, अमोघादिकाः, इन्द्रकार्मकमिन्द्रधनुः, तडिद्विद्युत्, प्रत्यर्कः प्रतिसूर्यः। मेघा अभ्राणि, अनिलो वातः, एते सर्व एव तद्वत् सद्यः शुभमशुभं वा फलं कुर्वन्ति। यदि सद्यो न कुर्वन्ति तदा सप्ताहात्। **तस्मिन्नेवेति**। विहगाः पक्षिणः शुभमशुभं वा सन्ध्याकृतं फलं तस्मिन्नेव दिने कुर्वन्ति। तत्र यदि न कुर्वन्ति तदाऽष्टमदिने। अथशब्दो विकल्पे। सप्ताहपाका मृगाः, मृगा आरण्यप्राणिनः सप्ताहपाकाः सप्ताहमध्ये पाकं फलं शुभमशुभं वा कुर्वन्ति इति।।३१।।

अन्येष्वप्याह—

**एकं दीप्त्या योजनं भाति सन्ध्या विद्युद्भासा षट् प्रकाशीकरोति।**
**पञ्चाब्दानां गर्जितं याति शब्दो नास्तीयत्ता केचिदुल्कानिपाते ॥३२॥**

सन्ध्या अपनी कान्ति से प्रकाश करती है और उतनी ही दूर तक फल देती है तथा विद्युत् छः योजन तक और मेघों का गर्जन पाँच योजन तक प्रकाश करता है और उतनी ही दूर तक फल देता है। किसी-किसी ( देवल आदि ) आचार्य का मत है कि उल्कापात होने से फल में प्रदेश की इयत्ता नहीं है; अपितु सर्वत्र फल देने वाला होता है।।३२।।

सन्ध्या दीप्त्या कान्त्या एकं योजनं भाति प्रकाशयति, सा च तावन्मात्र एव फलदा, योजनफलप्रदेत्यर्थः। तथा विद्युद्भासा तडिद्दीप्त्या षड् योजनानि प्रकाशीकरोती। षण्णां योजनानां सा फलदेत्यर्थः। अब्दानां मेघानां गर्जितं शब्दः पञ्च योजनानि याति गच्छति। योजनपञ्चके फलद इत्यर्थः। नास्तीयत्तेति, केचिद्देवलादय एवमाहुः। यथोल्कानिपाते इयत्ता परिच्छित्तिर्नास्ति। सर्वत्र सा फलदेत्यर्थः। तथा च देवलः—

सन्ध्या तु योजनं याति विद्युद्भासा षडेव हि।
मेघशब्दस्तु पञ्चानां योजनानां फलप्रदः।।
उल्का सर्वत्र फलदा शुभा वाऽप्यशुभापि वा।। इति।।३२।।

अथान्येषामप्याह—

**प्रत्यर्कसंज्ञः परिधिस्तु तस्य त्रियोजनाभः परिघस्य पञ्च।**
**षट्पञ्चदृश्यं परिवेषचक्रं दशामरेशस्य धनुर्विभाति ॥३३॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सन्ध्या-**
**लक्षणाध्यायस्त्रिंशत्तमः ॥३०॥**

प्रतिसूर्य नामक परिधि का तीन योजन तक, परिघ का पाँच योजन तक, परिवेषचक्र का पाँच या छः योजन तक और इन्द्रधनुष का दश योजन तक प्रकाश जाता है और उतनी ही दूर तक ये सब फल भी देते हैं।।३३।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां सन्ध्यालक्षणाध्यायस्त्रिंशत्तमः ॥३०॥**

प्रत्यर्कसंज्ञो यः प्रतिसूर्यस्तस्य परिधिस्त्रियोजनाभः, त्रयाणां योजनानां तस्य कान्ति-र्दृश्यते। योजनत्रये फलद इत्यर्थः। परिघस्य पञ्च, पञ्चसु योजनेषु परिघो दृश्यते। तावत्स्वेव फलद इत्यर्थः। परिवेषचक्रं परिवेषमण्डलं षट्पञ्चदृश्यम्, षट्सु पञ्चसु वा योजनेषु दृश्यते। तावन्मात्र एव फलदम्। अमरेशस्येन्द्रस्य धनुरिन्द्रचापं च दशयोजनानि विभाति प्रकटीकरोति। दशानां योजनानां फलप्रदमित्यर्थः।।३३।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सन्ध्यालक्षणं**
**नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥३०॥**

M.Katyayana

# अथ दिग्दाहलक्षणाध्यायः

अथ दिग्दाहलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव वर्णभेदनं तस्यैव फलमाह—

**दाहो दिशां राजभयाय पीतो देशस्य नाशाय हुताशवर्णः ।**
**यश्चारुणः स्यादपसव्यवायुः सस्यस्य नाशं स करोति दृष्टः ॥१॥**

यदि दिग्दाह पीत वर्ण का हो तो राजभय के लिये, अग्नि वर्ण का हो तो देशनाश के लिए और बायीं तरफ लोहित वर्ण का वायु दिखाई दे तो धान्यों का नाश करता है।।१।।

दिशां दाहो दिग्दाहः। पीतः पीतवर्णो राजभयाय नृपभीतये भवति। तथा हुताशवर्णोऽग्निसमप्रभो देशस्य जनपदस्य नाशाय क्षयाय भवति। यश्चारुणो लोहितवर्णः स्याद्भवेत् स चापसव्यवायुः, अपसव्यो वामो वायुर्यस्य स दृष्टोऽवलोकितः सस्यस्य नाशं क्षयं करोतीति।।१।।

अथान्यदप्याह—

**योऽतीव दीप्त्या कुरुते प्रकाशं छायामपि व्यञ्जयतेऽर्कवद्यः ।**
**राज्ञो महद्वेदयते भयं स शस्त्रप्रकोपं क्षतजानुरूपः ॥२॥**

जो दिग्दाह अपनी अत्यधिक कान्ति से प्रकाशित होता है और सूर्य की तरह दृश्यमान द्रव्य की छाया को भी प्रकाशित करता है, वह राजा को अधिक भय देता है तथा यदि वह रक्त वर्ण का हो तो शस्त्र का भय करता है।।२।।

यो दिग्दाहाऽतीव दीप्त्या अतिकान्त्या प्रकाशं कुरुते उद्योतं जनयति। तथा योऽर्कवदादित्यवच्छायामपि व्यञ्जयते प्रकाशयति। दृश्यमाना ये भावास्तदीयां छायामुत्पादयतीत्यर्थः। स च राज्ञो नृपस्य महद्भयं वेदयते आख्याति। क्षतजानुरूपो रक्तवर्णोऽतिलोहित इत्यर्थः। स शस्त्रकोपं करोति।।२।।

अथ सर्वासु दिक्षु फलमाह—

**प्राक्क्षत्रियाणां सनरेश्वराणां प्राग्दक्षिणे शिल्पिकुमारपीडा ।**
**याम्ये सहोग्रैः पुरुषैस्तु वैश्या दूताः पुनर्भूप्रमदाश्च कोणे ॥३॥**

**पश्चात्तु शूद्राः कृषिजीविनश्च चौरास्तुरङ्गैः सह वायुदिक्स्थे ।**
**पीडां व्रजन्त्युत्तरतश्च विप्राः पाखण्डिनो वाणिजकाश्च शार्व्याम् ॥४॥**

यदि पूर्व दिशा में दिग्दाह दिखाई दे तो वह राजा के साथ-साथ सभी क्षत्रियों को पीड़ित करता है। आग्नेय कोण में दिखाई दे तो शिल्पी ( लुहार, सोनार आदि ) और कुमारों को पीड़ित करता है। दक्षिण में दिखाई दे तो क्रूर मनुष्य, वैश्य, दूत और पुनर्भू स्त्री ( जो अक्षतयोनि होकर पुनः शादी करती है ) को पीड़ित करता है। पश्चिम दिशा में दिखाई दे तो शूद्र और किसानों को पीड़ित करता है। वायव्य कोण में दिखाई दे तो घोड़े के साथ चोरों

को भी पीड़ित करता है। उत्तर दिशा में दिखाई दे तो ब्राह्मणों को पीड़ित करता है तथा ईशान कोण में दिग्दाह दिखाई दे तो पाखण्डी और व्यापारियों को पीड़ित करता है।।३-४।।

प्राक् पूर्वस्यां दिशि दिग्दाह दृष्टः क्षत्रियाणां क्षत्रियजातीनां सनरेश्वराणां नरेश्वरेण नृपेण सहितानां पीडां करोति। तथा प्राग्दक्षिणे आग्नेय्यां दिशि शिल्पिनां लोहकार-सुवर्णकारादीनां कुमाराणां च पीडां करोति। याम्ये दक्षिणे वैश्या वैश्यजातयः, उग्रैः क्रूरैः पुरुषैः सह पीडां व्रजन्ति प्राप्नुवन्ति। दूता गमागमिकाः, पुनर्भूप्रमदाश्च पुनर्भूस्त्रियः। कोणे नैर्ऋत्यां दिशि पीडां व्रजन्ति। अक्षतयोनित्वाद्या पुनरुह्यते सा पुनर्भूः। तथा च—

पुनर्भूः सोह्यते भूयो याऽक्षतत्वाद्यथाविधि।

**पश्चात्तु शूद्रा इति**। शूद्राः शूद्रजातयः, कृषिजीविनः कार्षिकाः पश्चात् पश्चिमायां दिशि पीडां व्रजन्ति। वायुदिक्स्थे वायव्यां दिशि स्थिते दिग्दाहे चौरास्तुरङ्गैरश्वैः सह पीडां व्रजन्ति। उत्तरत उत्तरस्यां दिशि विप्रा ब्राह्मणाः पीडां व्रजन्ति। पाखण्डिनो वेदबाह्या वाणिजकाश्च क्रयविक्रयजीविनः शार्व्यामैशान्यां दिशि पीडां व्रजन्ति। तथा च काश्यपः—

प्राच्यां दिशि प्रदीप्तायां श्रेणीनां भयमादिशेत्।
आग्नेय्यां तु कुमाराणां वैश्यानां दक्षिणे तथा।।
नैर्ऋत्यां च स्त्रियो हन्ति शूद्रान् पश्चिमतस्तथा।
वायव्यायां चौरभयं विप्राणामुत्तरे तथा।।
पाखण्डिवणिजां पीडा ह्यैशानी यदि दीप्यते।। इति ।।३-४।।

अथ शुभलक्षणमाह—

**नभः प्रसन्नं विमलानि भानि प्रदक्षिणं वाति सदागतिश्च।**
**दिशां च दाहः कनकावदातो हिताय लोकस्य सपार्थिवस्य ॥५॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां दिग्दाहलक्षणाध्याय एकत्रिंशः ॥३१॥**

प्रसन्न ( निर्मल ) आकाश, विमल, ( निर्मल ) नक्षत्र, दक्षिणावर्त्त क्रम से घूमता हुआ वायु और सुवर्ण की तरह दिग्दाह हो तो राजा के साथ-साथ सब लोगों का हित करने वाला होता है।।५।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां दिग्दाहलक्षणाध्याय एकत्रिंशः ॥३१॥**

नभ आकाशं प्रसन्नं निर्मलम्, तथा भानि नक्षत्राणि विमलानि स्निग्धानि। सदागतिर्वायुश्च प्रदक्षिणं वाति प्रदक्षिणेन वहति। दिशां दाहो दिग्दाहः कनकावदातः कनकवत् सुवर्णवद-वदातो निर्मलस्तथाभूतः सपार्थिवस्य सनृपस्य लोकस्य जनपदस्य हिताय श्रेयसे भवति।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ दिग्दाहलक्षणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥**

# अथ भूकम्पलक्षणाध्यायः

अथ भूकम्पलक्षणाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव तन्निमित्तार्थं मुनीनां मतभेदप्रदर्शनार्थमाह—

**क्षितिकम्पाहुरेके बृहदन्तर्जलनिवासिसत्त्वकृतम्।**
**भूभारखिन्नदिग्गजविश्रामसमुद्भवं चान्ये ॥१॥**

किसी-किसी ( काश्यप आदि ) का मत है कि जल में रहने वाले बड़े प्राणियों के धक्के से भूकम्प होता है तथा अन्य ( गर्ग आदि ) आचार्यों का मत है कि पृथ्वी के भार से थके हुये दिग्गजों के विश्राम से भूकम्प होता है।।१।।

एके मुनयो बृहदन्तर्जलनिवासिसत्त्वकृतं क्षितिकम्पमाहुः कथयन्ति। बृहन्तो ये य सत्त्वाः प्राणिनो झषमकरमत्स्यकूर्मनक्रशिशुमारप्रभृतयोऽन्तर्जले जलमध्ये निवसन्ति, तत्कृतं क्षितिकम्पं भूचलनमाहुः। तेषां जलसंक्षोभणादुत्पद्यत इत्यर्थः। तथा च काश्यपः—

वारुणस्योपरि पृथ्वी सशैलवनकानना।
स्थिता जलजसत्त्वाश्च सक्षोभाश्चालयन्ति ताम्।।

**भूभारखिन्नेति**। तथा अन्ये गर्गादय एवमाहुः। भूभारेण क्षितिभारोद्वहनेन खिन्नाः श्रान्ता ये दिग्गजा दिङ्नागास्तेषां विश्राम उच्छ्वसनं तदुद्भवं तदुत्पन्नं क्षितिकम्पमिति। तथा च गर्गः—

चत्वारः पृथिवीं नागा धारयन्ति चतुर्दिशम्।
वर्धमानः सुवृद्धश्चातिवृद्धश्च पृथुश्रवाः।
वर्धमानो दिशं पूर्वां सुवृद्धो दक्षिणां दिशम्।।
पश्चिमामतिवृद्धस्तु सौम्याशां तु पृथुश्रवाः।
नियोगाद् ब्रह्मणो ह्येते धारयन्ति वसुन्धराम्।।
ते श्वसन्ति यदा शान्ताः स वायुः श्वसितो महान्।
वेगान्महीं चालयति भावाभावाय देहिनाम्।। इति।।१।।

अन्यन्मतान्तरमाह—

**अनिलोऽनिलेन निहतः क्षितौ पतन् सस्वनं करोत्यन्ये।**
**केचित्त्वदृष्टकारितमिदमन्ये प्राहुराचार्याः ॥२॥**

किसी ( वसिष्ठ आदि ) का मत है कि वायु एक-दूसरे से टकराकर पृथ्वी पर गिरते हुये शब्द के साथ भूकम्प करता है। दूसरे ( वृद्धगर्ग आदि ) का मत है कि प्रजाओं के अदृष्ट ( धर्माधर्म ) के द्वारा भूकम्प होता है।।२।।

अन्ये वसिष्ठादय एवमाहुः। अनिलो वायुः स च नभस्थोऽपरेणैवानिलेन निहतस्ताडितः क्षितौ भूमौ पतति, स च पतन् सस्वनं शब्दं भूकम्पं करोति उत्पादयति। तथा च वसिष्ठः—

यदा तु बलवान् वायुरन्तरिक्षानिलाहतः।
पतत्याशु स निर्घातो भवेदनिलसम्भवः।।
तस्य योगान्निपतताश्चलत्यन्याहता क्षितिः।
सोऽभिघातसमुत्थः स्यात् सनिर्घातमहीचलः।। इति।

**केचित्त्वदृष्टकारितमिति**। केचिद्वृद्धगर्गादय इदं भूकम्पमदृष्टकारितं प्राहुः। अदृष्ट-शब्देन धर्माधर्मौ बुध्येते, ताभ्यां कारितं कृतमित्यर्थः। किल धर्मेण वृद्धेन प्रजानां शुभसंसूचनाय शुभं भूमिकम्पमुत्पद्यते। अधर्मेणाभिवृद्धेन प्रजानामशुभसंसूचनायाशुभं भूमिकम्पमुत्पद्यत इति। तथा च वृद्धगर्गः—

प्रजा धर्मरता यत्र तत्र कम्पं शुभं वदेत्।
जनानां श्रेयसे नित्यं विसृजन्ति सुरोत्तमाः।।
विपरीतस्थिता यत्र जनास्तत्राशुभं तथा।
विसृजन्ति प्रजानां तु दुःखशोकाभिवृद्धये।। इति।

अन्ये आचार्याः पराशरादयो मुनय इदं वक्ष्यमाणं प्राहुरुक्तवन्तः।।२।।

किं तदित्याह—

**गिरिभिः पुरा सपक्षैर्वसुधा प्रपतद्भिरुत्पतद्भिश्च।**
**आकम्पिता पितामहमाहामरसदसि सव्रीडम्।।३।।**

**भगवन्नाम ममैतत्त्वया कृतं यदचलेति तन्न तथा।**
**क्रियतेऽचलैश्चलद्भिः शक्ताहं नास्य खेदस्य।।४।।**

**तस्याः सगद्गदगिरं किञ्चित् स्फुरिताधरं विनतमीषत्।**
**साश्रुविलोचनमाननमालोक्य पितामहः प्राह।।५।।**

**मन्युं हरेन्द्र धात्र्याः क्षिप कुलिशं शैलपक्षभङ्गाय।**
**शक्रः कृतमित्युक्त्वा मा भैरिति वसुमतीमाह।।६।।**

**किन्त्वनिलदहनसुरपतिवरुणाः सदसत्फलावबोधार्थम्।**
**प्राग् द्वित्रिचतुर्भागेषु दिननिशोः कम्पयिष्यन्ति।।७।।**

पूर्वकाल में आकाश से गिरते हुए और पृथ्वी से उड़ते हुए पंख वाले पर्वतों के द्वारा कम्पित पृथ्वी देवताओं की सभा में लज्जा के साथ ब्रह्माजी से बोली—हे भगवन्! आपने मेरा नाम अचला रखा है; पर चलायमान, भ्रमण करते हुए पर्वतों के द्वारा वह ( नाम ) वैसा नहीं रहा अर्थात् मैं चलायमान हूँ, इसलिये इस दुःख को सहन करने के लिये मैं

समर्थ नहीं हूँ। उस ( पृथ्वी ) का गद्गद वाणी वाला, कुछ-कुछ फड़कते हुए अधर वाला, नम्र और अश्रुयुत नेत्र वाला मुख देख कर ब्रह्माजी ने कहा—हे इन्द्र! पृथ्वी की आपत्ति का हरण करो और पर्वतों के पंख का नाश करने के लिये वज्र का प्रहार करो। इन्द्र ने स्वीकार करके पृथ्वी से कहा—भय मत करो। किन्तु शुभाशुभ फल जानने के लिये वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण दिन और रात के क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ भाग में तुझे कम्पित करेंगे। जैसे कि दिन के पूर्वार्द्ध में वायु, उत्तरार्द्ध में अग्नि, रात्रि के पूर्वार्द्ध में इन्द्र और उत्तरार्द्ध में वरुण तुझे कम्पित करेंगे।।३-७।।

पुरा पूर्वं गिरिभिः पर्वतैः सपक्षैः पक्षसहितैर्वसुधा भूः प्रपतद्भिरुत्पतद्भिश्च आकाशाद् भूर्भूम्याश्चाकाशमुत्पतद्भिराकम्पिता चाल्यमाना सती अमरसदसि देवसभायां गत्वा सव्रीडं सलज्जं कृत्वा। केचित् सव्रीडेति पठन्ति। सव्रीडा सलज्जा पितामहं ब्रह्माणमाह उक्तवती।

किं तदित्याह। हे भगवन् पितामह ममैतत्त्वया भगवता नाम कृतं यदचलेति स्थिरा त्वमिति। तन्नाम न तथाऽचलैः पर्वतैश्चलद्भिर्भ्रमद्भिः क्रियते सम्पाद्यते, तस्मादस्य खेदस्य नाहं सोढुं शक्ता न समर्थेति।

**तस्या इति**। ततस्तस्या वसुमत्याः पितामहो ब्रह्मा आननं मुखमालोक्य दृष्ट्वा इदं प्राहोक्तवान्। कीदृशमाननम्? सगद्गदगिरम्, सह गद्गदया अव्यक्तया गिरा वाचा वर्तते यत्। तथा किञ्चिदीषत्स्फुरिताधरम्, मनाक् स्फुरितौ चलमानावधरावोष्ठौ यस्य तत्। तथा विनतमधोमुखम्। तथा साश्रुविलोचनम्, सहाश्रुणा नयनाम्बुना विलोचने नयने वर्तते यस्मिन् तथाभूतम्।

किं तत्पितामह उवाचेत्याह—**मन्युं हरेति**। हे इन्द्र शतक्रतो धात्र्या भूम्या मन्युं हर परिभवमपनय। क्षिप कुलिशं शैलपक्षभङ्गाय। शैलानां पर्वतानां पक्षभङ्गाय अङ्गरुह-च्छेदनाय कुलिशं वज्रं क्षिप प्रेरय। ततः शक्र इन्द्रः कृतमिति सम्पन्नमित्युक्त्वा वसुमतीं भूमिं मा भैषीरित्याह, मा तव भयं भवतु; अहमपनयामीत्युक्तवान्।

**किन्त्विति**। अनिलदहनसुरपतिवरुणाः, अनिलो वायुः, दहनोऽग्निः, सुरपतिरिन्द्रः, वरुणोऽपाम्पतिः, एते चत्वारः सदसत्फलानां शुभाशुभफलानामवबोधार्थं संसूचयितुं दिननिशोः, दिनं च निशा च तयोर्दिननिशोः समुदितयोर्न प्रत्येकं प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेषु त्वां कम्पयिष्यन्ति। दिवसस्य च पूर्वेऽर्द्धे अनिलः कम्पयिष्यति। द्वितीये दिनार्द्धेऽग्निः। तृतीये अहोरात्रभागे प्रथमनिशार्द्धे सुरपतिः। अहोरात्रस्य चतुर्थभागे निशायाश्चार्द्धे वरुणः कम्पयि-ष्यति। एवं प्रथममहोरात्रचतुर्भागो वायोर्वेला द्वितीयाग्नेस्तृतीया इन्द्रस्य चतुर्थी वरुणस्य। द्वौ दिनस्य निशायाश्च द्वावेवं प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेषु वेलामण्डलान्येतानि। तथा च पराशरः—

'पुरातिवीर्यवेगप्रवृद्धप्रभावाः पक्षिणः पवनपथविचारिणश्चलाः प्रपतन्तः शतशोऽवनिम-सकृदभिकम्पयाम्बभूवुः। तदखिलजगदहितमवनिचलनमभिसमीक्ष्य सुरपतिरविहतगतिमुपरि कुलिशमुपक्षिप्य क्षितिधरपक्षान् क्षणान्निपात्यावनिमुवाच। अद्रिजमतः परं भयमपन-

याम्यनिलानम्बुपतिमदभिसृष्टाः कम्पाः कदाचिज्जगति हिताहितवेदिनो भविष्यन्तीत्यर्कचन्द्र-ग्रहणविकृतचारजांश्च कम्पानाहुः'।

अत्र केचित् प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेषु दिननिशोरित्यन्यथा व्याख्यानं कुर्वन्ति। प्रत्येकं दिननिशोः प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेष्वनिलदहनसुरपतिवरुणाः कम्पयिष्यन्ति। तथा च शास्त्रान्तरे पठ्यते—

रात्रौ दिवा च पूर्वाह्णे वायव्यः कम्प उच्यते।
मध्याह्ने चार्द्धरात्रे च हौताशः कम्प उच्यते।।
दिवारात्रौ तृतीयेंऽशे माहेन्द्रश्चाभिगीयते।
चतेर्थे वर्तमानेंऽशे वारुणं निर्दिशेद् बुधः।।

एतन्न शोभनम्; यस्मात् पराशर आह—

'तत्र चतुर्षु चतुर्भागेषु दिवानक्तमनिलानलेन्द्रवरुणजं कम्पक्रमं विन्द्यात्'।

एतत् स्पष्टतरं गर्ग आह—

कृत्वा चतुर्धाहोरात्रं द्विधाहोऽथ द्विधा निशम्।
देवताश्रययोगाच्च चतुर्धा भगणं तथा।।
पूर्वे दिनार्द्धे वायव्ये आग्नेयाऽर्द्धे तु पश्चिमे।
ऐन्द्रः पूर्वे च रात्र्यर्द्धे पश्चिमार्द्धे तु वारुणः।।
चत्वार एवमेते स्युरहोरात्रविकल्पजाः।
निमित्तभूता लोकानामुल्कानिर्घातभूचलाः।। इति।

एवं चतस्रो वेला इति सिद्धम्।।३-७।।

अथ वायव्यस्य कम्पस्य लक्षणं पूर्वलिङ्गानि चाह—

**चत्वार्यार्यम्णाद्यान्यादित्यं मृगशिरोऽश्वयुक् चेति।**
**मण्डलमेतद्वायव्यमस्य रूपाणि सप्ताहात् ।।८।।**

**धूमाकुलीकृताशे नभसि नभस्वान् रजः क्षिपन् भौमम्।**
**विरुजन् द्रुमांश्च विचरति रविरपटुकरावभासी च ।।९।।**

**वायव्ये भूकम्पे सस्याम्बुवनौषधीक्षयोऽभिहितः।**
**श्वयथुश्वासोन्मादज्वरकासभवो वणिक्पीडा ।।१०।।**

**रूपायुधभृद्वैद्यास्त्रीकविगान्धर्वपण्यशिल्पिजनाः ।**
**पीड्यन्ते सौराष्ट्रककुरुमगधदशार्णमत्स्याश्च ।।११।।**

उत्तरफल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, पुनर्वसु, मृगशिरा, अश्विनी—ये सात नक्षत्र वायव्य मण्डल के हैं। यदि इनमें से किसी भी नक्षत्र में भूकम्प हो तो इसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। धूम से व्याप्त दिशा वाला आकाश होता है, पृथ्वी से धूलि उड़ाती

हुई और वृक्षों को तोड़ती हुई हवा चलती है एवं सूर्य के किरण मन्द हो जाते हैं। वायव्य भूकम्प होने से धान्य, जल और वनौषधियों का नाश होता है तथा व्यापारियों को शोथ, दमा, उन्माद, ज्वर और खाँसी से उत्पन्न पीड़ा होती है। यह वेश्या, शस्त्रजीवी, वैद्य, कवि, गान विद्या जानने वाले, व्यापारी, शिल्पी तथा सौराष्ट्र, कुरु, मगध, दशार्ण और मत्स्यदेशवासी मनुष्यों को पीड़ित करता है।।८-११।।

**चत्वार्यार्यम्णाद्यानीति**। आर्यम्णमुत्तरफल्गुनी तदाद्यानि चत्वारि नक्षत्राणि। उत्तरफल्गुनी हस्तश्चित्रा स्वातिरिति। आदित्यं पुनर्वसुः। मृगशिरः सौम्यम्। अश्वयुगश्विनीत्येतानि सप्त नक्षत्राणि वायव्यमण्डलम्। एतेषामन्यतमर्क्षे यदि भूकम्पो भवति तदा तद्वायव्यं ज्ञेयमिति। अस्य रूपाणि सप्ताहात्। अस्य च मण्डलस्य सप्ताहात्पूर्वं वक्ष्यमाणानि रूपाणि पूर्वलिङ्गानि भवन्ति।

तान्याह—**धूमाकुलीकृताश इति**। यदा वायव्यकम्पो भवति, तदा चैतानि प्राक्स्थितानि लिङ्गान्युत्पद्यन्ते। नभस्याकाशे धूमाकुलीकृताशे। धूमेन आकुली कृता आशा दिशो यत्र तथाभूते। नभस्वान् वायुर्भौमं भूमेरुत्थं रजो धूलिं क्षिपन् प्रेरयन् विचरति। तथा द्रुमान् वृक्षान् विरुजन् विभञ्जयन् विचरति। रविरादित्यः। अपटुकरावभासी च भवति। अपटुभिरचतुरैः करै रश्मिभिरवभासनं प्रकाशं करोति तच्छीलः। तथा च गर्गः—

प्रथमेऽह्नि चतुर्भागे निर्घातोल्कामहीचलाः।
सौम्यादित्यार्यम्णहस्तचित्रास्वात्यश्विनीषु च।।
भवन्त्यनिलजाः सर्वे लक्षणान्यवधारय।
धूमव्याप्ता दिशः सर्वा नभस्वान् प्रक्षिपन् रजः।।
द्रुमांश्च भञ्जंश्चरति रविस्तपति शीतलः।
सप्तमेऽहनि कम्पः स्याद् भूमेरनिलसम्भवः।। इति।

तस्मादस्य रूपाणि सप्ताहादिति यदुक्तं तत्र प्राप्तलिङ्गानीति बोद्धव्यम्। तत्र फलान्याह—

वायव्ये भूकम्पे सस्यानां शालीनामम्बुनो जलस्य वनानामरण्यानामौषधीनां च क्षयो विनाशोऽभिहित उक्तः। तथा श्वयथुः शोफः। श्वासः। उन्मादो विचित्तता। ज्वरः। कासः। एषां भवः सम्भवः। वणिजां क्रयविक्रयजीविनां च पीडा व्यथा।

**तथा रूपायुधभृदिति**। रूपभृतो वेश्याजनाः। आयुधभृतः शस्त्रोपजीविनः। वैद्याः कायचिकित्सकाः। स्त्रियो योषितः। कवयः काव्यकर्तारः। गान्धर्वा गायकाः। पण्याः पण्येन ये जीवन्ति जनाः। तथा शिल्पिनो लोहकारप्रभृतयः। अथवा पण्यमेव शिल्पं येषां ते पण्यशिल्पिजनाः। एते सर्वे पीड्यन्ते। तथा सौराष्ट्रका जनाः। कुरवः। मगधाः। दशार्णाः। मत्स्याः। एतेऽपि पीड्यन्ते।

एवमाचार्येण गर्गऋषिपुत्रयोर्मतमङ्गीकृतम्। वृद्धगर्गपराशरकश्यपैः सह मतभेदः। तथा च पराशरः—

'वायव्याभिजिद्वासवाश्वार्यम्णहस्तत्वाष्ट्रेष्वनिलोऽभिकम्पयन् परुषपवननिपातैस्तरु-कुसुमशष्पसस्यान्युच्छेदयति। उन्मादश्वासश्वयथुविषमज्वरातङ्ककृद्विशेषतो भिषग्वणिक्पण्य-स्त्रीशिल्पिशूरचित्रकारकविविद्याविवादशीलधूर्तकुरुसारदण्डकवात्समागधसाल्वसौव-र्धनपुलिन्दवैदेहसौराष्ट्रनलदकदम्बदशार्णाङ्गवङ्गवर्तिमालवपौरवत्रिगर्तसौवीरयौधेयक्षुद्रक-शिविकानभिहन्ति'।।८-११।।

अथाग्नेयस्य मण्डललक्षणं पूर्वलिङ्गानि चाह—

**पुष्याग्नेयविशाखाभरणीपित्र्याजभाग्यसंज्ञानि ।**
**वर्गो हौतभुजोऽयं करोति रूपाण्यथैतानि ॥१२॥**

**तारोल्कापातावृतमादीप्तमिवाम्बरं सदिग्दाहम् ।**
**विचरति मरुत्सहायः सप्तार्चिः सप्तदिवसान्तः ॥१३॥**

**आग्नेयेऽम्बुदनाशः सलिलाशयसंक्षयो नृपतिवैरम् ।**
**दद्रूविचर्चिकाज्वरविसर्पिकाः पाण्डुरोगश्च ॥१४॥**

**दीप्तौजसः प्रचण्डाः पीड्यन्ते चाश्मकाङ्गबाह्लीकाः ।**
**तङ्गणकलिङ्गवङ्गद्रविडाः शबरा अनेकविधाः ॥१५॥**

पुष्य, कृत्तिका, विशाखा, भरणी, मघा, पूर्वभाद्रपदा, पूर्वफाल्गुनी—ये सात नक्षत्र आग्नेय मण्डल के हैं। यदि इनमें से किसी भी नक्षत्र में भूकम्प हो तो इसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। सात दिन के मध्य में दिग्दाह के साथ तारा तथा उल्का के गिरने से व्याप्त; अतः प्रज्वलित की तरह आकाश होता है तथा वायु की सहायता से अग्नि विचरण करती है। आग्नेय भूकम्प में मेघ और जलाशयों ( वापी, कूप और तालाब ) का नाश, राजाओं में परस्पर द्वेष, दाह, विचर्चिका, ज्वर, विसर्पिका और पाण्डु रोग होता है। यह तेजस्वी, क्रोधी मनुष्य, अश्मक, अङ्ग, बाह्लीक, तङ्गण, कलिङ्ग, वङ्ग, द्रविण और शबर देशवासियों को अनेक प्रकार से पीड़ित करता है।।१२-१५।।

पुष्यः। आग्नेयं कृत्तिका। विशाखा। भरणी। पित्र्यं मघाः। अजशब्देनैकपादुच्यते। एवमजं पूर्वभद्रपदा। भाग्यसंज्ञा पूर्वफल्गुनी। एतानि सप्त नक्षत्राणि। हौतभुजोऽयं वर्गः। हुतं भुङ्क्ते हुतभुक्, तस्यायं हौतभुजः। आग्नेयं मण्डलम्। अथानन्तरम्। एतानि वक्ष्य-माणानि रूपाणि चिह्नानि सप्ताहात् पूर्वं करोति।

**तारोल्कापातावृतमिति**। अम्बरमाकाशं तारोल्कापातावृतम्। तारापातैरुल्कापातैश्चा-वृतं व्याप्तम्। सदिग्दाहं दिग्दाहसहितम्। आदीप्तमिवोज्ज्वलितमिव लक्ष्यते। सप्तदिव-सान्तः सप्ताहमध्ये सप्तार्चिरग्निर्मरुत्सहायो वातसहितो विचरति वहन् दृश्यते। तथा च गर्गः—

द्वितीयेऽह्नि चतुर्भागे निर्घातोल्कामहीचलाः।
पित्र्यभाग्याजपुष्याग्निविशाखायमदैवतैः ।।

भवन्त्यनिलजास्ते च लक्षणानि निबोध मे।
तारोल्कापातदिग्दाहैरादीप्तं लक्ष्यते नभः।।
मरुत्सहायः सप्तार्चिः सप्ताहान्तश्चरत्यपि।
सप्तमेऽहनि विज्ञेयः कम्पश्चानलसम्भवः।। इति।

अथ फलान्याह—आग्नेये भूकम्पे अम्बुदानां मेघानां नाशः क्षयः। सलिलाशयानां जलधराणां वापीकूपतडागानां संक्षयः संशोषः। नृपतीनां राज्ञां परस्परं वैरं द्वेषः। दद्रू त्वग्विकारः। विचर्चिका रोगविशेषः पादजस्त्वग्विकारः। ज्वरः। विसर्पिका अङ्गविकारः। पाण्डुरोग उदरामयः। एते सम्भवन्ति।

**दीप्तौजस इति**। दीप्तमोजो येषां ते दीप्तौजसस्तेजस्विनः। प्रचण्डाः क्रोधिनः। एते पीड्यन्ते पीडां प्राप्नुवन्ति। तथाश्मका जनाः। अङ्गाः। बाह्लीकाः। तङ्गणाः। कलिङ्गाः। वङ्गाः। द्रविणाः। शबरः। एते अनेकविधा बहुप्रकाराः। सर्व एव पीड्यन्ते। अत्रापि पराशरः—

'अग्नीन्द्राग्न्यजयमपितृगुरुभगदैवतेष्वनलोऽभिकम्पयन् वर्षसरित्सरःस्रोतसामपः क्षपयन् सुखानि रोगारोचकपिटकपाण्डुरुग्ज्वरकिटिभदद्रुदाहकृद्विशेषाद्वातपादकाग्निवित्पुलिन्द-यवनबाह्लीकवङ्गोष्ट्रसन्त्यश्मकेक्ष्वाकुकुलूततुखारशिबिकत्रिगर्तवैदेहद्रविडसुराष्ट्रमध्यदेश-दाशार्णांश्च हिनस्ति' इति।।१२-१५।।

अथेन्द्रस्य मण्डलस्य लक्षणं पूर्वलिङ्गानि फलान्याह—

**अभिजिच्छ्रवणधनिष्ठाप्राजापत्यैन्द्रवैश्वमैत्राणि ।**
**सुरपतिमण्डलमेतद्भवन्ति चाप्यस्य रूपाणि ॥१६॥**

**चलिताचलवर्ष्माणो गम्भीरविराविणस्तडिद्वन्तः ।**
**गवलालिकुलाहिनिभा विसृजन्ति पयः पयोवाहाः ॥१७॥**

**ऐन्द्रं स्तुतकुलजातिख्यातावनिपालगणपविध्वंसि ।**
**अतिसारगलग्रहवदनरोगकृच्छर्दिकोपाय ॥१८॥**

**काशिंयुगन्धरपौरवकिरातकीराभिसारहलमद्राः ।**
**अर्बुदसुराष्ट्रमालवपीडाकरमिष्टवृष्टिकरम् ॥१९॥**

अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, अनुराधा—ये सात नक्षत्र इन्द्रमण्डल के हैं। यदि इनमें से किसी भी नक्षत्र में भूकम्प हो तो उसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। जैसे कि पर्वत के समान शरीर वाले, गम्भीर शब्द करने वाले, बिजली वाले, महिषशृङ्ग, भ्रमरकुल और सर्पों के समान कान्ति वाले मेघ वर्षा करते हैं। ऐन्द्र कम्प में प्रधान कुल में उत्पन्न मनुष्य, यशस्वी, राजा और सङ्घियों में प्रधान का नाश करता है तथा अतिसार, कण्ठरोग, मुखरोग और कफ के रोग होते हैं।

काशी, युगन्धर, पौरव, किरात, कीर, अभिसार, हल, मद्र, अर्बुद, सुराष्ट्र और मालवदेशवासी मनुष्यों को पीड़ित करता है एवं प्रयोजन के अनुसार वृष्टि करता है।।१६-१९।।

अभिभिच्छ्रवणं धनिष्ठा। प्राजापत्यं रोहिणी। ऐन्द्रं ज्येष्ठा। वैश्वमुत्तराषाढा। मैत्रमनुराधा। एतानि सप्त नक्षत्राणि सुरपतेरिन्द्रस्य मण्डलमेतत्। अस्यापि सप्ताहात् पूर्वं स्वरूपाणि भवन्ति।

पयोवाहा मेघाः पयः पानीयं विसृजन्त्युत्सृजन्ति। कीदृशाः? चलिताचलवर्ष्माणः, चलितानामचलानां पर्वतानामिव वर्ष्म शरीरं येषां ते तथाविधाः। तथा गम्भीरविराविणः, गम्भीरो मधुरो विशेषेण रावः शब्दो येषाम्। तडिद्वन्तः, तडितो विद्युतस्ता विद्यन्ते येषु। गवलं महिषशृङ्गम्। अलिकुलं भ्रमरकुलम्। अहयः सर्पास्तन्निभास्तत्सदृशाः। तथा च गर्गः—

निशार्द्धे तु यदा पूर्वे उल्कानिर्घातभूचलाः।
मैत्रेन्द्रवैश्वश्रवणाभिजिद्रोहिणिवासवैः ।।
स्यादिन्द्रसम्भवः कम्पो लक्षणानि च मे शृणु।
वर्षन्ति बहवो मेघा वराहमहिषोपमाः।।
धुन्वन्तो मधुरान् रावान् विद्युद्भासितभूतलाः।
सप्तमेऽहनि सम्प्राप्ते कम्पः स्यादिन्द्रसम्भवः।। इति।

फलान्याह—**ऐन्द्रमित्यादि**। ऐन्द्रं कम्पम्। स्तुतकुलजातयः। स्तुते स्तुतिसंयुक्ते प्रधानकुले जातिर्जन्म येषां ते। तथा ख्याताः कीर्तियुक्ताः। अवनिपाला राजानः। गणपाः समूहपतयः। एषां विध्वंसि नाशकम्। अतिसारोऽतीसारः। गलग्रहः कण्ठरोगः। वदनरोगो मुखगदः। एतान् करोति। तथा छर्दिकोपाय भवति। छर्दिप्रकोपं करोति।

काशयो जनाः। युगन्धराः। पौरवाः। किराताः। कीराः। अभिसाराः। हलाः। मद्राः। अर्बुदाः। सुराष्ट्राः। मालवाः। एषां पीडाकरम्। तथा इष्टवृष्टिकरम्। इष्टामभिमतां वृष्टिं करोति। अत्रापि पराशरः—

'ऐन्द्रवैश्वदेववैष्णवप्राजापत्यसौम्यादित्यमैत्रेषु सुरपतिरवनिमतिचालयन् प्रवृद्धाम्भोदयज्ञधर्मान्नपानोत्सवो जात्यप्रथितकुलाधिपतिसुवास्तुनीचकाश्मीराभिसारप्राच्यशककिरातपौरवाच्युतवास्वर्णवमालवपह्लवदण्डककाशिकार्षककैलासमल्ललहवहालानुपतापयति' इति।।१६-१९।।

अथ वारुणस्य लक्षणं पूर्वलिङ्गानि फलमाह—

**पौष्णाप्यार्द्राश्लेषामूलाहिर्बुध्न्यवरुणदेवानि ।**
**मण्डलमेतद्वारुणमस्यापि भवन्ति रूपाणि ।।२०।।**
**नीलोत्पलालिभिन्नाञ्जनत्विषो मधुरराविणो बहुलाः ।**
**तडिदुद्भासितदेहा धाराङ्कुरवर्षिणो जलदाः ।।२१।।**

**वारुणमर्णवसरिदाश्रितघ्नमतिवृष्टिदं विगतवैरम्।**
**गोनर्दचेदिकुकुरान् किरातवैदेहकान् हन्ति ॥२२॥**

रेवती, पूर्वाषाढ़ा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, उत्तरभाद्रपदा, शतभिषा—ये सात नक्षत्र वरुणमण्डल के हैं। यदि इनमें से किसी भी नक्षत्र में भूकम्प हो तो इसके सात दिन पूर्व आगे कथित लक्षण होते हैं। जैसे कि वारुण कम्प में समुद्र और नदी के तट पर रहने वालों का नाश, अतिवृष्टि, परस्पर द्वेषरहित मनुष्य तथा गोनर्द, चेदी, कुकुर, किरात और वैदेह देश में रहने वाले मनुष्यों का नाश करता है।।२०-२२।।

पौष्णं रेवती। आप्यं पूर्वाषाढा। आर्द्रा। आश्लेषा। मूलम्। अहिर्बुध्न्यमुत्तरभद्रपदा। वरुणदेवं शतभिषक्। एतानि सप्त नक्षत्राणि। वारुणं मण्डलमस्यापि सप्ताहात् पूर्वं रूपाणि चिह्नानि भवन्ति।

जलदा मेघा धाराङ्कुरवर्षिणः। धारा जलपात एवाङ्कुरो येषां तैर्वर्षन्ति। कीदृशाः? नीलोत्पलालिभिन्नाञ्जनत्विषः, नीलोत्पलं कुवलयम्, अलिर्भ्रमरः, भिन्नाञ्जनमिति नीलवर्णं कज्जलम्, एषां सदृशी त्विट् कान्तिर्येषाम्। मधुरराविणः, मधुरो रावः शब्दो येषाम्। बहुलाः प्रभूतास्तडिदुद्भासितदेहाः। तडिद्भिर्विद्युद्भिरुद्भासिताः प्रकटीकृता देहाः शरीराणि येषाम्। तथा च गर्गः—

निशायां पश्चिमे भागे निर्घातोल्कामहीचलाः।
पौष्णाप्याद्रोंरगा मूलाहिर्बुध्न्यं वरुणं तथा।।
कम्पो वारुण एभिः स्याच्छृणु तस्यैव लक्षणम्।
वर्षन्ति जलदास्तत्र नीलाञ्जनचयोपमाः।।
विद्युद्भासितदेहाश्च मधुरस्वरभूषिताः।
सप्तमेऽहनि सम्प्राप्ते कम्पः स्याद्वारुणस्ततः।। इति।

फलान्याह—वारुणं कम्पमर्णवसरिदाश्रितघ्नम्। अर्णवः समुद्रः। सरितो नद्यः। तत्र ये आश्रितास्तान् हन्ति। अतिवृष्टिदम्, प्रभूतां वृष्टिं ददाति। विगतवैरं नष्टद्वेषम्। गोनर्दा जनाः। चेदयः। कुकुराः। एतान् किरातान् वैदेहांश्च हन्ति नाशयति। अत्रापि पराशरः—

'वारुणाहिर्बुध्न्यपूषारुद्रभुजगनैर्ऋत्यदैवतेषु कम्पोऽबुपतिकृतः प्रततजलधरः। धराभिन्नकेदारपुरनगरप्रबद्धतरुणततजलताक्षुपशष्पसस्यातीसारहिक्काक्षिरोगकृदपि च विशेषतः किरातकाश्मीरापरान्तककौकुरेयशौर्यारकचेदिवत्ससैन्धवोदकयात्रिकोदधिनदनदीसंश्रितांश्च देशानुपहन्ति' इति।।२०-२२।।

अधुना फलकालनियमार्थमाह—

**षड्भिर्मासैः कम्पो द्वाभ्यां पाकं च याति निर्घातः।**
**अन्यानप्युत्पातान् जगुरन्ये मण्डलैरेतैः ॥२३॥**

भूकम्प का फल छः महीने में और निर्घात का फल दो महीने में घटित होता है। गर्ग

आदि मुनियों का मत है कि अन्य ( निर्घात, उल्कापात आदि ) उत्पातों का फल मण्डल के साथ ही होता है।।२३।।

षड्भिर्मासैः कम्पः पाकं याति फलं ददातीत्यर्थः। निर्घातो द्वाभ्यां मासाभ्यां पाकं याति। अन्ये मुनयो गर्गादयोऽन्यानप्युत्पातान् ग्रहणनिर्घातोल्कापातादीनेतैरेव भूकम्पोक्तैर्मण्डलैर्जगुरुक्तवन्तः। तथा च गर्गः—

निर्घातोल्कामहीकम्पाः स्निग्धगम्भीरनिःस्वनाः।
मेघाः स्तनितशब्दाश्च सूर्येन्दुग्रहणे तथा।।
परिवेषेन्द्रचापं च गन्धर्वनगरं तथा।
मण्डलैरेव बोद्धव्याः शुभाशुभफलप्रदाः।।

तथा च समाससंहितायामाचार्येणैवोक्तम्—

आर्यम्णपूर्वं भचतुष्टयं च शशाङ्कमादित्यमथाश्विनी च।
वायव्यमेतत्पवनोऽत्र चण्डो मासद्वयेनाशुभदः प्रजानाम्।।
अजैकपादं बहुला भरण्यो भाग्यं विशाखा गुरुभं मघा च।
क्षुदग्निशस्त्रामयकोपकारि पक्षैस्त्रिभिर्मण्डलमग्निसंज्ञम्।।
प्राजापत्यं वैष्णवं मैत्रमैन्द्रं विश्वेशं स्याद्वासवं चाभिजिच्च।
ऐन्द्रं ह्येतन्मण्डलं सप्तरात्रात् कुर्यात्तोयं हृष्टलोकं प्रशान्तम्।।
आहिर्बुध्न्यं वारुणं मूलमाप्यं पौष्णं सार्पं मन्मथारीश्वरं च।
सद्यः पाकं वारुणं नाम शस्तं तोयप्रायं हृष्टलोकं प्रशान्तम्।।
उल्काहरिश्चन्द्रपुरं रजश्च निर्घातभूकम्पककुप्प्रदाहाः।
वातोऽतिचण्डो ग्रहणं रवीन्द्वोर्नक्षत्रतारागणवैकृतानि।।
व्यभ्रे वृष्टिर्वैकृतं चातिवृष्टिर्धूमोऽनग्निर्विस्फुलिङ्गार्चिषां वा।
वन्यं सत्त्वं ग्राममध्ये विशेद्वा रात्रावैन्द्रं कार्मुकं दृश्यते वा।।
सन्ध्याविकारः परिवेषखण्डा नद्यः प्रतीपा दिवि तूर्यनादः।
अन्यच्च यत्स्यात् प्रकृतेः प्रतीपं तन्मण्डलैरेव फलं निगद्यम्।। इति।।२३।।

उल्काद्युत्पातानां फलनियमाः—

**( उल्का हरिश्चन्द्रपुर रजश्च निर्घातभूकम्पककुप्प्रदाहाः।**
**वातोऽपिचण्डो ग्रहणं रवीन्द्वोर्नक्षत्रतारागणवैकृतानि।।**
**व्यभ्रे वृष्टिर्वैकृतं वातवृष्टिर्धूमोऽनाग्निर्विस्फुलिङ्गार्चिषो वा।**
**वन्यं सत्त्वं ग्राममध्ये विशेद्वा रात्रावैन्द्रं कार्मुकंदृश्यते वा।।**
**सन्ध्याविकारः परिवेषखण्डा नद्यः प्रतीपा दिवि तूर्यनादः।**
**अन्यच्च यत्स्यात्प्रकृतेः प्रतीपं तन्मण्डलैरेव फलं निगाद्यम्।।**

उल्का, गन्धर्वपुर, धूलि, निर्घात, भूकम्प, दिग्दाह, भयङ्कर वायु, सूर्य-चन्द्र का

ग्रहण, विकारयुकत नक्षत्र और तारागण, बिना बादल की वर्षा, विकार युत वायु के साथ वृष्टि, अग्नि की चिनगारीदार लपट, वन में रहने वाले पशुओं का गाँव में आना, रात्रि में इन्द्रधनुष दिखाई देना, सन्ध्या में विकार, परिवेषखण्ड, नदियों की गति में वैपरीत्य, आकाश में तुरही का बजना, और भी प्रकृति के विरुद्ध लक्षण होना, इन सबों का फल उसके मण्डल से ही कहना चाहिये। )

अथ वेलामण्डलवशेन कम्पानां निष्फलत्वमाह—

**हन्त्यैन्द्रो वायव्यं वायुश्चाप्यैन्द्रमेवमन्योऽन्यम्।**
**वारुणहौतभुजावपि वेलानक्षत्रजाः कम्पाः ॥२४॥**

इन्द्र के मण्डल में उत्पन्न कम्प वायव्य कम्प का, वायव्य मण्डल में उत्पन्न कम्प इन्द्रकम्प का, वारुण मण्डल में उत्पन्न कम्प अग्निकम्प का, अग्निमण्डल में उत्पन्न कम्प वारुण कम्प का, वेलाजात कम्प नक्षत्र कम्प का और नक्षत्रजात कम्प वेलाजात कम्प का नाश करता है। यदि वायव्य मण्डलान्तर्गत वायव्य वेला में कम्प हो तो अपने फल को पुष्ट करता है। इसी प्रकार मण्डल का अन्य भी फल जानना चाहिये; अन्यथा नहीं।।२४।।

ऐन्द्रः कम्पो वायव्यं हन्ति। ऐन्द्रमण्डलोत्पन्नो भूकम्पो वायुवेलाजं कम्पं नाशयति। एवं वायुश्चाप्यैन्द्रं हन्ति। एवमनेनैव प्रकारेण। अन्योऽन्यं परस्परं वारुणहौतभुजावपि। वारुणमण्डलमग्निजं हन्ति। अग्निर्वरुणजं हन्ति। वेलाजाता नक्षत्रजाताश्च कम्पाः परस्परं नाशयन्तीत्यर्थः। तस्मान्न फलदाः। वेलामण्डलयोर्भेदा अभेदे त्वतिफलदाः। यथा वायव्ये मण्डले वायव्यां च वेलायां यः कम्पः स स्वफलं पुष्टं ददात्येवमन्येऽपि बोद्धव्या इति।

अथ वेलामण्डलवशेन कम्पोक्तस्य विशेषमाह—

**प्रथितनरेश्वरमरणव्यसनान्याग्नेयवायुमण्डलयोः ।**
**क्षुद्भयमरकावृष्टिभिरुपताप्यन्ते जनाश्चापि ॥२५॥**

यदि आग्नेय मण्डल और वायव्य वेला में या वायव्य मण्डल और आग्नेय वेला में भूकम्प हो तो विख्यात राजाओं को मरण या मरणतुल्य कष्ट होता है तथा मनुष्यगण दुर्भिक्ष, मृत्यु और अवृष्टि से पीड़ित होते हैं।।२५।।

आग्नेयवायुमण्डलयोराग्नेये मण्डले वायव्यां च वेलायाम्। अथवा वायव्यमण्डले आग्नेय्यां वेलायां भूकम्पस्तस्मिन् प्रथितनरेश्वरमरणव्यसनानि भवन्ति। प्रथिताः प्रख्याता ये नरेश्वरा राजानस्तेषां मरणं व्यसनानि भवन्ति। मृत्युदुःखं च भवतीत्यर्थः। तथा जना लोकाः क्षुद्भयमरकावृष्टिभिरुपताप्यन्ते, क्षुद्भयं दुर्भिक्षम्, मरको मरणम्, अवृष्टिरवर्षणम्, एतैरुपताप्यन्ते।।२५।।

पुनरप्याह—

**वारुणपौरन्दरयोः सुभिक्षशिववृष्टिहार्दयो लोके।**
**गावोऽतिभूरिपयसो निवृत्तवैराश्च भूपालाः ॥२६॥**

यदि वारुण मण्डल और ऐन्द्र वेला में या ऐन्द्र वेला और वारुण मण्डल में भूकम्प हो तो लोगों में सुभिक्ष, कुशल, वृष्टि और चित्त में शान्ति होती है तथा गौ अधिक दूध देती हैं और राजा लोग परस्पर द्वेषरहित होते हैं।।२६।।

वारुणो वरुणकृतः। पौरन्दर ऐन्द्रः। वारुणपौरन्दरयोर्वेलामण्डलयोः सुभिक्षम्। शिवं श्रेयः। वृष्टिर्वर्षणम्। हार्दिश्चित्ततुष्टिः। एते लोके भवन्ति। तथा गावः। अतिभूरिपयसो बहुक्षीराः। तथा भूपाला राजानो निवृत्तवैरा नष्टद्वेषा भवन्ति। तथा च काश्यपः—

ऐन्द्रश्चानिलजं हन्ति वायव्यश्चापि शक्रजम्।
आप्यो हौतभुजं हन्ति चाग्निर्वारुणसम्भवम्।।
वाय्वग्निमिश्रितो यश्च वेलामण्डलसम्भवः।
दुर्भिक्षव्याधिरोगैस्तु पीड्यन्ते तत्र जन्तवः।।
माहेन्द्रवारुणे यत्र वेलामण्डलसम्भवः।
सुभिक्षक्षेमधर्माणां तत्र वृष्टिः प्रतिष्ठिता।।

एवमुक्तपरिशेषाणां विशेषफलं नास्ति पाराशरे तन्त्रे विशेषतरं पठ्यते। तथा च—

योऽन्यस्मिन्नक्षत्रे भागे चान्यत्र भूचलो भवति।
स भवेद् व्यामिश्रफलस्तन्मे गदतो निबोध त्वम्।।
कुरुशाल्वमत्स्यनैषधपुण्ड्रान्ध्रकलिङ्गविन्ध्यपादस्थान्।
वाय्वाग्नेयः कम्पः सानलजीवान् भजति मैत्र्याम्।।
प्राच्यशकचीनपह्लवयौधेयकपर्दियक्षवद्गोमान् ।
शरदण्डमगधवन्धकिविनाशनः शक्रवायव्यः।।
आवन्तिकाः पुलिन्दा विदेहकाश्मीरदरदवासान्ताः।
बाह्याश्रिताश्च वायव्यवारुणे प्राप्नुयुः पीडाम्।।
ऐक्ष्वाकवाऽश्मरथ्यान् पदच्चराभीरचीनमरुकुत्सान्।
ऐन्द्राग्नेयः कम्पो हिनस्ति राज्ञश्च समुदीर्णान्।।
सरितः सरः समुद्राश्रितांश्च गोनर्दमङ्गनाराज्यम्।
क्षत्रियगणांश्च हन्यात् कम्पो वरुणाग्निदैवत्यः।।
काश्याभिसारकाच्युतकच्छद्वीपार्यदेशजाः पुरुषाः।
गणपूजिताः कुलाग्र्या नृपाश्च वरुणेन्द्रवध्याः स्युः।। इति।।२६।।

अधुना कम्पव्यतिरिक्तानामन्येषामुत्पातानां येषां न कुत्रचित् कालनियमः कृतस्तेषां कालनियमार्थमाह—

**पक्षैश्चतुर्भिरनिलस्त्रिभिरग्निर्देवराट् च सप्ताहात्।**
**सद्यः फलति च वरुणो येषु न कालोऽद्भुतेषूक्तः ॥२७॥**

अङ्गस्फुरण आदि उपद्रवों में जिसका फलकाल नहीं कहा गया है, वह यदि वायव्य

मण्डल में हो तो दो मास में, आग्नेय मण्डल में हो तो तीन पक्ष ( डेढ़ मास ) में, इन्द्र मण्डल में हो तो सात दिन में और वारुण मण्डल में हो तो उसी दिन फल देता है।।२७।।

येष्वद्भुतेषूत्पातेषु देहस्पन्दनपिटकप्रायेषु कालः समयो नोक्तो न कथितस्ते यद्यनिले वायव्ये मण्डले भवन्ति तदा चतुर्भिः पक्षैर्मासद्वयेन फलन्ति। एवमाग्नेयैस्त्रिभिः पक्षैः। देवराडिन्द्रः सप्ताहात् सप्तभिर्दिनैः। वरुणः सद्यस्तस्मिन्नेवाहनि फलति।।२७।।

अथ येन मण्डलेन यावन्ति योजनानि चलन्ति तत्प्रदर्शनार्थमाह—

**चलयति पवनः शतद्वयं शतमनलो दशयोजनान्वितम्।**
**सलिलपतिरशीतिसंयुतं कुलिशधरोऽभ्यधिकं च षष्टितः ॥२८॥**

यदि वायुमण्डल में भूकम्प हो तो दो सौ योजन तक, अग्निमण्डल में हो तो दश योजन तक, वारुण मण्डल में हो तो एक सौ अस्सी योजन तक और ऐन्द्र मण्डल में भूकम्प हो तो साठ से अधिक योजन तक पृथ्वी को कम्पित करता है।।२८।।

पवनो वायुर्योजनानां शतद्वयं चलयति। एतदुक्तं भवति—वायव्ये मण्डले यो भूकम्पो भवति स योजनानां शतद्वयं कम्पयति। एवमनलोऽग्निर्दशयोजनान्वितं दशाधिकं योजनशतं चलयति। सलिलपतिर्वरुणोऽशीतिसंयुतं योजनशतं चलयति। कुलिशं वज्रं तद्धारयतीति कुलिशधर इन्द्रः षष्टितोऽधिकं योजनशतं चलयति। तथा च काश्यपः—

वायव्ये मण्डले नित्यं योजनानां शतद्वयम्।
दशाधिकमथाग्नेय ऐन्द्रे षष्ठ्याधिकं शतम्।।
शतं चाशीतिसंयुक्तं वारुणे मण्डले चलेत्।। इति।।२८।।

अथ भूकम्पे वृत्ते पुनर्यदि भूकम्प आसन्नो भवति तस्य फलप्रदर्शनार्थमाह—

**त्रिचतुर्थसप्तमदिने मासे पक्षे तथा त्रिपक्षे च।**
**यदि भवति भूमिकम्पः प्रधाननृपनाशनो भवति ॥२९॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां भूकम्प-**
**लक्षणाध्याय द्वात्रिंशः ॥३२॥**

यदि भूकम्प होने के बाद तीसरे, चौथे, सातवें, पन्द्रहवें या पैंतालीसवें दिन में फिर भूकम्प हो तो प्रधान राजा का नाश करता है।।२९।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां भूमिकम्पलक्षणाध्यायो द्वात्रिंशः ॥३२॥**

भूकम्पे वृत्ते पुनर्यदि तृतीये दिवसे चतुर्थे वा सप्तमे दिने मासे त्रिंशद्दिने पक्षे पञ्चदशाहे। त्रिपक्षे दिनपञ्चचत्वारिंशता भूकम्पो भवति तदा प्रधाननृपाणां प्रतिष्ठितानां राज्ञां नाशनः क्षयावहो भवति। तथा च गर्गः—

अर्द्धमासे चतुर्थेऽह्नि तृतीये वाथ सप्तमे।
कस्मात् पुनर्यदा कम्पो मासे सार्द्धे यदापि वा।।
उत्पद्यते जने यत्र तत्र विन्द्यान्महद्भयम्।। इति।

तथा च पराशरः—

'स्निग्धस्वनाः प्रदक्षिणानुयायिनोऽम्बुधरा धाराभिषिक्ताः पर्वसु च सर्व एव प्रशस्यन्ते। तीक्ष्णाम्बुवहोऽवनिपतिविग्रहोच्छ्राय। त्रिचतुःसप्तरात्रे पक्षमासत्रिपक्षान्तरे प्रतता-नुकम्पनः प्रवरनरपतिविनाशाय। अपि च शमयन्त्यासप्ताहात् कम्पादिकृतं निमित्तमाश्वे-वातिवर्षणोपवासव्रतदीक्षाजप्यहवनानि' इति।।२९।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहितावितृतौ भूकम्पलक्षणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥**

# अथोल्कालक्षणाध्यायः

अथोल्कालक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव स्वरूपप्रर्शनार्थमाह—

**दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः।**
**धिष्ण्योल्काशनिविद्युत्तारा इति पञ्चधा भिन्नाः ॥१॥**

स्वर्ग में शुभ फल भोग कर गिरते हुये प्राणियों का स्वरूप उल्का है। धिष्ण्या, उल्का, अशनि, बिजली, तारा—ये पाँच उल्का के भेद हैं।

**विशेष**—गर्ग आदि आचार्यों का मत है कि लोकपाल लोगों की परीक्षा करके शुभाशुभ फल-ज्ञान के लिये जिन अस्त्रों को छोड़ते हैं, उसी का नाम उल्का है।।१।।

दिवि स्वर्गे। भुक्तशुभफलानाम्, शुभानि फलानि भुक्तानि यैः स्वर्गस्थैस्तेषां पततां यानि रूपाणि दृश्यन्ते तान्युल्का इत्युच्यन्ते। गर्गादिभिः पुनरन्यथा कथितम्। यथा लोकपाला लोकानां शुभाशुभफलसूचनायास्त्राणि ज्वलितान्युत्सृजन्ति तान्येवोल्काः। तथा च गर्गः—

स्वास्त्राणि संसृजन्त्येते शुभाशुभनिवेदिनः।
लोकपाला महात्मानो लोकानां ज्वलितानि तु।।

आचार्येण स्वल्पसंहितायामेवोक्तम्—

अस्त्राणि लोकपाला लोकाभावाय सन्त्यजन्त्युल्काः।
केषाञ्चित् पुण्यकृतां तत्रोल्काविच्युतिः स्वर्गात्।। इति।

ताश्चोल्काः पञ्चधा। पञ्चभिः प्रकारैर्भिन्ना भेदिताः। तद्यथा—धिष्ण्या, उल्का, अशनिः, विद्युत्, तारा इति।।१।।

अथ फलकालनियमार्थमाह—

**उल्का पक्षेण फलं तद्वद्धिष्ण्याशनिस्त्रिभिः पक्षैः।**
**विद्युदहोभिः षड्भिः तद्वत्तारा विपाचयति ॥२॥**

उल्का १५ दिन में, धिण्ष्या १५ दिन में, अशनि तीन पक्ष ( पैंतालीस दिन ) में, बिजली छः दिन में और तारा भी छः दिन में फल देती है।।२।।

उल्का पक्षेण पञ्चदशभिर्दिनैः शुभाशुभफलं विपाचयति सम्पादयतीत्यर्थः। तद्वद्धिष्ण्या तेनैव प्रकारेण पक्षेण फलं विपाचयति। अथाशनिस्त्रिभिः पक्षैर्दिनपञ्चचत्वारिंशता। विद्युदहोभिः षड्भिर्दिनैः। तारा तद्वदेव षड्भिर्दिनैर्विपाचयति। तथा च समाससंहितायाम्—

उल्काथ पञ्चरूपा धिष्ण्योल्का विद्युतोऽशनिस्तारा।
धिष्ण्योल्के पक्षफले तत्त्रिगुणश्चाशनिः षडहिकेऽन्ये।।
फलपादकरी तारा धिष्ण्यार्द्धं पुष्कलं शेषाः।। इति।।२।।

अथ फलनियमार्थमाह—

**तारा फलपादकरी फलार्द्धदात्री प्रकीर्तिता धिष्ण्या।**
**तिस्रः सम्पूर्णफला विद्युदथोल्काशनिश्चेति ॥३॥**

तारा फल का चतुर्थांश, धिष्ण्या फल का आधा तथा विद्युत्, उल्का, अशनि—ये तीनों सम्पूर्ण फल को देती हैं।।३।।

तारा फलपादकरी, फलस्य पादं चतुर्भागं करोतीत्यर्थः। धिष्ण्या फलार्द्धं ददाति। तिस्रो विद्युत्। उल्का। अशनिः। एतास्तिस्रः सम्पूर्णफलाः सम्पूर्णं यथा पठितं फलं प्रयच्छन्ति।।३।।

अथाशन्याः कीदृग्लक्षणमित्येतदाह—

**अशनिः स्वनेन महता नृगजाश्वमृगाश्मवेश्मतरुपशुषु।**
**निपतति विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थाना ॥४॥**

अशनि अधिक शब्द करती हुई, पृथ्वी को विदारण करती हुई और चक्र की तरह भ्रमण करती हुई मनुष्य, हाथी, घोड़ा, मृग, पत्थर, घर, वृक्ष या पशुओं पर गिरती है।।४।।

अशनिर्महता स्वनेन शब्देन युक्ता निपतति। **नृगजेति**। ना मनुष्यः। गजो हस्ती। अश्वस्तुरगः। मृग आरण्यप्राणी। अश्मा पाषाणः। वेश्म गृहम्। तरुर्वृक्षः। पशुर्गवादिः। एतेषूपरि निपतति। तथा धरातलं भूतलम्। चक्रसंस्थाना चक्रवद्भ्रमन्ती विदारयन्ती च निपतति। तथा च समाससंहितायाम्—

अशनिः प्राणिषु निपतति दारयति धरातलं बृहच्छब्दाः।। इति।।४।।

अथ विद्युल्लक्षणमाह—

**विद्युत् सत्त्वत्रासं जनयन्ती तटतटस्वना सहसा।**
**कुटिलविशाला निपतति जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता ॥५॥**

विद्युत् प्राणियों में भय उत्पन्न करती हुई, तट-तट ( तर-तर ) शब्द करती हुई, कुटिल और विस्तृत शरीर वाली, प्राणियों या काष्ठ राशियों पर प्रज्वलित होकर बहुत जल्दी गिरती है।।५।।

विद्युत् सत्त्वानां प्राणिनां त्रासं भयं जनयन्ती उत्पादयन्ती। तटतटस्वना तटतटेति शब्दं क्रियमाणा। अव्यक्तशब्देति यावत्। तथा कुटिलविशाला कुटिला वक्रा विशाला विस्तीर्णा। जीवेन्धनराशिषु, जीवेषु प्राणिषु, इन्धनराशिषु काष्ठनिचयेषु। ज्वलिता सज्वाला सहसा झटित्येव निपतति। तथा च—

विद्युत्तटतटशब्दा ज्वालामालाकुला पतति।। इति।।५।।

अथ धिष्ण्यालक्षणमाह—

**धिष्ण्या कृशाल्पपुच्छा धनूंषि दश दृश्यतेऽन्तराभ्यधिकम्।**
**ज्वलिताङ्गारनिकाशा द्वौ हस्तौ सा प्रमाणेन ॥६॥**

धिष्ण्या पतली और छोटी पूँछ वाली, प्रज्वलित अग्नि के समान, दो हाथ लम्बी तथा दश धनुष प्रमाण प्रदेश के बीच में अधिक दिखाई देती है।।६।।

धिष्ण्या कृशा दुर्बला अल्पपुच्छा स्वल्पलाङ्गूला। ज्वलिताङ्गारनिकाशा प्रज्वलिताङ्गारसदृशी। सा च द्वौ हस्तौ प्रमाणेन दीर्घा। यत उत्पन्ना तत आरभ्य दश धनूंषि। अन्तरे मध्येऽभ्यधिकं दृश्यते। चत्वारिंशद्धस्ता स्फुटतरा दृश्यते इत्यर्थः। तथा च—

धिष्ण्या सिता द्विहस्ता धनूंषि दश याति कृशदेहा।। इति।।६।।

अथ तारालक्षणमाह—

**तारा हस्तं दीर्घा शुक्ला ताम्राब्जतन्तुरूपा वा।**
**तिर्यगधश्चोर्ध्वं वा याति वियत्युह्यमानेव ॥७॥**

तारा एक हाथ लम्बी, श्वेत, ताम्र या कमलसूत्र के समान ( अति सूक्ष्म ) आकाश में आकृष्ट होती हुई, तिरछी, नीचे और ऊपर की तरफ जाती है।।७।।

तारा हस्तं हस्तप्रमाणं दीर्घा। शुक्ला श्वेतवर्णा। ताम्रा वा लोहितवर्णा। अब्जतन्तुरूपा पद्मसूत्रसदृशी। अतिसूक्ष्मेत्यर्थः। सा च वियत्याकाशे उह्यमानेवाकृष्यमाणेव तिर्यगधश्चोर्ध्वं वा याति गच्छति। तथा च—

तारा तु हस्तमात्रा यात्यूर्ध्वमधः स्थिता सिता ताम्रा।। इति।।७।।

अथोल्कालक्षणमाह—

**उल्का शिरसि विशाला निपतन्ती वर्धते प्रतनुपुच्छा।**
**दीर्घा च भवति पुरुषं भेदा बहवो भवन्त्यस्याः ॥८॥**

उल्का विशाल शिर वाली, पुरुष के प्रमाण तुल्य ( साढ़े तीन हाथ ) लम्बी और गिरती हुई बढ़ती है। इसके अनेक प्रकार के भेद हैं।।८।।

उल्का शिरसि मूर्धनि विशाला विस्तीर्णा निपतन्ती वर्धते। यथा यथा निपतति तथा तथा वृद्धिं याति। प्रतनुपुच्छा सूक्ष्मलाङ्गूला। दीर्घा चाऽऽयामिनी पुरुषप्रमाणा भवति। हस्तत्रयं सार्द्धमित्यर्थः। अस्या उल्काया बहवो भेदा भवन्ति। प्रभूता भेदा इत्यर्थः। तथा च—

उल्काग्रतो विशाला बहुप्रकारा पुरुषमात्रा।। इति।।८।।

अथ के ते भेदा इत्याह—

**प्रेतप्रहरणखरकरभनक्रकपिदंष्ट्रिलाङ्गलमृगाभाः ।**
**गोधाहिधूमरूपाः पापा या चोभयशिरस्का ॥९॥**

यह प्रेत, शस्त्र, गदहा, ऊँट, नाक, बन्दर, दंष्ट्री ( सूअर आदि ), हल, मृग, गोह, साँप, धूम के समान या दो शिर वाली होती है। ये सब पाप फल देने वाली होती हैं।।९।।

प्रेतः शवः। प्रहरणं खड्गादि। खरो गर्दभः। करभ उष्ट्रः। नक्रो जलप्राणी। कपिर्वानरः। दंष्ट्रिणो वराहादयः। लाङ्गलं हलम्। मृग आरण्यप्राणी। एषां सदृश्यः। तथा गोधा प्राणिविशेषः। अहिः सर्पः। धूमः प्रसिद्धः। एषां सदृशरूपाः। एताः सर्वाः पापाः। अनिष्टफला इत्यर्थः। या चोभयशिरस्का द्विशीर्षा सापि पापैव।।९।।

पुनरप्याह—

**ध्वजझषगिरिकरिकमलेन्दुतुरगसन्तप्तरजतहंसाभाः ।**
**श्रीवृक्षवज्रशङ्खस्वस्तिकरूपाः शिवसुभिक्षाः ॥१०॥**

ध्वज, मत्स्य, हाथी, पर्वत, कमल, चन्द्रमा, घोड़ा, तपी हुई धूली, हंस, श्रीवृक्ष ( नारियल ), वज्र ( हीरा या शस्त्र ), शंख या स्वस्तिक ( राजगृह की तरह ) रूप वाली उल्का दिखाई दे तो लोगों का कुशल और सुभिक्ष करती है।।१०।।

एवंविधाः सर्वाः शिवसुभिक्षाः, शिवं श्रेयः सुभिक्षं च कुर्वन्ति। कीदृश्यः? ध्वजः पताकाकृतिर्बहुपटविरचितः। झषो मीनः। गिरिः पर्वतः। करी हस्ती। कमलं पद्मम्। इन्दुश्चन्द्रः। तुरगोऽश्वः। सन्तप्तरजतं गलितरौप्यम्। हंसः पक्षी। एतदाभाः एषां सदृश्यः। तथा श्रीवृक्षः प्रसिद्धः। वज्रं हीरकं वज्रमायुधं वा। शङ्खः प्रसिद्धः। स्वस्तिकः संस्थानविशेषः। एवंविधाश्चापि शिवसुभिक्षाः। तथा च काश्यपः—

नरेभतुरगाश्वाश्मवृक्षेषु च पतेत् सदा।
ज्वलन्ती चक्रवद् दृश्या त्वशनी रावसंयुता।।
विद्युत्त्रासकरी भीमा शब्दयन्ती तटत्तटा।
बृहच्छीर्षाऽतिसूक्ष्मा च जीवेषु च पतेत्सदा।।
धनूंषि दश या दृश्या सा च धिष्ण्या प्रकीर्तिता।
ज्वलिताङ्गारसदृशी द्वौ हस्तौ सा प्रमाणतः।।
पद्मताम्राकृतिश्चैव हस्तमात्रायता गता।
तिर्यगूर्ध्वमधो याति सोह्यमानेव तारका।।
उल्का मूर्धनि विस्तीर्णा पतन्ती वर्धते तु सा।
तनुपुच्छा नृमात्रा तु बहुभेदसमावृता।।
आयुधप्रेतसदृशी जम्बुकोष्ट्रखराकृतिः।
धूम्रवर्णा तु पापाख्या विशीर्णा या तु मध्यमा।।
ध्वजपद्मेभहंसाभा पर्वताश्वसमप्रभा।
श्रीवृक्षशङ्खसदृशी या चोल्का सा शिवप्रदा।। इति।।१०।।

अन्यदपि लक्षणमाह—

**अम्बरमध्याद् बह्व्यो निपतन्त्यो राजराष्ट्रनाशाय।**
**बम्भ्रमती गगनोपरि विभ्रममाख्याति लोकस्य ॥११॥**

आकाश मध्य में बहुत तरह की होकर गिरती हुई उल्का राजा और राष्ट्र के नाश के लिये होती है तथा जो उल्का आकाश में बार-बार भ्रमण करती है, वह लोगों की विपत्ति को व्यक्त करती है।।११।।

अम्बरमध्यान्नभोऽन्तः। बह्व्यः प्रभूता अपि निपतन्त्यः सम्पतमाना राज्ञो नृपस्य राष्ट्रस्य जनपदस्य च नाशाय भवन्ति। तथा च गगनोपरि आकाशे योल्का बम्भ्रमती अत्यर्थं भ्रमति सा लोकस्य जनपदस्य विभ्रमं सम्भ्रममाकुलतामाख्याति कथयति।।११।।

अन्यदप्याह—

**संस्पृशती चन्द्रार्कौ तद्विसृता वा सभूप्रकम्पा च।**
**परचक्रागमनृपभयदुर्भिक्षावृष्टिभयजननी ॥१२॥**

जो उल्का सूर्य या चन्द्र को स्पर्श करती है अथवा सूर्य या चन्द्र से निकल कर भूकम्प करती हुई गिरती है, वह दूसरे राजा का आगमन, राजभय, दुर्भिक्ष और अवृष्टि करती है।

योल्का चन्द्रार्कौ शशिसूर्यौ संस्पृशती। तौ संस्पृशति। तद्विसृता वा ताभ्यां चन्द्रार्काभ्यां विसृता निर्गता। सभूप्रकम्पा च भूकम्पसहिता। तस्याः पतमानाया भूकम्पमुत्पद्यते। सा तथाभूता परचक्रागमं परचक्रस्यागमनम्। नृपभयं राजभयम्। दुर्भिक्षभयम्। अवृष्टिभयं च जनयत्युत्पादयति।।१२।।

अन्यदप्याह—

**पौरेतरघ्नमुल्कापसव्यकरणं दिवाकरहिमांश्वोः।**
**उल्का शुभदा पुरतो दिवाकरविनिःसृता यातुः ॥१३॥**

यदि उल्का सूर्य और चन्द्रमा के प्रदक्षिण क्रम से गमन करे तो क्रम से पुर में रहने वाले और बाहर रहने वाले का नाश करती है। जैसे—सूर्य के प्रदक्षिण क्रम से गमन करे तो पुरवासियों का और चन्द्र के प्रदक्षिण क्रम से गमन करे तो बाहर रहने वालों का नाश करती है। जो उल्का सूर्यकिरण से निकल कर गमन करने वालों के आगे गिरती है, वह शुभ फल देने वाली होती है।।१३।।

दिवाकरहिमांश्वोरर्कचन्द्रयोः। उल्कापसव्यकरणम्। तयोरेवापसव्येन प्रदक्षिणेन गमनं करोति। तत्पौरेतरघ्नम्, दिवाकरस्यापसव्यकरणं पौरघ्नं पौरान्नागरान् हन्ति। हिमांशोरुल्कापसव्यकरणमितरघ्नम्, इतरे यायिनस्तान् हन्ति। या च दिवाकरविनिःसृता दिवाकरात् सूर्यान्निर्गता सा यातुर्जिगमिषोः पुरतोऽग्रतः पतिता शुभदा शुभं ददाति।।१३।।

अन्यदप्याह—

**शुक्ला रक्ता पीता कृष्णा चोल्का द्विजादिवर्णघ्नी।**
**क्रमशश्चैतान् हन्युर्मूर्धोरःपार्श्वपुच्छस्थाः ॥१४॥**

सफेद, लाल, पीली और काली उल्का क्रम से ब्राह्मण आदि वर्णों का नाश करने वाली होती है। जैसे—सफेद उल्का ब्राह्मणों का, लाल क्षत्रियों का, पीली वैश्यों का और काली शूद्रों का नाश करती है तथा जो शिर से ठहरती है वह ब्राह्मणों का, जो बगल से ठहरती है वह वैश्यों का एवं जो पूँछ से ठहरती है, वह शूद्रों का नाश करती है।।१४।।

शुक्लाद्या उल्का। क्रमशः परिपाट्या द्विजादिवर्णघ्नी द्विजाद्यान् ब्राह्मणाद्यान् वर्णांश्चतुरो हन्ति घातयति। तद्यथा—शुक्ला ब्राह्मणान् हन्ति। रक्ता क्षत्रियान्। पीता वैश्यान्। कृष्णा शूद्रान् इति। तथा मूर्धोरःपार्श्वपुच्छस्था उल्का एतानेव हन्युः। मूर्ध्ना तिष्ठतीति मूर्धस्था। शिरसा या पतति सा ब्राह्मणान् हन्ति। एवमुरसा तिष्ठतीति उरःस्था वक्षस्था या पतति सा क्षत्रियान्। पार्श्वाभ्यां तिष्ठतीति पार्श्वस्था सा वैश्यान्। पुच्छेन तिष्ठतीति पुच्छस्था सा शूद्रान् हन्ति।।१४।।

अन्यदप्याह—

**उत्तरदिगादिपतिता विप्रादीनामनिष्टदा रूक्षा।**
**ऋज्वी स्निग्धाखण्डा नीचोपगता च तद्वृद्ध्यै ॥१५॥**

उत्तर आदि दिशाओं में पतित उल्का क्रम से ब्राह्मण आदि वर्णों को अशुभ फल देती है। जैसे— उत्तर दिशा में गिरे तो ब्राह्मणों को, पूर्व में गिरे तो क्षत्रियों को, दक्षिण में गिरे तो वैश्यों को और पश्चिम में गिरे तो शूद्रों को अशुभ फल देती है। यदि वह उल्का सीधी, चिकनी, अखण्ड और आकाश के नीचे भाग में जाने वाली हो तो ब्राह्मण आदि वर्णों की वृद्धि करती है।।१५।।

उत्तरदिगादिपतिता रूक्षा विप्रादीनां ब्राह्मणादीनां वर्णानामनिष्टदा अशुभदा। उत्तरस्यां पतति सा ब्राह्मणानाम्। पूर्वस्यां क्षत्रियाणाम्। दक्षिणस्यां वैश्यानाम्। पश्चिमायां शूद्राणामिति। तथा ऋज्वी या स्पष्टा स्निग्धा निर्मला अखण्डाऽशकला नीचोपगता नभसोऽधोगामिनी। सा तद्वृद्ध्यै, तेषामेव ब्राह्मणादीनामुत्तरदिगादिपतिता वृद्ध्यै वृद्धये भवति।।१५।।

अन्यदप्याह—

**श्वावारुणनीलासृग्दहनासितभस्मसन्निभा रूक्षा।**
**सन्ध्यादिनजा वक्रा दलिता च परागमभयाय ॥१६॥**

श्याव ( वानर के समान = 'श्यावः स्यात् कपिश' इत्यमरः ), रक्त, नील, रुधिर के समान, अग्नि के समान काली, भस्म की तरह, रूक्ष, सन्ध्याकाल में उत्पन्न, दिन में उत्पन्न वक्र या खण्डित उल्का पुरवासियों को शत्रु के आगमन से भय कराती है।

श्यावा श्याववर्णा। अरुणा रक्ता। नीला नीलवर्णा। असृग्रुधिरं तद्वर्णा। दहनसन्निभा अग्निवर्णा। असितसन्निभा कृष्णा। भस्मसन्निभा भस्मवर्णा। रूक्षा अनिर्मला। सन्ध्यादिनजा सन्ध्याया दिने च जाता। वक्रा कुटिला। दलिता खण्डिता। एवंविधा परागमभयाय भवति। पराणां शत्रूणामागमाद्यद् भयं तत् करोति।।१६।।

अन्यदप्याह—

**नक्षत्रग्रहघातैस्तद्भक्तीनां क्षयाय निर्दिष्टा।**
**उदये घ्नती रवीन्दू पौरेतरमृत्यवेऽस्ते वा ॥१७॥**

यदि उल्का नक्षत्र या ग्रह का उपघात करे तो नक्षत्र व्यूह में उक्त उस नक्षत्र या ग्रह के भक्तियों का नाश करती है। यदि सूर्य या चन्द्र को उदय या अस्त समय में हनन करे तो क्रम से पुरवासियों और बाहर रहने वालों का नाश करती है। जैसे—सूर्य हत हो तो पुरवासियों का और चन्द्र हत हो तो बाहर रहने वालों का नाश करती है।।१७।।

नक्षत्रोपघातैर्ग्रहोपघातैश्च तद्भक्तीनां नक्षत्राणां नक्षत्रव्यूहे ग्रहाणां च या भक्तय उक्तास्तासां क्षयाय विनाशाय निर्दिष्टा कथिता उक्ता। तथा च काश्यपः—

नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव यद्युल्काध्वस्तधूमिताः।
तद्देशनाथनाशाय लोकानां सम्भ्रमाय च।।

तथा च समाससंहितायाम्—

उदगादिषु विप्रादीन् सितलोहितकृष्णवर्णांश्च।
घ्नन्ति ग्रहर्क्षघातैस्तद्भक्तीनां च नाशाय।।

रवीन्दू सूर्याचन्द्रमसौ उदये उदयसमये अस्ते अस्तसमये वा घ्नती पौरेतराणां मृत्यवे भवति। पौरा नागराः। इतरे यायिनः। आदित्ये हते पौराणां चन्द्रे च यायिनामिति।।१७।।

अथ नक्षत्रोपतापेन फलमाह—

**भाग्यादित्यधनिष्ठामूलेषूल्काहतेषु युवतीनाम्।**
**विप्रक्षत्रियपीडा पुष्यानिलविष्णुदेवेषु ॥१८॥**
**ध्रुवसौम्येषु नृपाणामुग्रेषु सदारुणेषु चौराणाम्।**
**क्षिप्रेषु कलाविदुषां पीडा साधारणे च हते ॥१९॥**

पूर्वफल्गुनी, पुनर्वसु, धनिष्ठा या मूल नक्षत्र की योगतारा यदि उल्का से हत हो तो युवती स्त्रियों को पीड़ा होती है। पुष्य, स्वाती या श्रवण नक्षत्र की योगतारा यदि उल्का से हत हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियों को पीड़ा होती है।

उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपदा, रोहिणी, मृगशिर, चित्रा, अनुराधा या रेवती नक्षत्र की योगतारा यदि उल्का से हत हो तो राजाओं को पीड़ा होती है। पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपदा, भरणी, मघा, आर्द्रा, श्लेषा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र की योगतारा

यदि उल्का से हत हो तो चोरों को पीड़ा होती है तथा अश्विनी, हस्त, अभिजित्, कृत्तिका या विशाखा नक्षत्र की योगतारा यदि उल्का से हत हो तो कलाओं को जानने वालों को पीड़ा होती है।।१८-१९।।

भाग्यं पूर्वफल्गुनी। आदित्यं पुनर्वसुः। धनिष्ठा। मूलम्। एतेषु नक्षत्रेषूल्काहतेषूल्कया ताडितेषु। एतेषां योगतारा यद्युल्काहता भवति तदा युवतीनां स्त्रीणां पीडा भवति। तथा पुष्यः। अनिलः स्वातिः। विष्णुदेवः श्रवणम्। एतेषूल्काहतेषु विप्राणां क्षत्रियाणां च पीडा भवति।

रोहिण्युत्तराक्ष्यं ध्रुवाणि। मृगशिरश्चित्रानुराधा रेवतीति सौम्यानि मृदूनीत्यर्थः। एतेषूल्काहतेषु नृपाणां राज्ञां पीडा भवति। पूर्वात्रयं भरणी मघा च उग्राणि। आर्द्राश्लेषा-ज्येष्ठामूलानि दारुणानि। एतेषूल्काहतेषु चौराणां तस्कराणां पीडा भवति। अश्विनी तिष्यं हस्तोऽभिजिदिति क्षिप्राणि कृत्तिका विशाखा साधारणं तेषूल्काहतेषु कलाविदुषां कला-विषये गीतनृत्यचित्रवाद्ये ये पण्डितास्तेषां पीडा भवति।।१८-१९।।

अन्यदप्याह—

**कुर्वन्त्येताः पतिता देवप्रतिमासु राजराष्ट्रभयम्।**
**शक्रोपरि नृपतीनां गृहेषु तत्स्वामिनां पीडाम्॥२०॥**

**आशाग्रहोपघाते तद्देश्यानां खले कृषिरतानाम्।**
**चैत्यतरौ सम्पतिता सत्कृतपीडां करोत्युल्का॥२१॥**

**द्वारि पुरस्य पुरक्षयमथेन्द्रकीले जनक्षयोऽभिहितः।**
**ब्रह्मायतने विप्रान् विनिहन्याद् गोमिनो गोष्ठे॥२२॥**

उल्का यदि देवता की मूर्ति पर गिरे तो राजा और राष्ट्र को भय, इन्द्र के ऊपर गिरे तो राजाओं को भय और घर पर गिरे तो गृहपति को पीड़ित करता है। दिक्पति ग्रह यदि उल्का से हत हों तो उस दिशा में रहने वाले मनुष्यों को, खलिहान में गिरे तो किसानों को और छोटे मन्दिर के पास स्थित वृक्ष पर उल्का गिरे तो पूज्य व्यक्तियों को पीड़ित करता है। पुरद्वार पर यदि उल्का गिरे तो पुर का, द्वार के किवाड़ पर गिरे तो पुरवासियों का, ब्रह्मा के मन्दिर पर गिरे तो ब्राह्मणों का और गोष्ठ ( गायों के स्थान = गोठ ) पर गिरे तो गायों का पालन करने वालों का नाश करती है।।२०-२२।।

**कुर्वन्त्येता इति**। एता उल्का देवप्रतिमासु सुरार्चासु पतिता राजभयं नृपभयं राष्ट्रभयं जनपदभयं च कुर्वन्ति। शक्र इन्द्रस्तस्योपरि पतिता नृपतीनां राज्ञां भयं कुर्वन्ति। गृहेषु वेश्मसु पतितास्तत्स्वामिनां गृहपतीनां पीडां कुर्वन्ति।

आशा दिशः। ग्रहाः सूर्यादयः। आशाग्रहा दिक्पतयो ग्रहाः। ते च—'प्रागाद्या रविशुक्ललोहिततमः सौरेन्दुवित्सूरयः' इत्युक्तास्तेषामुपघाते उल्कापीडने तद्देश्यानां तद्दिग्नि-

वासिनां तस्यां दिशि ये जना निवसन्ति तेषां पीडां कुर्वन्ति। अथवा आशा दिशस्तासां यान्ति तद्देश्यानां ग्रहदेशनिवासिनाम्। खले कृषिरतानाम्। खलमुलूखा यत्र धान्यं स्थाप्यते तदुपघाते कृषिरतानां कृषिजीविनां पीडा भवति। चैत्यतरुः प्रधानवृक्षः। तत्र पतितोल्का सत्कृतानां पूजितानां पीडां करोति।

पुरस्य द्वारि पतिता पुरक्षयं पुरविनाशं करोति। अथेन्द्रकीले द्वारार्गले पतिता तदा जनानां क्षयोऽभिहित उक्तः। जननाशो भवति। ब्रह्मायतने पितामहो यत्र देवस्तत्र पतिता विप्रान् ब्राह्मणान् विनिहन्याद् घातयेत्। गोष्ठे गोस्थाने यत्र गावो निवसन्ति तत्र पतिता गोमिनो गावो येषां सन्ति तान् विनिहन्यान्नाशयेदिति।।२०-२२।।

अथान्यद्विशेषमाह—

**क्ष्वेडास्फोटितवादितगीतोत्क्रुष्टस्वना भवन्ति यदा।**
**उल्कानिपातसमये भयाय राष्ट्रस्य सनृपस्य ॥२३॥**

यदि उल्कापात के समय में क्ष्वेडा ( वीरों का गर्जन = 'क्ष्वेडा तु सिंहनादः स्या'दित्यमरः ), आस्फोटित (छाती पर एक भुजा रखकर दूसरे हाथ से ताडन का शब्द), वाद्य और गान का उद्घोषित शब्द हो तो राजा और राष्ट्र दोनों को भय के लिये होता है।।२३।।

क्ष्वेडा क्ष्वेडितम्। आस्फोटितं करास्फोटः। वक्षःस्थस्य बाहोर्द्वितीयेन हस्तेन ताडनं करास्फोटः। वादितं वाद्यशब्दः। गीतं प्रसिद्धम्। एषामुत्क्रुष्टा उद्घोषिताः स्वनाः शब्दा यदा भवन्ति, कदा? उल्कानिपातसमये, उल्कानिपातकाले, तदा राष्ट्रस्य सनृपस्य नृपति-सहितस्य भयाय भवन्ति।।२३।।

अन्यदप्याह—

**यस्याश्चिरं तिष्ठति खेऽनुषङ्गो दण्डाकृतिः सा नृपतेर्भयाय।**
**या चोह्यते तन्तुधृतेव खस्था या वा महेन्द्रध्वजतुल्यरूपा ॥२४॥**

जिस उल्का की आसक्ति आकाश में अधिक देर तक रहे, जो दण्डाकार दिखाई दे, जो आकाश में डोरी से बँधी हुई की तरह स्थिर रहे, जो इन्द्रधनुष की तरह दिखाई दे वह सब राजभय के लिये होती है।।२४।।

यस्या उल्कायाः खे नभसि। चिरं चिरकालम्। अनुषङ्ग आसक्तिस्तिष्ठति। तथा दण्डाकृतिर्दण्डाकारा च या दृश्यते सा नृपते राज्ञो भयाय भवति। या चोल्का खस्था आकाशस्थिता तन्तुधृतेव, तन्तुना ध्रियमाणेनेवोह्यते धार्यते सापि नृपतेर्भयाय भवति। या च महेन्द्रध्वजस्येन्द्रचिह्नस्य तुल्यरूपा तदाकारा सापि नृपतेर्भयाय भवति।।२४।।

अन्यदप्याह—

**श्रेष्ठिनः प्रतीपगा तिर्यगा नृपाङ्गनानाम्।**
**हन्त्यधोमुखी नृपान् ब्राह्मणानथोर्ध्वगा ॥२५॥**

**बर्हिपुच्छरूपिणी लोकसंक्षयावहा।**
**सर्पवत् प्रसर्पती योषितामनिष्टदा ॥२६॥**
**हन्ति मण्डला पुरं छत्रवत् पुरोहितम्।**
**वंशगुल्मवत् स्थिता राष्ट्रदोषकारिणी ॥२७॥**
**व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी।**
**खण्डशोऽथवा गता सस्वना च पापदा ॥२८॥**

विपरीत ( जहाँ से आयी हो वहाँ ही लौट ) जाने वाली उल्का सेठों का, तिरछी चलने वाली रानियों का, नीचे मुख वाली राजाओं का और ऊपर जाने वाली उल्का ब्राह्मणों का नाश करती है। जो उल्का मोरपूँछ की तरह हो, वह लोगों का नाश करती है और जो सर्प की तरह चलती है, वह स्त्रियों को अशुभ फल देने वाली होती है। मण्डलाकृति वाली उल्का नगर का और छत्राकृति वाली पुरोहित का नाश करती है तथा वंशगुल्माकारा ( बाँस की बीड़ के समान वाली ) उल्का राष्ट्रभय करती है। सर्प या सूअर की तरह चिनगारियों की माला पहनी हुई ( चिनगारियों से व्याप्त शरीर वाली ), खण्ड-खण्ड और शब्दसहित उल्का पाप फल देने वाली होती है।।२५-२८।।

या प्रतीपगा यत आगता तत्रैव गता सा श्रेष्ठिनो हन्ति। तिर्यगा तिर्यक्कृत्वा या गता सा नृपाङ्गनां नृपस्त्रियं हन्ति। अधोमुखी अवाग्वदना नृपान् राज्ञो हन्ति। अथानन्तर-मूर्ध्वगा ऊर्ध्वगामिनी ब्राह्मणान् द्विजान् हन्ति।

या चोल्का बर्हिपुच्छरूपिणी मयूरपुच्छाकारा सा लोकसंक्षयावहा, लोकानां जनानां संक्षयं विनाशमावहति करोति। या च सर्पवत् प्रसर्पती उरगवद् गच्छन्ती सा योषितां स्त्रीणामनिष्टदा अशुभप्रदा।

या च पतिता मण्डलाकारा भवति सा पुरं नगरं हन्ति नाशयति। या च छत्रवच्छत्राकारा दृश्यते सा पुरोहितमाचार्यं हन्ति। या च वंशगुल्मवत् स्थिता वंशगुल्माकारा सा राष्ट्रस्य दोषकारिणी भवति।

व्यालः सर्पः। सूकरो वराहः। तदुपमा तत्सदृशी। तथा विस्फुलिङ्गानामग्निकणानां माला विद्यते यस्याः। अग्निकणैर्व्याप्तेत्यर्थः। अथवा खण्डशो गता बहुविधं विशीर्णा सस्वना सशब्दा या च सा पापदा अशुभफलदा भवति।।२५-२८।।

अन्यदप्याह—

**सुरपतिचापप्रतिमा राज्यं नभसि विलीना जलदान् हन्ति।**
**पवनविलोमा कुटिलं याता न भवति शस्ता विनिवृत्ता वा ॥२९॥**

इन्द्रधनुष की तरह तथा आकाश में उत्पन्न होकर शीघ्र विलीन होने वाली उल्का मेघों का नाश करती है तथा वायु के प्रतिकूल टेढ़ी होकर चलने वाली और उत्पन्न होकर नीचे की तरफ नहीं चलने वाली शुभ नहीं होती है।।२९।।

या चोल्का सुरपतिचापप्रतिमा इन्द्रधनुःसदृशी सा राज्यं निहन्ति नाशयति। या च नभस्याकाशे विलीना उत्पन्ना सती तत्रैवादर्शनं गता सा जलदान् मेघान् हन्ति। या च पवनविलोमा सम्मुखवाता कुटिलं याता वक्रं कृत्वा गता सा शस्ता न भवति। विनिवृत्ता वा उत्पन्ना सत्यधो न गता सा न शस्तेति न प्रशस्ता भवति।।२९।।

अत्रापि विशेषमाह—

**अभिभवति यतः पुरं बलं वा भवति भयं तत एव पार्थिवस्य।**
**निपतति च यया दिशा प्रदीप्ता जयति रिपूनचिरात्तया प्रयातः ॥३०॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुल्का-**
**लक्षणाध्यायस्त्रयस्त्रिंशः ॥३३॥**

जिस ओर से आकर उल्का पुर या सेना के ऊपर गिरती है, उसी दिशा से राजा को भय होता है और जिस दिशा को प्रकाशित करती हुई गिरती है, उस दिशा में गमन करने वाला राजा शीघ्र ही शत्रुओं का नाश करता है।।३०।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायामुल्कालक्षणाध्यायस्त्रयस्त्रिंशः ॥३३॥**

यतो यस्यां दिशि पुरं बलं वा अभिभवति तत एव तस्यामेव दिशि पार्थिवस्य राज्ञो भयं भीतिर्भवति। यया च दिशा प्रदीप्ता समुज्ज्वलिता निपतति तया प्रयातो गतो राजा अचिराच्छीघ्रमेव रिपूनरीन् जयति। तथा च काश्यपः—

पार्थिवे प्रस्थिते दीप्ता पतत्युल्का महास्वना।
तां दिशं सिद्ध्यते सिद्धिं विजयं लभते चिरात्।।

अत्र च तात्कालिकलग्नग्रहसंयोगाच्छकुनिरुतश्रवणाच्च फलमूह्यम्। तथा च समाससंहितायाम्—

क्रूरग्रहर्क्षलग्नक्षणतिथिकरणप्रभाञ्जनैर्दीप्तैः।
दीप्ताण्डजमृगविरुतैर्निर्घातक्षितिविमर्दैश्च ।। इति।।३०।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहितायां विवृतावुल्का-**
**लक्षणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥**

# अथ परिवेषलक्षणाध्यायः

अथ परिवेषलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव स्वरूपप्रदर्शनार्थमाह—

**सम्मूर्च्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः ।**
**नानावर्णाकृतयस्तन्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः ॥१॥**

वायु के द्वारा मण्डलीभूत सूर्य और चन्द्र के किरणस्वरूप, मेघ वाले आकाश में प्रतिविम्बित होकर जो अनेक वर्ण के दिखाई देते हैं, उसी का नाम परिवेष है।।१।।

रवीन्द्वोरर्कचन्द्रयोः किरणा रश्मयः पवनेन वायुना मण्डलीभूता वृत्ताकाराः कृतास्ते च तन्वभ्रे स्वल्पमेघे व्योम्नि आकाशे सम्मूर्च्छिताः प्रतिफलिता नानावर्णाकृतयो दृश्यन्ते। नानाप्रकारो विचित्रो वर्ण आकृतिः संस्थानं येषां ते परिवेषा इत्युच्यन्ते।।१।।

अथ तेषा संज्ञान्तराण्याह—

**ते रक्तनीलपाण्डुरकापोताभ्राभशबलहरितशुक्लाः ।**
**इन्द्रयमवरुणनिर्ऋतिश्वसनेशपितामहाम्बुकृताः ॥२॥**

वे परिवेष इन्द्र, यम, वरुण, निर्ऋति, वायु, शिव, ब्रह्मा और अग्निकृत क्रम से रक्त, नील, थोड़ा-सा श्वेत, कबूतर के रङ्ग, मेघ वर्ण, शबल ( कृष्ण-श्वेत ), हरे और श्वेत वर्ण के होते हैं। जैसे—इन्द्रकृत रक्त, यमकृत नील, वरुणकृत थोड़ा श्वेत, निर्ऋतिकृत कबूतर के रङ्ग, वायुकृत मेघ वर्ण, शिवकृत शबल, ब्रह्माकृत हरा और अग्निकृत श्वेत वर्ण का होता है।।२।।

ते परिवेषा रक्तादिवर्णा यथासंख्यमिन्द्रादिकृता भवन्ति। तद्यथा—रक्तवर्णः परिवेष इन्द्रकृतः। नीलवर्णो यमकृतः। पाण्डुर ईषच्छुक्लो वरुणकृतः। कापोतः कपोतवर्णो निर्ऋतिकृतः। अभ्राभो मेघाभः कृष्णवर्णः श्वसनकृतो वायुनोत्पादित इत्यर्थः। शबलः कृष्णश्वेतशारवर्ण ईशकृतः शम्भुकृतः। हरितो नीलपीतः पितामहकृतो ब्रह्मकृतः। शुक्लः श्वेतवर्णोऽम्बुकृतः सोऽपि वरुणकृत एव।।२।।

अन्यदप्याह—

**धनदः करोति मेचकमन्योन्यगुणाश्रयेण चाप्यन्ये ।**
**प्रविलीयते मुहुर्मुहुरल्पफलः सोऽपि वायुकृतः ॥३॥**

कुबेर मेचक ( मयूरकण्ठसदृश नील ) वर्ण का परिवेष करता है। अन्य ( इन्द्र आदि ) मिले हुए रङ्ग के परिवेष करते हैं। जो परिवेष बार-बार उत्पन्न होकर नष्ट हो जाय, वह वायुकृत थोड़ा फल देने वाला होता है।।३।।

धनदो वैश्रवणो मेचकं मयूरकण्ठसदृशवर्णं परिवेषं करोति। अन्य इन्द्रादयोऽन्योन्य-गुणाश्रयेण रक्ताद्या ये गुणा उक्तास्तेषां गुणानामन्योन्यं परस्परं समाश्रयेण कुर्वन्ति। अतोऽपि बहुवर्णता दृश्यते। यः पुनर्मुहुर्मुहुः प्रतिक्षणं प्रविलीयते नश्यति सोऽपि परिवेषो वायुकृतो-ऽनिलोत्पादितोऽल्पफलदश्च भवति। तथा च काश्यपः—

सितपीतेन्द्रनीलाभा रक्ताकापोतवभ्रवः।
शवला बर्हिवर्णाश्च विज्ञेयास्ते शुभप्रदाः।।
ऐन्द्रयाम्याप्यनैर्ऋत्यवारुणाः सौम्यवह्निजाः।
दृश्यादृश्येन भावेन वायव्यः सोऽपि कष्टदः।। इति।।३।।

अथ वस्तुवशेन शुभफलमाह—

**चाषशिखिरजततैलक्षीरजलाभः स्वकालसम्भूतः।**
**अविकलवृत्तः स्निग्धः परिवेषः शिवसुभिक्षकरः ॥४॥**

नीलकण्ठ, मयूर, चाँदी, तेल, दूध और जल के समान कान्ति वाला परिवेष यदि क्रम से स्वकाल ( शिशिर आदि ऋतुओं ) में उत्पन्न; जैसे—शिशिर ऋतु में नीलकण्ठ की तरह कान्ति वाला, वसन्त में मयूर की तरह कान्ति वाला, ग्रीष्म में चाँदी की तरह कान्ति वाला, वर्षा ऋतु में तेल की तरह कान्ति वाला, शरद् ऋतु में दूध की तरह कान्ति वाला और हेमन्त ऋतु में जल के समान कान्ति वाला होकर अखण्ड मण्डलाकार और निर्मल हो तो लोगों का कुशल और सुभिक्ष करता है।।४।।

चाषः पक्षी। शिखी मयूरः। रजतं रूप्यम्। तैलं तिलतैलम्। क्षीरं गोक्षीरम्। जलं पानीयम्। एषां सदृशी आभा कान्तिर्यस्य सः। स्वकालसम्भूतः, स्वकाले शिशिरादि ऋतुषट्सु सम्भूत उत्पन्नः। क्रमेण तुल्यवर्णः। एतदुक्तं भवति—चाषवर्णो नीलाभः शिशिरर्तौ शोभनः परिवेषः। मयूरवर्णो विचित्रो वसन्ते। रूप्यवर्णः शुक्लो ग्रीष्मे। तैलवर्णो वर्षासु। क्षीरवर्णः शरदि। जलाभो हेमन्त इति। एवं स्वकालसम्भूतः। तथा अविकलवृत्तोऽखण्डः परिवर्तुलः। स्निग्धो निर्मलः। एवंविधः परिवेषः शिवसुभिक्षकरः। शिवं श्रेयः सुभिक्षं च करोति। तथा च काश्यपः—

शिशिरे चाषवर्णश्च वसन्ते शिखिसन्निभः।
ग्रीष्मे रजतसङ्काशः प्रावृट्तैलसमप्रभः।।
गोक्षीरसदृशः शस्तः परिवेषः शरत्स्मृतः।
हेमन्ते जलसङ्काशः स्वकाले शुभदः स्मृतः।। इति।।४।।

अन्यदप्याह—

**सकलगगनानुचारी नैकाभः क्षतजसन्निभो रूक्षः।**
**असकलशकटशरासनशृङ्गाटकवत् स्थितः पापः ॥५॥**

सम्पूर्ण आकाश में गमन करने वाला ( उदय से अस्त तक स्थिर रहने वाला ),

अनेक वर्ण वाला, रक्त वर्ण वाला, रूक्ष, अखण्डित तथा गाड़ी, धनुष या त्रिभुज की तरह आकृति वाला परिवेष अशुभ फल देने वाला होता है।।५।।

सकलं समग्रं गगनमाकाशमनुचरति गच्छति सकलगगनानुचारी। उदयात्प्रभृत्यस्तं यावत्तिष्ठतीत्यर्थः। नैकाभो विविधकान्तिः। क्षतजसन्निभो रक्तवर्णः। रूक्षो निःस्नेहः। असकलः खण्डः। शकटं प्रसिद्धम्। शरासनं चापम्। शृङ्गाटकं त्र्यस्रम्। तद्वत्स्थितस्तदाकारः। पापोऽनिष्टफलदः।।५।।

अन्यदप्याह—

**शिखिगलसमेऽतिवर्षं बहुवर्णे नृपवधो भयं धूम्रे।**
**हरिचापनिभे युद्धान्यशोककुसुमप्रभे चापि ।।६।।**

मयूरकण्ठ की तरह नील वर्ण का परिवेष अतिवृष्टि, अनेक वर्ण का परिवेष राजा का नाश, धूम्र वर्ण का परिवेष भय, इन्द्रधनुष की तरह और अशोकपुष्प की तरह अति लोहित कान्ति वाला परिवेष युद्ध करता है।।६।।

शिखिगलसमे मयूरकण्ठतुल्ये परिवेषे सत्यतिवर्षं प्रभूता वृष्टिर्भवति। बहुवर्णे नानारूपे नृपस्य राज्ञो वधः। धूम्रवर्णे कृष्णश्यावे भयं भीतिर्भवति। हरिचापनिभे इन्द्र-धनुःसदृशे युद्धानि भवन्ति। अशोककुसुमप्रभेऽशोकपुष्पसदृशकान्तौ अतिलोहिते। चशब्दा-द्युद्धान्येव भवन्ति।।६।।

अन्यदप्याह—

**वर्णेनैकेन यदा बहुलः स्निग्धः क्षुराभ्रकाकीर्णः।**
**स्वर्त्तौ सद्यो वर्षं करोति पीतश्च दीप्तार्कः ।।७।।**

एक वर्ण वाला, अधिक निर्मल और उस्तरे के समान मेघों से व्याप्त परिवेष अपने ऋतु में दिखाई दे तो शीघ्र वृष्टि करता है। यदि पीले वर्ण का परिवेष हो और उस समय सूर्य के किरण तीक्ष्ण हों तो भी वृष्टि शीघ्र करता है।।७।।

एकेन वर्णेन यदा युक्तो बहुलो घनः। स्निग्धः सस्नेहः। क्षुराभ्रकाकीर्णः क्षुराकारैरभ्रकैराकीर्णो व्याप्तस्तथाभूतः स्वर्तावात्मीयर्तौ दृष्टस्तस्मिन्नेवाहनि वृष्टिं करोति। एतदुक्तं भवति—चाषादिसदृशवर्णः शिशिरादिऋतुषु सम्भूत एकवर्णः क्षुराभ्रकाकीर्णः सद्यो वर्षं करोति। पीतः पीतवर्णो दीप्तस्तीक्ष्णश्चार्कः सूर्यो यस्मिन् सोऽपि चशब्दात् सद्यो वर्षं करोति।

अन्यदप्याह—

**दीप्तमृगविहङ्गरुतः कलुषः सन्ध्यात्रयोत्थितोऽतिमहान्।**
**भयकृत् तडिदुल्काद्यैर्हतो नृपं हन्ति शस्त्रेण ।।८।।**

यदि सूर्य की तरफ मुख किये हुये मृग और पक्षीगण के शब्दयुत, रूक्ष, तीनों सन्ध्याओं ( प्रातः, मध्याह्न और सायं ) में उत्पन्न और अतिविस्तृत परिवेष दिखाई दे तो भय करने वाला होता है।।८।।

दीप्तै: सूर्याभिमुखैर्मृगैरारण्यैर्विहङ्गैश्च पक्षिभी रुत: कृत: शब्द:। कलुषोऽनिर्मल:। सन्ध्यात्रयोत्थितो दिनस्य प्राङ्मध्यान्तसन्ध्यासूत्पन्न:। उदयमध्याह्नास्तमयेषु दृश्यत इत्यर्थ:। अतिमहानतिविस्तीर्णस्तथाभूतो भयकृद्भयं करोति। तथा च गर्ग:—

उदयास्तमयोर्मध्ये सूर्याचन्द्रमसोर्द्वयो:।
परिवेष: प्रदृश्येत तद्राष्ट्रमवसीदति।।

तडिदुल्काद्यैर्हतो नृपं हन्ति शस्त्रेण। तडिद् विद्युत्। उल्का प्रसिद्धा। आद्यग्रहणा-द्दिव्यान्तरिक्षभौमा उत्पाता:। एतैस्तडिदुल्काद्युत्पातैर्हतो नृपं राजानं शस्त्रेण हन्ति घातयति।

अन्यदप्याह—

**प्रतिदिनमर्कहिमांश्वोरहर्निशं रक्तयोर्निरिन्द्रवध:।**
**परिविष्टयोरभीक्ष्णं लग्नास्तमयस्थयोस्तद्वत् ॥९॥**

यदि प्रत्येक दिन सूर्य का और रात्रि में चन्द्र का रक्त वर्ण का परिवेष दिखाई दे तो राजा का नाश करता है तथा सदा उदय या अस्त काल में सूर्य या चन्द्र का परिवेष दिखाई दे तो भी राजा का नाश करता है।।९।।

अर्क आदित्य:। हिमांशुश्चन्द्र:। तयोरर्कहिमांश्वो: प्रतिदिनमहर्निशमहोरात्रं रक्तयोर्लो-हितवर्णयो: सूर्यो लोहितवर्णोऽहनि चन्द्रो निशि यदि दृश्यते तदा नरेन्द्रवधो राज्ञो मरणं भवति। परिविष्टयोरभीक्ष्णं तथा लग्नास्तमयस्थयो:। लग्नग्रहणेनोदयकाल उच्यते। अर्क-चन्द्रयोरुदयास्तमयस्थयोरभीक्ष्णं पुन: पुन: परिविष्टयोस्तद्वत्तेन प्रकारेण नरेन्द्रवध इत्यर्थ:। तथा च गर्ग:—

दिवा सूर्ये परीवेषो रात्रौ चन्द्रे यदा भवेत्।
एकस्मिंश्चेदहोरात्रे तदा नश्यति पार्थिव:।।
एतेन विधिना नित्यं सप्ताहं परिविष्यते।
सर्वभूतविनाश: स्यात्तस्मिन्नुत्पातदर्शने।।

अत्र केचिल्लग्नास्तनभ:स्थयोरिति पठन्ति। नभ:शब्देन मध्याह्नकाल उच्यते। उदय-मध्याह्नास्तमयेषु यदि दृश्यते तदा नरेन्द्रवध:। तथा च समाससंहितायाम्—

शृङ्गाटकचापविकारसन्निभ: परुषमूर्तिरतिबहुल:।
सकलगगनानुचारी बहुवर्णश्चावलम्बी च।।
द्वित्रिगुण: खण्डो वा सन्ध्यात्रयमुत्थितो ग्रहच्छादी।
परिवेष: पापफलो ग्रहरोधी हन्ति तद्भक्ती:।।
स्निग्धो मधुघृतशिखिचाषपत्रनीलोत्पलाब्जरजतनिभ:।
क्षेमसुभिक्षाय भवेत् परिवेषोऽर्कस्य शशिनो वा।। इति।।९।।

अन्यदप्याह—

**सेनापतेर्भयकरो द्विमण्डलो नातिशस्त्रकोपकर:।**
**त्रिप्रभृति शस्त्रकोपं युवराजभयं नगररोधम् ॥१०॥**

दो मण्डल वाला परिवेष सेनापति को भय करने वाला होता है; किन्तु अधिक शस्त्रभय करने वाला नहीं होता। तीन आदि ( तीन, चार, पाँच ) मण्डल वाला परिवेष शस्त्रकोप, युवराज को भय और शत्रुओं से नगर का अवरोध कराता है।।१०।।

द्वे मण्डले यस्यासौ द्विमण्डलः परिवेषः सेनापतेश्चमूनाथस्य भयं भीतिं करोति। नातिशस्त्रकोपकरः, अतिशस्त्रकोपं च न करोति; ईषत्करोतीत्यर्थः। त्रिप्रभृति शस्त्रकोपमिति, त्रिप्रभृतीनि मण्डलानि त्रीणि चत्वारि पञ्चधा शस्त्रकोपम्। युवराजोऽर्धभोगी राजा। युवराजस्य च भयम्। नगरस्य पुरस्य रोधं वेष्टनं च करोति। तथा च गर्गः—

द्विमण्डलपरीवेषः सेनापतिभयङ्करः।
युद्धे सुदारुणं कुर्याद् दृश्यते मण्डलैस्त्रिभिः।। इति।।१०।।

अन्यद्विशेषमाह—

**वृष्टिरह्न्यहेण मासेन विग्रहो वा ग्रहेन्दुभनिरोधे।**
**होराजन्माधिपयोर्जन्मर्क्षे वांऽशुभो राज्ञः ॥११॥**

यदि भौमादि कोई ग्रह, चन्द्र, कोई नक्षत्र—ये तीनों एक परिवेष में गत हों तो तीन दिन में वृष्टि और एक मास में लड़ाई होती है। जिस राजा का जन्मलग्नेश, जन्मराशीश या जन्मनक्षत्र परिवेश में हो, उस राजा को अशुभ फल होता है।।११।।

ग्रहेन्दुभनिरोधे। ग्रहा भौमादयः। इन्दुश्चन्द्रः। भानि नक्षत्राणि। एषां निरोधे परिवेष्टने। एतदुक्तं भवति—चन्द्रपरिवेषमध्यगते ग्रहनक्षत्रे यदा भवतस्तदा त्र्यहेण दिनत्रयेण वृष्टिर्भवति। मासेन त्रिंशदहोरात्रेण वा विग्रहः कलहो भवति। तथा च गर्गः—

त्रीणि यत्रावरुध्येरन्नक्षत्रं चन्द्रमा ग्रहः।
त्र्यहेण वर्षतीन्द्रश्च मासाद्वा जायते भयम्।।

**होराजन्माधिपयोरिति**। राज्ञो नृपस्य होराजन्माधिपयोः, होराधिपो जन्मलग्नपः, जन्माधिपो राश्यधिपः, तयोस्तथा जन्मर्क्षे च जन्मनक्षत्रे निरुद्धे सति राज्ञो नृपस्याशुभः।

ग्रहाणां परिवेषगतानां फलमाह—

**परिवेषमण्डलगतो रवितनयः क्षुद्रधान्यनाशकरः।**
**जनयति च वातवृष्टिं स्थावरकृषिकृन्निहन्ता च ॥१२॥**

**भौमे कुमारबलपतिसैन्यानां विद्रवोऽग्निशस्त्रभयम्।**
**जीवे परिवेषगते पुरोहितामात्यनृपपीडा ॥१३॥**

**मन्त्रिस्थावरलेखकपरिवृद्धिश्चन्द्रजे सुवृष्टिश्च।**
**शुक्रे यायिक्षत्रियराज्ञीपीडा प्रियं चान्नम् ॥१४॥**

**क्षुदनलमृत्युनराधिपशस्त्रेभ्यो जायते भयं केतौ।**
**परिविष्टे गर्भभयं राहौ व्याधिर्नृपभयं च ॥१५॥**

यदि परिवेष मण्डल में शनि पड़ा हो तो छोटे धान्यों ( कौनी आदि) का नाश, वायुयुत वृष्टि, स्थावर ( वृक्ष आदि ) की हानि और किसानों का नाश करता है। मंगल पड़ा हो तो कुमार, सेनापति और सेनाओं को व्याकुल, अग्निभय और शस्त्रभय करता है। बृहस्पति पड़ा हो तो पुरोहित, मन्त्री और राजाओं को पीड़ा होती है। बुध पड़ा हो तो मन्त्री, स्थावर ( वृक्ष आदि ) और लेखक की वृद्धि तथा सुन्दर वृष्टि होती है। शुक्र पड़ा हो तो गमन करने वाले क्षत्रियों तथा रानियों को पीड़ा और दुर्भिक्ष होता है। केतु पड़ा हो तो दुर्भिक्ष, अग्नि, मरण राजा और शस्त्र का भय होता है तथा परिवेष मण्डल में यदि राहु पड़ा हो तो गर्भभय, व्याधि और राजभय होता है।।१२-१५।।

रवितनयः सौरः परिवेषमण्डलमध्यगतः क्षुद्रधान्यानां प्रियङ्ग्वादीनां नाशकरः। तथा वातवृष्टिं वातसंयुक्तां वृष्टिं जनयत्युत्पादयति। स्थावराणां वृक्षादीनां कृषिकराणां च निहन्ता नाशकरो भवति।

**भौम इति**। भौमे परिवेषमध्यगते कुमाराणां तथा बलपतीनां चमूनाथानां सैन्यानां च विद्रव आकुलता, अग्निभयं शस्त्रभयं च भवति। जीवे बृहस्पतौ परिवेषमध्यगते पुरोहित-स्याऽऽचार्यस्यामात्यानां मन्त्रिणां नृपाणां राज्ञां च पीडा भवति।

चन्द्रजे बुधे परिविष्टे मन्त्रिणां सचिवानां स्थावराणां वृक्षादीनां लेखकानां लिपिकराणां च परिवृद्धिर्भवति। सुवृष्टिः शोभना वृष्टिश्च भवति। शुक्रे परिवेषमण्डलगते यायिनां जिगमिषूणां क्षत्रियाणां क्षत्रियजातीनां राज्ञ्या नृपमहिष्याश्च पीडा भवति। प्रियं चान्नम्। दुर्भिक्षं भवतीत्यर्थः।

केतौ परिवेषमध्यगते क्षुद् दुर्भिक्षम्। अनलोऽग्निः। मृत्युर्मरणम्। नराधिपो राजा। शस्त्रमायुधम्। एभ्यो भयं भीतिर्जायते उत्पद्यते। राहौ परिविष्टे परिवेषमध्यगते गर्भाणां भयम्। व्याधिः। नृपभयं नृपस्य राज्ञो भयं च भवति। तथा च समाससंहितायाम्—

बलपपुरोहितनरपतिकृषिकृत्पीडा क्रमेण परिविष्टैः।
कुजगुरुसितार्कपुत्रैः सौम्येन तु मन्त्रिपरिवृद्धिः।।
केतोः शस्त्रोद्योगो राहोः परिवेषणेन रोगभयम्।
युद्धक्षुद्भयनृपतेर्नाशं व्याध्यादिभिः क्रमशः।। इति।।१२-१५।।

अथ द्व्यादिषु ग्रहेषु परिवेषमध्यगतेषु फलमाह—

**युद्धानि विजानीयात् परिवेषाभ्यन्तरे द्वयोर्ग्रहयोः।**
**दिवसकृतः शशिनो वा क्षुदवृष्टिभयं त्रिषु प्रोक्तम् ॥१६॥**

**याति चतुर्षु नरेन्द्रः सामात्यपुरोहितो वशं मृत्योः।**
**प्रलयमिव विद्धि जगतः पञ्चादिषु मण्डलस्थेषु ॥१७॥**

यदि सूर्य या चन्द्र के परिवेष में दो ताराग्रह स्थित हों तो युद्ध, तीन हों तो दुर्भिक्ष और

अवृष्टि का भय, चार हों तो मन्त्री और पुरोहित के साथ राजा की मृत्यु और सूर्य या चन्द्र के परिवेष में पाँच आदि ग्रह हों तो संसार का प्रलय ही जानना चाहिये।।१६-१७।।

दिवसकृत आदित्यस्य शशिनश्चन्द्रस्य वा द्वयोस्ताराग्रहयोः परिवेषाभ्यन्तरे स्थितयोर्युद्धानि संग्रामान् विजानीयाद् विन्द्यात्। त्रिषु ग्रहेषु परिवेषमध्यगतेषु क्षुद् दुर्भिक्षभयम्। अवृष्टिभयं च प्रोक्तं कथितम्।

**यातीति**। चतुर्षु ताराग्रहेषु परिवेषमण्डलमध्यगतेषु नरेन्द्रो राजा सामात्यपुरोहितः, अमात्या मन्त्रिणः, पुरोहित आचार्यस्तैः सहितो मृत्योर्वशं याति। म्रियत इत्यर्थः। पञ्चादिषु पञ्चसु षट्सु वा मण्डलस्थेषु परिवेषमध्यवर्तिषु जगतो विश्वस्य प्रलयं संहारमिव विद्धि जानीहि।।१६-१७।।

अधुना ताराग्रहाणां नक्षत्राणां वा पृथक्परिविष्टानां फलमाह—

**तारग्रहस्य कुर्यात् पृथगेव समुत्थितो नरेन्द्रवधम्।**
**नक्षत्राणामथवा यदि केतोर्नोदयो भवति ॥१८॥**

यदि केतु का उदय न हुआ हो तब ताराग्रह या नक्षत्र अलग-अलग परिवेषयुत हों तो राजा का नाश करते हैं।।१८।।

पृथक्ताराग्रहस्य भौमादेः। नक्षत्राणामश्विन्यादीनां वा परिवेषः समुत्थित उत्पन्नो नरेन्द्रस्य राज्ञो वधं मरणं कुर्यात्। अथवा विकल्पे। यदि केतोरुदयो न भवति तदैवम्। केतूदये तु पुरस्तत्फलमेव न ताराग्रहादिपरिवेषकृतम्। तथा च काश्यपः—

परिवेषाभ्यन्तरगौ द्वौ ग्रहौ यायिनागरौ।
युद्धं च भवति क्षिप्रं घोररूपं सुदारुणम्।।
मण्डलान्तरिताः पञ्च जगतः संक्षयावहाः।
अथ ताराग्रहस्यैव नक्षत्राणामथापि वा।।
परिवेषो यदा दृश्यस्तदा नरपतेर्वधः।
यदि केतूदयो न स्यादन्यथा तद्वदेत् फलम्।। इति।।१८।।

अधुना तिथिक्रमेण परिवेषफलान्याह—

**विप्रक्षत्रियविट्शूद्रहा भवेत् प्रतिपदादिषु क्रमशः।**
**श्रेणीपुरकोशानां पञ्चम्यादिष्वशुभकारी ॥१९॥**

**युवराजस्याष्टम्यां परतस्त्रिषु पार्थिवस्य दोषकरः।**
**पुररोधो द्वादश्यां सैन्यक्षोभस्त्रयोदश्याम् ॥२०॥**

**नरपतिपत्नीपीडां परिवेषोऽभ्युत्थितश्चतुर्दश्याम्।**
**कुर्यात्तु पञ्चदश्यां पीडां मनुजाधिपस्यैव ॥२१॥**

प्रतिपदा आदि चार तिथियों में यदि परिवेष दिखाई दे तो ब्राह्मण आदि चार वर्णों का

नाश होता है। जैसे—प्रतिपदा में परिवेष दिखाई दे तो ब्राह्मणों का, द्वितीया में दिखाई दे तो क्षत्रियों का, तृतीया में दिखाई दे तो वैश्यों का और चतुर्थी में दिखाई दे तो शूद्रों का नाश होता है। यदि पञ्चमी में परिवेष दिखाई दे तो श्रेणी ( समान जातियों के संघ ) का, षष्ठी में दिखाई दे तो नगर का और सप्तमी में दिखाई दे तो कोश का अशुभ करने वाला होता है। यदि अष्टमी में परिवेष दिखाई दे तो युवराज का तथा नवमी, दशमी और एकादशी में दिखाई दे तो राजा का अशुभ करने वाला होता है। द्वादशी में नगर का अवरोध और त्रयोदशी में सेनाओं में आकुलता होती है। यदि चतुर्दशी में दिखाई दे तो रानी को और पूर्णिमा में राजा को पीड़ा होती है।।१९-२१।।

क्रमशः क्रमेण प्रतिपदादिषु चतुर्षु दिवसेषु परिवेषो दृष्टो विप्रक्षत्रियविट्शूद्रहा भवति। तद्यथा—प्रतिपदि दृष्टो विप्रान् हन्ति। द्वितीयायां क्षत्रियान् हन्ति। तृतीयायां वैश्यान्। चतुर्थ्यां शूद्रान् इति। श्रेणीपुरकोशानामिति, बहूनां समानजातीयानां सङ्घः श्रेणी। पञ्चम्यां दृष्टः श्रेण्या अशुभकारी। षष्ठ्यां पुरस्य नगरस्य। सप्तम्यां कोशस्य गजस्य।

**युवराजस्याष्टम्यामिति**। अष्टम्यां दृष्टो युवराजस्य दोषकरः। परतोऽनन्तरं त्रिषु दिनेषु नवमीदशम्येकादशीषु पार्थिवस्य राज्ञो दोषकरो न शुभः। द्वादश्यां पुररोधो नगर-वेष्टनम्। त्रयोदश्यां सैन्यक्षोभ आकुलता।

चतुर्दश्यामभ्युत्थित उत्पन्नः परिवेषो नरपते राज्ञः पत्न्याः पीडां करोति। पञ्चदश्यां मनुजाधिपस्य राज्ञः पीडां करोति।।१९-२१।।

अधुना परिवेषरेखावशेन शुभाशुभफलमाह—

**नागरकाणामभ्यन्तरस्थिता यायिनां च बाह्यस्था।**
**परिवेषमध्यरेखा विज्ञेयाक्रन्दसाराणाम् ॥२२॥**

**रक्तः श्यामो रूक्षश्च भवति येषां पराजयस्तेषाम्।**
**स्निग्धः श्वेतो द्युतिमान् येषां भागो जयस्तेषाम् ॥२३॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां परिवेष-**
**लक्षणाध्यायश्चतुस्त्रिंशः ॥३४॥**

यदि परिवेष के अन्दर रेखा दिखाई दे तो नगरवासियों का, बाहर दिखाई दे तो गमन करने वाले विजयेच्छु राजाओं का और परिवेष के मध्य में रेखा दिखाई दे तो आक्रन्द ( 'आक्रन्दो दारुणे रणे' इत्यमरः। भयङ्कर युद्ध ) की सार वस्तुओं ( सेनाओं ) का शुभाशुभ करने वाली होती है। जिसके भाग में लाल, काला या रूक्ष वर्ण का परिवेष हो, उसकी पराजय होती है। जैसे—परिवेष के अन्दर लाल, काला, रूक्ष हो तो नगरवासियों की, बाहर में हो तो गमन करने वाले विजयेच्छु राजाओं की और परिवेष मध्य में लाल,

काला या रूक्ष दिखाई दे तो सेनाओं की पराजय होती है तथा जिनका भाग निर्मल, श्वेत और कान्तियुक्त हो उनकी विजय होती है।।२२-२३।।

**इति 'विमला'हिन्दीटीकायां परिवेषलक्षणाध्यायश्चतुस्त्रिंशः ॥३४॥**

परिवेषे वर्णत्रयेण रेखात्रयं दृश्यते प्रायेण। तत्र द्वे रेखे बहिर्वर्तिन्यावतिक्रम्य या स्थिता रेखा साऽभ्यन्तरस्थिता सा च नागरकाणां नृपाणां शुभाशुभकारी ज्ञेया। तथा बाह्यस्था रेखा यायिनां जिगमिषूणां राज्ञाम्। परिवेषमध्यगता रेखा आक्रन्दसाराणां शुभाशुभकारी विज्ञेया।

कथमित्याह—**रक्त इति**। येषां नागरकादीनां भागो रक्तोऽतिलोहितवर्णः, श्यामः कृष्णवर्णः, रूक्षोऽनिर्मलश्च तेषां पराजयो भवति। येषां भागः स्निग्धो निर्मलः, श्वेतः शुक्लवर्णः, द्युतिमान् दीप्तिमान्। तेषां जयो भवति।।२२-२३।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहितायां विवृतौ परिवेषलक्षणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥**

# अथेन्द्रायुधलक्षणाध्यायः

अथेन्द्रायुधलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव तत्सम्भवप्रदर्शनार्थमाह—

**सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिताः कराः साभ्रे ।**
**वियति धनुःसंस्थाना ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ॥१॥**

मेघयुत आकाश में वायु से सूर्यकिरण टकरा कर अनेक वर्णयुत धनुषाकार जो दिखाई देता है, लोग उसी को इन्द्रधनुष करते हैं।।१।।

सूर्यस्यादित्यस्य करा रश्मयः। साभ्रे समेघे वियत्याकाशे। पवनेन वायुना विघट्टिता रुद्धास्ते च धनुःसंस्थानाश्चापाकारा विविधवर्णा नानारूपा ये दृश्यन्ते तदिन्द्रधनुरितिं लोके दृश्यते।।१।।

अत्रैव परमतं शुभाशुभं च फलमाह—

**केचिदनन्तकुलोरगनिःश्वासोद्भूतमाहुराचार्याः ।**
**तद्यायिनां नृपाणामभिमुखमजयावहं भवति ॥२॥**

किसी-किसी ( काश्यप आदि ) आचार्य का मत है कि नागराज के कुल में उत्पन्न सर्पों के निःश्वास से यह ( इन्द्रधनुष ) उत्पन्न होता है। यदि इसको सम्मुख करके राजा लोग गमन करें तो उनकी पराजय होती है।।२।।

केचिदाचार्याः काश्यपादयोऽनन्तकुले अनन्तस्य नागराजस्य कुले वंशे ये जाता उरगाः सर्पास्तेषां निःश्वास उच्छ्वसनं तदुद्भूतं तदुत्पन्नमाहुरुक्तवन्तः। तथा च काश्यपः—

अनन्तकुलजाता ये पन्नगाः कामरूपिणः।
तेषां निःश्वाससम्भूतमिन्द्रचापं प्रचक्षते।।

तदिन्द्रधनुर्यायिनां नृपाणां राज्ञामभिमुखं सम्मुखमजयावहं पराजयदं भवति इति।।२।।

अन्यदप्याह—

**अच्छिन्नमवनिगाढं द्युतिमत् स्निग्धं घनं विविधवर्णम् ।**
**द्विरुदितमनुलोमं च प्रशस्तमम्भः प्रयच्छति च ॥३॥**

अखण्ड, पृथ्वी में लगा हुआ, उज्ज्वल, निर्मल, अविकल, अनेक वर्णयुत, दो बार उदित या पश्चिम में स्थित इन्द्रधनुष दिखाई दे तो शुभ फल और बहुत वृष्टि करने वाला होता है।

विशेष—यहाँ पर कोई-कोई अनुलोम का अर्थ दक्षिण दिशा में और दूसरा उत्तर दिशा में—ऐसा कहते हैं।।३।।

अच्छिन्नमखण्डम्। अवनिगाढं भूमौ लग्नम्। भूतलं भित्त्वेवोत्थितमित्यर्थ:। द्युतिमदत्युज्ज्वलम्। स्निग्धमरूक्षं सुकान्तिमित्यर्थ:। घनमविकलम्। विविधवर्णं नानाप्रकारै रक्तनीलसिताद्यैर्वर्णैर्युक्तम्। द्विरुक्तिं द्विधा स्थितम्। चकार: समुच्चये। न केवलमनन्तरोक्तप्रतिपादितलक्षणसंयुक्तम्। यावद् द्विरुदितमनुलोमं पश्चाद्व्यवस्थितम्। एवंविधं प्रशस्तमिष्टफलसूचकम्। अम्भ: प्रयच्छति च पानीयं ददातीति।

अत्र केचित् शक्रचापस्यैवमनुलोमतां वर्णयन्ति। यथैकं दक्षिणदिक्स्थमपरं चोत्तरदिक्स्थं तयोर्यदा प्रतिलोमता तदा द्विरुदितस्यानिष्टं फलम्। यदा त्वेकदिगवस्थितौ तौ तदानुलोमौ। तत्रेष्टफलमिति। तथा च ऋषिपुत्र आह—

द्विरुत्तरमविच्छिन्नं स्निग्धमिन्द्रायुधं महत्।
पृष्ठतो विजयाय स्याद्विच्छिन्नं परुषं न तु।।

तथा च नन्दी आह—

बहुवर्णमविच्छिन्नं द्विरुन्नतं स्निग्धममरपतिचापम्।
पश्चात् पार्श्वे वापि प्रयाणकाले रिपुवधाय।।

तथा च बृहस्पति:—

नीलताम्रमविच्छिन्नं द्विगुणं सिद्धमायतम्।
पृष्ठत: पार्श्वयोर्वापि जयायेन्द्रधनुर्भवेत्।।

तथा च गर्गोक्तमयूरचित्रके पठ्यते—

पूर्वस्यां दिशि संग्रामे भवतीन्द्रधनुर्यदि।
पश्चिमे च प्रयातानां जयस्तत्र न संशय:।।
येषां प्रवृत्ते संग्रामे पश्चादिन्द्रधनुर्भवेत्।
पूर्वेण तु प्रयातानां जयस्तत्र न संशय:।।
येषां प्रवृत्ते संग्रामे वामपार्श्वे च पृष्ठत:।
धनु: प्रादुर्भवेदैन्द्रं जयस्तेषां न संशय:।।
येषां प्रवृत्ते संग्रामे पुरस्ताद्दक्षिणेन वा।
धनु: प्रादुर्भवेदैन्द्रं वधं तेषां विनिर्दिशेत्।।
पश्चिमे तु दिशो भागे भवतीन्द्रधनुर्यदि।
समेघगगनं स्निग्धं वैदूर्यविमलद्युति।।
विद्युच्च निर्मला भाति पूर्वे वायुर्यदा भवेत्।
सप्तरात्रं महावर्षं निर्दिशेद्दैवचिन्तक:।।

यद्येवं तदा द्वितीयं व्याख्यानमशोभनं पूर्वमेव ज्याय:। पश्चात् स्थितमनुलोममिति।।३।।

अन्यदप्याह—

**विदिगुद्भूतं दिक्स्वामिनाशनं व्यभ्रजं मकरकारि।**
**पाटलपीतकनीलैः शस्त्राग्निक्षुत्कृता दोषाः ॥४॥**

विदिशा ( ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य और वायव्य ) में यदि इन्द्रधनुष दिखाई दे तो उस दिशा के स्वामी ( ८६ वें अध्याय के ३४ वें पद्य में उक्त ) का नाश होता है। थोड़ा लाल, पीला और नीला इन्द्रधनुष हो तो क्रम से शस्त्रदोष, अग्निदोष और दुर्भिक्ष करता है। जैसे थोड़ा लाल हो तो शस्त्रदोष, पीला हो तो अग्निदोष और नीला हो तो दुर्भिक्ष करता है।

विदिगुद्भूतं विदिक्स्थितमिन्द्रचापं दिक्स्वामिनाशनम्। तस्यां दिशि यः स्वामी स नश्यति। दिगधिपतीन् शाकुने वक्ष्यति—

राजा कुमारो नेता च दूतः श्रेष्ठी चरो द्विजः।
गजाध्यक्षश्च पूर्वाद्याः क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशम्।। इति।

एवं व्यभ्रजं मरककारि, विगताभ्रे गगने यदुत्पन्नमिन्द्रचापं तन्मरककारि मरकं करोति। पाटलो वर्णः कृष्णलोहितः। पीतकः पीतवर्णः। नीलो नीलवर्णः। एतैर्वर्णैर्यदि युक्तमिन्द्रधनुर्भवति तदा यथासङ्ख्येन शस्त्राग्निक्षुत्कृता दोषा भवन्ति। पाटलवर्णे शस्त्रकृता दोषाः। पीते अग्निकृता दोषाः। नीले क्षुत्कृता दुर्भिक्षजा इति।।४।।

अन्यदप्याह—

**जलमध्येऽनावृष्टिर्भुवि सस्यवधस्तरौ स्थिते व्याधिः।**
**वाल्मीके शस्त्रभयं निशि सचिववधाय धनुरैन्द्रम् ॥५॥**

यदि जल में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो अनावृष्टि, पृथ्वी पर दिखाई दे तो धान्यों का नाश, वृक्ष पर दिखाई दे तो व्याधि, वल्मीक ( वमई = दीवड़ा की भीड़ ) पर दिखाई दे तो शस्त्रभय और रात्रि में दिखाई दे तो मन्त्री का मरण होता है।।५।।

ऐन्द्रं धनुरिन्द्रचापं जलमध्ये यदा दृश्यते तदा अनावृष्टिरवर्षणं भवति। भुवि भूमौ दृश्यते तदा सस्यानां वधो नाशो भवति। तरौ वृक्षे स्थिते इन्द्रचापे व्याधिः पीडा भवति। वाल्मीके वल्मीककृते मृत्स्तूपे शस्त्रभयं भवति। निशि रात्राविन्द्रधनुः सचिवस्य मन्त्रिणो वधाय मरणाय भवति।।५।।

अथ दिग्वशेन फलमाह—

**वृष्टिं करोत्यवृष्ट्यां वृष्टिं वृष्ट्यां निवारयत्यैन्द्र्याम्।**
**पश्चात् सदैव वृष्टिं कुलिशभृतश्चापमाचष्टे ॥६॥**

यदि अनावृष्टि के समय पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो वृष्टि और वृष्टि के समय दिखाई दे तो अनावृष्टि करता है तथा पश्चिम दिशा में स्थित इन्द्रधनुष सदा वृष्टि को करता है।।६।।

कुलिशभृत इन्द्रस्य चापमैन्द्र्यां पूर्वस्यां दिशि दृष्टमवृष्ट्यामनावृष्ट्यां वृष्टिं वर्षणं

करोति, तत्रैव दृष्टे वृष्ट्यां वृष्टिं निवारयति। पश्चात् पश्चिमायां दिशि दृष्टं सदैव सर्व-कालं वृष्टिं वर्षणमाचष्टे कथयति।।६।।

अन्यदप्याह—

**चापं मघोनः निशायामाखण्डलायां दिशि भूपपीडाम्।**
**याम्यापरोदक्प्रभवं निहन्यात् सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च ॥७॥**

यदि रात्रि के समय पूर्व दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो राजा को पीड़ित करता है तथा दक्षिण दिशा में दिखाई दे तो सेनापति, पश्चिम में प्रधान पुरुष और उत्तर में इन्द्रधनुष दिखाई दे तो मन्त्री का नाश करता है।।७।।

मघोन इन्द्रस्य चापं धनुः। आखण्डलायामैन्द्र्यां पूर्वस्यां दिशि निशायां रात्रौ दृष्टं भूपस्य राज्ञः पीडां रोगभयं करोति। याम्यापरोदक्प्रभवं यथासङ्ख्यं सेनापतिं नायकंमन्त्रिणौ च निहन्यात्। याम्यायां दक्षिणस्यां सेनापतिम्। अपरस्यां पश्चिमायां नायकान् प्रधानपुरुषान्। उत्तरस्यां मन्त्रिणं सचिवं हन्यात्। तथा च काश्यपः—

अवृष्टौ वर्षणं कुर्यादैन्द्रीं दिशमुपाश्रितम्।
पश्चिमायां महद्वर्षं करोतीन्द्रधनुः सदा।।
रात्रौ चेद् दृश्यते पूर्वे भयं नरपतेर्भवेत्।
याम्यायां बलमुख्यश्च विनाशमभिगच्छति।।
पश्चिमायां प्रधानस्य सौम्यायां मन्त्रिणो वधः।
स्निग्धवर्णैर्घनैः शुभ्रैर्वारुण्यां दिशि दृश्यते।।
बहूदकं सुभिक्षं च शिवं सस्यप्रदं भवेत्।। इति।।७।।

अन्यदप्याह—

**निशि सुरचापं सितवर्णाद्यं जनयति पीडां द्विजपूर्वाणाम्।**
**भवति च यस्यां दिशि तद्देश्यं नरपतिमुख्यं नचिराद्धन्यात् ॥८॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामिन्द्रायुध-**
**लक्षणाध्यायः पञ्चत्रिंशः ॥३५॥**

यदि रात्रि के समय श्वेत आदि ( श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण ) वर्ण का इन्द्रधनुष दिखाई दे तो ब्राह्मण आदि वर्णों का नाश करता है। जैसे श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मणों का, रक्त वर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है तथा जिस दिशा में इन्द्रधनुष दिखाई देता है, उस दिशा के प्रधान राजा का शीघ्र नाश करता है।।८।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायामिन्द्रायुधलक्षणाध्यायः पञ्चत्रिंशः ॥३५॥**

निशि रात्रौ सुरचापमिन्द्रधनुः सितवर्णाद्यं सितरक्तपीतकृष्णं द्विजपूर्वाणां ब्राह्मणप्रथमानां वर्णानां पीडां जनयत्युत्पादयति। तद्यथा—श्वेतवर्णो ब्राह्मणान् पीडयति। रक्तः क्षत्रियान्। पीतो वैश्यान्। कृष्णः शूद्रानिति। **भवति च यस्यां दिशीति**। यस्यां च दिशि आशायां भवति दृश्यते तद्देश्यं तद्देशभवं नरपतिमुख्यं नृपप्रधानं नचिराच्छीघ्रं हन्यान्नाशयेत्। तस्यां दिशि यः प्रधाननृपंस्तं विनाशयतीत्यर्थः।।८।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृताविन्द्रायुध-**
**लक्षणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥**

# अथ गन्धर्वनगरलक्षणाध्यायः

अथ गन्धर्वनगरलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव दिग्वशेन तस्य फलप्रदर्शनार्थमाह—

**उदगादिपुरोहितनृपबलपतियुवराजदोषदं खपुरम्।**
**सितरक्तपीतकृष्णं विप्रादीनामभावाय ॥१॥**

यदि उत्तर आदि दिशाओं में गन्धर्वनगर दिखाई दे तो क्रम से पुरोहित, राजा, सेनापति और युवराज का अशुभ करता है। जैसे—उत्तर दिशा में दिखाई दे तो पुरोहित, पूर्व दिशा में राजा, दक्षिण में सेनापति और पश्चिम में दिखाई दे तो युवराज का अशुभ करता है। साथ ही श्वेत वर्ण का हो तो ब्राह्मणों का, रक्त वर्ण का हो तो क्षत्रियों का, पीत वर्ण का हो तो वैश्यों का और कृष्ण वर्ण का हो तो शूद्रों का नाश करता है।।१।।

खपुरं गन्धर्वनगरमुदगादिस्थितमुत्तराद्यासु दिक्षु दृष्टं यथाक्रमेण पुरोहितनृपबलपति-युवराजदोषदं भवति। उत्तरस्यां दिशि दृष्टं पुरोहित आचार्यस्तस्य दोषदमशुभप्रदम्। पूर्वस्यां नृपस्य राज्ञः। दक्षिणस्यां बलपतेश्चमूनाथस्य। पश्चिमायां युवराजस्य। तथा सितरक्तपीत-कृष्णं यथासङ्ख्यं विप्रादीनां ब्राह्मणादीनामभावाय नाशाय भवति। सितं श्वेतवर्णं ब्राह्मणा-नाम्। रक्तं क्षत्रियाणाम्। पीतं वैश्यानाम्। कृष्णं शूद्राणामिति।।१।।

अन्यदप्याह—

**नागरनृपतिजयावहमुदग्विदिक्स्थं विवर्णनाशाय।**
**शान्ताशायां दृष्टं सतोरणं नृपतिविजयाय ॥२॥**

यदि उत्तर दिशा में गन्धर्वनगर स्थित हो तो राजाओं को विजय देने वाला होता है। विदिशा ( ईशान, आग्नेय, वायव्य और नैर्ऋत्य ) में स्थित हो तो संकर ( नीच जाति ) का नाश करता है तथा शान्त दिशा में तारायुत दिखाई दे तो राजा के विजय के लिये होता है।।२।।

उदगुत्तरस्यां दिशि दृष्टं खपुरं गन्धर्वनगरं नागराणां राज्ञां विजयावहं जयप्रदम्। विदिक्स्थं विदिक्षु स्थितं विवर्णानां सङ्कराणां विनाशाय भवति। शान्ताशायाम्। तत्कालं या शान्ता दिक् तस्यां दृष्टं सतोरणं तोरणसहितं नृपते राज्ञो विजयाय भवति।।२।।

अन्यदप्याह—

**सर्वदिगुत्थं सततोत्थितं च भयदं नरेन्द्रराष्ट्राणाम्।**
**चौराटविकान् हन्याद् धूमानलशक्रचापाभम् ॥३॥**

यदि प्रतिदिन हर समय गन्धर्वनगर दिखाई दे तो राजा और राष्ट्र दोनों को भय देने वाला होता है तथा यदि धूम, अग्नि या इन्द्रधनुष की तरह कान्ति वाला हो तो चोर और वनवासियों का नाश करता है।।३।।

सर्वदिगुत्थं सर्वासु दिक्षु स्थितं सततोत्थितं च सर्वकालं समुत्पन्नं प्रत्यहं दृश्यते तन्नरेन्द्रस्य राज्ञो राष्ट्रस्य जनपदस्य च भयं भीतिं ददाति। धूमानलशक्रचापाभं धूमस्यानलस्याग्नेः शक्रचापस्येन्द्रधनुषः सदृशी आभा कान्तिर्यस्य तथाभूतम्। चौरास्तस्कराः। आटविका अटव्यां च ये वसन्ति। तान् हन्यान्नाशयेत्।।३।।

अन्यदप्याह—

**गन्धर्वनगरमुत्थितमापाण्डुरमशनिपातवातकरम् ।**
**दीप्ते नरेन्द्रमृत्युर्वामेऽरिभयं जयः सव्ये ॥४॥**

पाण्डुर ( श्वेत = 'शुक्ल-शुभ्र-शुचि-श्वेत-विशद-श्येत-पाण्डुरा' इत्यमरः ) वर्ण का गन्धर्वनगर दिखाई दे तो वज्रपात के साथ वायु करता है। दीप्त दिशा ( ८६ अध्याय के १२ वें पद्योक्त ) में स्थित हो तो उस दिशा में स्थित राजा का मरण होता है तथा वाम में शत्रु का भय और दक्षिण में जय करता है।।४।।

गन्धर्वनगरं खपुरमुत्थितमुत्पन्नमापाण्डुरं पाण्डुरवर्णमशनिपातवातं करोति। दीप्तं दीप्तदिक्स्थे तस्मिन्नरेन्द्रस्य राज्ञो मृत्युर्मरणं भवति। दीप्तासु दिक्षु लक्षणं वक्ष्यत्याचार्यः शाकुने। तथा च—

मुक्तप्राप्तैष्यदर्कासु फलं दिक्षु तथाविधम्।
अङ्गारदीप्तधूमिन्यस्ताश्च शान्तास्ततोऽपराः।। इति।

वामेऽरिभयम्। सैन्यस्य पुरस्य वा वामे भागे दृष्टमरिभयं शत्रुभयं करोति। सव्ये दक्षिणे जयप्रदं भवति।।४।।

अन्यदप्याह—

**अनेकवर्णाकृति खे प्रकाशते पुरं पताकाध्वजतोरणान्वितम् ।**
**यदा तदा नागमनुष्यवाजिनां पिबत्यसृग्भूरि रणे वसुन्धरा ॥५॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां गन्धर्व-**
**नगरलक्षणाध्यायः षट्त्रिंशः ॥३६॥**

जिस समय आकाश में अनेक वर्णयुत पताका, ध्वजा या पुरद्वार की तरह गन्धर्व नगर दिखाई देता है, उस समय युद्ध में हाथी, मनुष्य और घोड़ों का रक्त पृथ्वी अधिक पान करती है।।५।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां गन्धर्वनगरलक्षणाध्यायः षट्त्रिंशः ॥३६॥**

यदा यस्मिन् काले खे आकाशे पुरं गन्धर्वनगरम्। अनेकवर्णाकृति बहुवर्णचित्रसंस्थानं प्रकाशते दृश्यते। तच्च पताकाध्वजतोरणान्वितम्। पताकाभिर्वैजयन्तीभिर्ध्वजैश्चिह्नैर्बहुपट-

विरचितैः, अथवा पताकाध्वजैस्तोरणैश्चान्वितं संयुक्तं तदा तस्मिम् काले। नागानां गजानाम्। मनुष्याणां पुरुषाणाम्। वाजिनामश्वानां च रणे संग्रामे। असृग् रुधिरम्। भूरि प्रभूतम्। वसुन्धरा भूः पिबति। तथा च काश्यपः—

बहुवर्णं पताकाढ्यं गन्धर्वनगरं महत्।
दृष्टं प्रजाक्षयकरं संग्रामे लोमहर्षणम्।। इति।।५।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहितावितौ गन्धर्वपुर-**
**लक्षणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥**

# अथ प्रतिसूर्यलक्षणाध्यायः

अथ प्रतिसूर्यलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव वर्णलक्षणं शुभाशुभफलं चाह—

**प्रतिसूर्यकः प्रशस्तो दिवसकृदृतुवर्णसप्रभः स्निग्धः ।**
**वैदूर्यनिभः स्वच्छः शुक्लश्च क्षेमसौभिक्षः ॥१॥**

सूर्य के ऋतु वर्ण ( तीसरे अध्याय के तेईसवें पद्य में उक्त ) के सदृश वर्ण का प्रतिसूर्य होता है। यदि वह निर्मल, वैदूर्यमणि की तरह स्वच्छ और श्वेत हो तो क्षेम और सुभिक्ष करता है।।१।।

प्रतिसूर्यको द्वितीयोऽर्कः स च दिवसकृत आदित्यस्य क्रतुवर्णसप्रभः आदित्यस्य ये ऋतुवर्णा उक्तास्ताम्रः कपिलो वार्कः शिशिर इत्यादिकास्तेषां सदृशवर्णः। स्निग्धो निर्मलकान्तिश्च शस्तः प्रशस्तः। तथा वैदूर्यनिभो वैदूर्यमणेः सदृशकान्तिः। नीलपीत इत्यर्थः। स्वच्छो निर्मलः। शुक्लः श्वेतवर्णश्च। क्षेमसौभिक्षः, क्षेमं सौभिक्षं च करोति।।१।।

अन्यदप्याह—

**पीतो व्याधिं जनयत्यशोकरूपश्च शस्त्रकोपाय।**
**प्रतिसूर्याणां माला दस्युभयातङ्कनृपहन्त्री ॥२॥**

पीत वर्ण का प्रतिसूर्य व्याधि करता हैं। अशोक पुष्प के समान लोहित वर्ण का प्रतिसूर्य शस्त्रकोप के लिये होता है। यदि प्रतिसूर्य की माला दिखाई दे तो चोर का भय तथा उपद्रव और राजा का नाश करता है।।२।।

पीतः पीतवर्णः प्रतिसूर्यो व्याधिं जनयत्युत्पादयति। अशोकरूपोऽशोकपुष्पसदृशवर्णो लोहित इत्यर्थः। तथारूपः शस्त्रकोपाय भवति। शस्त्रकोपं करोति। प्रतिसूर्याणां माला पङ्क्तिर्यदि दृश्यते तदा दस्युभयातङ्कनृपहन्त्री भवति, दस्यवश्चौरास्तेभ्यो भयमातङ्कमुपद्रवं नृपं च राजानं हन्ति।।२।।

अन्यदप्याह—

**दिवसकृतः प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत्।**
**उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ॥३॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रतिसूर्य-**
**लक्षणाध्यायः सप्तत्रिंशः ॥३७॥**

---

यदि सूर्यमण्डल की उत्तर दिशा में प्रतिसूर्य दिखाई पड़े तो वृष्टि होती है, दक्षिण

दिशा में प्रतिसूर्य दिखाई दे तो वायु करता है। दोनों तरफ दिखाई दे तो राजा का और नीचे की तरफ दिखाई पड़े तो लोगों का नाश करता है।।३।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां प्रतिसूर्यलक्षणाध्यायः सप्तत्रिंशः ॥३७॥**

इयमार्या अर्कचारे व्याख्याता। तथा च काश्यपः—

याम्ये वातप्रदो ज्ञेय उत्तरे वृद्धिदो रवेः।
उभयोः पार्श्वयोर्भाति सलिलं भूरि यच्छति।।

तथा च पराशरः—

दीप्ताग्निवर्णः कनकप्रभो वा सन्ध्यासु चेद्भास्करमावृणोति।
कम्पेत भूः खात्प्रपतेन्महोल्का नृपो विनश्येत्सहितः प्रजाभिः।।
सन्ध्यासमीपे यदि भास्करस्य दृश्येत माला प्रतिसूर्यकाणाम्।
सर्पा भवेयुः प्रचुराश्च चौरा रोगाश्च घोरा विविधप्रकाराः।।
प्रत्यर्कमिन्द्रायुधमत्स्यदण्डाः सविद्युदभ्राशनिवर्षवाताः।
भवन्त्यभीक्ष्णं दिनरात्रिसन्धौ भयं तदा भूमिपतेर्वधः स्यात्।। इति ।।३।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहितायां विवृतौ प्रतिसूर्य-लक्षणं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥**

## अथ रजोलक्षणाध्यायः[१]

**कथयन्ति पार्थिववधं रजसा घनतिमिरसञ्चयनिभेन।**
**अविभाव्यमानगिरिपुरतरवः सर्वा दिशश्छन्नाः ॥१॥**

जब घने अन्धकार की तरह धूलि से पर्वत, पुर, वृक्ष और सब दिशायें व्याप्त हो जाने से कुछ भी नहीं दिखाई देता हो, तो उस समय राजा का नाश कहना चाहिये।।१।।

**यस्यां दिशि धूपचयः प्राक्प्रभवति नाशमेति वा यस्याम्।**
**आगच्छति सप्ताहात्तत्रैव भयं न सन्देहः ॥२॥**

पहले जिस दिशा में धूलि की उत्पत्ति हो और जिस दिशा में नाश हो, उन दोनों दिशाओं में सात दिन के अन्दर निःसन्देह भय होता है।।२।।

**श्वेते रजोघनौघे पीडा स्यान्मन्त्रिजनपदानां च।**
**न चिरात्प्रकोपमुपयाति शस्त्रमतिसङ्कुला सिद्धिः ॥३॥**

सघन धूलि का समूह यदि श्वेत वर्ण का हो तो मन्त्री तथा राष्ट्र को पीड़ा, शीघ्र शस्त्र का प्रकोप और अत्यन्त कठिनता से कार्य की सिद्धि होती है।।३।।

**अर्कोदये विजृम्भति यदि दिनमेकं दिनद्वयं वाऽपि।**
**स्थगयन्निव गगनतलं भयमत्युग्रं निवेदयति ॥४॥**

यदि सूर्यास्त के समय उत्पन्न होकर धूलि एक या दो दिन तक आकाश को ढकी हुई रहे तो वह आने वाले उग्र भय को अभिव्यक्त करती है।।४।।

**अनवरतसञ्चयवहं रजनीमेकां प्रधाननृपहन्तृ।**
**क्षेमाय च शेषाणां विचक्षणानां नरेन्द्राणाम् ॥५॥**

यदि बराबर इकट्ठी होकर धूलि एक रात्रि तक स्थित रहे तो प्रधान राजा की मृत्यु और शेष बुद्धिमान् राजाओं को शुभ करती है।।५।।

**रजनीद्वयं विसर्पति तस्मिन् राष्ट्रे रजोघनं बहुलम्।**
**परचक्रस्यागमनं तस्मिन्नपि सन्निबोद्धव्यम् ॥६॥**

जिस देश में दो रात्रि तक बराबर घनीभूत धूलि फैलती है, उस देश में निश्चय ही किसी दूसरे राजा का आगमन कहना चाहिये।।६।।

---

१. भट्टोत्पलकृतविवृतावस्याध्यायस्योल्लेख एव नास्ति; अतोऽयं प्रतिभाति यदयमध्याय एव केनचित्प्रक्षिप्त इति।

**निपतति रजनीत्रितयं चतुष्कमप्यन्नरसविनाशाय।**
**राज्ञां सैन्यक्षोभो रजसि भवेत् पञ्चरात्रभवे ॥७॥**

यदि तीन या चार रात्रि तक बराबर धूलि गिरती रहे तो अन्न और रस के विनाश के लिये होती है। यदि पाँच रात्रि तक लगातार धूलि का वर्षण हो तो राजाओं की सेनाओं में खलबली मचती है।।७।।

**केत्वाद्युदयविमुक्तं यदा रजो भवति तीव्रभयदायि।**
**शिशिरादन्यत्रर्तौ फलमविकलमाहुराचार्याः ॥८॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां रजो-**
**लक्षणाध्यायोऽष्टत्रिंशः ॥३८॥**

यदि केतु आदि के उदय के बाद धूलि गिरे तो तीव्र भय देने वाली होती है। आचार्यों का मत है कि शिशिर ऋतु के अतिरिक्त अन्य समस्त ऋतुओं में ठीक-ठीक फल देती है।।८।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां रजोलक्षणाध्यायोऽष्टत्रिंशः ॥३८॥**

# अथ निर्घातलक्षणाध्यायः

अथ निर्घातलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव तदुत्पत्तिप्रदर्शनार्थमाह—

**पवनः पवनाभिहतो गगनादवनौ यदा समापतति।**
**भवति तदा निर्घातः स च पापो दीप्तविहगरुतः ॥१॥**

जब पवन से टकरा कर पवन आकाश से पृथ्वी पर गिरता है, उस समय उसके गिरने से जो शब्द होता है, उसका नाम 'निर्घात' है। यदि वह सूर्याभिमुख स्थित पक्षियों के शब्द से युत हो तो दुष्ट फल देने वाला होता है।।१।।

पवनो वायुः पवनेन परेण वायुनाऽभिहतः स मारुतो गगनादाकाशादवनौ भूमौ यदा समापतति तदा तस्याभिहतस्य पतमानस्य यः शब्दः स निर्घातो भवतीत्युच्यते। तथा च गर्गः—

यदान्तरिक्षे बलवान् मारुतो मारुताहतः।
पतत्यधः स निर्घातो भवेदनिलसम्भवः।।

स च पापो दीप्तविहगरुतः। स च निर्घातः शब्दो दीप्तैः सूर्याभिमुखैर्दीप्तस्वरैश्च विहगैः पक्षिभी रुतः कृतः शब्दः पापो भवति। दुष्टफलद इत्यर्थः।।१।।

अथ वेलावशेन फलमाह—

**अर्कोदयेऽधिकरणिकनृपधनियोधाङ्गनावणिग्वेश्याः।**
**आप्रहरांशेऽजाविकमुपहन्याच्छूद्रपौरांश्च ॥२॥**

**आमध्याह्नाद्राजोपसेविनो ब्राह्मणांश्च पीडयति।**
**वैश्यजलदांस्तृतीये चौरान् प्रहरे चतुर्थे तु ॥३॥**

**अस्तं याते नीचान् प्रथमे यामे निहन्ति सस्यानि।**
**रात्रौ द्वितीययामे पिशाचसङ्घान् निपीडयति ॥४॥**

**तुरगकरिणस्तृतीये विनिहन्याद्यायिनश्चतुर्थे च।**
**भैरवजर्जरशब्दो याति यतस्तां दिशं हन्ति ॥५॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां निर्घात-**
**लक्षणाध्याय एकोनचत्वारिंशः ॥३९॥**

यदि सूर्योदय काल में निर्घात हो तो अधिकरणिक, राजा, धनी, शूर, स्त्री, व्यापारी और वेश्याओं का नाश करता है। यदि दिन के प्रथम प्रहर में निर्घात हो तो छाग, आविक

( भेड़ पालने वाले ), शूद्र और पुरवासियों का नाश करता है। द्वितीय प्रहर में राजा, सेवक और ब्राह्मणों को पीड़ा होती है। तृतीय प्रहर में व्यापारी और मेघ का नाश करता है। चतुर्थ प्रहर में चोरों को पीड़ित करता है। रात्रि के प्रथम प्रहर में धान्यों का नाश करता है। द्वितीय प्रहर में पिशाचसमूहों को पीड़ित करता है। तृतीय प्रहर में हाथी और घोड़ों का नाश करता है। यदि रात्रि के चतुर्थ प्रहर में निर्घात हो तो गमन करने वालों का नाश करता है तथा जिस दिशा में भग्न भाण्ड की तरह भयङ्कर शब्द जाता है, उस दिशा का भी नाश करता है।।२-५।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां निर्घातलक्षणाध्याय एकोनचत्वारिंशः ॥३९॥**

अर्कोदये सूर्योदयकाले यदि निर्घात उत्पद्यते तदा अधिकरणिकाः। अधिकरणेन युक्तोऽधिकरणिकः। नृपो राजा। धनिन ईश्वराः। योधा युद्धकुशलाः। अङ्गनाः स्त्रियः। वणिजः क्रयविक्रयजीविनः। वेश्या बन्धक्यः। एतान् सर्वानेवोपहन्यान्नाशयेत्। दिनारम्भाद् घटिकाद्वयं यावत् सूर्योदयः।

**आप्रहरांश इति**। सूर्योदयादारभ्य प्रहरं यावदाप्रहरांशम्। दिनचतुर्थभागे तस्मिन् प्रथमे दिनचतुर्थांगे। अजाश्छागाः। आविका अविप्रकाराः। शूद्राः शूद्रजातयः। पौराश्च पौरा जनाः। एतानुपहन्यात्।

**आमध्याह्नादिति**। प्रहरादूर्ध्वं मध्याह्नं यावत्। राजोपसेविना नृपाराधनतत्परान्। ब्राह्मणान् विप्रांश्च पीडयति उपतापयति। तृतीये प्रहरे वैश्या वैश्यजातीयास्तान्। जलदान् मेघांश्च पीडयति। चतुर्थे प्रहरे चौरांस्तस्करान् पीडयति।

अस्तं यातेऽर्के यदि निर्घात उत्पद्यते तदा नीचानधर्मकर्मकरान्निहन्ति। रात्रेः प्रथमे यामे प्रहरे सस्यानि निहन्ति नाशयति। रात्रेर्द्वितीययामे पिशाचसंघान्। पिशाचा देवयोनयः, तत्समूहान् निपीडयति।

रात्रेस्तृतीयप्रहरे तुरगानश्वान्। करिणो हस्तिनो विनिहन्यात्। चतुर्थे यामे यायिनो जिगमिषून् विनिहन्यात्। यतो यस्यां दिशि भैरवो विकृतो जर्जरो भिन्नभाण्डसमुद्भूतसदृशः शब्दः स्वरो याति गच्छति तां दिशमाशां हन्ति नाशयति। तथा च समाससंहितायाम्—

निर्घातोऽहोरात्रेण हन्ति नृपपौरभृत्यराष्ट्रजनान्।
तस्करविप्रांश्चार्कोदयादिशं पतति यस्याम्।।

तथा च गर्गः—

यदा सूर्योदये प्राप्ते निर्घातः श्रूयते भुवि।
क्षत्रिया योधमुख्याश्च पीड्यन्तेऽत्र न संशयः।।
प्रहरांशे तथा वैश्यान् हन्याद् गोजीविनस्तथा।
परिवृत्ते हरौ वैश्या अपराह्णे तु दस्यवः।।

नीचचौरांश्च हन्यात् स अस्तमेति दिवाकरे।
प्रथमे प्रहरे सस्यान्यर्द्धरात्रे तु राक्षसान्।।
रात्रित्रिभागे वैश्यांश्च प्रत्यूषे चाहितो भवेत्।
यां दिशं चाभिहन्येत निर्घातो भैरवः स्वनः।।
तद्देश्यान् हन्ति देशांश्च सर्वदिग्भक्तयस्तथा।। इति।।२-५।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ निर्घातलक्षणं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥**

# अथ सस्यजातकाध्यायः

अथ सस्यजातकं व्याख्यायते। तत्रादावेवागमप्रदर्शनार्थमाह—

**वृश्चिकवृषप्रवेशे भानोर्ये बादरायणेनोक्ताः।**
**ग्रीष्मशरत्सस्यानां सदसद्योगाः कृतास्त इमे ॥१॥**

वृश्चिक और वृष राशि में सूर्य का प्रवेश होने के समय ग्रीष्म और शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाले धान्यों के लिये जिन शुभाशुभ फलों को बादरायण मुनि ने कहा है, वे इस प्रकार हैं।।१।।

भानोरादित्यस्य वृश्चिकप्रवेशे ग्रीष्मसस्यानां यवादीनां वृषप्रवेशे शरत्सस्यानां धान्यादीनां बादरायणेनाचार्येण सदसद्योगाः शुभाशुभा ये योगा उक्ताः कथितास्त इमे सर्वे मयाऽत्र कृता इति। एतदुक्तं भवति—यत्र दिने रवेर्वृश्चिकसंक्रमणं भवति तत्र वृश्चिकमेव लग्नं परिकल्प्य वक्ष्यमाणविधिना ग्रीष्मसस्यानां जन्म विचारणीयम्। एवं वृषसंक्रमवेलायां वृषमेव लग्नं परिकल्प्य शरत्सस्यानां जन्म विचारणीयमिति।।१।।

तदत्र योगप्रदर्शनार्थमाह—

**भानोरलिप्रवेशे केन्द्रैस्तस्माच्छुभग्रहाक्रान्तैः।**
**बलवद्भिः सौम्यैर्वा निरीक्षिते ग्रैष्मिकविवृद्धिः ॥२॥**

सूर्य के वृश्चिक में प्रवेश होने के समय उससे ( सूर्य से ) केन्द्र स्थान ( वृश्चिक, कुम्भ, वृष और सिंह ) में शुभग्रह हों या जहाँ-कहीं पर ( केन्द्र से इतर स्थान ) स्थित बली शुभग्रहों से वृश्चिकगत सूर्य देखा जाता हो तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की वृद्धि होती है।।२।।

भानोरादित्यस्यालिप्रवेशे वृश्चिकप्रवेशसमयेऽयं विचारः। केन्द्रैस्तस्माच्छुभग्रहाक्रान्तैर्यो यत्रावधित्वेन निर्दिश्यते तस्माद्यानि केन्द्राणि लग्नचतुर्थसप्तमदशमानि तैः शुभग्रहाक्रान्तैः। शुभग्रहा बुधगुरुसिताः। अत्रावधित्वेन वृश्चिकप्रवेशावस्थितिः सवितुर्निर्दिष्टा। तस्मादादित्यात् केन्द्रैः शुभग्रहाक्रान्तैः सौम्यग्रहयुक्तैः। एतदुक्तं भवति—यदा सूर्यस्य वृश्चिकप्रवेशे केन्द्रस्थानानि शुभग्रहाक्रान्तानि भवन्ति तदा ग्रैष्मिकसस्यविवृद्धिर्भवति, विशेषेण वृद्धिर्विवृद्धिः। सुवृद्धिरित्यर्थः। बलवद्भिः सौम्यैर्वा निरीक्षिते। अथवा भानोः केन्द्रस्थानानि शुभग्रहाक्रान्तानि भवन्ति, बलवद्भिः सौम्यैः केन्द्रवर्जमन्यत्रावस्थितैर्भानौ निरीक्षिते दृष्टं ग्रैष्मिकविवृद्धिर्भवति। अत्र केन्द्रनिर्देशादनन्तरमेव दर्शनशब्दो निर्दिष्टः। तत्केन्द्रगतैरपि ग्रहैर्दृश्यत एव कस्मादाचार्येण दर्शननिर्देशेनैव केवलेन निर्देशः क्रियते। यदादित्यकेन्द्रावस्थितस्य ग्रहस्य कथं प्रदर्शनं घटत इत्युपगम्यापि ब्रूमः। यद्येवं तदा त्वेवं निर्देष्टुं युक्तम्। यथा बलवद्भिः सौम्यैर्दृष्टे भानौ युक्त इति, यस्मादाचार्यसुष्ठुसमासोक्तिप्रियः परिहारः। बलवद्भिः सौम्यैर्निरीक्षित

इत्यस्माद्विकल्पादिदमवगम्यते यदा सौम्यैर्बलिभिरबलिभिर्वा केन्द्रस्थानानि युक्तानि भवन्ति तदा ग्रैष्मिकसस्यविवृद्धिर्भवति। यदा तु पुनस्त्रिकोणरिपुलाभगाः सौम्या बलिनः पश्यन्ति तदा ग्रैष्मिकस्य विवृद्धिर्भवति। मध्यबलैर्याप्यता। बलहीनैर्मनागपि सस्यानां वृद्धिर्भवति। तथा च बादरायणः—

वृश्चिकसंस्थे सूर्ये सौम्यैर्बलिभिर्निरीक्षिते वृद्धिम्।
तैरेव केन्द्रगैर्वा ग्रीष्मजधान्यस्य निर्दिशेन्महतीम्।। इति।।२।।

अथ योगान्तरमाह—

**अष्टमराशिगतेऽर्के गुरुशशिनोः कुम्भसिंहसंस्थितयोः।**
**सिंहघटसंस्थयोर्वा निष्पत्तिर्ग्रीष्मसस्यस्य ।।३।।**

सूर्य के आठवीं राशि ( वृश्चिक ) में गत होने के समय कुम्भ राशि में गुरु और सिंह राशि में चन्द्रमा या सिंह राशि में गुरु और कुम्भ राशि में चन्द्रमा स्थित हो तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की निष्पत्ति ( वृद्धि ) होती है।।३।।

अर्के रवावष्टमराशिगते वृश्चिकस्थे इत्यर्थः। गुरुशशिनोर्जीवचन्द्रयोर्यथाक्रमं कुम्भसिंहसंस्थयोः। कुम्भे गुरुः शशी सिंहे। अथवा सिंहघटसंस्थयोः। गुरुः सिंहे शशी घटे। तथापि ग्रीष्मसस्यस्य निष्पत्तिर्वक्तव्येति।।३।।

अथ योगान्तरमाह—

**अर्कात् सिते द्वितीये बुधेऽथवा युगपदेव वा स्थितयोः।**
**व्ययगतयोरपि तद्वन्निष्पत्तिरतीव गुरुदृष्ट्या ।।४।।**

यदि सूर्य से द्वितीय या द्वादश में शुक्र या बुध या दोनों एक साथ स्थित हों तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की निष्पत्ति होती है। यदि पूर्वोक्त योगों में बृहस्पति की दृष्टि हो तो ग्रीष्म ऋतु में होने वाले धान्यों की उत्तम निष्पत्ति होती है।।४।।

अर्काद्रवेरलिस्थितात् सिते शुक्रे द्वितीये द्वितीयस्थानस्थे बुधेऽथवा द्वितीये। अथवा तयोर्बुधसितयोर्द्वयोरेव युगपद् द्वितीयस्थयोः। व्ययगतयोरपि। तद्वत्तेनैव प्रकारेण व्ययगतयोरादित्याद् द्वादशस्थाने स्थितयोः शक्रे द्वादशगे बुधे वा द्वयोर्वा द्वादशस्थानस्थितयोः सस्यानां निष्पत्तिर्भवति। अतीव गुरुदृष्ट्या। बृहस्पतिर्यदाऽऽदित्यं पश्यति तदा अतीव सस्यानां निष्पत्तिर्भवति। तथा च बादरायणः—

सूर्याद् बुधे द्वितीये शुक्रे वा युगपदेव तयोः।
रिष्फगयोरप्येवं निष्पत्तिर्गुरुदृशाऽतीव।। इति।।४।।

अन्यद्योगान्तरमाह—

**शुभमध्येऽलिनि सूर्याद् गुरुशशिनोः सप्तमे परा सम्पत्।**
**अल्पादिस्थे सवितरि गुरौ द्वितीयेऽर्द्धनिष्पत्तिः ।।५।।**

दो शुभ ग्रहों के मध्य में स्थित होकर सूर्य वृश्चिक राशि में स्थित हो और सूर्य से सप्तम में गुरु और चन्द्रमा हो तो धान्यों की उत्तम निष्पत्ति होती है तथा वृश्चिक के आदि में सूर्य और उससे द्वितीय में गुरु हो तो धान्यों की आधी निष्पत्ति होती है।।५।।

अलिनि वृश्चिके शुभमध्यस्थिते वृश्चिकात् सूर्ययुक्ताद् बुधशुक्रयोरेको द्वितीयस्थाने भवति, अन्यो द्वादशे। वा शुभमध्यगतो भवति। तथाभूतात् सूर्यादादित्याद् गुरुशशिनोर्बृहस्पतिचन्द्रयोः सप्तमस्थाने स्थितयोः परा प्रकृष्टा सम्पत् सस्यानां भवति। **अल्यादिस्थ इति**। अलिनि आदौ तिष्ठति अल्यादिस्थस्तस्मिन् सवितर्यादित्ये अल्यादिस्थे वृश्चिकप्रारम्भव्यवस्थिते गुरौ जीवे द्वितीयेऽर्द्धनिष्पत्तिः सस्यानां भवति। अर्द्धं निष्पद्यत इत्यर्थः।

अन्यद्योगान्तरमाह—

**लाभहिबुकार्थयुक्तैः सूर्यादलिगात् सितेन्दुशशिपुत्रैः।**
**सस्यस्य परा सम्पत् कर्मणि जीवे गवां चाग्र्या ॥६॥**

यदि वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य से एकादश में शुक्र, चतुर्थ में चन्द्र और द्वितीय में बुध स्थित हो तो धान्यों की उत्तम निष्पत्ति होती है। यदि पूर्वोक्त योग में दशम स्थित गुरु हो तो गायों में उत्तम सम्पत्ति ( दूध की अधिकता ) होती है।।६।।

सूर्यादादित्यादलिगाद् वृश्चिकस्थात् सितेन्दुशशिपुत्रैः शुक्रचन्द्रबुधैर्यथासङ्ख्यं लाभहिबुकार्थयुक्तैः। एकादशचतुर्थद्वितीयस्थैः। तत्रैतज्जातम्। एकादशगे शुक्रे चतुर्थे चन्द्रे द्वितीये बुधे सस्यस्य परा प्रकृष्टा सम्पद् भवति। अस्मन्नेव योगे कर्मणि दशमस्थाने स्थिते जीवे गुरौ न केवलं सस्यस्य परा सम्पद् भवति, यावद् गवां चाग्र्य श्रेष्ठा सम्पद् भवति। क्षीरबाहुल्यमित्यर्थः।।६।।

अन्यद्योगान्तरमाह—

**कुम्भे गुरुर्गवि शशी सूर्योऽलिमुखे कुजार्कजौ मकरे।**
**निष्पत्तिरस्ति महती पश्चात् परचक्रभयरोगम् ॥७॥**

यदि कुम्भ में गुरु, वृष में चन्द्रमा, वृश्चिक के आदि में सूर्य तथा मकर में मङ्गल और शनि स्थित हो तो धान्यों की अधिक निष्पत्ति होती है; किन्तु बाद में परचक्र का आगमन और रोग का भय होता है।।७।।

रविवृश्चिकप्रवेशे कुम्भे गुरुर्जीवः स्थितो भवति। गवि वृषे शशी चन्द्रः। सूर्योऽर्कः। अलिमुखे वृश्चिकप्रारम्भे। कुजार्कजौ भौमसौरौ मकरे। एवंविधे योगे सस्यानां महती निष्पत्तिरस्ति विद्यते, किन्तु पश्चादनन्तरं परचक्रकृतं भयं रोगं च भवति।।७।।

अन्यद्योगान्तरमाह—

**मध्ये पापग्रहयोः सूर्यः सस्यं विनाशयत्यलिगः।**
**पापः सप्तमराशौ जातं जातं विनाशयति ॥८॥**

यदि वृश्चिक राशि में स्थित होकर सूर्य दो पापग्रहों के मध्य में स्थित हो तो धान्यों का नाश करता है तथा सप्तम राशि ( वृष ) में पापग्रह बैठा हो तो धान्यों की उत्पत्ति का भी नाश करता है।।८।।

सूर्यो रविरलिगो वृश्चिकस्थः। पापग्रहयोः शनैश्चराङ्गारकयोर्मध्ये स्थितः। एको द्वितीये द्वितीयो द्वादशे यद्यर्काद् भवतीत्यर्थः। तदा सस्यं विनाशयति। तथा वृश्चिकात् सप्तमराशौ स्थितः पापः सौरभौमयोरन्यतरस्तदा जातं सस्यं जातुमुत्पन्नमपि विनाशयति। तथा च बादरायणः—

क्रूरान्तस्थः सूर्यो वृश्चिकसंस्थो विनाशयति सस्यम्।
जातं जातं पापः सप्तमसंस्थो विनाशयति।। इति।।८।।

अन्यद्योगान्तरमाह—

**अर्थस्थाने क्रूरः सौम्यैरनिरीक्षितः प्रथमजातम्।**
**सस्यं निहन्ति पश्चादुप्तं निष्पादयेद् व्यक्तम् ॥९॥**

यदि वृश्चिक राशि में स्थित सूर्य से द्वितीय स्थान में पापग्रह स्थित होकर शुभग्रह से नहीं देखा जाता हो तो पहली बोई हुई खेती का नाश करता है, किन्तु बाद की बोई हुई खेती अच्छी तरह उपजती है।।९।।

वृश्चिकादर्थस्थाने द्वितीये क्रूरः पापग्रहो भौमसौरयोरन्यतरः स्थितः। स च सौम्यैरनिरीक्षितो बुधजीवशुक्राणामन्यतमेनानिरीक्षितो न दृष्टः। प्रथमजातं पूर्वोत्पन्नं सस्यं निहन्ति नाशयति। तथा पश्चात् कनीयसमुप्तं तद्व्यक्तं समस्तं निष्पादयेत्। सम्भवतीत्यर्थः।।९।।

**जामित्रकेन्द्रसंस्थौ क्रूरौ सूर्यस्य वृश्चिकस्थस्य।**
**सस्यविपत्तिं कुरुतः सौम्यैर्दृष्टौ न सर्वत्र ॥१०॥**

वृश्चिक स्थित सूर्य से सप्तम ( वृष ) में एक और सप्तमभिन्न केन्द्र ( कुम्भ या सिंह ) में दूसरा पापग्रह ( मङ्गल-शनि में से एक ) हो तो धान्यों का नाश करता है। यदि वे दोनों पापग्रह ( मङ्गल, शनि ) शुभग्रहों ( बुध, गुरु, शुक्र ) से देखे जाते हों तो सर्वत्र नहीं; किन्तु कहीं-कहीं पर धान्यों का नाश करते हैं।।१०।।

सूर्यस्यादित्यस्य वृश्चिकसंस्थस्य क्रूरौ पापग्रहौ भौमसौरौ जामित्रकेन्द्रसंस्थौ। एको जामित्रे सप्तमस्थाने द्वितीयोऽन्यस्मिन् केन्द्रे लग्नचतुर्थदशमानामन्यतमे स्थितः। तथाविधौ भौमसौरौ सस्यस्य विपत्तिं विनाशं कुरुतो विदधतः। तथा तावेव क्रूरौ तत्रस्थौ सौम्यैः शुभग्रहैर्दृष्टावालोकितौ न सर्वत्र सर्वस्मिन् देशे सस्यविपत्तिं कुरुतः। क्वचिदित्यर्थः।

नन्वत्र केन्द्रग्रहणेन सप्तमस्थानं गृहीतं भवति। तत्किमर्थं जामित्रग्रहणमिति? उच्यते— जामित्रग्रहणेनैतत्प्रतिपादयति। यथैकोऽवश्यमेव जामित्रे। अन्यो यस्मिंस्तस्मिन् केन्द्रे भवतीति तदा योग एषः। तथा च बादरायणः—

सूर्यात् सप्तमसंस्थः पापोऽयः केन्द्रगश्च हानिकरौ।
सौम्यग्रहसन्दृष्टौ न तथा सर्वत्र निर्दिष्टौ।। इति।।१०।।

अन्यद्योगान्तरमाह—

**वृश्चिकसंस्थादर्कात् सप्तमषष्ठोपगौ यदा क्रूरौ।**
**भवति तदा निष्पत्तिः सस्यानामर्घपरिहानिः ॥११॥**

वृश्चिक-स्थित सूर्य से सप्तम और षष्ठ स्थान में दो पापग्रह मङ्गल और शनि बैठे हों तो धान्यों की निष्पत्ति होती है; किन्तु धान्यों का मूल्य महँगा पड़ता है।।११।।

अर्कादादित्याद्वृश्चिकसंस्थात् क्रूरौ पापौ भौमसौरौ यदा सप्तमषष्ठोपगौ। एकः सप्तमे परः षष्ठे भवति, तदा सस्यानां निष्पत्तिर्भवति। किन्त्वर्घस्य परिहानिः स्वल्पता। बहुमूल्येनाल्पं लभत इत्यर्थः।।११।।

अथ शारदसस्यानामतिदेशार्थमाह—

**विधिनानेनैव रविर्वृषप्रवेशे शरत्समुत्थानाम्।**
**विज्ञेयः सस्यानां नाशाय शिवाय वा तज्ज्ञैः ॥१२॥**

पूर्व-स्थिति की तरह वृष राशिगत सूर्य के समय शारदीय धान्यों का नाश या निष्पत्ति पण्डितों को जानना चाहिये।।१२।।

अनेनैव निर्दिष्टेन विधिना वृश्चिकप्रवेशोक्तेन रविरादित्यो वृषप्रवेशे वृषसंक्रमणकाले शरत्समुत्थानां शरत्समुद्भूतानां सस्यानां नाशायाभावाय शिवाय निष्पत्तये वा तज्ज्ञैः पण्डितैः सस्यजातकज्ञैर्विज्ञेयो ज्ञातव्यः। तथा च बादरायणः—

य एव योगोऽभिहितो वृश्चिकस्थे दिवाकरे।
वृषेऽपि ते शारदानां चिन्तनीया यथार्थतः।। इति।।१२।।

अधुना रविचारवशेन ग्रैष्मिकसस्यस्य सामर्घ्यं महर्घतां चाह—

**त्रिषु मेषादिषु सूर्यः सौम्ययुतो वीक्षितोऽपि वा विचरन्।**
**ग्रैष्मिकधान्यं कुरुते समर्घमभयोपयोग्यं च ॥१३॥**

मेष आदि तीन राशियों ( मेष, वृष, मिथुन ) में गमन करता हुआ सूर्य यदि शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो ग्रीष्म में होने वाले धान्य सस्ते होते हैं तथा लोक-परलोक दोनों के लिये उपयुक्त होते हैं; जैसे कि बहुत सस्ते धान्य होने के कारण बन्धुवर्गों के साथ खूब उपभोग करने से लोक और दानादि धर्मकार्य करने से परलोक—दोनों बन जाते हैं। कहीं-कहीं पर 'अभयोपयोग्यम्' ऐसा पाठ मिलता है; जिसका अर्थ यह है कि ये अभीतिकारक होते हैं अर्थात् ऐसे समय में निर्भय मनुष्य रहते हैं।।१३।।

सूर्य आदित्यः। त्रिषु मेषादिषु मेषवृषमिथुनेषु सौम्यैः शुभग्रहैर्बुधगुरुशुक्रैर्युतः संयुक्तो वीक्षितोऽवलोकितो वा विचरंस्तिष्ठन् ग्रैष्मिकं ग्रीष्मसम्भवं धान्यं समर्घं स्वल्पमूल्यं कुरुते।

अभ्योपयोग्यं च महार्घताऽभयोपयोग्यम्। अथवा उभयोपयोग्यमिह लोके परलोके चोपयुज्यते। इस लोके बन्धुवर्गस्य। धर्मार्थं परलोक इति।।१३।।

अथैवं शारदसस्यस्याप्याह—

**कार्मुकमृगघटसंस्थः शारदसस्यस्य तद्वदेव रविः।**
**संग्रहकाले ज्ञेयो विपर्ययः क्रूरदृग्योगात् ॥१४॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सस्य-**
**जातकाध्यायश्चत्वारिंशः ॥४०॥**

इसी तरह धनु, मकर और कुम्भ में स्थित सूर्य यदि शुभग्रह से युत या दृष्ट हो तो शारदीय धान्यों की समर्घता तथा उभयोपयोग्यता ( इहलोक और परलोक के लिये उपयुक्तता ) समझनी चाहिये। मेषादि या धनुरादि तीन राशियों में स्थित सूर्य यदि पापग्रह से दृष्ट या युत हो तो विपरीत फल ( महर्घता और नोभयोपयोग्य ) समझना चाहिये। अतः संग्रह ( विक्रय ) काल में यही योग अच्छे होते हैं अर्थात् सूर्य के विपरीत योग में स्थित होने पर विक्रय करना चाहिये।।१४।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां सस्यजातकाध्यायश्चत्वारिंशः ॥४०॥**

रविरादित्यः। कार्मुकमृगघटसंस्थः। कार्मुकं धन्वी। मृगो मकरः। घटः कुम्भः। एतेषु स्थितः शारदसस्यस्य तद्वदेव ज्ञेयः। यथा त्रिषु मेषादिषु सूर्यः सौम्ययुतो वीक्षितो वा विचरन् ग्रैष्मिकधान्यं कुरुते। समर्घमभयोपयोग्यं चैवं कार्मुकमृगघटसंस्थः सूर्यः सौम्ययुक्तो वीक्षितोऽपि वा विचरन् शारदधान्यं कुरुते। समर्घमभयोपयोग्यं चेति। संग्रह-काले संग्रहणसमये क्रूरदृग्योगाद्विपर्ययो ज्ञेयः। क्रूरग्रहदृष्टत्वाद्योगात् संयोगाच्च विपर्ययो विपरीतो विज्ञेयः। क्रूरावत्र भौमसौरौ। एतदुक्तं भवति—यदा मेषादिषु त्रिषु कार्मुकादिषु त्रिषु वा सूर्यः पापयुक्तः पापवीक्षितोऽपि वा विचरति तदा विपर्ययो महार्घताभयोपयोग्यत्वं च भवति। एतत्संग्रहकाले विक्रयकाले विपरीतः शोभनः। विपरीतयोगस्थे सूर्ये विक्रयः कार्य इति।।१४।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ सस्य-**
**जातकं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥**

# अथ द्रव्यनिश्चयाध्यायः

अथ द्रव्यनिश्चयाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवाऽऽगमप्रदर्शनार्थमाह—

**ये येषां द्रव्याणामधिपतयो राशयः समुद्दिष्टाः ।**
**मुनिभिः शुभाशुभार्थं तानागमतः प्रवक्ष्यामि ॥१॥**

मुनियों ने शुभाशुभ फल जानने के लिये जिन द्रव्यों के जो अधिप राशि कहे हैं, उनको आगम से लेकर मैं यहाँ कहता हूँ।।१।।

येषां द्रव्याणां ये राशयो मेषादयोऽधिपतयो मुनिभिः काश्यपादिभिः समुद्दिष्टाः कथिताः। किमर्थं शुभाशुभार्थं समर्घमहार्घज्ञानार्थं तान् राशीनगमत आगमात् प्रवक्ष्यामि कथयिष्यामीति।।१।।

तत्र मेषस्य कानि द्रव्याण्येतदाह—

**वस्त्राविककुतुपानां मसूरगोधूमरालकयवानाम् ।**
**स्थलसम्भवौषधीनां कनकस्य च कीर्तितो मेषः ॥२॥**

वस्त्र, भेड़ के रोम से निर्मित वस्त्र, कुतुप ( बकरी के रोम से निर्मित वस्त्र ), मसूर, गेहूँ, रालक, जौ और स्थल ( जल से रहित भूमि ) में उत्पन्न औषधियों का स्वामी मेष राशि है।।२।।

वस्त्राण्यम्बराणि। अवयः प्रसिद्धा एव। अवीनामिदमाविकं तत्सम्भूतमित्यर्थः। कुतुपं छागलोमतन्तुकृतं वस्त्रम्। मसूरगोधूमाः प्रसिद्धाः। रालको वृक्षनिर्यासः। यवाः प्रसिद्धाः। एतेषां सर्वेषाम्। तथा स्थलसम्भवौषधीनाम्, स्थले जलरहितायां भूमौ या ओषधयः सम्भवन्ति तासाम्। तथा कनकस्य सुवर्णस्य च मेषराशिरधिपतिः कीर्तित उक्तः। तथा च काश्यपः—

मेषे सुवर्णस्थलजा गोधूमाजाविकास्तथा।
ग्रहवर्णर्क्षसंयोगे शोभने सफलं भवेत्।। इति।।२।।

अथ वृषमिथुनयोराह—

**गवि वस्त्रकुसुमगोधूमशालियवमहिषसुरभितनयाः स्युः ।**
**मिथुनेऽपि धान्यशारदवल्लीशालूककार्पासाः ॥३॥**

वस्त्र, पुष्प, गेहूँ, शालिधान्य, जौ, भैंस और बैल का स्वामी वृष है। धान्य, शारदीय लता, शालूक ( कुमुदकन्द ) और कपास का स्वामी मिथुन है।।३।।

वस्त्राण्यम्बराणि। कुसुमानि पुष्पाणि। गोधूमाः। शालयः षष्टिकादयः। यवाः। महिषाः।

सुरभितनया बलीवर्दाः। एते गवि वृषे स्युर्भवेयुः।

**मिथुनेऽपीति**। धान्यानि प्रसिद्धानि। शारदं शरत्समुत्पन्नं यत्किञ्चिद् द्राक्षावल्यादि। शालूकं कुमुदकन्दम्। कार्पासाः प्रसिद्धाः। एते सर्व एव मिथुने। तथा च काश्यपः—

वृषे महिषगोवस्त्रशालयः पुष्पसम्भवाः।
मिथुने धान्यशालूकवल्यः कार्पासशारदम्।। इति।।३।।

अथ कर्कटसिंहयोराह—

**कर्किणि कोद्रवकदलीदूर्वाफलकन्दपत्रचोचानि।**
**सिंहे तुषधान्यरसाः सिंहादीनां त्वचः सगुडाः ॥४॥**

कोदो, केला, दूब, सब फल, कन्द ( शकरकन्द आदि ), पत्र ( सुगन्धपत्र ) एवं चोच ( नारियल ) का स्वामी कर्क है। भूसी वाले धान्य, रस ( मधुर आदि छः रस ), सिंह आदि प्राणी, त्वचा और गुड़ का स्वामी सिंह है।।४।।

कोद्रवाः प्रसिद्धा। कदली रम्भा। दूर्वा शाद्वलम्। फलानि सर्वाणि जातीफलप्रभृतीनि। कन्दं प्रसिद्धम्। मूले बीजं यस्य तत्कन्दम्। पत्रं सुगन्धपत्रम्। चोचं पालेवतं नालिकेरं वा। एतानि सर्वाणि कर्किणि कर्कटे।

तुषधान्यानि प्रसिद्धानि। शालयः। रसा मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायाः षट्। सिंहादीनां प्राणिनां सिंहद्वीपिमार्जाराणां त्वचश्चर्माणि विचित्ररूपाणि। एते सगुडा गुडेन सहिताः सिंहे। तथा च काश्यपः—

कर्कटे फलदूर्वाश्च कोद्रवः कदली तथा।
सिंहे धान्यं सर्वरसाः सिंहादीनां त्वचो गुडाः।। इति।।३।।

अथ कन्यातुलयोराह—

**षष्ठेऽतसीकलायाः कुलत्थगोधूममुद्गनिष्पावाः।**
**सप्तमराशौ माषा यवगोधूमाः ससर्षपाश्चैव ॥५॥**

अतसी ( अलसी = तिसी ), कलाय ( उड़द ), कुलथी, गेहूँ, मूँग और निष्पाव ( शालिधान्य या शिम्बि धान्य ) का स्वामी कन्या है। मसूर, जौ, गेहूँ और सरसों का स्वामी तुला है।।५।।

अतसी प्रसिद्धा। कलायः सस्यम्। कुलत्थाः। गोधूमाः। मुद्गाः। एते प्रसिद्धाः। अनूत्पन्नानि यानि पुनर्जायन्ते ते निष्पावाः। निष्पावाः शालय इति केचित्। शिम्बिधान्यमिति च केचित्। एते षष्ठे कन्यायाम्। **सप्तमराशाविति**। माषाः। यवाः। गोधूमाः। एते किंभूताः। ससर्षपाः सर्षपसहिताः। एते सप्तमराशौ तुलायाम्। तथा च काश्यपः—

कन्यायां मुद्गनीवारकुलत्थाः सकला यवाः।
तुले तु यवगोधूममाषाः सिद्धार्थकास्तथा।। इति।।५।।

अथ वृश्चिकधनुषोराह—

**अष्टमराशाविक्षुः सैक्यं लोहान्यजाविकं चापि।**
**नवमे तु तुरगलवणाम्बरास्त्रतिलधान्यमूलानि ॥६॥**

ईख ( गन्ना ), लता के फल, लोहा और छाग तथा भेड़-सम्बन्धी वस्तुओं का स्वामी वृश्चिक है। घोड़ा, नमक, वस्त्र, तिल, धान्य और मूलोत्पन्न धान्यों का स्वामी धनु है।।६।।

इक्षुः प्रसिद्धः। सैक्यं सेकोत्थं वल्लीफलादि। लोहमायसं कांस्यं वा। एतानि। तथा अजश्छागः। अविः प्रसिद्धः। तज्जातमाविकम्। एतत्सर्वमष्टमराशौ वृश्चिके।

**नवमे त्विति**। तुरगा अश्वाः। लवणं सैन्धवम्। अम्बराणि वस्त्राणि। अस्त्राण्यायुधानि धनुःशरादीनि। तिलः। धान्यम्। मूलानि प्रसिद्धानि। एतानि नवमे धनुषि। तथा च काश्यपः—

अलिनीक्षुरसं सैक्यमाजं लोहं सकांस्यकम्।
धान्यं धनुषि वस्त्राणि लवणं तुरगास्तथा।। इति।।६।।

अथ मकरकुम्भयोराह—

**मकरे तरुगुल्माद्यं सैक्येक्षुसुवर्णकृष्णलोहानि।**
**कुम्भे सलिलजफलकुसुमरत्नचित्राणि रूपाणि ॥७॥**

वृक्ष, गुल्म ( सामयिक वृक्ष ), आदि ( लता-वल्ली ), सैक्य ( वल्ली फल आदि ), ईख ( गन्ना ), सोना और लोहे का स्वामी मकर है। जल में उत्पन्न वस्तु, फल, फूल, रस और चित्र वस्तु का स्वामी कुम्भ है।।७।।

तरवो वृक्षाः। गुल्माः प्रसिद्धाः। अकाण्डविटपा इत्यर्थः। आदिग्रहणाल्लतावल्यः। सैक्यं सेकोत्थम्। इक्षुः प्रसिद्धः। सुवर्णं काञ्चनम्। कृष्णलोहमायसम्। एतानि सर्वाणि मरके।

**कुम्भ इति**। सलिलजं यत्किञ्चिज्जलसम्भूतम्। फलानि प्रसिद्धानि। कुसुमानि। रत्नानि चित्राणि नानाप्रकाराणि येषां रूपाणि। एतानि कुम्भे। तथा च काश्यपः—

मकरे सस्यसीसं च सुवर्णगुडधातुजम्।
कुम्भे कुसुमचित्राणि हंसाश्च जलजास्तथा।। इति।।७।।

अथ मीन आह—

**मीने कपालसम्भवरत्नान्यम्बूद्भवानि वज्राणि।**
**स्नेहाश्च नैकरूपा व्याख्याता मत्स्यजातं च ॥८॥**

कपाल-सम्भव-रत्न ( मुक्ताफल ), जल में उत्पन्न वस्तु, हीरा, नाना प्रकार के तेल और मछली से उत्पन्न मुक्ता आदि का स्वामी मीन है।।८।।

कपालसम्भवानि रत्नानि मुक्ताफलानि। अम्बूद्भवानि शुक्तिसम्भवानि। वज्रं हीरकम्। नैकरूपा बहुविधाः स्नेहास्तैलादयः। मत्स्यजातं मत्स्योद्भूतम्। मुक्तादिकमपि। एते सर्व एव मीने व्याख्याता उक्ताः। तथा च काश्यपः—

पद्ममुक्ताफलादीनां द्रव्याणां मीन ईश्वरः।। इति।।८।।

अथैतेषां द्रव्याणां शुभाशुभज्ञानार्थमाह—

**राशेश्चतुर्दशार्थायसप्तनवपञ्चमस्थितो जीवः।**
**द्व्येकादशदशपञ्चाष्टमेषु शशिजश्च वृद्धिकरः ॥९॥**

**षट्सप्तमगो हानिं वृद्धिं शुक्रः करोति शेषेषु।**
**उपचयसंस्थाः क्रूराः शुभदाः शेषेषु हानिकराः ॥१०॥**

जिस राशि से चतुर्थ, दशम, द्वितीय, एकादश, सप्तम, नवम या पञ्चम में बृहस्पति तथा द्वितीय, एकादश, दशम, पञ्चम या अष्टम में बुध अवस्थित हो उस राशि के कथित द्रव्यों की वृद्धि करता है। जिस राशि से षष्ठ या सप्तम में शुक्र हो, उस राशि के कथित द्रव्यों की हानि और शेष स्थान ( प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, अष्टम, नवम, दशम, एकादश या द्वादश) में स्थित हो तो उनकी वृद्धि करता है तथा जिस राशि से पापग्रह ( रवि, मङ्गल और शनैश्चर ) उपचय ( तृतीय, षष्ठ या एकादश ) में स्थित हो, उसके द्रव्यों की वृद्धि और शेष स्थान ( प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, अष्टम, नवम, दशम या द्वादश ) में स्थित हो तो हानि करता है।।९-१०।।

**राशेश्चतुर्दशेति**। यस्य कस्य चोद्देशः। चतुश्चतुर्थस्थानम्। दश दशमम्। अर्थस्थानं द्वितीयम्। आयमेकादशम्। सप्तमनवमपञ्चमानि। एतेषां स्थानानामन्यतमस्थानस्थो जीवो बृहस्पतिस्तत्प्रोक्तद्रव्याणां वृद्धिकरः। द्वितीयम्। एकादशम्। दशमम्। पञ्चमम्। अष्टमम्। एतेषां स्थानानामन्यतमस्थाने स्थितः शशिजो बुधो वृद्धिकरः।

**षट्सप्तमग इति**। शुक्रो भार्गवः षट्सप्तमस्थानगतो हानिं क्षयं करोति। शेषेष्वन्यतमस्थानेषु प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थपञ्चमाष्टमनवमदशमैकादशद्वादशेषु स्थितो वृद्धिं करोति। क्रूरा आदित्याङ्गारकशनैश्चरा उपचयसंस्थास्त्रिषडेकादशगताः शुभदा वृद्धिकराः। शेषेष्वन्यस्थानेषु प्रथमद्वितीयचतुर्थपञ्चमसप्तमाष्टमनवमद्वादशेषु हानिकराः। तथा च काश्यपः—

चतुःसप्तद्विपञ्चस्थो नवदिगुद्रगो गुरुः।।
यस्य राशेस्तदुक्तानां द्रव्याणां वृद्धिदः स्मृतः।
शुक्रः षट्सप्तमस्थो वा हानिकृद्वृद्धिदोऽन्यगः।।
द्व्येकादशदशार्थाष्टसंस्थितः शशिजः शुभः।
पापास्तूपचयस्थाश्च वृद्धिं कुर्वन्ति नान्यथा।। इति।।९-१०।।

अत्रैव विशेषमाह—

**राशेर्यस्य क्रूराः पीडास्थानेषु संस्थिता बलिनः।**
**तत्प्रोक्तद्रव्याणां महार्घता दुर्लभत्वं च ॥११॥**

जिस राशि से पीड़ास्थान ( उपचयस्थान ) में स्थित होकर पापग्रह ( रवि, मङ्गल, शनि ) बली ( मित्रगृह, स्वगृह, उच्च या स्वनवांश में स्थित या शुभग्रहों से दृष्ट ) हो तो उस राशि के कथित द्रव्य अधिक मूल्य वाले और अलभ्य होते हैं।।११।।

यस्य राशेः क्रूराः पापा रविभौमसौराः पीडास्थानेषूपचयस्थानेष्ववस्थितास्ते च बलिनो वीर्यवन्तो मित्रस्वक्षेत्रोच्चस्वनवांशकेषु स्थिताः शुभेक्षिताश्च तत्प्रोक्तद्रव्याणां तस्य राशेर्यानि प्रोक्तानि द्रव्याणि तेषां कथितद्रव्याणां महार्घता बहुमूल्यत्वं दुर्लभत्वं च दुष्प्रापत्वं भवति। तथा च काश्यपः—

राशेरनिष्टस्थानेषु पापाश्च सबलाः स्थिताः।
तद्द्रव्याणां नाशकरा दुर्लभास्ते भवन्ति हि।। इति ।।११।।

अन्यदप्याह—

**इष्टस्थाने सौम्या बलिनो येषां भवन्ति राशीनाम्।**
**तद्द्रव्याणां वृद्धिः सामर्घ्यं वल्लभत्वं च ॥१२॥**

जिस राशि से इष्ट स्थान ( पूर्व कथित वृद्धि स्थान ) में बली होकर शुभग्रह ( बुध, गुरु और शुक्र ) स्थित हों तो उस राशि के कथित द्रव्य अल्प मूल्य से मिलने वाले और प्रिय होते हैं।।१२।।

येषां राशीनां सौम्याः शुभग्रहा बुधगुरुशुक्रा इष्टस्थानस्थाः। इष्टस्थानानि यथा जीवश्चतुरादिषु स्थितो बुधश्च द्व्यादिषु स्थितः शुक्रः षट्सप्तमरहितेषु। एतेषु स्थानेषु बलिनो ये येषां राशीनां भवन्ति तद्द्रव्याणां तस्य राशेर्यानि द्रव्याणि तेषां सामर्घ्यं समर्घता वल्लभत्वं च भवति। तथा च काश्यपः—

इष्टस्थाने स्थिताः सौम्या बलिनो येषु राशिषु।
भवन्ति तद्भवानां च द्रव्याणां शुभदाः स्मृताः।। इति।।१२।।

अन्यदप्याह—

**गोचरपीडायामपि राशिर्बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः।**
**पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्यासः ॥१३॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां द्रव्यनिश्चयाध्यायैकचत्वारिंशः ॥४१॥**

गोचर-पीड़ा में स्थित राशि ( बृहस्पति आदि ग्रहों को उक्त चतुर्थ आदि शुभ स्थानों

से भिन्न स्थान में स्थित होने पर राशि गोचर पीड़ा में स्थित रहती है, ऐसी राशि ) यदि बली शुभग्रह ( बुध, गुरु और शुक्र ) से देखी जाती हो तो पीड़ा नहीं करती है अर्थात् वे द्रव्य सम मूल्य में रहते हैं। यदि पापग्रह ( रवि, मंगल और शनि ) से देखी जाती हो तो उस राशि के कथित द्रव्य महर्घ और दुर्लभ होते हैं।।१३।।

**इति 'विमला'हिन्दीटीकायां द्रव्यनिश्चयाध्याय एकचत्वारिंशः ॥४१॥**

जीवादीनां चतुरादीनि स्थानानि यान्युक्तानि तद्व्यतिरिक्तेष्वन्येषु स्थानेषु यदा स्थिता भवन्ति तदा गोचरपीडा तस्यां सत्यामपि राशिर्यदा शुभग्रहैर्बुधजीवशुक्रैर्बलिभिः सवीर्यैर्दृष्टोऽवलोकितो भवति तदा पीडां न करोति। एतदुक्तं भवति—तद्द्रव्याणि नातिसमर्घाणि भवन्ति। क्रूरैः पापग्रहैरादित्याङ्गारशनैश्चरैर्बलिभिर्गोचरपीडायां यदि राशिर्दृश्यते तदा विपर्यासो विपरीतो भवति। तत्प्रोक्तद्रव्याणां महार्घता दुर्लभत्वं च भवति।।१३।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहितायां विवृतौ द्रव्यनिश्चयो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥**

# अथार्घकाण्डाध्यायः

अथातोऽर्घकाण्डाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेव प्रयोजनसम्प्रदर्शनार्थमाह—

**अतिवृष्ट्युल्कादण्डान् परिवेषग्रहणपरिधिपूर्वांश्च।**
**दृष्ट्वाऽमावास्यायामुत्पातान् पौर्णमास्यां च ॥१॥**

**ब्रूयादर्घविशेषान् प्रतिमासं राशिषु क्रमात् सूर्ये।**
**अन्यतिथावुत्पाता ये ते डमरार्तये राज्ञाम् ॥२॥**

मेषादि राशियों में सूर्य के गमन करने पर प्रति मास की अमावास्या और पूर्णिमा में अतिवृष्टि, उल्का, दण्ड, परिवेष, ग्रहण, परिधि आदि ( रजोनिहार, दिग्दाह और गन्धर्वनगर रूप ) उत्पातों को देख कर द्रव्यों के विशेष मौल्य का विचार करना चाहिये। अन्य ( अमावास्या और पूर्णिमा से भिन्न ) तिथि में होने वाले उत्पात राजाओं को शस्त्र-कलह से पीड़ित करते हैं।।१-२।।

अतिवृष्टिरतिवर्षणम्। उल्का। तस्या लक्षणमुक्तम्—'उल्का शिरसि विशाला' इति। दण्डस्तस्य च लक्षणमुक्तम्—'रविकिरणजलदमरुताम्' इति। तथा परिवेषस्तस्य लक्षणमुक्तम्। ग्रहणमर्केन्द्वोः। परिधिः प्रतिसूर्यस्तस्य लक्षणमुक्तम्। तत्पूर्वांस्तदाद्यान्। आदिग्रहणाद् रजोनीहारदिग्दाहगन्धर्वनगराणि ग्रहीतव्यानि। एतानुत्पातानमावास्यायां पौर्णमास्यां च।

दृष्ट्वाऽवलोक्यार्घविशेषान् सूर्ये आदित्ये राशिषु मेषादिषु प्रतिमासं क्रमात् परिपाट्या तद् ब्रूयाद् वदेत्। अन्यस्मिंस्तिथावमावास्यां पौर्णमासीं च वर्जयित्वा ये उत्पाता अतिवृष्ट्यादयो भवन्ति। ते राज्ञां नृपाणां डमरार्तये भवन्ति। डमरं शस्त्रकलहस्तेनार्तिः पीडा भवति। तथा च काश्यपः—

उल्कातिवृष्टिर्ग्रहणे सूर्येन्द्वोः परिवेषणम्।
प्रतिसूर्यादयो येऽन्ये पक्षमासान्तसंक्षये।।
तिथौ निरीक्ष्य चोत्पातान् ब्रूयाल्लोके शुभाशुभम्।
सुभिक्षदुर्भिक्षकृतान् विशेषोऽत्र विचारतः।।
प्रतिमासं विधानज्ञो नान्यस्मिन् दिवसे वदेत्।
अन्यत्र ये भवन्त्येते ते सर्वे नृपदोषदाः।। इति।।१-२।।

अथोत्पातेऽमावास्यायां पौर्णमास्यां च मेषवृषस्थे सूर्ये किं कुर्यादित्याह—

**मेषोपगते सूर्ये ग्रीष्मजधान्यस्य संग्रहं कृत्वा।**
**वनमूलफलस्य वृषे चतुर्थमासे तयोर्लाभः ॥३॥**

मेष राशि में स्थित सूर्य के समय में ग्रीष्म ऋतु में उत्पन्न होने वाले धान्यों का तथा

वृष राशि में स्थित सूर्य के समय में उसमें होने वाले मूल और फलों का संग्रह करे, उन ( मेष और वृष ) से चतुर्थ मास में उसको विक्रय करने से लाभ होता है।।३।।

सूर्ये रवौ मेषोपगते मेषं प्राप्ते। अमावास्यायां पौर्णमास्यां चोत्पातानुक्तान् दृष्ट्वा ग्रीष्मजस्य ग्रीष्मोत्पन्नस्य धान्यस्य संग्रहं कृत्वा तथा वृषे वृषगतेऽर्के वनमूलफलस्य वन्यानां मूलफलानां संग्रहं कृत्वा तयोर्मेषवृषयोश्चतुर्थे मासि विक्रयाल्लाभो भवति।।३।।

अथ मिथुनस्थ आह—

**मिथुनस्थे सर्वरसान् धान्यानि च संग्रहं समुपनीय।**
**षष्ठे मासे विपुलं विक्रेता प्राप्नुयाल्लाभम् ॥४॥**

मिथुन राशिगत सूर्य के समय में मधुर आदि सभी रसों का संग्रह करके उससे छठे मास में विक्रय करने से बहुत लाभ होता है।।४।।

मिथुनस्थेऽर्के प्रागुक्तानुत्पातान् दृष्ट्वा। सर्वरसान् मधुरादीन्। धान्यानि च शालीन्। संग्रहं समुपनीय। संग्रहमेषां कृत्वा विक्रेता षष्ठे मासे विपुलं विस्तीर्णं लाभं प्राप्नुयाल्लभेत।

अथ कर्कटस्थ आह—

**कर्किण्यर्के मधुगन्धतैलघृतफाणितानि विनिधाय।**
**द्विगुणा द्वितीयमासे लब्धिर्हीनाधिके छेदः ॥५॥**

कर्क राशिगत सूर्य के समय में मधु, सुगन्ध, द्रव्य, तेल, घी और शक्कर का संग्रह करके दूसरे मास में विक्रय करने से दूना लाभ होता है। दो महीने से कम या अधिक में विक्रय करने से नाश होता है।।५।।

अर्के आदित्ये कर्किणि कर्कटस्थे मधु माक्षिकम्। गन्धः सुगन्धद्रव्याणि। तैलम्। घृतमाज्यम्। फाणितमिक्षुरसक्वाथः क्षुद्रगुडादि। एतानि विनिधाय संस्थाप्य द्वितीयमासे विक्रयाद् द्विगुणा लब्धिर्भवति। हीने कालेऽधिके वा विक्रयाच्छेदो भवति।।५।।

अथ सिंहस्थ आह—

**सिंहे सुवर्णमणिचर्मवर्मशस्त्राणि मौक्तिकं रजतम्।**
**पञ्चममासे लब्धिर्विक्रेतुरतोऽन्यथा छेदः ॥६॥**

सिंह राशिगत सूर्य के समय में सोना, मणि, चमड़ा, शस्त्र, मोती और चाँदी का संग्रह करके पाँचवें मास में विक्रय करने से लाभ होता है। न्यूनाधिक काल में विक्रय करने से हानि होती है।।६।।

सिंहस्थेऽर्के सुवर्णम्। मणयः। चर्माणि। वर्म सन्नाहः। शस्त्राण्यायुधानि। मौक्तिकं मुक्ताफलानि। रजतं रौप्यम्। एतानि विनिधाय विक्रेतुः पञ्चमे मासे विक्रयाल्लब्धिर्भवति। अतोऽन्यथा ऊने कालेऽधिके वा छेदो भवति।।६।।

अथ कन्यागते स्वावाह—

**कन्यागते दिनकरे चामरखरकरभवाजिनां क्रेता।**
**षष्ठे मासे द्विगुणं लाभमवाप्नोति विक्रीणन् ॥७॥**

कन्या राशिगत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पातों को देख कर चामर, गहदा, ऊँट और घोड़ों का संग्रह करके छठे मास में विक्रय करने से दूना लाभ होता है।।७।।

दिनकरे सूर्ये कन्यागते प्रागुक्तानुत्पातान् दृष्ट्वा चामरं वालव्यजनम्। खरो गर्दभ:। करभ उष्ट्र:। वाजी तरग:। एषां क्रेता षष्ठे मासे विक्रीणन् विक्रेता द्विगुणं लाभमाप्नोति लभते।।७।।

अथ तुलागत आह—

**तौलिनि तान्तवभाण्डं मणिकम्बलकाचपीतकुसुमानि।**
**आदद्याद्धान्यानि च वर्षार्द्धाद् द्विगुणिता वृद्धिः ॥८॥**

तुला राशिगत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पातों को देखकर सूती तथा ऊनी वस्त्र, वर्तन, मणि, कम्वल, काँच, पीले वस्त्र, पुष्प और धान्यों का संग्रह करके छठे मास में विक्रय करने से दूना लाभ होता है।।८।।

तौलिनि तुलागतेऽर्के तान्तवभाण्डं तन्तुकृतं यत्किञ्चित् कर्म कर्पटादि मणय:। कम्वलम्। काचम्। पीतानि पीतवर्णानि कुसुमानि पुष्पाणि। एतान्यादद्याद्वाहयेत्। धान्यानि च तथा। वर्षार्द्धात् षड्भिर्मासैर्द्विगुणिता वृद्धिर्द्विगुणत्वं व्रजन्ति। द्विगुणलाभो भवतीत्यर्थ:।

अथ वृश्चिकस्थ आह—

**वृश्चिकसंस्थे सवितरि फलकन्दकमूलविविधरत्नानि।**
**वर्षद्वयमुषितानि द्विगुणं लाभं प्रयच्छन्ति ॥९॥**

वृश्चिक राशिगत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पात होने पर फल, कन्द, मूल और अनेक प्रकार के रत्नों का संग्रह करके दो वर्ष वाद विक्रय करने से दूना लाभ होता है।।९।।

सवितरि आदित्ये वृश्चिकसंस्थे। फलानि। कन्दको मूलविशेष:। मूलानि अन्यानि द्रव्याणि। विविधानि नानाकाराणि रत्नानि। एतानि वर्षद्वयमुषितानि द्विगुणं लाभं प्रयच्छन्ति ददति।।९।।

अथ धन्विस्थ आह—

**चापगते गृह्णीयात् कुङ्कुमशङ्खप्रवालकाचानि।**
**मुक्ताफलानि च ततो वर्षार्द्धात् द्विगुणतां यान्ति ॥१०॥**

धनु राशिगत सूर्य के समय में पूर्वोक्त उत्पात होने पर कुंकुम, शङ्ख, मूँगा, काँच और मोतियों का संग्रह करके छः मास वाद विक्रय करने से दूना लाभ होता है।।१०।।

चापगते धन्विस्थेऽर्के गृह्णीयात्। कुङ्कुमं काश्मीरम्। शङ्खम्। प्रवालं विद्रुमम्। काचम्।

मुक्ताफलानि च। ततोऽनन्तरं क्रमात् परतः वर्षार्द्धात् षड्भिर्मासैर्द्विगुणतां यान्ति। द्विगुणं लाभं ददति।।१०।।

अथ मकरकुम्भस्थेऽर्क आह—

**मृगघटसंस्थे सवितरि गृह्णीयाल्लोहभाण्डधान्यानि।**
**स्थित्वा मासं दद्याल्लाभार्थी द्विगुणमाप्नोति ॥११॥**

मकर या कुम्भ राशिगत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पात होने पर लोहा, बर्तन और धान्यों का संग्रह करके एक मास बाद बेचने से लाभार्थी व्यापारी दूना लाभ प्राप्त करता है।

मृगो मकरः। घटः कुम्भः। सवितर्यादित्ये मृगघटसंस्थे लोहभाण्डधान्यानि गृह्णीयात् स्थापयेत्। लोहमयानि भाण्डानि धान्यानि च मासं स्थित्वा मासं संस्थाप्य ततो दद्याद्विक्रयं कुर्यात्। लाभार्थी द्विगुणं लाभमाप्नोति लभते।।११।।

अथ मीनस्थेऽर्क आह—

**सवितरि झषमुपयाते मूलफलं कन्दभाण्डरत्नानि।**
**संस्थाप्य वत्सरार्द्धं लाभकमिष्टं समाप्नोति ॥१२॥**

मीन राशिगत सूर्य के समय पूर्वोक्त उत्पात होने पर मूल, फल, कन्द, बर्तन और रत्नों का संग्रह करके छः मास बाद बेचने से मनमाना लाभ होता है।।१२।।

सवितरि आदित्ये झषं मीनमुपयाते प्राप्ते। मूलानि। फलानि। कन्दो मूलविशेषः। भाण्डानि नानाकाराणि। रत्नानि मणयः। एतान् गृहीत्वा वत्सरार्द्धं मासषट्कं संस्थाप्येष्टं यथाभिलषितं लाभं वृद्धिं समाप्नोति लभते।।१२।।

अत्रैव पुनरपि विशेषमाह—

**राशौ राशौ यस्मिन् शिशिरमयूखः सहस्रकिरणो वा।**
**युक्तोऽधिमित्रदृष्टस्तत्रायं लाभको दिष्टः ॥१३॥**

जिस-जिस राशि में स्थित चन्द्र या सूर्य अपने तात्कालिक अधिमित्र ग्रह से युत या दृष्ट हों, उसी राशि में पूर्वोक्त लाभ होता है; अन्यत्र नहीं।।१३।।

यस्मिन् राशौ राशौ मेषादिके शिशिरमयूखश्चन्द्रः सहस्रकिरणो वा सूर्यः। अधिमित्रेण तात्कालिकेन दृष्टो विलोकितो मित्रयुक्तश्च भवति। यतस्तत्कालं दशायबन्धुसहजस्वान्तेषु स्थितो ग्रहो मित्रं भवति। तद्युक्तत्वात्तेन मित्रयुक्तोऽधिमित्रदृष्टः। तत्र तस्मिन् राशौ अयं लाभको दिष्टोऽभिहितो नान्यत्र योगासम्भवात्। यतोऽमावास्यापौर्णमास्योरयं विचारः। उत्पातदर्शनात्। अतः शिशिरमयूखसहस्रकिरणग्रहणं कृतम्। तथा च काश्यपः—

राशौ राशौ स्थितः सूर्यः शशी वा मित्रसंयुतः।
अधिमित्रेण सन्दृष्टो यथा लाभप्रदः स्मृतः।। इति।।१३।।

अत्रैव विशेषमाह—

**सवितृसहितः सम्पूर्णो वा शुभैर्युतवीक्षितः**
**शिशिरकिरणः सद्योऽर्घस्य प्रवृद्धिकरः स्मृतः ।**
**अशुभसहितः सन्दृष्टो वा हिनस्त्यथवा रविः**
**प्रतिगृहगतान् भावान् बुद्ध्वा वदेत् सदसत्फलम् ॥१४॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामर्घ-**
**काण्डाध्यायो द्विचत्वारिंशः ॥४२॥**

जिस राशि में सूर्ययुत चन्द्र या पूर्णचन्द्र शुभग्रह ( बुध, बृहस्पति और शुक ) से युत या दृष्ट हो, उस राशिसम्बन्धी द्रव्य में मौल्य की वृद्धि करता है तथा जिस राशि में पापग्रह ( मङ्गल और शनि ) से युत या दृष्ट हो, उस राशिसम्बन्धी द्रव्यों का नाश करता है। इसी प्रकार प्रत्येक राशिगत द्रव्यों को जानकर शुभाशुभ फल कहना चाहिये।।१४।।

**इति 'विमला'हिन्दीटीकायामर्घकाण्डाध्यायो द्विचत्वारिंशः ॥४२॥**

शिशिरकिरणश्चन्द्रः सवितृसहितः सूर्येण सहावस्थितोऽमावास्यायां शुभग्रहैर्बुध-जीवशुक्रैर्युतः संयुतो वीक्षितो यत्र राशौ भवति तत्र सद्योऽर्घस्य सुवृद्धिकरः स्मृतः।

अथाशुभसहितः पापग्रहाभ्यां भौमसौराभ्यां युक्तः सन्दृष्टो रविर्वा चन्द्रो हिनस्ति नाशयति। अर्घहानिं करोतीत्यर्थः। एवं प्रतिगृहगतान् प्रतिराशिव्यवस्थितान् भावान् द्रव्याण्युक्तान् बुद्ध्वा ज्ञात्वा सदसच्छुभमशुभं वा फलं वदेद् ब्रूयादिति। तथा च काश्यपः—

अत्रार्कशशिनौ सौम्यैः संयुक्तौ वा निरीक्षितौ।
शुभग्रहस्थानगतौ सद्योऽर्घस्य विवृद्धिदौ।।
विपरीतस्थितावेतौ पापयुक्तौ निरीक्षितौ।
अर्घहानिकरौ प्रोक्तौ मिश्रितौ मध्यमौ स्मृतौ।। इति।।१४।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतावर्घकाण्डं**
**नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥**

# अथेन्द्रध्वजसम्पदाध्यायः

अथेन्द्रध्वजसम्पद्व्याख्यायते। तत्रादावेव तदुत्पत्तिप्रदर्शनार्थमाह—

**ब्रह्माणमूचुरमरा भगवन् शक्ताः स्म नासुरान् समरे।**
**प्रतियोधयितुमतस्त्वां शरण्यशरणं समुपयाताः ॥१॥**

सभी देवताओं ने ब्रह्माजी से कहा, हे भगवन्! राक्षसों के साथ युद्ध करने के लिये हम समर्थ नहीं हैं, अतः आपकी शरण में आये हैं।।१।।

अमरा देवा ब्रह्माणमूचुः पितामहमुक्तवन्तः। किं तदित्याह—हे भगवन् पितामह! वयमसुरान् दैत्यान् समरे संग्रामे प्रतियोधयितुं तैः सह युद्धं कर्त्तुं न शक्ताः स्मः। अतोऽस्माद्धेतोः शरण्यं त्वां शरणं वयं समुपयाताः प्राप्ता इति।।१।।

ततोऽनन्तरं स तानाह—

**देवानुवाच भगवान् क्षीरोदे केशवः स वः केतुम्।**
**यं दास्यति तं दृष्ट्वा नाजौ स्थास्यन्ति वो दैत्याः ॥२॥**

भगवान् ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा—क्षीरसागर में भगवान् नारायण विराजमान हैं। वे एक केतु ( ध्वज ) आपको देंगे, जिसको देखकर राक्षसगण युद्ध में नहीं ठहरेंगे।

भगवान् ब्रह्मा देवानुवाच प्रोक्तवान्। क्षीरोदे क्षीरसमुद्रे यः केशवो नारायणः स वो युष्मभ्यं यं केतुं ध्वजं दास्यति तं दृष्ट्वा अवलोक्य वो युष्माकमाजौ संग्रामे दैत्या न स्थास्यन्ति।।२।।

ततः किमित्याह श्लोकत्रयेण—

**लब्धवराः क्षीरोदं गत्वा ते तुष्टुवुः सुराः सेन्द्राः।**
**श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभमणिकिरणोद्भासितोरस्कम् ॥३॥**

**श्रीपतिमचिन्त्यमसमं समं ततः सर्वदेहिनां सूक्ष्मम्।**
**परमात्मानमनादिं विष्णुमविज्ञातपर्यन्तम् ॥४॥**

**तैः संस्तुतः स देवस्तुतोष नारायणो ददौ चैषाम्।**
**ध्वजमसुरसुरवधूमुखकमलवनतुषारतीक्ष्णांशुम् ॥५॥**

इस तरह वर प्राप्त कर इन्द्र के साथ देवताओं ने क्षीरसागर जाकर भगवान् नारायण की इस प्रकार स्तुति की—श्रीवत्सचिह्न से युत, कौस्तुभ मणि की किरणों से प्रकाशित वक्षःस्थल वाले, लक्ष्मीनाथ, अचिन्त्य, अनौपम्य, सभी प्राणियों में गत होने के कारण सम, सभी प्राणियों के द्वारा बड़ी कठिनता से जानने योग्य होने के कारण सूक्ष्म, परमात्मा,

अनादि ( उत्पत्ति-रहित ), विष्णु ( व्यापक ), अज्ञात निधन वाले—इस तरह इन्द्र के साथ देवताओं से संस्तुत उस देव नारायण ने सन्तुष्ट होकर राक्षस और देवताओं के स्त्रियों के मुखरूप कमल-वन में क्रम से चन्द्र और सूर्य के समान ( राक्षसों की स्त्रियों के मुखकमल म्लान करने के कारण चन्द्र और देवताओं की स्त्रियों के मुखकमल को प्रफुल्लित करने के कारण सूर्य की तरह ) ध्वज देवताओं को दिया।।३-५।।

ते सेन्द्रा इन्द्रसहिताः सुरा देवा लब्धो वरो यैस्ते लब्धवराः क्षीरोदं क्षीरसमुद्रं गत्वा तं भगवन्तं केशवं तुष्टुवुः स्तुतवन्तः। श्रीवत्साङ्कं श्रीवत्समङ्कं चिह्नं यस्य तम्। कौस्तुभो मणिविशेषस्तस्य किरणा रश्मयस्तैरुद्भासितमुरो वक्षो यस्य तम्।

तथाभूतं श्रीपतिं लक्ष्मीनाथम्। अचिन्त्यम्। चिन्तयितुं न शक्यम्। असमम्। असदृशम्। अनौपम्यमित्यर्थः। समं सर्वगतत्वात्तुल्यम्। ततः समत्वात् सर्वदेहिनां सर्व-भूतानां सूक्ष्मं दुर्विज्ञेयम्। परमात्मानम्। परमश्चासौ आत्मा परमात्मा तं तथाभूतम्। अनादिम्। न आदिरुत्पत्तिर्विद्यते यस्य तम्। विष्णुम्। व्यापकम्। अविज्ञातपर्यन्तम्। न विज्ञातः पर्यन्तः सर्गो यस्य तम्। अविज्ञातनिधनमित्यर्थः।

तैः सेन्द्रैर्देवः संस्तुतः स देवो नारायणस्तुतोष। तुष्टश्चैषां देवानां ध्वजं ददौ। कीदृशं ध्वजम्? असुरसुरवधूमुखकमलवनतुषारतीक्ष्णांशुम्, असुरा दैत्याः सुरा देवास्तेषां वध्वः स्त्रियस्तासां मुखकमलानि वक्त्रपद्मानि तदेव मुखकमलानां वनं समूहस्तत्र तीक्ष्णांशुः सूर्यः। विकाशकत्वात्। त्रिभिर्विशेषकम्।।३-५।।

कीदृशं ध्वजं ददावित्याह—

**तं विष्णुतेजोद्भवमष्टचक्रे रथे स्थितं भास्वति रत्नचित्रे।**
**देदीप्यमानं शरदीव सूर्यं ध्वजं समासाद्य मुमोद शक्रः॥६॥**

विष्णु के तेज से उत्पन्न, आठ चक्रों से युत, प्रकाशित तथा मणियों से भूषित रथ पर स्थित और शारदीय सूर्य की तरह प्रकाशमान ध्वज पाकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुये।।६।।

तं ध्वजं विष्णुतेजोभवम्। विष्णुतेजसोद्भव उत्पत्तिर्यस्य तम्। अष्टचक्रे रथे स्थितम्। अष्टभिश्चक्रैर्यो युक्तो रथः स्यन्दनं तत्र स्थितम्। कीदृशे भास्वति। तेजोयुते। रत्नचित्रे मणि-भूषिते। कीदृशं ध्वजम्। देदीप्यमानं शरदीव सूर्यम्। शरदि शरत्काले सूर्यमादित्यमिव देदीप्यमानं ज्वलन्तम्। एवंविधं तं ध्वजं शक्र इन्द्रः समासाद्य प्राप्य मुमोद जहृषे।।६।।

ततस्तं प्राप्य किं कृतवानिन्द्र इत्याह—

**स किङ्किणीजालपरिष्कृतेन स्रक्छत्रघण्टापिटकान्वितेन।**
**समुच्छ्रितेनामरराड्ध्वजेन निन्ये विनाशं समरेऽरिसैन्यम्॥७॥**

किङ्किणियों ( सूक्ष्म घण्टाओं ) के समूह से भूषित, माला, छत्र, घण्टा और पिटक ( ध्वजा में लगाने का एक प्रकार का भूषण ) से युत उन्नत ध्वज के द्वारा युद्ध में शत्रु की सेना का नाश किया।।७।।

अमरराडिन्द्रस्तेन ध्वजेन समुच्छ्रितेनारिसैन्यं शत्रुसैन्यं समरे संग्रामे विनाशं क्षयं निन्ये। कीदृशेन? किङ्किणीजालपरिष्कृतेन। किङ्किण्यः सूक्ष्मघण्टाः। तासां जालं समूहः। तेन परिष्कृतेन युक्तेन। स्रक्छत्रघण्टापिटकान्वितेन, स्रक् माला। छत्रमातपत्रम्। घण्टा प्रसिद्धा। पिटकानि विभूषणानि। तैरन्वितेन युक्तेन। तथा च गर्गः—

असुरास्तं ध्वजं दृष्ट्वा ध्वजतेजःसमाहताः।
विसंज्ञाः समरे भग्नाः पराभूता प्रदुद्रुवुः।।
तान् वज्रेण सहस्राक्षो मासे भाद्रपदेऽसुरान्।
घातयित्वा सज्येष्ठायामेकरात्रेण वाजिना।।
स जित्वा श्रवणे स्वर्गं प्रययौ सद्विजः पथि।। इति।।७।।

ततस्तं ध्वजमिन्द्रो वसुं ददावित्याह—

**उपरिचरस्यामरपो वसोर्ददौ चेदिपस्य वेणुमयीम्।**
**यष्टिं तां स नरेन्द्रो विधिवत् सम्पूजयामास ॥८॥**

इन्द्र ने ऊपर गमन करने वाले ( भूमि पर रहते हुये भी स्वर्ग जाने वाले ) चेदि देश के राजा वसु को एक बाँस का दण्ड दिया, जिसका विधिपूर्वक चेदिपति राजा ने पूजन किया।।८।।

ततोऽमरप इन्द्र उपरिचरस्योर्ध्वगामिनो वसुनामचेदिपस्य वेणुमयीं यष्टिं ददौ। चेदिनां जनपदानां राजा वसुपो भूमिष्ठः सन् उपरि चरति स्वर्गं याति। तथा स नरेन्द्रश्चेदिपो विधिवत्तां यष्टिं सम्पूजयामास पूजितवान्।।८।।

अथ शक्रप्रसादं ध्वजमाहात्म्यं श्लोकद्वयेनाह—

**प्रीतो महेन मघवा प्राहैवं ये नृपाः करिष्यन्ति।**
**वसुवद्वसुमन्तस्ते भुवि सिद्धाज्ञा भविष्यन्ति ॥९॥**
**मुदिताः प्रजाश्च तेषां भयरोगविवर्जिताः प्रभूतान्नाः।**
**ध्वज एव चाभिधास्यति जगति निमित्तैः फलं सदसत् ॥१०॥**

राजा वसु की पूजा से प्रसन्न होकर इन्द्र ने कहा—राजा वसु की तरह जो राजा उत्सव करेगा, वह अनेक प्रकार के रत्नों से युत पृथ्वी पर आदेश करने वाला राजा होगा। उस राजा के प्रजागंण हर्षयुत, भय-रोग से रहित और बहुत अन्नों से युत होंगे तथा संसार में कारणों के द्वारा ध्वज ही शुभाशुभ फल कहेगा।।९-१०।।

मघवा भगवानिन्द्रो महेन पूजया प्रीतः परितुष्टः प्राह उक्तवान्। एवमनेन प्रकारेण वसुवद्वसुना तुल्यं ये नृपा राजानः करिष्यन्ति ते वसुमन्तः। वसूनि रत्नानि विद्यन्ते येषाम्। तथा भुवि भूमौ सिद्धाज्ञा भविष्यन्ति। सिद्धा आज्ञा येषां ते विहितादेशाः कृतादेशा इत्यर्थः।

**मुदिता इति**। तेषां नृपाणां प्रजा जना मुदिता भविष्यन्ति तथा भयरोगैर्विवर्जिता रहिताः। प्रभूतान्नाः। प्रभूतं बह्वन्नं येषां ते। ततो ध्वज एव जगति लोके निमित्तैः कारणैः सदसच्छुभाशुभं फलं दास्यति। एतदुक्तं भवति—य एवं भगवता दत्तं ध्वजं राजा पूजयिष्यति। स एव ध्वजः पूज्यमानो लोके निमित्तैश्चिह्नैः शुभाशुभं दास्यतीत्यर्थः। युगलकम्।।९-१०।।

अथास्य विधानं वक्ष्यामीत्याह—

**पूजा तस्य नरेन्द्रैर्बलवृद्धिजयार्थिभिर्यथा पूर्वम्।**
**शक्राज्ञया प्रयुक्ता तामागमतः प्रवक्ष्यामि ॥११॥**

पूर्व काल में इन्द्र की आज्ञा से बल की वृद्धि और जय की इच्छा रखने वाले राजाओं ने जिस तरह उस ध्वज का पूजन किया, शास्त्र से लेकर उसको मैं कहता हूँ।।११।।

तस्य ध्वजस्य नरेन्द्रै राजभिर्बलवृद्धिजयार्थिभिः। बलवृद्धिजयानां येऽर्थिनः प्रार्थनापरास्तैर्यथा येन प्रकारेण पूर्वं पुरा शक्राज्ञया इन्द्राज्ञया प्रयुक्ता कृता तां पूजामागमत आगमात् प्रवक्ष्यामि। यथावदभिधास्यामीत्यर्थः।।११।।

अथ तदभिधानमेवाह—

**तस्य विधानं शुभकरणदिवसनक्षत्रमङ्गलमुहूर्तैः।**
**प्रास्थानिकैर्वनमियाद् दैवज्ञः सूत्रधारश्च ॥१२॥**

शुभ करण ( ९९ अध्याय के ४-५ श्लोक में उक्त ), शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ शकुन और शुभ मुहूर्त ( यात्रा में उक्त मुहूर्त ) में ज्योतिषी और बढ़ई को वन में गमन करना चाहिये।।१२।।

तस्येन्द्रध्वजस्य विधानं करणम्। शुभे शुभप्रदे करणे। करणानि बवादीनि। तस्मिन् शुभे विष्टिपरिवर्जिते। आचार्योऽत्र लक्षणं कथयिष्यति। यथा—

बववालवकौलवतैतिलाख्यगरवणिजविष्टिसंज्ञानाम्।
पतयः स्युरिन्द्रकमलजमित्रार्यमभूश्रियः सयमाः।।
कृष्णचतुर्दश्यर्द्धाद् ध्रुवाणि शकुनिश्चतुष्पदं नागम्।
किंस्तुघ्नमिति च तेषां कलिवृषफणिमारुताः पतयः।।

एवंविधे शुभे करणे। दिवसशब्देन तिथिर्वा वार उच्यते—

नन्दा भद्रा रिक्ता पूर्णा च नामसदृशफलाः। इति।

शुभतिथौ। तथैवं शुभे पूर्णचन्द्रबुधजीवशुक्राणामन्यतमयुक्तस्य दिने। शुभनक्षत्रे दारुणोग्रवर्जिते लघूनि साधारणे च पापग्रहवर्जिते। लघुहस्ताश्विनपुष्य इत्यादि निरुपहते नक्षत्रे। शुभे मङ्गले शकुने दध्यक्षतकुसुमादीनां दर्शने। शुभे मुहूर्ते। मुहूर्तानि यात्रायामुक्तानि। तद्यथा—यात्रायां गरवणिजविष्टिपरिवर्जितानि करणानीति करणानां फलमुक्तम्। दिवसगुणा

वारगुणाः। उदरनयनरोगश्चपदारुण्यबाधा इत्युक्ताः। नक्षत्राणाम्। दिशि दिशि बहुलाद्या इति। मङ्गलानि च सिद्धार्थकादर्शमयाऽञ्जनानीति। मुहूर्ताः—

शिवभुजगमित्रपितृवसुजलविश्वविरञ्चिपङ्कजप्रभवाः।
इन्द्राग्नीन्द्रनिशाचरवरुणार्यमयोनयश्चाह्नि ।।
रुद्राजाहिर्बुध्न्याः पूषादस्रान्तकाग्निधातारः।
चन्द्रादितिगुरुहरिरवित्वाष्ट्राण्यनिलाख्यका रात्रौ।।
अह्नः पञ्चदशांशे रात्रेश्चैवं मुहूर्त इति।
संज्ञा स च विज्ञेयश्छायायन्त्राम्बुभिर्युक्त्या।। इति।

एतैः प्रास्थानिकैः। प्रस्थाने गमने भवाः प्रास्थानिकास्तैर्दैक्षः कालवित् सूत्रधारश्च तक्षा वनमियाद् गच्छेत्।।१२।।

तत्र वने किं कुर्यादित्यशुभतरुच्छदवर्जं श्लोकद्वयेनाऽऽह—

**उद्यानदेवतालयपितृवनवल्मीकमार्गचितिजाताः ।**
**कुब्जोर्ध्वशुष्ककण्टकिवल्लीवन्दाकयुक्ताश्च ॥१३॥**
**बहुविहगालयकोटरपवनानलपीडिताश्च ये तरवः ।**
**ये च स्युः स्त्रीसंज्ञा न ते शुभाः शक्रकेत्वर्थे ॥१४॥**

उद्यान ( फुलवाड़ी ), देवालय, श्मशान, वल्मीक ( वमई = दिवड़ा भीड़ ), मार्ग तथा यज्ञभूमि में उत्पन्न, कुबड़ा, खड़े ही सूख गये, काँटेदार, लताओं से युत, वन्दाकवृक्ष से युत, बहुत पक्षियों के घोंसले वाले, वायु से टूटे हुये, आग से जले हुये और स्त्रीलिङ्ग नाम वाले ( कदली, वदली आदि ) वृक्षों के अतिरिक्त शुभ वृक्ष इन्द्रध्वज के लिये काटे गये।।१३-१४।।

एवंविधास्तरवो वृक्षाः शक्रकेत्वर्थे इन्द्रध्वजार्थे न शुभा न प्रशस्ताः। कीदृशाः? उद्यानमुपवनम्। देवतालयं सुरगृहम्। पितृवनं श्मशानम्। वल्मीकः प्रसिद्धो वल्मीककृतो मृद्यूपः। मार्गः पन्थाः। चितिर्यज्ञभूमिः। एतेषु ये जाताः। तथा कुब्जा अस्पृष्टार्थाः। ऊर्ध्व-शुष्काः। तथा कण्टकिनः कण्टकयुक्ता वदरीप्रभृतय इत्यर्थः। वल्लीभिर्युक्ता लतापरिवेष्टिताः। वन्दाकयुक्ताश्च। वन्दाको वृक्षविशेषस्तेन युक्ताः।

तथा प्रभूतानां विहगानां पक्षिणामालयानि गृहाणि यत्र सन्ति। कोटरं छिद्रम्। पवनेन वायुना ये पीड़िता भग्नाः। अनलेन पीड़िता दग्धाः। तथा च ये स्त्रीसंज्ञाः स्त्री-नामानः स्युर्भवेयुः। यथा कदली बदरी द्रेकाण्येवमादि। एतत्प्रतिपादितं यत्तद्वर्जितं शुभतरु-छेदनं कार्यम्। तथा च गर्गः—

प्रोष्ठपादे प्रतिपदि ध्वजार्थं पूर्वतो वनम्।
गत्वा वृक्षं परीक्षेत वयःसारगुणान्वितम्।। इति।।१३-१४।।

अथैषां केतुः शोभन इत्याह—

**श्रेष्ठोऽर्जुनोऽजकर्णः प्रियकधवोदुम्बराश्च पञ्चैते।**
**एतेषामेकतमं प्रशस्तमथवापरं वृक्षम् ॥१५॥**

अर्जुन ( काहू ), अजकर्ण, प्रियक, धव और गूलर—ये पाँच वृक्ष ध्वज के लिये शुभ होते हैं। इनमें एक या अन्य वृक्ष वक्ष्यमाण शुभ लक्षणों से युत हैं।।१५।।

अर्जुनो वृक्षः श्रेष्ठः प्रशस्तः। अजकर्णः। प्रियकः। धवः। उदुम्बरः। एते पञ्च श्रेष्ठाः। एतेषां मध्यादेकतममन्यतमम्। अथवाऽपरमन्यं वृक्षं प्रशस्तं शुभलक्षणमित्यर्थः।।१५।।

तत्कीदृशमित्याह—

**गौरासितक्षितिभवं सम्पूज्य यथाविधि द्विजः पूर्वम्।**
**विजने समेत्य रात्रौ स्पृष्ट्वा ब्रूयादिमं मन्त्रम् ॥१६॥**

श्वेत या काली भूमि में उत्पन्न ( शुभ लक्षणयुत ) वृक्ष के पास जाकर ब्राह्मण जन-रहित स्थान में रात्रि के समय विधिपूर्वक पूजन के बाद वृक्ष को स्पर्श करके वक्ष्यमाण मन्त्र बोले।।१६।।

गौरायामसितायां च क्षितौ भूमौ भव उत्पत्तिर्यस्य तं तथाभूतं वृक्षं द्विजो ब्राह्मणः पूर्वं प्रथमसमये रात्रौ निशि विजने जनरहिते समेत्य गत्वा यथाविधि सम्पूज्य समभ्यर्च्य स्पृष्ट्वा च मन्त्रमिमं ब्रूयाद्वदेत्।।१६।।

तमेव मन्त्रं श्लोकद्वयेनाह—

**यानीह वृक्षे भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वः।**
**उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासपर्ययः ॥१७॥**
**पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तमम्।**
**ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥१८॥**

इस वृक्ष पर जितने जन्तु हैं, सबके लिये शुभ हो, आप सबों के लिये मैं नमस्कार करता हूँ, इस बलि को ग्रहण करके आप सब दूसरी जगह वास करें। हे प्रधान वृक्ष! आपके लिये शुभ हो, इन्द्रध्वज के लिये राजा आपको पाने की इच्छा कर रहा है। अतः मेरी की हुई पूजा ग्रहण करें।।१७-१८।।

इहास्मिन् वृक्षे तरौ यानि भूतानि च सन्ति तेभ्यो भूतेभ्यः स्वस्ति श्रेयोऽस्तु। वो युष्माकं नमस्कारो भवतु। इममपहारमिमं बलिं गृहीत्वा वासपर्ययः क्रियतामन्यत्र वासं गृहं कल्पयित्विति।

ते तव नगोत्तम वृक्षप्रधान स्वस्त्यस्तु। पार्थिवो राजा देवराजस्येन्द्रस्य ध्वजार्थं वरयते। तस्मादियं मत्प्रयुक्ता पूजा प्रतिगृह्यताम्।।१७-१८।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**छिन्द्यात् प्रभातसमये वृक्षमुदक् प्राङ्मुखोऽपि वा भूत्वा।**
**परशोर्जर्जरशब्दो नेष्टः स्निग्धो घनश्च हितः ॥१९॥**

बाद में सूर्योदय के समय उत्तर या पूर्व-मुख होकर वृक्ष को काटे। परशु ( फरसा = कुल्हार ) का जर्जर शब्द निकलना शुभ नहीं है, किन्तु मधुर और घने शब्द का निकलना शुभ है।।१९।।

ततः प्रभातसमये अरुणोदयकाले वृक्षं तरुं छिन्द्यात्। कीदृशो भूत्वा? उदक् प्राङ्-मुखोऽपि वा भूत्वा, उत्तराभिमुखः पूर्वाभिमुखोऽपि वा स्थित्वा। परशोः कुठारस्य जर्जर-शब्दो भिन्नशब्दो नेष्टो न शुभः। स्निग्धो मधुरः, घनः सन्ततश्च हितः प्रशस्तः।।१९।।

अथ पतितस्य शुभाशुभज्ञानमाह—

**नृपजयदमविध्वस्तं पतनमनाकुञ्चितं च पूर्वोदक्।**
**अविलग्नं चान्यतरौ विपरीतमतस्त्यजेत्पतितम् ॥२०॥**

अखण्डित या अवक्र होकर और पूर्व या उत्तर दिशा में वृक्ष का गिरना राजा की विजय करने वाला होता है। इनसे भिन्न लक्षणयुत होकर ( खण्डित या वक्र होकर आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम या वायव्य कोण में ) वृक्ष का गिरना अशुभ है।।२०।।

वृक्षस्य पतनमविध्वस्तं ध्वंसरहितं नृपजयदम्। अभग्नस्य पतनमित्यर्थः। अनाकुञ्चितं पतनं नृपजयदमेव। तथा पूर्वोदक् पूर्वस्यामुत्तरस्यां दिशि यदि पतितं तदापि नृपजयदम्। तथाप्यन्यतरावन्यस्मिन् वृक्षे अविलग्नं पतनं नृपजयदम्। अतोऽस्माद्विपरीतं त्यजेत् परिहरेदित्यर्थः। एतदुक्तं भवति—वृक्षं कुञ्चितं कुब्जं कृत्वा यत् पतितं तथाग्नेयीदक्षिण-नैर्ऋत्यपश्चिमवायव्यासु पतितमन्यस्मिंस्तरौ च लग्नं तत्र शुभदमित्यर्थः।।२०।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**छित्त्वाग्रे चतुरङ्गुलमष्टौ मूले जले क्षिपेद्यष्टिम्।**
**उद्धृत्य पुरद्वारं शकटेन नयेन्मनुष्यैर्वा ॥२१॥**

इस वृक्ष के आगे से चार अङ्गुल और मूल से आठ अङ्गुल काटकर यष्टि ( मध्यभाग ) को जल में डाल देना चाहिये। बाद में जल से निकाल कर गाड़ी या मनुष्यों के द्वारा पुरद्वार पर उसको लाना चाहिये।।२१।।

ततस्तस्य वृक्षस्याग्रे चतुरङ्गुलं छित्वा तां यष्टिं जले उदकमध्ये क्षिपेत्। ततो जलादुद्धृत्य शकटेन मनुष्यैर्नरैर्वा पुरद्वारं नगरगोपुरं नयेत्।।२१।।

अथ तस्य नीयमानस्य लक्षणमाह—

**अरभङ्गे बलभेदो नेम्या नाशो बलस्य विज्ञेयः।**
**अर्थक्षयोऽक्षभङ्गे तथाणिभङ्गे च वर्द्धकिनः ॥२२॥**

लकड़ी लाने के समय गाड़ी का आरा टूट जाय तो सेनाओं में भेद, नेमि ( हाल ) टूट जाय तो सेनाओं का नाश, अक्ष ( धुरा ) टूट जाय तो धन का नाश और अणि ( कुलावा ) टूट जाय तो बढ़ई का नाश होता है।।२२।।

अरं चक्रस्य मध्यवर्ति काष्ठम्। तस्य भङ्गे बलस्य सैन्यस्य भेदो भवति। नेमिश्चक्रपर्यन्तम्। तस्या भङ्गे बलस्य नाशः क्षयो भवति। अक्षश्चक्रविवरवर्ति काष्ठम्। तस्य भङ्गेऽर्थक्षयो द्रव्यविनाशः। अणिरक्षाग्रे कीलकः। तस्य भङ्गे वर्द्धकिनस्तक्ष्णः क्षयः।।२२।।

अथ कस्मिन् काले प्रवेशयेदित्याह श्लोकद्वयेन—

**भाद्रपदशुक्लपक्षस्याष्टम्यां नागरैर्वृतो राजा।**
**दैवज्ञसचिवकञ्चुकिविप्रप्रमुखैः सुवेषधरैः ।।२३।।**
**अहताम्बरसंवीतां यष्टिं पौरन्दरीं पुरं पौरैः।**
**स्रग्गन्धधूपयुक्तां प्रवेशयेच्छङ्खतूर्यरवैः ।।२४।।**

भाद्र शुक्ल अष्टमी के दिन नगर में रहने वाले मनुष्य, ज्यौतिषी, मन्त्री, कञ्चुकी और सुन्दर वेषधारी प्रधान ब्राह्मणों के साथ होकर राजा पुरवासियों के द्वारा नवीन वस्त्र से ढकी हुई, माला, गन्ध और धूपों से युत यष्टि को शङ्ख और तुरही के शब्दों के साथ पुर में प्रवेश कराना चाहिये।।२३-२४।।

भाद्रपदशुक्लाष्टम्यां तिथौ राजा नृपो नागरैर्नगरवासिभिर्जनैर्वृतः परिवृतस्तथा दैवज्ञेन सांवत्सरिकेण। सचिवैर्मन्त्रिभिः। कञ्चुकिभिर्महत्तरकैर्विप्रप्रमुखैर्ब्राह्मणप्रवरैः सुवेषधरैः।

पौरैः स पौरन्दरीमैन्द्रीं यष्टिं प्रवेशयेत् पुरं नगरम्। कीदृशीं यष्टिम्? अहताम्बरसंवीताम्, अहतमक्षतमभिनवमम्बरं वस्त्रं तेन संवीतामावृताम्। तथा स्रग्गन्धधूपयुक्ताम्। स्रग्भिर्मालाभिः, गन्धैः सुगन्धद्रव्यैः, धूपैश्च संयुक्ताम्। तथा शङ्खरवैः शङ्खशब्दैः, तूर्यरवैः सह प्रवेशयेदिति। युगलकम्। तथा च गर्गः—

प्रोष्ठपादे सिताष्टम्यां ज्येष्ठायोगे स्वलङ्कृताम्।
यष्टिं पौरन्दरीं राजा नगरं सम्प्रवेशयेत्।। इति।।२३-२४।।

कीदृशं नगरमित्याह श्लोकद्वयेन—

**रुचिरपताकातोरणवनमालालङ्कृतं प्रहृष्टजनम्।**
**सम्मार्जितार्चितपथं सुवेषगणिकाजनाकीर्णम् ।।२५।।**
**अभ्यर्चितापणगृहं प्रभूतपुण्याहवेदनिर्घोषम्।**
**नटनर्तकगेयज्ञैराकीर्णचतुष्पथं नगरम् ।।२६।।**

मनोहर पताका, तोरण और वनमालाओं से भूषित, हर्षित मनुष्यों से युत, शोधित और सजाये हुये मार्गों से युत, सुन्दर वेष वाली वेश्याओं से व्याप्त, सजी हुई दुकानों से युत, अधिक पुण्याह और वेद के शब्दों से युत, नट, नाचने वाले और गान विद्या जानने

वालों से व्याप्त चतुष्पथ ( चौराहे ) वाला नगर होना चाहिये।।२५-२६।।

कीदृशं नगरम्? रुचिरपताकातोरणवनमालालङ्कृतम्, रुचिराभिः शोभनाभिः पताकाभिर्वैजयन्तीभिः, रुचिरैश्च तोरणैः, तथा वनमालाभिः पत्रलताभिरलङ्कृतम्। प्रहृष्टा हर्षिता जना लोका यत्र तत्। सम्मार्जितार्चितपथम्, सम्मार्जितः शोधितोऽर्चितः पूजितः पन्था यत्र तत्। तथा सुवेषगणिकाजनाकीर्णम्, सुवेषेण शोभनवेषेण गणिकाजनेन वेश्यासमूहेनाकीर्णं व्याप्तम्।

अभ्यर्चितापणगृहम्, अभ्यर्चितानि पूजितानि आपणगृहाणि पण्यविक्रयस्थानानि यत्र। प्रभूतपुण्याहवेदनिर्घोषम्, प्रभूता बहवः पुण्याहानां वेदानां च निर्घोषाः शब्दा यत्र। नटनर्तकगेयज्ञैराकीर्णचतुष्पथम्, नटैर्नर्तकैर्गेयज्ञैराकीर्णं संयुक्तं चतुष्पथं यत्र। चत्वारः पन्थानो यस्य तच्चतुष्पथं नगरम्। युगलकम्।।२५-२६।।

कीदृशीभिः पताकाभिः कार्यमित्याह—

**तत्र पताकाः श्वेता भवन्ति विजयाय रोगदाः पीताः।**
**जयदाश्च चित्ररूपा रक्ताः शस्त्रप्रकोपाय ॥२७॥**

उस नगर में श्वेत वर्ण की पताका विजय के लिये, पीत वर्ण की रोग देने वाली, अनेक वर्ण की विजय कराने के लिये और रक्त वर्ण की पताका शस्त्रप्रकोप के लिये होती है।

तत्र तस्मिन्नगरे पताकाः श्वेताः शुक्लवर्णा विजयाय भवन्ति। पीताः पीतवर्णा रोगदा भवन्ति। चित्ररूपा नानावर्णा जयदा एव। शत्रुविजयं कुर्वन्तीत्यर्थः। रक्ता रक्तवर्णाः पताकाः शस्त्रप्रकोपाय भवन्ति।।२७।।

तस्यां प्रवेशमानायां शुभाशुभमाह—

**यष्टिं प्रवेशयन्तीं निपातयन्तो भयाय नागाद्याः।**
**बालानां तलशब्दे संग्रामः सत्त्वयुद्धे वा ॥२८॥**

नगर में प्रवेश कराती हुई यष्टि को यदि हाथी, घोड़ा आदि कोई जीव गिरा दे तो भय के लिये एवं उस समय बालक तालियाँ बजावें या गायों में परस्पर लड़ाई हो तो युद्ध के लिये होती है।।२८।।

प्रवेशयन्तीं यष्टिं नागाद्याः। नागा हस्तिनः। आदिग्रहणादश्वमहिषगवादयो गृह्यन्ते। एते निपातयन्तो भयाय भवन्ति। तथा बालानां शिशूनाम्। तलशब्देन हस्ततलमुच्यते। तेन करास्फोटेन संग्रामो भवति। सत्त्वानां गवां युद्धे संग्राम एव भवति।।२८।।

ततः किं कुर्यादित्याह श्लोकद्वयेन—

**सन्तक्ष्य पुनस्तक्षा विधिवद्यष्टिं प्ररोपयेद्यन्त्रे।**
**जागरमेकादश्यां नरेश्वरः कारयेच्चास्याम् ॥२९॥**
**सितवस्त्रोष्णीषधरः पुरोहितः शाक्रवैष्णवैर्मन्त्रैः।**
**जुहुयादग्निं सांवत्सरो निमित्तानि गृह्णीयात् ॥३०॥**

फिर बढ़ई विधिपूर्वक यष्टि को छीलकर खराज पर चढ़ावे। राजा आगे आने वाली एकादशी में जागरण करे। श्वेत वस्त्र और पगड़ी बाँधे हुए पुरोहित इन्द्र दैवत और विष्णु दैवत मन्त्रों से अग्नि में हवन करे और सांवत्सर ( ज्यौतिषी ) अग्नि के शुभाशुभ चिह्नों को ग्रहण करे।।२९-३०।।

तां यष्टिं पुनर्भूयस्तक्षा वर्द्धकी सन्तक्ष्य तनूकृत्य विधिवद्विधानेन यन्त्रे प्ररोपयेत्। आसनस्थाने निवेश्य तिर्यक् स्थितां कुत्रचित् सक्तां स्थापयेत्। तथास्थितायामेकादश्यां नरेश्वरो राजा रात्रिजागरं कारयेत्।

तस्य च राज्ञ: पुरोहित आचार्य: शाक्रवैष्णवैरिन्द्रदैवतैर्विष्णुदैवतैश्च मन्त्रैरग्निमनलं जुहुयात्। कीदृश: पुरोहित:? सितवस्त्रोष्णीषधर:, सितानि श्वेतानि वस्त्राणि अम्बराणि, तथोष्णीषं शिर:पट्टविशेषं यो धारयति। सांवत्सरो ज्यौतिषिक:। अग्नेर्निमित्तानि शुभाशुभानि चिह्नानि गृह्णीयात्। युगलकम्।।२९-३०।।

अथ शुभाशुभानि चिह्नान्याह—

**इष्टद्रव्याकार: सुरभि: स्निग्धो घनोऽनलोऽर्चिष्मान्।**
**शुभकृदतोऽन्योऽनिष्टो यात्रायां विस्तरोऽभिहित: ॥३१॥**

अभिलषित द्रव्यों के समान, सुगन्धयुत, निर्मल, घना और लपटदार अग्नि शुभ करने वाली और इससे भिन्न लक्षणयुत अग्नि अशुभ करने वाली होती है। इस सम्बन्ध को लेकर योगयात्रा नामक ग्रन्थ में मैंने विस्तारपूर्वक कहा है।।३१।।

इष्टं द्रव्यं यदभिरुचितं मनसीप्सितमातपत्रादि तदाकारस्तत्सदृश:। सुरभि: सुगन्ध:। स्निग्धोऽरूक्ष:। घन: सन्तत:। अर्चिष्मान् ज्वालावान्, एवंविधोऽनलो वह्नि: शुभकृत् शुभं क्षेमं करोति। अतोऽस्मादन्योऽनिष्टो न शुभ:। एतदेव विपर्ययेण यदभिहितं तदनिष्टम्। यथा—अनिष्टद्रव्याकार:, असुरभि:, अस्निग्ध:, अघन:, ज्वालारहित:, एतद्विपर्ययमशुभमिति। यात्रायां विस्तरोऽभिहित:। योगयात्रायां विस्तर उक्तो मया तदेह न विस्तृत:। विस्तरेण तदा न कथित:। तथा च योगयात्रायाम्—

कृतेऽपि यत्नेऽपि कृश: कृशानुर्धातव्यकाष्ठाविमुखो नतार्चि: ।
वामे कृतावर्तशिखोऽतिधूमो विच्छिन्नसाकम्पविलीनमूर्ति: ।।
सिमिसिमायति चास्य हविर्हुतं सुरधनु: सदृश: कपिलोऽथवा ।
रुधिरपीतकबभ्रुहरिच्छवि: परुषमूर्तिरनिष्टकरोऽनल: ।।
खरकरभकवानरानुरूपो निगडविभीषणशस्त्ररूपभृद्वा ।
शवरुधिरवसास्थिमज्जगन्धो हुतभुगनिष्टफल: स्फुलिङ्गकृच्च ।।
चर्मविपाटनतुल्यनिनादो जर्जरदर्दुररूक्षरवो वा ।
आकुलयंश्च पुरोहितमर्त्यान् धूमलवैर्न शिवाय हुताश: ।।
हारकुन्दकुमुदेन्दुसन्निभ: संहतोऽङ्गसुखदो महोदय: ।
अङ्कुशातपनिवारणाकृतिर्हूयतेऽल्प उपमानहव्यभुक् ।।

उत्थाय स्वयमुज्ज्वलार्चिरनलः स्वाहावसाने हवि-
र्भुङ्क्ते देहसुखप्रदक्षिणगतिः स्निग्धो महान् संहतः।
निर्धूमः सुरभिः स्फुलिङ्गरहितो घातानुलोमो मृदु-
र्मुक्तेन्दीवरकाञ्चनद्युतिधरो यातुर्जयं संयति।।
इष्टद्रव्यघटातपत्रतुरगश्रीवृक्षशैलाकृति-
र्भेर्यब्दोदधिदुन्दुभीतशकटस्निग्धस्वनैः पूजितः।
नेष्टः प्रोक्तविपर्यये हुतवहः स्निग्धो यथाभीष्टदः
सव्येऽङ्गे नृपतेर्दहन्नतिशुभः शेषं च लोकाद्वदेत्।। इति।।३१।।

अथान्यलक्षणमाह—

**स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः**
**स्निग्धः प्रदक्षिणशिखो हुतभुग् नृपस्य।**
**गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहारां**
**धात्रीं समुद्ररशनां वशगां करोति ॥३२॥**

यदि स्वाहा के अवसान ( पूर्णाहुति देने के ) समय स्वयं प्रज्वलित शिखा वाली निर्मल और दक्षिणावर्त्त क्रम से चलती हुई शिखा वाली अग्नि हो तो गङ्गा और यमुना के जलरूपी सुन्दर हार वाली, समुद्ररूपी मेखला ( तगड़ी ) वाली पृथ्वी को राजा अपने वश में करता है, अर्थात् सम्पूर्ण पृथ्वी का राजा होता है।।३२।।

एवंरूपो हुतभुगग्निर्नृपस्य राज्ञः समुद्ररशनां समुद्रमेखलां धात्रीं भूमिं वशगां करोति। कीदृशीं धात्रीम्? गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहाराम्, गङ्गा जाह्नवी, दिवाकरसुता यमुना, तयोर्यज्जलं सलिलं तदेव चारुर्दर्शनीयो हारो यस्यास्ताम्। कीदृशोऽग्निः? स्वाहावसानसमये पूर्णाहुतिदानकाले स्वयमेवोज्ज्वलार्चिः, स्वयमेवोज्ज्वलोऽर्चिर्यस्याग्नेः। स्निग्धो निर्मलः। प्रदक्षिणशिखः, प्रादक्षिण्येन शिखा ज्वाला यस्येत्यर्थः।।३२।।

अन्यदाह—

**चामीकराशोककुरण्टकाब्जवैदूर्यनीलोत्पलसन्निभेऽग्नौ ।**
**न ध्वान्तमन्तर्भवनेऽवकाशं करोति रत्नांशुहतं नृपस्य ॥३३॥**

यदि सुवर्ण, अशोक, कुरण्टक, वैदूर्य मणि या नील कमल के समान कान्ति वाली अग्नि हो तो हवन कराने वाले राजा के भवन में ठहरने के लिये रत्नों की किरणों से नष्ट होकर अन्धकार अवकाश नहीं पाता है।।३३।।

एवंविधेऽग्नौ नृपस्य राज्ञो ध्वान्तमन्धकारम्। अन्तर्भवने गृहमध्ये अवकाशं न करोति। यतो रत्नांशुहतम्, रत्नानामंशवो रत्नांशवस्तैर्हतं नष्टं रत्नांशुहतम्। रत्नांशुहतमित्यनेन रत्नलाभ उक्तः। कीदृशेऽग्नौ? चामीकरं सुवर्णम्, अशोकः पुष्पविशेषः कुरण्टकश्च, अब्जं पद्मम्, वैदूर्यो रत्नविशेषः, नीलोत्पलमिन्दीवरम्, एषां सन्निभे अग्नौ शुभः प्रत्यासन्नो भवति।

अन्यदपि लक्षणमाह—

**येषां रथौघार्णवमेघदन्तिनां समस्वनोऽग्निर्यदि वापि दुन्दुभेः ।**
**तेषां मदान्धेभघटावघट्टिता भवन्ति याने तिमिरोपमा दिशः ॥३४॥**

यदि अग्नि में समुद्र, मेघ, हाथी या नगाड़े के समान शब्द हो तो उस राजा के गमन करने के समय मदमत्त हाथियों से व्याप्त दिशायें अन्धकार की तरह हो जाती हैं अर्थात् उस राजा के पास हाथियों की अधिकता होती है।।३४।।

येषां राज्ञां रथौघो गोरथसमूहः। अर्णवः समुद्रः। मेघोऽम्बुदः। दन्ती हस्ती। एषां समस्वनस्तुल्यशब्दोऽग्निर्यदि। वापि दुन्दुभेः, दुन्दुभिर्वाद्यविशेषः तत्समानो वा। तेषां राज्ञां मदान्धा ये इभा हस्तिनः। तेषां या घटास्ताभिरवघट्टिता रुद्धा दिशो याने गमने तिमिरोपमा अन्धकारसदृश्यो भवन्ति। तिमिरोपमा दिश इत्यनेन हस्तिबाहुल्यमुक्तम्।।३४।।

अन्यदपि वह्निलक्षणमाह—

**ध्वजकुम्भहयेभभूभृतामनुरूपे वशमेति भूभृताम् ।**
**उदयास्तधराधराऽधरा हिमवद्विन्ध्यपयोधरा धरा ॥३५॥**

पताका, घड़ा, घोड़ा या हाथियों के समान अग्नि हो तो उदयाचल और अस्ताचलरूप ओष्ठ, हिमालय और विन्ध्याचलरूप स्तन वाली पृथ्वी उस राजा के वश में हो जाती है।

ध्वजश्चिह्नं पताकादि। कुम्भो घटः। हयोऽश्वः। इभो हस्ती। भूभृत् पर्वतः। एषामनुरूपे सदृशेऽग्नौ भूभृतां राज्ञां धरा भूर्वशमेति। कीदृशी धरा? उदयधराधरः अस्तमयधराधर उदयास्तधराधरौ तावेवाधरावोष्ठौ यस्याः। हिमवद्विन्ध्यौ पयोधरौ स्तनौ यस्याः।।३५।।

अथान्यदपि वह्निलक्षणमाह—

**द्विरदमदमहीसरोजलाजाघृतमधुना च हुताशने सगन्धे ।**
**प्रणतनृपशिरोमणिप्रभाभिर्भवति पुरश्छुरितेव भूर्नृपस्य ॥३६॥**

यदि अग्नि में हाथियों के मदजल, लाजा ( खीलें = लाई = लावा ), घी या शहद के समान सुगन्धि हो तो हवन कराने वाले राजा को प्रणाम करते हुये राजाओं के मुकुटों में जड़ी हुई मणियों की कान्ति से आगे की भूमि रँगी हुई-सी दिखाई देती है।।३६।।

द्विरदो हस्ती तस्य मदो मधुजलम्। मही भूः। सरोजं पद्मम्। लाजाः प्रसिद्धाः। घृतमाज्यम्। मधु माक्षिकम्। एषां सगन्धे सदृशगन्धे। हुताशने अग्नौ। नृपस्य राज्ञः। भूर्भूमिः। पुरोऽग्रतः। प्रणतानां प्रह्वाणां नृपाणां राज्ञां शिरोमणयश्चूडारत्नानि। तेषां याः प्रभा दीप्तयस्ताभिः छुरिता रञ्जितेव भाति।।३६।।

अत्र यदुक्तमग्निलक्षणं तदन्यत्रापि चिन्त्यमित्याह—

**उक्तं यदुत्तिष्ठति शक्रकेतौ शुभाशुभं सप्तमरीचिरूपैः ।**
**तज्जन्मयज्ञग्रहशान्तियात्राविवाहकालेष्वपि चिन्तनीयम् ॥३७॥**

इन्द्रध्वज उठाने के समय अग्नि के स्वरूप द्वारा जो शुभाशुभ फल कहे गये हैं, उनका जन्मसमय, यज्ञकाल, ग्रहशान्ति, यात्रा और विवाहकाल में भी विचार करना चाहिये।

शक्रकेताविन्द्रध्वजे उत्तिष्ठति सति यच्छुभाशुभं सदसत्फलं सप्तमरीचिरूपैः, सप्तमरीचिरग्निस्तस्य रूपैर्यदुक्तं यत्कथितं तत्सर्वं जन्मसमये। यज्ञे यज्ञकाले, ग्रहशान्तौ, यात्रायाम्, विवाहकाले च। एवमादिष्वपि चिन्तनीयम्।।३७।।

तत्किं कुर्यादित्याह—

**गुडपूपपायसाद्यैर्विप्रानभ्यर्च्य दक्षिणाभिश्च।**
**श्रवणेन द्वादश्यामुत्थाप्योऽन्यत्र वा श्रवणात्॥३८॥**

गुड़, पूप ( पिट्ठी ), पायस और दक्षिणाओं से ब्राह्मणों की पूजा करके श्रवण नक्षत्रयुत द्वादशी तिथि में या श्रवण नक्षत्रयुत अन्य किसी तिथि में ध्वजा को उठाना चाहिये।।३८।।

गुड इक्षुविकारः। पूपो मुद्गकृतो मिश्रितो वा तण्डुलेन सह। पायसं प्रसिद्धम्। आदिग्रहणादोदनमोदकलोपिकाश्च गृह्यन्ते। एतैर्विप्रान् ब्राह्मणानभ्यर्च्य सम्पूज्य। न केवलं गुडपूपपायसाद्यैः, दक्षिणाभिश्च पूजयित्वा द्वादश्यां श्रवणेन नक्षत्रेणोत्थाप्य उत्थापनीयः। श्रवणादन्यत्र वा द्वादश्यामुत्थापनीयः। एतदुक्तं भवति—द्वादश्यां श्रवणो भवतु मा वा सर्वत्रोत्थापनं कार्यम्। तथा च गर्गः—

तत्र श्रवणयोगेन ध्वजोत्थापनं प्रशस्यते।
द्वादश्यां विजये वाश्वमुहूर्त्ते वा दिनेऽथवा।। इति।।३८।।

अधुना शक्रकुमारीणां लक्षणं श्लोकद्वयेनाह—

**शक्रकुमार्यः कार्याः प्राह मनुः सप्त पञ्च वा तज्ज्ञैः।**
**नन्दोपनन्दसंज्ञे पादोनार्द्धे ध्वजोच्छ्रायात्॥३९॥**
**षोडशभागाभ्यधिके जयविजये द्वे वसुन्धरे चान्ये।**
**अधिका शक्रजनित्री मध्येऽष्टांशेन चैतासाम्॥४०॥**

ध्वजा के ऊपर पाँच या सात शक्र कुमारी बनाना चाहिये—ऐसा मनु ने कहा है। ध्वजा की ऊँचाई से चौथाई कम नन्दा, ध्वजा के आधा तुल्य उपनन्दा, ध्वजा से सोलहवाँ भाग अधिक जय और विजय, जय और विजय से सोलहवाँ भाग अधिक दो वसुन्धरा तथा सबके बीच में वसुन्धरा से आठवाँ भाग अधिक शक्र जनित्री बनानी चाहिये।।३९-४०।।

मनुरेवं प्राह, एवमुक्तवान्। यथा तज्ज्ञैः शक्रध्वजलक्षणज्ञैः सप्त पञ्च वा शक्रकुमार्यः कार्याः। तथा च गर्गः—

दृढकाष्ठकृताः पञ्च सप्त वा लक्षणान्विताः।
इन्द्रध्वजस्य शोभार्थं कुमारीः कारयेद् द्विजः।।

**नन्दोपनन्दसंज्ञे इति।** नन्दोपनन्दासंज्ञे द्वे ध्वजोच्छ्रायाद्यथासङ्ख्यं पादोनार्द्धे कार्ये।

नन्दा ध्वजप्रमाणचतुर्भागोना कार्या। उपनन्दा ध्वजार्द्धप्रमाणेनेति।

अत्राचार्येणेन्द्रध्वजप्रमाणं सामान्येनोक्तम्। गर्गादिभिर्विशेषेणोक्तम्। तथा च गर्गः—

अष्टाविंशत्करा यष्टिरष्टहस्ता ततोऽपरा।
विष्कम्भश्चाङ्गुलैस्तस्याः षड्भिर्द्विगुणितैः स्मृतः।।
समग्रमनुलोमं वा तक्षं प्राक् शिखयान्वितम्।
कुर्यादिन्द्रध्वजं शुभ्रं सारदारुमयं शुभम्।।

**षोडशभागेति**। नन्दोपनन्दसंज्ञाभ्यां यथाक्रमं जयविजये द्वे षोडशभागाधिके कार्ये। जयविजयाभ्यां सकाशात् षोडशभागाभ्यधिके अन्ये वसुन्धरासंज्ञे ध्वजे कार्ये। एतासां सर्वासां मध्ये शक्रजनित्री इन्द्रमाताऽष्टांशेनाष्टांशाधिका वसुन्धरातः कार्येति। युगलकम्।।३९-४०।।

अथान्यदपि शक्रकेतुलक्षणमाह—

**प्रीतैः कृतानि विबुधैर्यानि पुरा भूषणानि सुरकेतोः।**
**तानि क्रमेण दद्यात् पिटकानि विचित्ररूपाणि ।।४१।।**

पूर्व समय में हर्षित देवताओं ने इन्द्रध्वज को जो आभूषण दिये थे, क्रमानुसार उन विचित्र रूपपिटकों ( आभूषणों ) से इस ध्वज को भूषित करना चाहिये।।४१।।

पुरा पूर्वं सुरकेतोरिन्द्रध्वजस्य प्रीतैः प्रीतिमद्भिर्विबुधैर्देवैर्यानि भूषणानि अलङ्करणानि कृतानि तानि च क्रमेण परिपाट्या विचित्ररूपाणि पिटकानि दद्यात्।।४१।।

तानि सर्वाण्याहाष्टभिः श्लोकैः—

**रक्ताशोकनिकाशं चतुरस्रं विश्वकर्मणा प्रथमम्।**
**रशना स्वयम्भुवा शङ्करेण चानेकवर्णगा दत्ता ।।४२।।**

**अष्टाश्रि नीलरक्तं तृतीयमिन्द्रेण भूषणं दत्तम्।**
**असितं यमश्चतुर्थं मसूरकं कान्तिमदयच्छत् ।।४३।।**

**मञ्जिष्ठाभं वरुणः षडश्रि तत्पञ्चमं जलोर्मिनिभम्।**
**मायूरं केयूरं षष्ठं वायुर्जलदनीलम् ।।४४।।**

**स्कन्दः स्वं केयूरं सप्तममददद् ध्वजाय बहुचित्रम्।**
**अष्टममनलज्वालासङ्काशं हव्यभुग्वृत्तम् ।।४५।।**

**वैदूर्यसदृशमिन्द्रो नवमं ग्रैवेयकं ददावन्यत्।**
**रथचक्राभं दशमं सूर्यस्त्वष्टा प्रभायुक्तम् ।।४६।।**

**एकादशमुद्वंशं विश्वेदेवाः सरोजसङ्काशम्।**
**द्वादशमपि च निवेशमृषयो नीलोत्पलाभासम् ।।४७।।**

किञ्चिदध ऊर्ध्वनिर्मितमुपरि विशालं त्रयोदशं केतोः ।
शिरसि वृहस्पतिशुक्रौ लाक्षारससन्निभं ददतुः ॥४८॥

यद्यद्येन विभूषणममरेण विनिर्मितं ध्वजस्यार्थे ।
तत्तत्तद्दैवत्यं विज्ञातव्यं विपश्चिद्भिः ॥४९॥

विश्वकर्मा ने लाल अशोक के समान कान्ति वाला चौकोर प्रथम आभूषण इन्द्रध्वज को दिया। ब्रह्मा और शंकर ने अनेक रंग वाली दूसरी रशना ( तगड़ ) दी। इन्द्र ने नील और लाल वर्णयुत आठ कोण वाला तृतीय आभूषण दिया। यमराज ने काला, कान्तियुत मसूरक नामक चौथा आभूषण दिया। वरुण ने मञ्जीठ के समान कान्ति वाला, जलावर्त्त की तरह और छः कोण वाला पाँचवाँ आभूषण दिया। वायु ने मयूर के पंख से व्याप्त और मेघ के समान नील वर्ण वाला छठा आभूषण केयूर दिया। कार्त्तिकेय ने अपना अनेक वर्ण का केयूर नामक सातवाँ आभूषण दिया। अग्नि ने अग्निशिखा की तरह कान्ति वाला और गोलाकार आठवाँ आभूषण दिया। इन्द्र ने वैदूर्यमणि के समान कान्ति वाला नवम कण्ठ का भूषण दिया। त्वष्टा नामक सूर्य ने रथ के पहिये की तरह और कान्तियुत दशवाँ भूषण दिया। विश्वदेव ने कमल के समान उद्वंशसंज्ञक ग्यारहवाँ भूषण दिया। मुनियों ने नीलकमल के समान कान्ति वाला निवेश नामक बारहवाँ भूषण दिया। वृहस्पति और शुक्र ने कुछ नीचे-ऊपर बना हुआ, आगे के भाग में विस्तृत और लाक्षारस के समान लोहित वर्ण का तेरहवाँ भूषण शिर में दिया। जिस-जिस देवता ने इन्द्रध्वज के लिये जो-जो भूषण बनाया, वही उस भूषण के देवता हैं, यह पण्डितों को जानना चाहिये।।४२-४९।।

रक्ताशोकनिकाशं रक्ताशोकसदृशप्रभं चतुरस्रं चतस्रोऽश्रयो यस्य तत् तथाभूतं विश्वकर्मणा प्रथमं विभूषणमिन्द्रध्वजाय दत्तम्। स्वयम्भुवा ब्रह्मणा। शङ्करेण महेश्वरेण अनेकवर्णगा नानावर्णा रशना मेखला दत्ता द्वितीया।

**अष्टाश्रीति** । इन्द्रेण शक्रेण तृतीयं भूषणमलङ्करणम्। अष्टाश्रि, अष्टावश्रयो यस्य अष्टकोणमित्यर्थः। नीलरक्तं नीलवर्णं रक्तवर्णं च दत्तम्। चतुर्थमसितं कृष्णवर्णं मसूरकं कान्तिमत् कान्तियुक्तं यमः प्रेताधिपोऽयच्छत् अदात्।

**मञ्जिष्ठाभमिति** । वरुणोऽपाम्पतिर्मञ्जिष्ठाभं मञ्जिष्ठवर्णं षडश्रि षडश्रयो यस्य षट्कोणमित्यर्थः। जलोर्मिनिभं उदकावर्तसदृशमदात् तत्पञ्चमम्। षष्ठं मायूरं मयूरपक्षचितं केयूरं बाहुवर्तकं जलदनीलं मेघवत् श्यामं वायुरदात्।

स्कन्दः कुमारः स्वमात्मीयं केयूरं बाहुवर्तकं बहुचित्रं नानावर्णं सप्तमं ध्वजायादात्। अनलज्वालासङ्काशं वह्निशिखासमकान्ति वृत्तं परिवर्तुलं हव्यभुगग्निरष्टममदात्।

**वैदूर्येति** । अन्यदपरं ग्रैवेयकं ग्रीवाभूषणम्। वैदूर्यसदृशम्। वैदूर्यमणितुल्यप्रभं नवममिन्द्रो ददौ। सूर्य आदित्यो रथचक्राभं रथचक्रसदृशं त्वष्टा नामार्कः प्रभायुक्तं कान्तिसहितं दशमं ददौ।

**एकादशेति**। विश्वदेवः सरोजसङ्काशं पद्मसदृशमुद्वंशसंज्ञमेकादशं ददौ। ऋषयो मुनयो निवेशं नाम नीलोत्पलाभासमिन्दीवरसदृशकान्ति द्वादशं ददुः।

**किञ्चिदिति**। किञ्चिदध ऊर्ध्वं निर्मितम्। ईषदधोभागे रचितम्। ईषच्चोर्ध्वभागे रचितमुपर्यग्रतो विशालं विस्तीर्णं लाक्षारससदृशं लोहितकान्ति त्रयोदशं केतोरिन्द्रध्वजस्य शिरसि मूर्ध्नि बृहस्पतिशुक्रौ गुरुभार्गवौ ददतुः।

**यद्यद्येनेति**। ध्वजस्येन्द्रध्वजस्यार्थे येन येन देवेन यद्यद्विभूषणमलङ्करणं विनिर्मितं रचितं तत्तत्तस्माद्दैवत्यम्। स एव देवता अस्येति विपश्चिद्भिः शास्त्रज्ञैर्विज्ञातव्यम्। कुलकम्।।४२-४९।।

अधुना पिटकस्य परिमाणमाह—

**ध्वजपरिमाणत्र्यंशः परिधिः प्रथमस्य भवति पिटकस्य।**
**परतः प्रथमात् प्रथमादष्टांशाष्टांशहीनानि ॥५०॥**

ध्वजा के तृतीयांश प्रथम पिटक की परिधि, द्वितीय आदि बारह पिटक अपने से पूर्व पिटक से अष्टमांश कम करना चाहिये। जैसे—अष्टमांशोन—प्रथम-द्वितीय, अष्टमांशोन—द्वितीय-तृतीय, अष्टमांशोन—तृतीय-चतुर्थ, अष्टमांशोन—चतुर्थ-पञ्चम, अष्टमांशोन—पञ्चम-षष्ठ, अष्टमांशोन—षष्ठ-सप्तम, अष्टमांशोन—सप्तम-अष्टम, अष्टमांशोन—अष्टम-नवम, अष्टमांशोन—नवम-दशम, अष्टमांशोन—दशम-एकादश, अष्टमांशोन—एकादश-द्वादश और अष्टमांशोन—द्वादश-त्रयोदश पिटक बनाना चाहिये।।५०।।

ध्वजस्येन्द्रध्वजस्य यत्परिमाणमुक्तं तस्माद्यस्तृतीयोंऽशस्तृतीयो भागस्तावत्सूक्ष्मं प्रथमस्य पिटकस्य परिधिर्भवति। ततः प्रथमात् पिटकात्परतोऽन्यानि यानि द्वादशपिटकानि तानि सर्वाण्यष्टांशहीनानि कार्याणि। एतदुक्तं भवति—प्रथमात् पिटकाद् द्वितीयस्याष्टांशहीनः परिधिः कार्यः। द्वितीयातृतीयस्याष्टांशोन इत्यनेन क्रमेण यावत्त्रयोदशं पिटकम्।।५०।।

कस्मिन् दिने पिटकैः पूरणं कार्यमित्याह—

**कुर्यादहनि चतुर्थे पूरणमिन्द्रध्वजस्य शास्त्रज्ञः।**
**मनुना चागमगीतान् मन्त्रानेतान् पठेन्नियतः ॥५१॥**

शास्त्रज्ञ ( इन्द्रध्वज-लक्षण को जानने वाले ) चौथे ( पूर्णिमा के ) दिन पिटकों से इन्द्रध्वज को भूषित करें और नियत होकर मनु राजा द्वारा आगम से प्रतिपादित वक्ष्यमाण मन्त्रों को पढ़ें।।५१।।

शास्त्रज्ञ इन्द्रध्वजलक्षणवित् चतुर्थेऽहनि पञ्चदश्यामिन्द्रध्वजस्य पिटकैः पूरणं भरणं कुर्यात्। कीदृशः? नियतः प्रह्वः। एतान् मन्त्रान् वक्ष्यमाणान् पठेत् कीर्तयेत्। कीदृशान्? मनुना नृपेण चागमगीतान्, आगमादुक्तान्।।५१।।

तानाह श्लोकचतुष्टयेन—

**हरार्कवैवस्वतशक्रसोमैर्धनेशवैश्वानरपाशभृद्भिः ।**
**महर्षिसंघैः सदिगप्सरोभिः शुक्राङ्गिरःस्कन्दमरुद्गणैश्च ॥५२॥**

**यथा त्वमूर्जस्करणैकरूपैः समर्चितस्त्वाभरणैरुदारैः ।**
**तथेह तान्याभरणानि यागे शुभानि सम्प्रीतमना गृहाण ॥५३॥**

**अजोऽव्ययः शाश्वत एकरूपो विष्णुर्वराहः पुरुषः पुराणः ।**
**त्वमन्तकः सर्वहरः कृशानुः सहस्रशीर्षः शतमन्युरीड्यः ॥५४॥**

**कविं सप्तजिह्वं त्रातारमिन्द्रं स्ववितारं सुरेशम् ।**
**ह्वयामि शक्रं वृत्रहणं सुषेणमस्माकं वीरा उत्तरा भवन्तु ॥५५॥**

महादेव, सूर्य, यम, इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, अग्नि, वरुण, महर्षिगण, सब दिशायें, अप्सरायें, शुक्र, बृहस्पति, कार्तिकेय और वायुओं के समुदायों के द्वारा जिस तरह प्रकाशमान, अनेक रूप वाले, श्रेष्ठ आभूषणों से पूजित हुये हैं, हे देव! उसी तरह इस यज्ञ में प्रसन्न मन होकर उन सब आभूषणों को ग्रहण करें। अज, अविनाशी, सर्वदा रहने वाले, एक रूप, व्यापक, वराह रूप, प्रधान पुरुष, चिरन्तन, यम स्वरूप, सबका संहार करने वाले, अग्नि, सहस्र शिर वाले, इन्द्र और स्तुति के योग्य तुम हो। विद्वान्, अग्नि, पालन करने वाले, इन्द्र, अच्छी तरह रक्षा करने वाले देवताओं के स्वामी, शक्र, वृत्रासुर को मारने वाले और सुषेण ( सुन्दर सेनाओं से युत ) तुमको मैं बुला रहा हूँ। हमारी वीर सेनायें संग्राम में विजयी हों।।५२-५५।।

हरो महादेवः। अर्क आदित्यः। वैवस्वतो यमः। शक्र इन्द्रः। सोमश्चन्द्रः। तथा धनेशो वैश्रवणः। वैश्वानरोऽग्निः। पाशभृद्वरुणः। एतैः सुरैर्महर्षिसङ्घैर्महर्षीणां वृन्दैरेतैः किम्भूतैः। सदिगप्सरोभिर्दिग्भिराशाभिः अप्सरोभिः सहितैः। तथा शुक्रो भार्गवः। अङ्गिरा बृहस्पतिः। स्कन्दः कुमारः। मरुद्गणो मरुतां सङ्घः। एतैः सर्वैस्त्वम्।

यथा येन प्रकारेण उदारैः श्रेष्ठैराभरणैः। ऊर्जस्करणैकरूपैः समर्चितः पूजितः। तथा तेनैव प्रकारेणेहास्मिन् यागे शुभानि तान्येवाभरणानि सम्प्रीतमनास्तुष्टचित्तो गृहाण।

**अजोऽव्यय इति**। त्वमजो नाजायत इति अजः। अव्ययो न व्ययं याति। अक्षय इत्यर्थः। शाश्वतः सार्वदिकः। एकरूपो बहुरूपरहितः। विष्णुर्व्यापकः। वराहो वराहरूपः। पुरुषः प्रधानाख्यः। पुराणश्चिरन्तनः। एवंविधस्त्वम्। तथा अन्तको यमः। सर्वहरः सर्व-संहारकः। कृशानुरग्निः। सहस्रशीर्षः सहस्रवक्त्रः। शतमन्युरिन्द्रः। ईड्यः स्तुत्यः।

कविं विद्वांसम्। सप्तजिह्वमग्निम्। त्रातारं पालयितारम्। इन्द्रं परमैश्वर्ययुक्तम्। स्ववितारं सुष्ठुरक्षितारम्। सुरेशं देवप्रभुम्। ह्वयामि आह्वयामि। शक्रमिन्द्रं वृत्रहणं वृत्रस्य हन्तारम्। सुषेणं शोभना सेना यस्य। तमस्माकं नः। वीरा बलिनः। उत्तरा भवन्तु। जयिनो भवन्त्वित्यर्थः। कलापम्।।५२-५५।।

कस्मिन् काले एतान्मन्त्रान् पठेदित्याह—

**प्रपूरणे चोच्छ्रयणे प्रवेशे स्नाने तथा माल्यविधौ विसर्गे।**
**पठेदिमान्नृपतिः सोपवासो मन्त्रान् शुभान् पुरुहूतस्य केतोः ॥५६॥**

इन्द्रध्वज को पिटकों से भूषित करने के समय, उठाने के समय, नगर में प्रवेश कराने के समय, स्नान कराने के समय, पुष्पमाला पहनाने के समय और विसर्जन के समय व्रती होकर राजा पूर्वोक्त मन्त्रों को पढ़े।।५६।।

प्रपूरणे पिटकाभरणे। उच्छ्रयणे उत्थापने। प्रवेशे नगरप्रवेशे। स्नाने स्नानकाले। तथा माल्यविधौ पुष्पप्रदानकाले। विसर्गे विसर्जने। एतेषु कार्येषु नृपती राजा सोपवास उपोषितः। पुरुहूतस्य केतोरिन्द्रध्वजस्येमानुक्तान् शुभान् मन्त्रान् पठेत् कीर्तयेत्।।५६।।

कीदृशमिन्द्रध्वजमुत्थापयेदित्याह श्लोकद्वयेन—

**छत्रध्वजादर्शफलार्द्धचन्द्रैर्विचित्रमालाकदलीक्षुदण्डैः।**
**सव्यालसिंहैः पिटकैर्गवाक्षैरलङ्कृतं दिक्षु च लोकपालैः ॥५७॥**
**अच्छिन्नरज्जुं दृढकाष्ठमातृकं सुश्लिष्टयन्त्रार्गलपादतोरणम्।**
**उत्थापयेल्लक्ष्म सहस्रचक्षुषः सारद्रुमाभग्नकुमारिकान्वितम् ॥५८॥**

छत्र, पतका, दर्पण, फल अर्द्धचन्द्र, अनेक प्रकार की मालायें, केले का वक्ष, ईख और दिक्पालों ( इन्द्र, यम, नैर्ऋत, वरुण, वायु, कुबेर और महादेव ) से युत— अखण्डित आठ रस्सियों से बँधा हुआ, मजबूत लकड़ी का बना हुआ, दो मातृका वाला, दृढ़ बँधा हुआ, यन्त्रार्गल वाला और सारयुत वृक्षों से बनी हुई कुमारिकाओं से युत इन्द्र के लक्ष्म ( ध्वज ) को उठावे।।५७-५८।।

एवंविधं सहस्रचक्षुषो दशशतनयनस्येन्द्रस्य लक्ष्म ध्वजमुत्थापयेत्। कीदृशं छत्रमातपत्रम्। ध्वजः पताका। आदर्शो दर्पणम्। फलं लाङ्गलम्। अर्द्धचन्द्रः खण्डेन्दुः। विचित्रमाला नानाविधाः स्रजः। तथा कदली वृक्षविशेषः। इक्षुदण्डः। एतैः सह। तथा दिक्ष्वष्टासु लोकपालैरिन्द्राग्नियमनैर्ऋतवरुणवायुकुवेरेशानैरलंकृतं संयुक्तम्।

तथा अच्छिन्नरज्जुम्, अच्छिन्ना रज्जवो यस्य। इन्द्रध्वजबन्धनार्थमष्टासु दिक्षु अष्टौ रज्जवः कार्याः। तथा च गर्गः—

यथादिशं च रज्ज्वष्टौ मौञ्जीस्रग्दामसंहिताः।
निग्रहार्थं ध्वजे कार्या निबद्धाश्चेन्द्रमण्डले।।

दृढकाष्ठमातृकम्, दृढकाष्ठा मातृका यस्य। इन्द्रध्वजनिष्पीडनार्थं पार्श्वद्वये मातृकाद्वितयं कार्यम्। सुश्लिष्टयन्त्रार्गलपादतोरणम्, सुश्लिष्टं यन्त्रार्गलं पादमूले तोरणं यस्य। अयमर्थः— पादमूलध्वजस्य तोरणं कार्यं तत्र या मातृकाः पार्श्वस्थितानि निरन्तराणि काष्ठानि तासां मातृकाणां तिर्यक्कृत्वा यानि काष्ठानि निक्षिप्यन्ते तान्यर्गलाग्रहणेनोच्यन्ते। ता अर्गलाः

सुश्लिष्टा: सुयोजिता यत्र। तथा कुमारिका: शक्रकुमार्य:। सारद्रुमोऽन्त:सारो वृक्ष:। तस्माद्या अभग्ना: कुमारिकास्ताभिरन्वितम्। एतदुक्तं भवति—यास्ता: शक्रकुमार्य: कथितास्ता: सारवृक्षै: कार्या अभग्नाश्चेति। युगलकम्।।५८।।

कथं केतुमुत्थापयेदित्याह—

**अविरतजनरावं मङ्गलाशी:प्रमाणै:**
**पटुपटहमृदङ्गै: शङ्खभेर्यादिभिश्च।**
**श्रुतिविहितवचोभि: पापठद्भिश्च विप्रै-**
**रशुभविहतशब्दं केतुमुत्थापयेच्च ।।५९।।**

मंगल आशीर्वाद और प्रणामों के द्वारा लगातार हुये मनुष्य के शब्दों से युत, ढोल, मृदङ्ग, शङ्ख और भेरी के शब्दों से युत, वेदविहित वाक्यों को बार-बार पढ़ते हुये ब्राह्मणों से युत तथा मङ्गल शब्दों से युत ध्वज को राजा उठावे।।५९।।

राजा केतुमिन्द्रध्वजमेवमुत्थापयेत्। कीदृशम्? अविरतजनरावम्, मङ्गलै: शब्दै:, आशीर्भि: प्रणामैर्नमस्कारैरेतैरविरत: अविच्छिन्नो जनानां पुरुषाणां राव: शब्दो यस्य। तथा पटवश्चतुरा: शब्दयुक्ता ये पटहास्तथा मृदङ्गा वादित्रविशेषास्तै: सह। तथा शङ्ख-भेर्यादिभि:, शङ्खैर्भेरीभिर्ढक्काभि:। आदिग्रहणाद् दुन्दुभिकरटवीणावंशा गृह्यन्ते। एतैरपि सह। तथा विप्रैर्ब्राह्मणै:। पापठद्भि:। अत्यर्थं पुन: पुनर्वा पठद्भि:। कीदृशै:? श्रुतिविहित-वचोभि:, श्रुतिर्वेदस्तद्विहितानि वचांसि येषां तै:। अशुभा अनिष्टा विहता विशेषेण नष्टा: शब्दा यस्य तथाभूतं केतुम्। अथवा पर: पाठो यथा। सुशुभसहितशब्दम्, सुष्ठु शुभ-सहित: शब्दो यत्र मङ्गलपाठे तत्केतुमुत्थापयेदिति।।५९।।

कीदृशो राजा केतुमुत्थापयेदित्याह—

**फलदधिघृतलाजाक्षौद्रपुष्पाग्रहस्तै:**
**प्रणिपतितशिरोभिस्तुष्टवद्भिश्च पौरै:।**
**वृतमनिमिषभर्तु: केतुमीश: प्रजानाम-**
**रिनगरनताग्रं कारयेद् द्विड्बधाय ।।६०।।**

फल, दही, घी, लाजा ( लाई = खील = लावा ), शहद और फूल हाथ में लिये, नत मस्तक वाले तथा मङ्गल शब्द बोलते हुये पुरवासियों के साथ प्रजाओं का स्वामी राजा अनिमिषों ( देवताओं ) के भर्ता ( स्वामी ) इन्द्र के ध्वज को शत्रुवध के लिये शत्रु के नगर की तरफ झुकावे।।६०।।

प्रजानामीशो राजा। अनिमिषभर्तु: केतुम्, अनिमिषा देवास्तेषां भर्तु: प्रभोरिन्द्रस्य केतुं ध्वजं द्विषां शत्रूणां बधाय। अरिनगरनताग्रं कारयेत्, अरिनगरे शत्रुपुरे नतमग्रं प्रान्तं यस्य। कीदृशं ध्वजम्? एवंविधै: पौरै: पुरजनैर्वृतं परिवृतम्। कीदृशै:? फलानि श्रीफल-प्रभृतीनि। दधि क्षीरविकार:। घृतमाज्यम्। लाजा प्रसिद्धा। क्षौद्रं माक्षिकम्। पुष्पाणि

कुसुमानि। एतान्यग्रहस्ते दक्षिणपाणौ येषां तैः। तथा प्रणिपतितं शिरो मूर्धा येषां तैः। तुष्टवद्भिः। अत्यर्थं स्तुवद्भिः। नागरैः शुभशब्दं वाच्यमानैरिति।।६०।।

कीदृशं शोभनमुत्थानमित्याह—

**नातिद्रुतं न च विलम्बितमप्रकम्प-**
**मध्वस्तमाल्यपिटकादिविभूषणञ्च ।**
**उत्थानमिष्टमशुभं यदतोऽन्यथा स्या-**
**त्तच्छान्तिभिर्नरपतेः शमयेत् पुरोधाः ।।६१।।**

अनतिशीघ्र, अविलम्ब, कम्पनरहित, अनष्ट माला और पिटक आदि भूषण वाले ध्वज का उठना शुभ है। इनसे भिन्न लक्षणयुत ध्वज का उठना अशुभ है। राजपुरोहित को शान्ति के द्वारा विघ्नों को दूर करना चाहिये।।६१।।

एवंविधमुत्थानमिष्टं शुभमित्यर्थः? कीदृशम्। नातिद्रुतं न त्वरितम्, न च विलम्बितं नातिध्वस्तम्। अप्रकम्पम्, प्रकम्पश्चलनं येन नोत्पद्यते। तथा अध्वस्तानि माल्यानि पिटकादीनि विभूषणानि येन तत्। आदिग्रहणाच्छत्रध्वजादर्शफलार्द्धचन्द्र इत्यादिकानि गृह्यन्ते। एतेषां ध्वंसो नाशो येन न भवति। अतोऽन्यथा यदुत्थानं तन्नरपते राज्ञोऽशुभमनिष्टं स्याद्भवेत्। तच्च पुरोधाः पुरोहितः शान्तिभिरुपघातप्रतीकारैः शमयेत्। तथा च गर्गः—

अविध्वस्तमनाधूतमद्रुताजिह्ममूर्ध्वगम् ।
इन्द्रध्वजसमुत्थानं क्षेमसौभिक्षकारकम्।।
निर्घातोल्कामहीकम्पा दीप्ताश्च मृगपक्षिणः।
उच्छ्रीयमाणे चण्डा वा वायवः स्युर्भयाय ते।। इति।।६१।।

अथोच्छ्रिते च तस्मिन् शुभाशुभज्ञानमाह श्लोकपञ्चकेन—

**क्रव्यादकौशिककपोतककाककङ्कैः**
**केतुस्थितैर्महदुशन्ति भयं नृपस्य ।**
**चाषेण चापि युवराजभयं वदन्ति**
**श्येनो विलोचनभयं निपतन् करोति ।।६२।।**

**[illegible]त्रभङ्गपतने नृपमृत्युस्तस्करान् मधु करोति निलीनम् ।**
**ह[illegible] चाप्यथ पुरोहितमुल्का पार्थिवस्य महिषीमशनिश्च ।।६३।।**
**राज्ञी[illegible]शं पतिता पताकाकरोत्यवृष्टिं पिटकस्य पातः ।**
**मध्याग्र[illegible]षु च केतुभङ्गो निहन्ति मन्त्रिक्षितिपालपौरान् ।।६४।।**
**पावृते शिखिभयं तमसा च मोहो**
**[illegible]नैश्च भग्नपतितैर्न भवन्त्यमात्याः ।**

ग्लायन्त्युदक्प्रभृति च क्रमशो द्विजाद्यान्
भङ्गे तु बन्धकिबधः कथितः कुमार्याः ॥६५॥

रज्जूत्सङ्गच्छेदने बालपीडा राज्ञो मातुः पीडनं मातृकायाः ।
यद्यत्कुर्युश्चारणा बालका वा तत्तत्तादृग्भावि पापं शुभं वा ॥६६॥

यदि इन्द्रध्वज पर मांस खाने वाला पक्षी, उल्लू, कबूतर, काक या उजली चिल्ह बैठे तो राजा को अत्यन्त भय, नीलकण्ठ बैठे तो युवराज को भय और बाज बैठे तो नेत्रभय करता है।

यदि ध्वज का छत्र भङ्ग हो जाय तो राजा की मृत्यु, उस पर मधुमक्खियाँ मुहाल ( छत्ता ) लगावें तो चोरों का उपद्रव, उल्का गिरे तो पुरोहित का नाश और वज्रपात हो तो राजा की प्रधान रानी का नाश होता है।

ध्वज का पताका गिरे तो रानी का नाश, पिटक गिरे तो अवृष्टि, ध्वज मध्य भाग से टूट जाय तो मन्त्री का नाश, आगे से टूट जाय तो राजा का नाश एवं मूल से टूट जाय तो पुरवासियों का नाश करता है।

ध्वज यदि धुआँ से व्याप्त हो जाय तो अग्निभय, अन्धकार से व्याप्त हो जाय तो विकलता और वहाँ पर सर्प दब कर मर जायँ या गिरें तो मन्त्रियों का नाश होता है।

ध्वज के उत्तर दिशा में कोई उत्पात हो तो ब्राह्मणों को, पूर्व में क्षत्रियों को, दक्षिण में वैश्यों को और पश्चिम में कोई उत्पात हो तो शूद्रों को पीड़ित करता है तथा यदि शक्र-कुमारी टूटे तो वेश्याओं का नाश होता है।

यदि इन्द्र-ध्वज उठाने के समय रस्सी कहीं से टूट जाय तो बालकों को और मातृका ( तोरण का पार्श्ववर्त्ती काष्ठ ) टूट जाय तो राजमाता को पीड़ा होती है।

इन्द्रध्वज के समीप चारण गण और बालकों की चेष्टा के द्वारा भावी अशुभ या शुभ फल ज्ञात होता है।।६२-६६।।

क्रव्यादा मांसाशिनो विहगाः। कौशिक उलूकः। कपोतः पारावतः। काको वायसः। कङ्कः पक्षिविशेषः। गृध्रो वेति पाठः। एतैः केतुस्थितैरिन्द्रध्वजोपविष्टैर्नृपस्य राज्ञो महद्भय-मुशन्ति कथयन्ति। चाषः पक्षी। तेन ध्वजस्थेन युवराजभयं वदन्ति। श्येनो वाजिको निपतन्नुपविशन् विलोचनभयं चक्षुर्नाशं करोति।

तथा छत्रस्यातपत्रस्य भङ्गे स्फुटने पतने वा नृपस्य राज्ञो मृत्युर्भवति। मधुशब्देन मधुमक्षिकोच्यते। मधु निलीनं संश्लिष्टं तस्करान् करोति। उल्काप्यथ पतिता पुरोहितं हन्ति नाशयति। अशनिः पतिता पार्थिवस्य राज्ञो महिषीं प्रधानां स्त्रियं हन्ति।

पताका पतिता राज्ञ्या विनाशं करोति। पिटकस्य पातः पतनमवृष्टिमवर्षणं करोति।

तथा केतोर्मध्याद् भङ्गो मन्त्रिणो हन्ति। अग्राद्भङ्गः क्षितिपालं राजानं निहन्ति। मूलाद्भङ्गः पौरान् पुरजनान्निहन्ति।

तथा केतौ धूमावृते धूमेन व्याप्ते शिखिभयमग्निभयं भवति। तमसा वृते मोहो वैकल्यं भवति। व्यालैर्व्याडैर्भग्नैः स्फुटितैः पतितैश्चामात्या मन्त्रिणो न भवन्ति। उदक्प्रभृतीत्युत्तरादिदिक्चतुष्टये उत्पातैर्दृष्टैर्द्विजाद्यान् ब्राह्मणाद्यान् ग्लायन्ति पीडयन्तीत्यर्थः। तद्यथा— उत्तरस्यां ब्राह्मणान्। पूर्वस्यां क्षत्रियान्। दक्षिणस्यां वैश्यान्। पश्चिमायां शूद्रान् इति। कुमार्या भङ्गे स्फुटने बन्धकीनां वेश्यानां वधः कथित इति।

तथा रज्जूनां यत्र कुत्रचिच्छेदने च बालानां शिशूनां पीडा भवति। तथा मातृकायास्तोरणपार्श्वस्थस्य काष्ठस्य पीडने राज्ञो मातुर्नृपजनन्याः पीडनं भवति। चारणा विदग्धा रङ्गवरा वा, बालकाः शिशवः, एते यद्यत्पापमनिष्टं शुभं वा कुर्युः, तत्तत्तादृग्भावि। तत्तत्तथाभूतं शुभमशुभं वा लोके भवतीत्यर्थः। कुलकम्। तथा च गर्गः—

प्रहृष्टमनसः सर्वे क्रीडेयुर्मुदिता यदि।
यदा जलेन गन्धैश्च विन्द्यात् सौभिक्षलक्षणम्।।
अमेध्यै रक्तकैः केशैर्भस्मना क्रन्दनेन च।
दुर्भिक्षपीडा विज्ञेया शस्त्रैश्चापि भयं वदेत्।। इति।।६२-६६।।

अथ विसर्जने विधिमाह—

**दिनचतुष्टयमुत्थितमर्चितं समभिपूज्य नृपोऽहनि पञ्चमे।**
**प्रकृतिभिः सह लक्ष्म विसर्जयेद्बलभिदः स्वबलाभिविवृद्धये ॥६७॥**

अपनी बल-वृद्धि के लिये चार दिन ( द्वादशी से पूर्णिमा तक ) पूजित, खड़े हुये इन्द्र के ध्वज का मन्त्रियों के साथ होकर राजा पाँचवें दिन ( प्रतिपदा के दिन ) पूजन करके विसर्जन करे।।६७।।

बलभिद इन्द्रस्य लक्ष्म चिह्नं स्वबलाभिविवृद्धये आत्मीयबलविवृद्ध्यर्थं नृपो राजा पञ्चमेऽहनि दिवसे प्रतिपदि समभिपूज्य पूजयित्वा प्रकृतिभिर्मन्त्रिभिः सह विसर्जयेत्। कीदृशं लक्ष्म? दिनचतुष्टयं द्वादशीप्रभृतिदिनचतुष्टयं पौर्णमास्यां यावदुत्थितम्, समुत्थितम्। अर्चितं पूजितम्।।६७।।

इन्द्रध्वजविधानकर्तुः प्रभावमाह—

**उपरिचरवसुप्रवर्तितं नृपतिभिरप्यनुसन्ततं कृतम्।**
**विधिमिममनुमन्य पार्थिवो न रिपुकृतं भयमाप्नुयादिति ॥६८॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामिन्द्रध्वज-**
**सम्पदध्यायस्त्रिचत्वारिंशः ॥४३॥**

उपरिचर वसु द्वारा चलाई हुई और सदा राजाओं से की हुई इस विधि को करके राजा शत्रुकृत भय को नहीं प्राप्त कर पाता है।।६८।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायामिन्द्रध्वजसम्पदध्यायस्त्रिचत्वारिंशः ॥४३॥**

इमं विधिं पार्थिवो राजा अनुमन्य तमिन्द्रध्वजं सम्पूज्य न क्वचिदपि रिपुकृतं शत्रुकृतं भयं प्राप्नुयात्। कीदृशं विधिम्? उपरिचरवसुप्रवर्तितम्, उपरिचरेणोर्ध्वगामिना वसुना राज्ञा प्रवर्तितम्। तथा नृपतिभी राजभिरप्यनुसन्ततमविच्छिन्नं कृतमिति।।६८।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहितायांविवृताविन्द्रध्वज-**
**सम्पन्नाम त्रिचत्वारिंशोध्यायः ॥४३॥**

# अथ नीराजनाध्यायः

अथ नीराजनं व्याख्यायते। तत्रादावेव कालनियमप्रदर्शनार्थमाह—

**भगवति जलधरपक्ष्मक्षपाकरार्केक्षणे कमलनाभे।**
**उन्मीलयति तुरङ्गमकरिनरनीराजनं कुर्यात् ॥१॥**

मेघरूप पलक तथा चन्द्र-सूर्यरूप दोनों नेत्र वाले भगवान् कमलनाभ के नेत्र खोलने पर घोड़ा, हाथी और मनुष्यों को नीराजन ( जल का स्पर्श ) करना चाहिये।।१।।

भगवति परमैश्वर्ययुक्ते। कमलनाभे नारायणे। जलधरपक्ष्मक्षपाकरार्केक्षणे, जलधरा मेघास्त एव पक्ष्माण्यक्षिरोमाणि ययोस्ते क्षपाकरार्केक्षणे। क्षपाकरश्चन्द्रः। अर्क आदित्यस्तावेवेक्षणे नेत्रे। उन्मीलयति विकाशयति सति। तुरङ्गमाणामश्वानाम्। करिणां हस्तिनाम्। नराणां मनुष्यणाम्। नीरेण जलेन अजनं स्पर्शनं कुर्यात्। अनेन नीराजनस्य वर्षासु निषेध उक्त इति।।१।।

अथ कालसमयमाह—

**द्वादश्यामष्टम्यां कार्तिकशुक्लस्य पञ्चदश्यां वा।**
**आश्वयुजे वा कुर्यान्नीराजनसंज्ञितां शान्तिम् ॥२॥**

कार्तिक या आश्विन के शुक्ल पक्ष की द्वादशी, अष्टमी, पूर्णिमा या अमावास्या के दिन नीराजन नामक शान्ति करनी चाहिये।।२।।

कार्तिकमासशुक्लपक्षद्वादश्यां तिथावष्टम्यां वा पञ्चदश्यां पूर्णिमाया॰मावस्यायां वा। आश्वयुजशुक्लपक्षे एतास्वेव तिथिषु प्रोक्तासु वा नीराजनसंज्ञितां नीराजनाख्यां शान्तिं कुर्यात्।।२।।

अथ तद्विधानमाह—

**नगरोत्तरपूर्वदिशि प्रशस्तभूमौ प्रशस्तदारुमयम्।**
**षोडशहस्तोच्छ्रायं दशविपुलं तोरणं कार्यम् ॥३॥**

नगर के ईशान कोण में उत्तम भूमि पर प्रशस्त वृक्ष से सोलह हाथ ऊँचा और दश हाथ चौड़ा एक तोरण बनाना चाहिये।।३।।

नगरस्य पुरस्योत्तरपूर्वस्यामैशान्यां दिशि, प्रशस्तभूमौ शुभलक्षणसंयुतायां शल्यादिदोषवर्जितायामवनौ, प्रशस्तदारुमयं याज्ञिकवृक्षविनिर्मितम्। षोडशहस्तोच्छ्रायमुच्छ्रितं दशहस्तविपुलं विस्तीर्णं तोरणं कार्यम्।।३।।

अथ शान्तिगृहलक्षणमाह—

**सर्जोदुम्बरककुभशाखामयशान्तिसद्म कुशबहुलम्।**
**वंशविनिर्मितमत्स्यध्वजचक्रालङ्कृतद्वारम् ॥४॥**

विजयसार, गूलर या अर्जुन वृक्ष की डालियों से युत तथा बाँसों से रचित मत्स्य ध्वज और चक्रों से अलंकृत शान्तिगृह बनाना चाहिये।।४।।

सर्जः। उदुम्बरः। ककुभः। एते सर्वे वृक्षविशेषाः। एषां शाखामयं लताविनिर्मितं शान्तिसद्म शान्तिगृहं कार्यम्। कुशबहुलं प्रभूतकक्षमयम्। तथा वंशविनिर्मितानि वेणुरचितानि मत्स्यध्वजचक्राणि, मत्स्यो मीनः, ध्वजश्चिह्नम्, चक्रमायुधम्। एतैरलंकृतं शोभितं द्वारं यस्य तथाभूतम्।।४।।

अथाश्वादीनां दीक्षाविधानमाह—

**प्रतिसरया तुरगाणां भल्लातकशालिकुष्ठसिद्धार्थान्।**
**कण्ठेषु निबध्नीयात् पुष्ट्यर्थं शान्तिगृहगाणाम् ॥५॥**

भिलावा, शाली धान्य, कूठ और श्वेत सरसों को प्रतिसरा ( कुङ्कुमरञ्जित या पीले सूत्र ) से पुष्टि के लिये शान्ति गृह में स्थित घोड़ों के गले में बाँधना चाहिये।।५।।

तुरगाणामश्वानां प्रतिसरया कुङ्कुमरञ्जितेन सूत्रेणान्येन पीतेन वा कण्ठेषु गलेषु। भल्लातकं प्रसिद्धम्। शालयः प्रसिद्धाः। कुष्ठम्। सिद्धार्था गौरसर्षपाः। एतत्पुष्ट्यर्थं पुष्टिकरणाय। शान्तिगृहगाणां शान्तिसद्मस्थानां निबध्नीयात्। तथा च काश्यपः—

शालिजातकसिद्धार्थान् कुष्ठं भल्लातकं तथा।
अश्वेषु कण्ठे बध्नीयात् सप्ताहं शान्तिमाचरेत्।। इति।।५।।

अथ शान्तिविधानमाह—

**रविवरुणविश्वदेवप्रजेशपुरुहूतवैष्णवैर्मन्त्रैः ।**
**सप्ताहं शान्तिगृहे कुर्याच्छान्तिं तुरङ्गाणाम् ॥६॥**

शान्तिगृह में सूर्य, वरुण, विश्वेदेव, ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णु के मन्त्रों से सात दिन तक घोड़ों की शान्ति करनी चाहिये।।६।।

रविरादित्यः। वरुणोऽपाम्पतिः। विश्वेदेवा देवविशेषाः। प्रजेशो ब्रह्मा। पुरुहूत इन्द्रः। विष्णुर्नारायणः। एषां सप्तभिर्मन्त्रैस्तुरङ्गाणामश्वानां शान्तिगृहे स्थितानां सप्ताहं सप्तदिनानि शान्तिं कुर्यात्। तथा च काश्यपः—

पौष्टिकैर्विविधैर्मन्त्रैः पुरोधा ज्वलनं हुतेत्।
हुतान्ते भोजयेद्विप्रान् दक्षिणां विपुलां ददेत्।। इति।।६।।

अथाश्वानां किं कुर्यादित्याह—

**अभ्यर्चिता न परुषं वक्तव्या नापि ताडनीयास्ते।**
**पुण्याहशङ्खतूर्यध्वनिगीतरवैर्विमुक्तभयाः ॥७॥**

पुण्याहवाचन, शङ्खध्वनि, भेरी की ध्वनि तथा गीत के शब्दों से भयरहित, पूजित घोड़े को डराना और चाबुक आदि से मारना नहीं चाहिये।।७।।

ते अश्वा अभ्यर्चिताः पूजिताः। परुषमप्रियं न वक्तव्याः। नापि ते ताडनीयाः। कषादिभिर्न हन्तव्याः। तथा पुण्याहरवैः शुभवाक्यशब्दैः माङ्गलीयकैर्वचनैः शङ्खध्वनिभिः शङ्खशब्दैः। तूर्यध्वनिभिः तूर्यशब्दैः। गीतरवैर्गीतशब्दैश्च। विमुक्तं परित्यक्तं भयं भीतिर्यैस्ते तथाविधाः कार्याः।।७।।

ततः सप्ताहात् परतः किं कुर्यादित्याह—

**प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि कुर्यादुदङ्मुखं तोरणस्य दक्षिणतः।**
**कुशचीरावृतमाश्रममग्निं पुरतोऽस्य वेद्यां च ।।८।।**

आठवें दिन तोरण के दक्षिण तरफ आगे स्थित वेदी पर कुशा और वृक्षवल्कल से ढकी हुई अग्नि का स्थापन करना चाहिये।।८।।

**प्राप्तेऽष्टम इति**। ततोऽष्टमेऽह्नि दिवसे प्राप्ते तोरणस्य प्राङ्निर्दिष्टस्य दक्षिणभागे आश्रममुदङ्मुखमुत्तराभिमुखं कुशचीरावृतं कुशैर्दर्भैश्चीरैर्वृक्षवल्कलैरावृतं छादितं कुर्यात्। अस्य पुरतोऽग्रतो वेद्यामग्निं कुर्यात्। वेदीलक्षणमत्राचार्येणोक्तमस्माभिरन्यशास्त्रात् प्रदर्श्यते—

यज्ञे चतुःषष्टिकरा विवाहे वेदी द्विजानां द्विनरप्रमाणा।
कार्या ततोऽष्टांशशमक्रमेण राजन्यवैश्यवृषलान्त्यजानाम्।।

तथा च—

सप्तहस्ता ब्राह्मणानां वेदी यज्ञे प्रकीर्तिता।
षट्करा क्षत्रियाणां तु वैश्यानां पञ्च कीर्तिता।।
चतुर्हस्ता तु शूद्राणां विवाहेऽपि विनिश्चिता।
अलाभे सर्ववर्णानां चतुर्हस्ता प्रकीर्तिता।।
व्यन्तराणामतो न्यूना निर्दिष्टा मुनिभिः सदा।
अतो न्यूनाधिका वेदी यजमानस्य मृत्यदा।।

तथा च—

यज्ञे विवाहे वक्ष्यामि वेदिमानं समासतः।
त्रिःसप्तहस्तविस्तारा ब्राह्मणानां शुभावहा।।
क्षत्रियाणां पञ्चदशी वैश्यानां नवसम्मिता।
सप्तहस्ता तु शूद्राणां शिल्पिनां पञ्च कीर्तिता।।
त्रिहस्ता व्यन्तराणां तु वेदी सर्वत्र कीर्तिता।
भुवोऽपरोधे मर्त्यानां चातुर्वर्ण्यैः प्रकीर्तिता।।
पञ्चहस्ता कृता वेदी सर्वमाङ्गल्यदायिका।

एवं प्रमाणं ज्ञात्वा तस्याः शुभाशुभलक्षणमाचार्येणैवोक्तम्—

वेदीशुभाशुभविधानविधौ प्रदिष्टा दिक्स्थानमानाभ्यधिका न हीना।
भ्रष्टा प्रमाणेन करोति भङ्गं दिग्वक्रसंस्था न च सिद्धिदा स्यात्।।
प्राग्भागहीना नगरस्य नेष्टा पुरोधसो दक्षिणभागवक्रा।
नरेन्द्रजायाशुभदा परस्यामुदग्बलेशस्य नृपस्य मध्ये।। इति।

तथा च काश्यपः—

अष्टमेऽह्नि पुरस्कृत्य राजा पौरजनैर्वृतः।
गच्छेच्छान्तिगृहं हृष्टः शङ्खतूर्यरवैः सह।। इति।।८।।

अथ सम्भाराणां लक्षणमाह—

**चन्दनकुष्ठसमङ्गाहरितालमनःशिलाप्रियङ्गुवचाः।**
**दन्त्यमृताञ्जनरजनीसुवर्णपुष्प्यग्निमन्थाश्च ॥९॥**

**श्वेतां सपूर्णकोशां कटम्भरात्रायमाणसहदेवीः।**
**नागकुसुमं स्वगुप्तां शतावरीं सोमराजीं च ॥१०॥**

**कलशेष्वेताः कृत्वा सम्भारानुपहरेद्बलिं सम्यक्।**
**भक्ष्यैर्नानाकारैर्मधुपायसयावकप्रचुरैः ॥११॥**

चन्दन, कूठ, मञ्जीठ, हरिताल, मैनशिल, कंगनी ( कौन ), वच, गुरुच, अञ्जन, हलदी, सुवर्णपुष्पी, अग्निमन्था ( अरणी ), श्वेता ( गिरिकर्णी = अपराजिता ), पूर्णकोशा, महाश्वेता ( उजला गंगा फल ), त्रायमाण ( चिरायते का फल ), सहदेवी, नागपुष्प, स्वगुप्ता ( क्यवाँच = कवाछ ), शतावरी, सोमवल्ली—इन सब ओषधियों को बराबर-बराबर लेकर पूर्ण कलश में शहद, पायस देकर यावकों ( कुरथियों ) से युत अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों के साथ बलि देना चाहिये।।९-११।।

चन्दनं मलयजम्। कुष्ठं प्रसिद्धम्। समङ्गा मञ्जिष्ठा। हरितालं प्रसिद्धम्। मनःशिला प्रसिद्धैव। प्रियङ्गुर्गन्धप्रियङ्गुः। वचा प्रसिद्धैव। दन्ती प्रसिद्धैव। अमृता गुडूची। अञ्जनं स्रोतोञ्जनं प्रसिद्धं सौभाञ्जनं वा। रजनी हरिद्रा। सुवर्णपुष्पी प्रसिद्धैव। अग्निमन्था तर्कारी।

श्वेता गिरिकर्णिका, तां च सपूर्णकोशां पूर्णकोशया सह। कटम्भरां महाश्वेताम्। त्रायमाणं प्रसिद्धम्। सहदेवीं सहगन्धाम्। नागकुसुमं नागपुष्पम्। स्वगुप्तामात्मगुप्तां कपिकच्छुमित्यर्थः। शतावरी प्रसिद्धा। सोमराजी सोमवल्ली।।

एताश्चौषधीः कलशेषु पूर्णघटेष्वभ्यन्तरे कृत्वा संस्थाप्य सम्भारानेतानेव ततः सम्यग्यथाविधानेन बलिमुपहरेत् ढौकयेत्। भक्ष्यैर्मोदकैर्लोपिकापूपादिभिः। नानाकारैर्बहुविधैः। कीदृशैर्मधुपायसयावकप्रचुरैः। मधु माक्षिकम्। पायसं पयोविकारो यत्किञ्चित्क्षीरसम्भवम्। यावकं यावप्रकारः। एतैः प्रचुराः प्रभूता येषु तैः।।९-११।।

अन्यच्च—

**खदिरपलाशोदुम्बरकाश्मर्यश्वत्थनिर्मिताः समिधः ।**
**स्रुक् कनकाद्रजताद्वा कर्तव्या भूतिकामेन ॥१२॥**

खैर, ढाक, गूलर, गम्भारी और पीपल की लकड़ी की समिधा बनाकर सम्पत्ति की इच्छा करने वाले राजा को सोना या चाँदी की स्रुवा बनानी चाहिये।।१२।।

खदिरः। पलाशः। उदुम्बरः। काश्मरी। अश्वत्थः। एते सर्व एव वृक्षविशेषा याज्ञिकाः सुप्रसिद्धाः। एभ्यो निर्मिताः सम्भूताः समिधः कार्याः। तथा भूतिकामेन समृद्धिमिच्छता स्रुक् कनकात् सुवर्णात् रजताद्वा कर्तव्या।।१२।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**पूर्वाभिमुखः श्रीमान् वैयाघ्रे चर्मणि स्थितो राजा ।**
**तिष्ठेदनलसमीपे तुरगभिषग्दैववित्सहितः ॥१३॥**

ब्याघ्र के चर्म पर पूर्वाभिमुख होकर अग्नि के समीप में वैद्य और ज्यौतिषी के साथ श्रीमान् राजा बैठे।।१३।।

राजा नृपः। श्रीमान् श्रीर्विद्यते यस्य। त्रिवर्गसमाश्रयः। श्रीमानित्यनेन राज्ञो महिमानं दर्शयति। सकलप्रतिपत्तियुक्तस्तत्रस्थ इत्यर्थः। पूर्वाभिमुखः पूर्वस्यां दिशि निरीक्षमाणो वैयाघ्रे व्याघ्रस्य चर्मणि स्थित उपविष्टः। अनलसमीपेऽग्निसन्निधौ तुरगभिषग्दैववित्सहितः, तुरगभिषजा अश्ववैद्येन दैवविदा सांवत्सरिकेण सहितः संयुक्तस्तत्र तिष्ठेत्।।१३।।

अथ दैवविदा तत्र किं कार्यमित्याह—

**यात्रायां यदभिहितं ग्रहयज्ञविधौ महेन्द्रकेतौ च ।**
**वेदीपुरोहितानललक्षणमस्मिंस्तदवधार्यम् ॥१४॥**

यात्रा नामक पुस्तक के ग्रहयज्ञविधि में तथा इन्द्रध्वजलक्षणाध्याय में वेदी, पुरोहित और अग्नि के जो लक्षण कहे हैं, वह इस नीराजनाध्याय में भी समझना चाहिये।।१४।।

वेद्या अग्न्यागारस्य। पुरोहितस्य हेतुः। अनलस्याग्नेः। लक्षणं यात्रायामभिहितं कथितम्। क्व ग्रहयज्ञविधौ। ग्रहाणां यज्ञविधाने। तथा महेन्द्रकेताविन्द्रध्वजे च यदुक्तं तदस्मिन्नीराजने अवधार्यं लक्षणीयमिति। तथा च यात्रायां ग्रहयज्ञे—

ग्रहयज्ञमतो वक्ष्ये तत्र निमित्तानि लक्षयेद्वेद्याम्।
भङ्गो मानोनायां दिग्भ्रष्टायामसिद्धिश्च।।
नगरपुरोहितदेवीसेनापतिपार्थिवक्षयं कुरुते।
प्राग्दक्षिणापरोत्तरमध्यमभागेषु या विकला।।

तथा च पुरोहितस्य—

कम्पोच्छ्वासविजृम्भणप्रचलनस्वेदाश्रुपातक्षुधो-
द्गाद्यं च पुरोधसः स्मृतिविपच्चानिष्टमन्यच्छुभम्।

आज्यं केशपिपीलकामलयुतं सत्त्वावलीढं च य-
त्तन्नेष्टं शुभमन्यथोपकरणं द्रव्याण्यनूनानि च।।

तथा चानललक्षणम्—

उत्थाय स्वयमुज्ज्वलार्चिरनलः स्वाहावसाने हवि-
र्भुङ्क्ते देवसुखप्रदक्षिणगतिः स्निग्धो महान् संहतः।
निर्धूमः सुरभिः स्फुलिङ्गरहितो यात्रानुलोमो मृदु-
र्मुक्तेन्दीवरकाञ्चनद्युतिधरो वह्निः श्रियं यच्छति।।
इष्टद्रव्यघटातपत्रतुरगश्रीवृक्षशैलाकृति-
र्भेर्यब्दोदधिदुन्दुभीशकटस्निग्धस्वनैः पूजितः।
नेष्टः प्रोक्तविपर्यये हुतवहः स्निग्धोऽन्यथापीष्टदः
सव्येऽङ्गे नृपतेर्दहन्नतिहितः शेषं च लोकाद्वदेत्।।

तथा महेन्द्रकेताविहैवोक्तम्—

स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः।। इति।।१४।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**लक्षणयुक्तं तुरगं द्विरदवरं चैव दीक्षितं स्नातम्।**
**अहतसिताम्बरगन्धस्रग्धूमाभ्यर्चितं कृत्वा ॥१५॥**

**आश्रमतोरणमूलं समुपनयेत् सान्त्वयन् शनैर्वाचा।**
**वादित्रशङ्खपुण्याहनिःस्वनापूरितदिगन्तम् ॥१६॥**

वक्ष्यमाण लक्षणों से युत घोड़ा और हाथी का अक्षत, श्वेत वस्त्र, माला, धूप आदि से पूजन कर अनेक प्रकार के वाद्य और पुण्याह शब्दों से युत अपने आश्रम के समीपस्थित तोरण के पास मधुर वाणियों से सान्त्वना देते हुए धीरे-धीरे लाना चाहिये।।१५-१६।।

तुरगमश्वम्। द्विरदवरं हस्तिप्रधानं च। लक्षणयुक्तं तुरङ्गं वक्ष्यमाणैः शोभनैरश्वलक्षणै-र्दीर्घग्रीवाक्षिकूट इत्यादिलक्षणैश्च युक्तम्। तथा द्विरदवरैर्हस्तिलक्षणैस्ताम्रोष्ठतालुवदना इत्यादिकैश्च युक्तम्। दीक्षितं कृतदीक्षं च स्नातम्। अहतेनाक्षतेन सितेन शुक्लेनाम्बरेण वस्त्रेण स्रग्भिर्मालाभिर्धूपैर्गुग्गुलुप्रभृतिरभ्यर्चितं पूजितं कृत्वा।

तत आश्रमतोरणमूलम् स्वाश्रमसमीपे यत्तोरणं तन्मूलं तत्र वाचा गिरा सान्त्वयन् शान्तिं कुर्वन् शनैः शनैर्मन्दं मन्दं समुपनयेत् प्रापयेत्। कीदृशं तोरणमूलम्? वादित्रशङ्ख-पुण्याहनिःस्वनापूरितदिगन्तम्। वादित्राणां पटहमृदङ्गानां पुण्याहानां शुभशब्दानां निःस्वनैः शब्दैरापूरिता जडीकृता दिगन्ता यत्र तथाभूतम्।।१५-१६।।

अथाश्वगजयोश्चेष्टितमाह—

**यद्यानीतस्तिष्ठेद्दक्षिणचरणं हयः समुत्क्षिप्य।**
**स जयति तदा नरेन्द्रः शत्रून्नचिराद्विना यत्नात् ॥१७॥**

**त्रस्यन्नेष्टो राज्ञः परिशेषं चेष्टितं द्विपहयानाम्।**
**यात्रायां व्याख्यातं तदिह विचिन्त्यं यथायुक्ति ॥१८॥**

जिस राजा के द्वारा लाया गया घोड़ा दक्षिण चरण उठाकर खड़ा रहे, वह राजा शीघ्र ही विना परिश्रम शत्रु को जीत लेता है। यदि घोड़ा डर जाय तो राजा का शुभ नहीं होता। यहाँ घोड़ा का ग्रहण उपलक्षणमात्र है, अतः घोड़े की जगह हाथी को भी लेना चाहिये। हाथी और घोड़े की शेष चेष्टाओं का फल 'यात्रा' नामक ग्रन्थ में जिस प्रकार मैंने कहा है, उसी प्रकार युक्तिपूर्वक यहाँ पर भी विचार करना चाहिये।।१७-१८।।

**यद्यानीत इति**। अत्र हयग्रहणमुपलक्षणार्थम्। तेन हयोऽश्वो द्विरदवरो वा हस्ती यद्यानीतस्तत्र दक्षिणचरणं दक्षिणपादं समुत्क्षिप्य तिष्ठेत्, तदा स नरेन्द्रो राजा शत्रून् रिपून्नचिराच्छीघ्रमेव विना यत्नात् प्रयत्नं विना अनुद्यमेनैव जयति।

त्रस्यन्नुद्विजन् राज्ञो नृपस्य नेष्टो न शुभः। परिशेषमन्यच्चेष्टितं शुभाशुभसूचकं द्विपहयानां हस्त्यश्वानां यात्रायां व्याख्यातं कथितम्। तथा च—

मुहुर्मुहुर्मूत्रशकृत् करोति न ताड्यमानोऽप्यनुलोमयायी।
अकार्यभीतोऽश्रुविलोचनश्च शिवं न भर्तुस्तुरगोऽभिधत्ते।।
आरोहति क्षितिपतौ विनयोपपन्नो
यात्रानुगोऽन्यतुरगं प्रति ह्रेषते च।
वक्त्रेण वा स्पृशति दक्षिणमात्मपार्श्वं
योऽश्वः स भर्तुरचिरात् प्रतनोति लक्ष्मीम्।। इत्यादि।

तथा च गजस्य—

स्खलितगतिरकस्मात् त्रस्तकर्णोऽतिदीनः
श्वसिति मृदु सुदीर्घं न्यस्तहस्तः पृथिव्याम्।
द्रुतमुकुलितदृष्टिः स्वप्नशीलो विलोमो
भयकृदहितभक्षी नैकशोऽसृक् शकृच्च।।
वल्मीकस्थाणुगुल्मक्षुपतरुमथनः स्वेच्छया हृष्टदृष्टि-
र्यायाद्यात्रानुलोमं त्वरितपदगतिर्वक्रमुन्नाम्य चोच्चैः।
कक्ष्यासन्नाहकाले जनयति च मुहुः शीकरं बृंहितं वा
तत्कालं वा मदाप्तिर्जयकृदथ रदं वेष्टयन् दक्षिणं वा।।

एवमादिकं यदुक्तं तदिहास्मिन्नीराजने यथायुक्ति यथासम्भवं विचिन्त्यं विचार्यम्। यत्सम्भवति तच्चिन्तनीयमित्यर्थः।

'प्रद्वेषो यवसाम्भसां प्रपतनम्' इत्यादिकमश्वस्य सम्भवति। तथा गजस्य—

क्षीरवृक्षफलपुष्पपादपेष्वापगातटविघट्टितेन वा।
वाममध्यरदभङ्गखण्डनम् ।।

इत्यादिना सम्भवति।। इति ।।१७-१८।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**पिण्डमभिमन्त्र्य दद्यात् पुरोहितो वाजिने स यदि जिघ्रेत्।**
**अश्नीयाद्वा जयकृद्विपरीतोऽतोऽन्यथाभिहितः ॥१९॥**

पुरोहित अन्न के पिण्ड को अभिमन्त्रित करके घोड़े को दे दे। यदि घोड़ा उस अन्न के पिण्ड को सूँघे या कुछ खा जाय तो राजा की विजय करने वाला, अन्यथा पराजय करने वाला होता है।।१९।।

पुरोहित आचार्यो वाजिने अश्वाय पिण्डमन्नपिण्डमभिमन्त्र्य दद्यात् प्रयच्छेत्। सोऽश्वो यदि तत् पिण्डं जिघ्रेत् किञ्चिदश्नीयाद् भक्षयेद् वा, तदा जयकृत्, राज्ञां जयं करोति। अतोऽन्यथा यदि न जिघ्रन्नपि भक्षयेत्, तदा विपरीतोऽभिहितः पराजयकृदुक्त इति।।१९।।

अथ नीराजनमाह—

**कलशोदकेषु शाखामाप्लाव्यौदुम्बरीं स्पृशेत् तुरगान्।**
**शान्तिकपौष्टिकमन्त्रैरेवं सेनां सनृपनागाम् ॥२०॥**

गूलर की एक छोटी-सी डाली को कलशजल में डुबाकर शान्तिक और पौष्टिक मन्त्रों से घोड़ा, राजा, हाथी और सेनाओं को स्पर्श ( सिक्त ) करे।।२०।।

कलशोदकेषु कलशस्थजलेषु प्राक्स्थापितेष्वौषधिमिश्रितेष्वौदुम्बरीमुदुम्बरवृक्षसम्भवां शाखां लतामाप्लाव्य मज्जयित्वा तया तुरगान् अश्वान् स्पृशेत्। शान्तिकैः पौष्टिकैश्च मन्त्रैः सह। एवमनेन प्रकारेण सनृपनागां सेनां स्पृशेत्। नृपो राजा। नागा हस्तिनः। तत्संयुक्तां चमूं स्पृशेत्।।२०।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**शान्तिं राष्ट्रविवृद्ध्यै कृत्वा भूयोऽभिचारकैर्मन्त्रैः।**
**मृण्मयमरिं विभिन्द्याच्छूलेनोरःस्थले विप्रः ॥२१॥**

फिर ब्राह्मण राष्ट्र की वृद्धि के लिये शान्ति करके अभिचार कर्म में उक्त आथर्वण मन्त्रों को पढ़कर मिट्टी की बनाई हुई शत्रु की मूर्ति के वक्षःस्थल को तीक्ष्ण शूल से फाड़े।।२१।।

भूयः पुना राष्ट्रविवृद्ध्यै राष्ट्रसंवर्धनाय शान्तिं कृत्वा ततोऽभिचारकैर्मन्त्रैः, अभिचारकर्मणि ये मन्त्रा आथर्वणा उक्तास्तैर्मन्त्रैर्मृण्मयं मृत्तिकारचितमरिं शत्रुमुरःस्थले वक्षःप्रदेशे विप्रो ब्राह्मणः शूलेनाग्रतीक्ष्णेन काष्ठेन विभिन्द्याद् विदारयेत्।।२१।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**खलिनं हयाय दद्यादभिमन्त्र्य पुरोहितस्ततो राजा।**
**आरुह्योदक्पूर्वां यायान्नीराजितः सबलः ॥२२॥**

बाद में पुरोहित खलीन ( लगाम ) को अभिमन्त्रित करके घोड़े के मुख में दे। फिर उस पर नीराजन किया हुआ राजा बैठकर सेनाओं के साथ ईशान कोण की ओर गमन करे।।२२।।

ततोऽनन्तरं पुरोहितः खलिनं कविकामभिमन्त्र्य मन्त्रयित्वा हयायाश्वाय दद्यात् प्रयच्छेत्। तस्मिन् नृप आरुह्य नीराजितः सबलो बलसहितः सेनासहित उदक्पूर्वामैशानीं यायाद् गच्छेत्।।२२।।

कथं राजा गच्छेदित्याह—

**मृदङ्गशङ्खध्वनिहृष्टकुञ्जरस्रवन्मदामोदसुगन्धमारुतः ।**
**शिरोमणिप्रान्तचलत्प्रभाचयैर्ज्वलन् विवस्वानिव तोयदात्यये ॥२३॥**

**हंसपङ्क्तिभिरितस्ततोऽद्विराट् सम्पतद्भिरिव शुक्लचामरैः ।**
**मृष्टगन्धपवनानुवाहिभिर्धूयमानरुचिरस्रगम्बरः ॥२४॥**

**नैकवर्णमणिवज्रभूषितैर्भूषितो मुकुटकुण्डलाङ्गदैः ।**
**भूरिरत्नकिरणानुरञ्जितः शक्रकार्मुकरुचिं समुद्वहन् ॥२५॥**

**उत्पतद्भिरिव खं तुरङ्गमैर्दारयद्भिरिव दन्तिभिर्धराम् ।**
**निर्जितारिभिरिवामरैर्नरैः शक्रवत् परिवृतो व्रजेन्नृपः ॥२६॥**

मृदङ्ग और शङ्ख की ध्वनि से हर्षित होकर हाथियों के झरते हुये मदजलों की सुगन्धि से युत वायु वाला ( क्योंकि शरद् ऋतु में सुगन्धित वायु चलती है ) और मुकुट में जड़ी हुई मणियों के प्रान्त भाग में चलित किरणों से युत शारदीय सूर्य की तरह ( क्योंकि शरद् ऋतु में सूर्य तेजस्वी होते हैं ) राजा अथवा सुगन्धित वायु को सेवन करने वाले शुक्ल चामरों से कम्पमान सुन्दर माला और वस्त्र वाले मानों हंसपंक्तियों से व्याप्त और सुगन्धियुत वायुओं से युत हिमालय की तरह राजा अथवा अनेक वर्ण वाले रत्न तथा हीराओं से व्याप्त मुकुट, कुण्डल और बाजू से भूषित होने के कारण इन्द्रधनु की कान्ति धारण किया हुआ राजा अथवा उड़ते हुये घोड़े, पृथ्वी को विदारण करते हुये हाथी और शत्रु को जीतने वाले मनुष्यों के साथ मानो देवताओं से घिरे हुये इन्द्र के समान राजा गमन करे।।२३-२६।।

**मृदङ्गेति**। नृपो राजा नीराजितस्तोयदात्यये शरदि विवस्वानादित्यो ज्वलन् कान्तिमानिव व्रजेत्। तोयदा मेघास्तेषामत्ययो विनाशः शरदित्यर्थः। कीदृशः? मृदङ्गशङ्खध्वनिहृष्टकुञ्जरस्रवन्मदामोदसुगन्धमारुतः, मृदङ्गा वादित्रविशेषाः, शङ्खाः प्रसिद्धाः, मृदङ्गशङ्खानां योऽसौ ध्वनिः शब्दस्तेन हृष्टा मुदिता ये कुञ्जरा हस्तिनस्तेषां स्रवन्मदं मदजलं तस्यामोदः सौरभ्यं तेन सुगन्धीकृतो यो मारुतो वायुस्तेन यो युक्तः स तथोक्तः। यतः शरदि किल सुगन्धो मारुतो वहति। तथा शिरोमणयश्चूडारत्नानि तेषु प्रान्तमग्रं तत्र चलन्तः स्फुरन्तो ये प्रभाचया रश्मिसमूहास्तैर्ज्वलन् देदीप्यमानः। शरदि किल सूर्यस्तेजस्वी भवति।

अथवा अद्विराट् पर्वतराजो हिमवानिव व्रजेत्। इतस्ततः सर्वतः शुक्लचामरैः सितैर्बालव्यजनैः सम्पद्भिस्तदभिमुखं गच्छद्भिः। धूयमानाश्चाल्यमाना रुचिरा दीप्तिमत्यः स्रजो माला अम्बराणि च वस्त्राणि यस्य स तथोक्तः। कीदृशैश्चामरैः? मृष्टगन्धपवनानुवाहिभिः। मृष्टं गन्धं सुगन्धं पवनं वातं येऽनुवहन्ति सेवन्ते तैस्तथाभूतैः। अत एवोत्प्रेक्षते—हंसपंक्तिभिरितस्ततः सर्वतः सम्पतद्भिर्मृष्टगन्धपवनानुवाहिभिः सुगन्धमारुतानुवाहिभिरद्विराडिव।

अथवा शक्रकार्मुकरुचिमिन्द्रधनुःकान्तिं समुद्वहन् वाहयन् व्रजेत्। मुकुटकुण्डलाङ्गदैर्भूषितः मुकुटं मौलिभूषणम्, कुण्डलं कर्णाभरणम्, अङ्गदाः कटकास्तैर्भूषितोऽलंकृतः। कीदृशैः? नैकवर्णमणिवज्रभूषितैः, नैकवर्णा बहुवर्णा ये मणयो रत्नानि, वज्रं हीरकम्, तैर्भूषिता अलंकृता ये मुकुटकुण्डलाङ्गदास्तैर्भूषितोऽलंकृतः। तथा भूरिरत्नानां बहूनां मणीनां ये किरणा रश्मयस्तैरनुरञ्जितो विच्छुरितस्तदा शक्रकार्मुकरुचिं समुद्वहन्। यतः शक्रकार्मुकस्य कान्तिर्नानावर्णा भवति।

अथवा शक्रवदिन्द्रवत्परिवृत्तः परिवारयुक्तो व्रजेत्। तुरङ्गमैरश्वैः खमाकाशमुत्पतद्भिरिव। यत इन्द्रं आकाशे गच्छति। तथा दन्तिभिर्हस्तिभिर्धरां भूमिं धारयद्भिरिव। यतो मत्तदन्तिनो भूमिं विदारयन्ति। नरैर्मनुष्यैर्निर्जितारिभिर्जितशत्रुभिरमरैर्देवैरिव परिवृतः। अतीवोज्ज्वलं वेषधारित्वात्। अत एवोत्प्रेक्षते—**शक्रवदिति**।।२३-२६।।

अन्यदप्याह—

**सवज्रमुक्ताफलभूषणोऽथवा सितस्रगुष्णीषविलेपनाम्बरः।**
**धृतातपत्रो गजपृष्ठमाश्रितो घनोपरीवेन्दुतले भृगोः सुतः ॥२७॥**

अथवा हीरा-मोती से युत श्वेत माला, श्वेत पगड़ी, श्वेत चन्दन तथा श्वेत वस्त्रों से युत, छत्रधारी और हाथी पर बैठा हुआ राजा मेघ के ऊपर और चन्द्र के नीचे विराजमान शुक्र की तरह गमन करे। यहाँ मेघ के स्थान पर हाथी, चन्द्र के स्थान पर छत्र और शुक्र के स्थान पर राजा को समझना चाहिये।।२७।।

अथवैवं व्रजेत्। सवज्रमुक्ताफलभूषणः, वज्रं हीरकम्, सवज्राणि वज्रसहितानि मुक्ताफलभूषणानि यस्य। सितस्रगुष्णीषविलेपनाम्बरः, सिताः शुक्ला याः स्रजो मालाः। सिताश्चोष्णीषाः पट्टविशेषाः। सितानि च विलेपनानि समालम्भनानि। सितान्यम्बराणि वस्त्राणि च यस्य स तथाभूतः। धृतातपत्रः। धृतमातपत्रं छत्रं यस्य। गजपृष्ठं हस्तिपृष्ठं समाश्रितः। अत एवोत्प्रेक्षते—भृगोः सुतः शुक्रो घनोपरि मेघपृष्ठे इन्दोश्चन्द्रस्य तले अधोभागे स्थित इव। मेघसंस्थानीयो गजः। चन्द्रस्य संस्थानीयं छत्रम्। शुक्रसंस्थाने नृप इति।।२७।।

अथ सैन्यचेष्टितमाह—

**सम्प्रहृष्टनरवाजिकुञ्जरं निर्मलप्रहरणांशुभासुरम्।**
**निर्विकारमरिपक्षभीषणं यस्य सैन्यमचिरात् स गां जयेत् ॥२८॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नीराजनाध्यायश्चतुश्चत्वारिंशः ॥४४॥**

जिस राजा के हर्षित मनुष्य, घोड़े और हाथियों से युत, निर्मल खड्ग आदि से प्रकाशमान, विकाररहित और शत्रु के लिये भयावह सेनागण हों, वह शीघ्र ही पृथ्वी को जीत लेता है।।२८।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां नीराजनाध्यायश्चतुश्चत्वारिंश: ॥४४॥**

यस्य राज्ञ ईदृशं सैन्यं स राजा अचिराच्छीघ्रमेव गां भूमिं जयेत् स्वीकरोति। कीदृशम्? सम्प्रहृष्टजनवाजिकुञ्जरम्, सम्प्रहृष्टा: प्रमुदिता नरा मनुष्या:। वाजिनोऽश्वा:, कुञ्जरा यत्र। तथा निर्मलानां प्रहरणानां खड्गादीनां ये अंशवो रश्मयस्तैर्भासुरं देदीप्यमानम्। निर्विकारं विकाररहितम्। निरुत्पातमित्यर्थ:। अरिपक्षभीषणं शत्रुपक्षभयावहमिति।।२८।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहितावृतौ नीराजन-**
**विधिर्नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय: ॥४४॥**

# अथ खञ्जनकलक्षणाध्यायः

अथ खञ्जनकलक्षणाध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवागमप्रदर्शनार्थमाह—

**खञ्जनको नामायं यो विहगस्तस्य दर्शने प्रथमे।**
**प्रोक्तानि यानि मुनिभिः फलानि तानि प्रवक्ष्यामि ॥१॥**

खञ्जन नामक पक्षी के प्रथम दर्शन होने पर गर्ग आदि मुनियों ने जो फल कहे हैं, उनको मैं यहाँ पर कहता हूँ।।१।।

अयं खञ्जनकनामा विहगः पक्षी तस्य प्रथमे दर्शने, आदौ यस्मिन् दिने दृश्यते तत्र मुनिभिर्गर्गादिभिर्यानि फलानि कथितानि प्रोक्तानि तानि प्रवक्ष्यामि कथयामीति।

खञ्जनकः श्रावणपूर्वकमासचतुष्टयं न दृश्यत इति स्थितिः। अत उक्तं दर्शने प्रथमे इति।।१।।

तत्र तावच्चत्वारः खञ्जनका भवन्ति, तेषां नामानि फलं चाह—

**स्थूलोभ्युन्नतकण्ठः कृष्णगलो भद्रकारको भद्रः।**
**आकण्ठमुखात् कृष्णः सम्पूर्णः पूरयत्याशाम् ॥२॥**

**कृष्णो गलेऽस्य बिन्दुः सितकरटान्तः स रिक्तकृद्रिक्तः।**
**पीतो गोपीत इति क्लेशकरः खञ्जनो दृष्टः ॥३॥**

स्थूल शरीर वाला, उन्नत और काले गले वाला खञ्जन पक्षी भद्रसंज्ञक है, यदि यह दिखाई दे तो शुभ होता है। जिसका मुख से लेकर कण्ठ तक काला हो, वह खञ्जन पक्षी सम्पूर्णसंज्ञक है, यह सम्पूर्ण इच्छाओं को पूर्ण करता है। जिसके गले में काली बिन्दी तथा श्वेत कपोल हो वह रिक्तसंज्ञक खञ्जन सब शून्य करता है और पीला खञ्जन गोपीत संज्ञक है, यदि यह दिखाई दे तो क्लेश करता है।।२-३।।

स्थूलो बृहत्कायः। अभ्युन्नतकण्ठ उच्चग्रीवः। कृष्णगलः असितकण्ठः। स भद्रो नाम विहगो भद्राख्यः पक्षी। स च दृष्टो भद्रकारकः, भद्रं श्रेयः करोति। भद्रः सम्पूर्णो रिक्तो गोपीत इत्येता अन्वर्थसंज्ञा। आकण्ठमुखात् कृष्णः, मुखाद् वक्त्रादारभ्य कण्ठं गलं यावत्कृष्णोऽसितवर्णः सम्पूर्णनामा स चाशामिच्छां पूरयति परिपूर्णं करोति।

**कृष्णो गलेऽस्य बिन्दुरिति**। अस्य विहगस्य गले कण्ठे कृष्णोऽसितो बिन्दुस्तथा सितकरटान्तः शुक्लकपोलः स रिक्तसंज्ञः। स च रिक्तकृद्रिक्तफलः शून्यं सर्वं करोति। यः पीतः पीतवर्णः स च गोपीतनामा खञ्जनको दृष्टः क्लेशकरः क्लेशं करोति। तथा च काश्यपः—

स्थूलोऽभ्युन्नतकण्ठो यो भद्रः कृष्णगलः स्मृतः।
कृष्णमूर्धा गलान्तं यः स सम्पूर्ण इति स्मृतः।।
करटान्तौ सितौ यस्य कृष्णो बिन्दुर्गले तथा।
स रिक्त इति निर्दिष्टः पीतो गोपीतकः स्मृतः।।
नामानुरूपेण फलं विहगानां विनिर्दिशेत्।। इति।।२-३।।

अथ कस्मिन् स्थाने दृष्टः कीदृक् फलं करोतीत्याह—

**अथ मधुरसुरभिफलकुसुमतरुषु सलिलाशयेषु पुण्येषु।**
**करितुरगभुजगमूर्ध्नि प्रासादोद्यानहर्म्येषु ॥४॥**

**गोगोष्ठसत्समागमयज्ञोत्सवपार्थिवद्विजसमीपे ।**
**हस्तितुरङ्गमशालाच्छत्रध्वजचामराद्येषु ॥५॥**

**हेमसमीपसिताम्बरकमलोत्पलपूजितोपलिप्तेषु ।**
**दधिपात्रधान्यकूटेषु च श्रियं खञ्जनः कुरुते ॥६॥**

मधुर तथा सुगन्धयुत फल और फूलों से युत वृक्ष पर, पवित्र जलाशय में हाथी, घोड़ा या सर्पों के मस्तक पर, देवालय, फुलवाड़ी या कोठे पर, गाय, गोठ, सज्जनों के समागम स्थान, यज्ञ, विवाह आदि उत्सव स्थान, राजा या ब्राह्मणों के समीप, हाथी, घोड़ा, छत्र, ध्वजा, चामर आदि पर, सुवर्ण के समीप, कमल, नीलकमल, पूजित और लिपे हुये स्थान पर, दही के पात्र या धान्य के ढेर पर खञ्जन पक्षी दिखाई दे तो देखने वाले का शुभ होता है।।४-६।।

अथैतेषु स्थानेषु दृष्टः खञ्जनकः श्रियं लक्ष्मीं कुरुते विदधाति। केषु, कथम्? **मधुरेति**। अथशब्दः प्रकाराय। मधुराणि स्वादूनि। सुरभीणि सुगन्धानि फलानि, कुसुमानि पुष्पाणि येषु तरुषु वृक्षेषु। तथा पुण्येषु सलिलाशयेषु जलाधारेषु। तथा करिणां हस्तिनाम्, तुरङ्गाणामश्वानाम्, भुजगानां सर्पाणां मूर्धसु मस्तकेषु। तथामरप्रासादेषु देवगृहेषु। उद्यानेषूपवनेषु। हर्म्येषु अट्टालिकासु।

तथा गोरुपरि। गोष्ठे गवां स्थाने। सतां साधूनां यत्र समागमः। यज्ञो यागः। उत्सवो विवाहादि। पार्थिवो राजा। द्विजो ब्राह्मणः। एषां समीपे सन्निधौ। हस्तिशालासु गजशालासु। अश्वशालासु। छत्रमातपत्रम्। ध्वजश्चिह्नविशेषः प्रसिद्धः। चामरं बालव्यजनम्। आदिग्रहणाद् भृङ्गारकुम्भतालवृन्तादयः। एतेष्वपि।

तथा हेमसमीपे सुवर्णसन्निधौ। सिताम्बरं श्वेतवस्त्रम्। कमलं पद्मम्। उत्पलं नीलोत्पलम्। पूजितेष्वर्चितेषु। उपलिप्तेषु संस्कृतेषु स्थानेषु। दधिपात्रे दधिभाजने। धान्यकूटे धान्यराशौ। एतेष्विति।।४-६।।

अन्येष्वप्याह—

**पङ्के स्वाद्वन्नाप्तिर्गोरससम्पच्च गोमयोपगते।**
**शाद्वलगे वस्त्राप्तिः शकटस्थे देशविभ्रंशः ॥७॥**

**गृहपटलेऽर्थभ्रंशो बध्रे बन्धोऽशुचौ भवति रोगः ।**
**पृष्ठे त्वजाविकानां प्रियसङ्गममावहत्याशु ॥८॥**

यदि कीचड़ में बैठा हुआ खञ्जन दिखाई दे तो स्वादिष्ट भोजन मिलता है। गोबर पर दिखाई दे तो दूध, दही, घृत काफी मिलता है। दूब पर दिखाई दे तो वस्त्रलाभ होता है और गाड़ी पर दिखाई दे तो देश का नाश होता है। घर की छत पर खञ्जन दिखाई दे तो धन का नाश, चमड़े की बनी हुई छेद वाली वस्तु पर दिखाई दे तो बन्धन, अपवित्र स्थान पर दिखाई दे तो रोग, छाग या भेड़ के ऊपर दिखाई दे तो बहुत जल्दी मित्रसमागम होता है।।७-८।।

पङ्कः कर्दमस्तत्र संस्थे खञ्जनके स्वाद्वन्नाप्तिः मृष्टभोजनलाभः। तथा गोमयोपगते गोमयनिचयस्थे गोरससम्पन्मथितबाहुल्यम्। शाद्वलगे दूर्वास्थे वस्त्राप्तिरम्बरलाभः। शकटस्थे शकटारूढे देशस्य विभ्रंशो नाशः।

गृहपटले गृहच्छादने अर्थस्य वित्तस्य भ्रंशो नाशः। बध्रे चर्ममये बन्धो बन्धनम्। अशुचावशुद्धे स्थाने रोगो भवति। अजश्छागः। अविः प्रसिद्धः। अजाविकानां पृष्ठे उपरि स्थिते आशु क्षिप्रमेव प्रियसङ्गमं वल्लभसमायोगमावहति करोति।।७-८।।

अन्यदप्याह—

**महिषोष्ट्रगर्दभास्थिश्मशानगृहकोणशर्कराट्टस्थः ।**
**प्राकारभस्मकेशेषु चाशुभो मरणरुग्भयदः ॥९॥**

भैंस, ऊँट, गदहा, श्मशान, घर का कोना, मिट्टी का ढेला, अटारी, घेरे की दीवाल, भस्म और केश पर यदि खञ्जन दिखाई दे तो मरण और रोगभयरूप अशुभ फल होता है।

एतेषु स्थानेषु खञ्जनको दृष्टः स चाशुभः प्राग्लक्षणो न भवति तदा मरणरुग्भयदः। द्रष्टुर्मरणं मृत्युं रुग्भयं च ददाति। केषु स्थानेषु? महिषे। उष्ट्रे करभे। गर्दभे खरे। अस्थि-श्मशाने पितृवने। गृहकोणे वेश्माग्रे। शर्करे मृत्खण्डे। अट्टे अट्टालके। प्राकारभित्तौ। भस्मनि। केशेषु। एतेषु स्थानेषु।।९।।

अन्यदपि लक्षणमाह—

**पक्षौ धुन्वन्नशुभः शुभः पिबन् वारि निम्नगासंस्थः ।**
**सूर्योदये प्रशस्तो नेष्टफलः खञ्जनोऽस्तमये ॥१०॥**

दोनों पंखों को हिलाता हुआ खञ्जन दिखाई दे तो शुभ नहीं है। नदी में ( कोई-कोई 'वारिवाहस्थः = पानी जाने वाले प्रदेश में' ऐसा पाठ मानते हैं ) पानी पीता हुआ दिखाई दे तो शुभ होता है। यदि सूर्योदय काल में खञ्जन दिखाई दे तो शुभ और अस्त काल में दिखाई दे तो अशुभ फल देने वाला होता है।।१०।।

पक्षावङ्गरुहौ धुन्वन् कम्पयन्नशुभोऽनिष्टफलदः। निम्नगा नदी तत्रस्थो वारि जलं

पिबन् शुभ इष्टफलः। केचिद्वारिवाहस्थ इति पठन्ति। वारिवाहे जलगमनप्रदेशे वारि पिबन्। सूर्योदये रव्युदयकाले खञ्जनकः प्रशस्तः शुभफलदः। सूर्यास्तमये नेष्टफलोऽशुभ इति।

अन्यदप्याह—

**नीराजने निवृत्ते यया दिशा खञ्जनं नृपो यान्तम्।**
**पश्येत्तया गतस्य क्षिप्रमरातिर्वशमुपैति ॥११॥**

नीराजन करने के बाद राजा जिस दिशा में जाते हुये खञ्जन को देखे, उस दिशा में गमन करने से शत्रु शीघ्र ही वश में हो जाता है।।११।।

निवृत्ते परिसमाप्ते नीराजने नृपो राजा यया दिशा आशया खञ्जनं यान्तं पश्येदवलोकयेत्तया गतस्य राज्ञोऽरातिः शत्रुः। क्षिप्रमाश्वेव वशमुपैति वश्यतां गच्छति।।११।।

अथ प्रत्यप्रदर्शनार्थमाह—

**तस्मिन्निधिर्भवति मैथुनमेति यस्मिन्**
**यस्मिंस्तु छर्दयति तत्र तलेऽस्ति काचम्।**
**अङ्गारमप्युपदिशन्ति पुरीषणेऽस्य**
**तत्कौतुकापनयनाय खनेद् धरित्रीम् ॥१२॥**

जिस स्थान पर खञ्जन मैथुन करता है, उसके नीचे निधि ( खजाना ), जहाँ पर वमन करता है उसके नीचे कांच और जहाँ पर टट्टी करता है उसके नीचे कोयला होता है। इस कौतुक को हटाने के लिये ( परीक्षा के लिए ) वहाँ की पृथ्वी खोदे।।१२।।

यस्मिन् स्थाने मैथुनमेति गच्छति तत्र तस्मिन् भूमिप्रदेशे निधिर्निधानं भवति। यस्मिंस्तु छर्दयति वमति तत्र तले काचमस्ति विद्यते। अस्य खञ्जनकस्य पुरीषणे यत्र पुरीषं हदनं करोति तत्र भूमौ तले अङ्गारमप्युपदिशन्ति कथयन्ति। मुनयः काश्यपादयः। तथा च काश्यपः—

मैथुनं कुरुते यत्र तत्र वै निधिमादिशेत्।
भुक्तं छर्दयते यत्र तत्र काचमधो भवेत्।।
पुरीषं यत्र कुरुते तत्राङ्गारं विनिर्दिशेत्।

तत्कौतुकापनयनाय खनेद्धरित्रीम्। तस्य कौतुकस्य कुतुकस्यापनयनाय निवारणाय धरित्रीं भूमिं खनेत्। येन प्रत्यय उत्पद्यते।।१२।।

अथान्यच्छुभाशुभमाह—

**मृतविकलविभिन्नरोगितः स्वतनुसमानफलप्रदः खगः।**
**धनकृदभिनिलीयमानको वियति च बन्धुसमागमप्रदः॥१३॥**

यदि मरा हुआ खञ्जन दिखाई दे तो देखने वाले की मृत्यु, विकल दिखाई दे तो देखने वाले को वैकल्य और रुग्ण दिखाई दे तो देखने वाले को रोग होता है। यदि

सम्मुख में होकर घर में प्रवेश करता हुआ दिखाई दे तो धन करने वाला और आकाश में उड़ता हुआ दिखाई दे तो बन्धु-समागम होता है।।१३।।

खग: पक्षी खञ्जनको मृतविकलविभिन्नरोगित: स्वतनुसमानमात्मीयशरीरतुल्यं फलं ददाति। तद्यथा—मृतो यदि दृश्यते तदा द्रष्टुर्मरणमेव ददाति। एवं विकलोऽङ्गवैकल्यम्। विभिन्नशरीरो भेदनम्। रोगित: सञ्जातरोगो रोगमेव ददाति। **धनकृदभिनिलीयमानक इति**। अभिमुख्येन निलीयमान आलयं प्रविशन् धनकृत् धनसंश्लेषं कुरुते। वियत्याकाशे उड्डीनमाने बन्धुसमागमप्रदो बन्धुभि: सह संयोगं ददाति।।१३।।

अथ खञ्जनदृष्टे विधानमाह—

**नृपतिरपि शुभं शुभप्रदेशे खगमवलोक्य महीतले विदध्यात्।**
**सुरभिकुसुमधूपयुक्तमर्घं शुभमभिनन्दितमेवमेति वृद्धिम् ॥१४॥**

राजा शुभ प्रदेश में शुभ लक्षणयुत खञ्जन पक्षी को भी देखकर सुगन्धयुत पुष्प और धूपयुत अर्घ देवे। इस तरह करने से सम्मानित शुभ फल की वृद्धि होती है।।१४।।

नृपती राजा शुभे प्रदेशे शुभं प्रशस्तलक्षणमपि खगं पक्षिणमवलोक्य दृष्ट्वा महीतले भूपृष्ठे सुरभिकुसुमधूपयुक्तमर्घम्, सुरभीणि सुगन्धीनि यानि कुसुमानि पुष्पाणि तथा सुगन्धा ये धूपास्तै: संयुक्तमर्घं विदध्याद् दापयेत्। एवमनेन प्रकारेण शुभं फलमभिनन्दितं सम्मानितं वृद्धिमेति वृद्धिं गच्छति।।१४।।

अथाशुभे खञ्जनके दृष्टे विधानमाह—

**अशुभमपि विलोक्य खञ्जनं द्विजकुरुसाधुसुरार्चने रत:।**
**न नृपतिरशुभं समाप्नुयान्न यदि दिनानि च सप्त मांसभुक् ॥१५॥**

अशुभ फल देने वाले खञ्जन को देख कर भी राजा यदि ब्राह्मण, गुरु, सज्जन और देवताओं के पूजन में निरत हो जाय एवं सात दिन तक यदि मांस-भक्षण न करे तो उसे किसी प्रकार का अशुभ फल प्राप्त नहीं होता।।१५।।

नृपती राजा अशुभमपि अनिष्टफलमपि खञ्जनं विलोक्य दृष्ट्वा यदि द्विजानां ब्राह्मणानाम्, गुरूणामुपदेशकर्तृणाम्, साधूनां सज्जनानाम्, सुराणां देवानाम्, अर्चने रत: सक्तो भवति, तदा नाशुभमनिष्टफलं समाप्नुयात् प्राप्नोति। यदि सप्त दिनानि सप्ताहं मांसभुग् न भवति। मांसं यदि न भुङ्क्ते नाश्नाति।।१५।।

तथा कालप्रदर्शनार्थमाह—

**आवर्षात् प्रथमे दर्शने फलं प्रतिदिनं तु दिनशेषात्।**
**दिक्स्थानमूर्तिलग्नर्क्षशान्तदिप्तादिभिश्चोह्यम् ॥१६॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां खञ्जनकलक्षणाध्याय: पञ्चचत्वारिंश: ॥४५॥**

खञ्जन के प्रथम दर्शन का फल एक वर्ष में होता है। बाद में प्रति दिन दर्शन का फल उसी दिन प्राप्त होता है। दिशा, स्थान, शरीराकृति, लग्न, नक्षत्र, शान्त और दीप्त दिशा आदि के अनुसार शुभाशुभ देखकर अपनी बुद्धि से फल कहना चाहिये।।१६।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां खञ्जनकलक्ष-**
**णाध्यायः पञ्चचत्वारिंशः ॥४५॥**



प्रथमं खञ्जनकस्य दर्शने आदावेव यस्मिन्नहनि दृश्यते तत्र यत्फलं शुभमशुभं वा तदाऽऽवर्षाद्वर्षं यावत्। वर्षमध्ये भवतीत्यर्थः। प्रतिदिनं तु यद्दर्शनफलं तद्दिनशेषात्तस्मिन्नेव दिनमध्ये भवति। तथा च काश्यपः—

प्रथमे दर्शने पाकमावर्षात् प्रवदेद् बुधः।
प्रतिदैवसिके वाच्यं दर्शनेऽस्तमये फलम्।। इति।

दिक्स्थानमूर्तिलग्नर्क्षशान्तदीप्तादिभिश्चोह्यम्, दिक् कस्यां दिशि स्थितः शुभायामशुभायां वा। तत्र पूर्वोत्तरैशान्यः स्वभावादेव शुभाः। शेषा अशुभाः। स्थानं यत्र स्थितः। 'अथ मधुरसुरभिः' इत्यादिना प्रदर्शितम्। मूर्तिः शरीराकारः—'स्थूलाऽभ्युन्नतकण्ठः' इत्यादि, 'मृतविकलविभिन्नरोगितः' इति च। लग्नं तत्काले कीदृशं शुभराशिशुभग्रहयुतं दृष्टं वा पापलग्नं पापयुतमवलोकितं वा। ऋक्षं नक्षत्रं ध्रुवमृदुदारुणोग्रक्षिप्रचरसाधारणादि। तत्र ध्रुवाणि मृदूनि च शस्तानि, क्षिप्रचरसाधारणानि मध्यानि, दारुणोग्राणि अशोभनानीति। तथा शान्तदीप्तादिभिः। स पक्षी किं शान्तायां दिशि स्थितः शान्तरवश्च, किं वा दीप्तायां दिशि स्थितो दीप्तरवश्च। आदिग्रहणादङ्गारिताभिधूमिता च दिग् ज्ञेया। एवमादिभिः शुभमशुभं व्यामिश्रं वा फलमूह्यम्। स्वबुद्ध्या तर्कणीयम्। एतदाचार्यः सविस्तरं शाकुने वक्ष्यति। वयमपि तत्रैव विशेषं व्याख्यास्याम इति।।१६।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहितावितौ खञ्जनकलक्षणं**
**नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥**



# अथोत्पाताध्यायः

अथोत्पाताध्यायो व्याख्यायते। तत्रादावेवागमवस्तुप्रदर्शनार्थमाह—

**यानत्रेरुत्पातान् गर्गः प्रोवाच तानहं वक्ष्ये।**
**तेषां संक्षेपोऽयं प्रकृतेरन्यत्वमुत्पातः ॥१॥**

महर्षि गर्ग ने जिन उत्पातों का वर्णन महामुनि अत्रि जी के समक्ष किया था, उन्हीं का संक्षेप रूप यहाँ है।।१।।

अत्रेर्मुनिप्रधानस्य यानुत्पातानद्भुतान् गर्गः प्रोवाचोक्तवान्, तानहं वक्ष्ये कथयिष्ये। तेषामुत्पातानामयं संक्षेपः समासः। **प्रकृतेरन्यत्वमुत्पात इति**। प्रकृतेः स्वभावादन्यत्वं वैपरीत्यं स एवोत्पात इति। तथा च समाससंहितायाम्—

यः प्रकृतिविपर्यासः सर्वः संक्षेपतः स उत्पातः।
क्षितिगगनदिव्यजातो यथोत्तरं गुरुतरो भवति।। इति।।१।।

कथमुत्पाता उत्पद्यन्त इत्याह—

**अपचारेण नराणामुपसर्गः पापसञ्चयाद्भवति।**
**संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्त उत्पाताः ॥२॥**

मनुष्यों के अविनय से पाप इकठ्ठे होते हैं, उन पापों से उपद्रव होते हैं। दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम उत्पात उन उपद्रवों को सूचित करते हैं।।२।।

नराणां पुरुषाणामपचारेणाविनयेन पापसञ्चयो भवति, पापसञ्चयादुपसर्गा उपद्रवाः। तथा च गर्गः—

अतिलोभादसत्याद्वा नास्तिक्याद्वाप्यधर्मतः।
नरापचारान्नियतमुपसर्गः प्रवर्तते।। इति।

ततो दिव्यान्तरिक्षभौमा उत्पाताः तानुपसर्गान् संसूचयन्ति। दिवि आकाशे भवा दिव्याः। अन्तरिक्षे भवा आन्तरिक्षाः। भूमौ भवा भौमा इति।।२।।

कथमुत्पाता उत्पद्यन्त इत्याह—

**मनुजानामपचारादपरक्ता देवताः सृजन्त्येतान्।**
**तत्प्रतिघाताय नृपः शान्तिं राष्ट्रे प्रयुञ्जीत ॥३॥**

मनुष्यों के अविनय से अप्रसन्न देवता गण उन उत्पातों को उत्पन्न करते हैं। उनके निवारण के लिये राजा को शान्ति करानी चाहिये।।३।।

मनुजानां मनुष्याणामपचारादविनयाद्देवताः सुरा अपरक्ता विरक्ता एतानुत्पातान्

सृजन्त्युत्पादयन्ति। तत्प्रतिघाताय तेषामुत्पातानां प्रतिघाताय निवारणाय नृपो राजा राष्ट्रे जनपदे शान्तिमुत्पातप्रतीकारं प्रयुञ्जीत कारयेदिति। तथा च गर्गः—

ततोऽपचारो मर्त्यानामपरज्यन्ति देवताः।
ते सृजन्त्यद्भुतान् भावान् दिव्यभूम्यन्तरिक्षजान्।।
त एव सर्वलोकानामुत्पाता देवनिर्मिताः।
विचरन्ति विनाशाय रूपैः सम्बोधयन्ति च।।
तान् शास्त्रनिर्गमाद्विप्राः पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा।
प्रवदन्ति तु मर्त्येषु हितार्थं श्रद्धयान्विताः।
ते तु सम्बोधिता विप्रैः शान्तये मङ्गलानि च।
श्रद्दधानाः प्रकुर्वन्ति न ते यान्ति पराभवम्।।
ये तु न प्रतिकुर्वन्ति क्रियामश्रद्धयान्विताः।
नास्तिक्यादथवा कोपाद्विनश्यन्त्यथवाऽचिरात्।। इति।।३।।

अधुना दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां प्रविभागमाह—

**दिव्यं ग्रहर्क्षविकृतमुल्कानिर्घातपवनपरिवेषाः।**
**गन्धर्वपुरपुरन्दरचापादि यदान्तरिक्षं तत्।।४।।**
**भौमं चरस्थिरभवं तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति।**
**नाभसमुपैति मृदुतां शाम्यति नो दिव्यमित्येके।।५।।**

सूर्य आदि ग्रह और नक्षत्रों के विकारयुत होने का नाम दिव्य; उल्का, निर्घात, विकारयुत वायु, सूर्य-चन्द्र का परिवेष, गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि ( रोहत, ऐरावत, दण्ड और परिघ ) से हुये उत्पातों का नाम आन्तरिक्ष एवं चलायमान वस्तु के स्थिर और स्थिर के चलायमान होने का नाम भौम उत्पात है। यह भौम उत्पात शान्ति से आहत होकर नष्ट हो जाता है, आन्तरिक्ष उत्पात शान्ति से कम हो जाता है और दिव्य उत्पात शान्ति से भी नष्ट नहीं होता। यह किसी-किसी आचार्य का मत है।।४-५।।

ग्रहाणामादित्यादीनामृक्षाणामश्विन्यादीनां च यद्वैकृतं विकारस्तद्दिव्यमुत्पातम्, यश्चोल्का-निर्घातः पवनो विकृतो वायुः, परिवेषः सूर्याचन्द्रमसोः, गन्धर्वपुरं गन्धर्वनगरम्, पुरन्दरचाप-मिन्द्रधनुः, आदिग्रहणाद्रोहितैरावतदण्डपरिघा गृह्यन्ते। एवमादि यत्तदान्तरिक्षमुत्पातम्।

**भौमं चरस्थिरभवमिति**। चराणां वस्तूनां स्थैर्यं स्थिराणां चरत्वं तदुद्भवं तदुत्पन्नं यत्तद्भौममुत्पातम्। तथा च गर्गः—

स्वर्भानुकेतुनक्षत्रग्रहतारार्कजेन्द्रजम्।
दिवि चोत्पद्यते यच्च तद्दिव्यमिति कीर्तितम्।।
वाय्वभ्रसन्ध्यादिग्दाहपरिवेषतमांसि च।
खपुरं चेन्द्रचापं च तद्विन्द्यादन्तरिक्षजम्।।

भूमावुत्पद्यते यच्च स्थावरं वाथ जङ्गमम्।
तदेकदैशिकं भौममुत्पातं परिकीर्तितम्।। इति।

तथा च समाससंहितायाम्—

दिव्यं ग्रहर्क्षजातं भुवि भौमं स्थिरचरोद्भवं यच्च।
दिग्दाहोल्कापतनं परिवेषाद्यं वियत्प्रभवम्।। इति।

तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति। तच्च भौमं शान्तिभिराहतं निवारितं शममुपैति शान्तिमुपगच्छति। नाभसमान्तरिक्षं शान्तिभिराहतं मृदुतामुपैति मन्दत्वं गच्छति। शाम्यति नो दिव्यमित्येके। दिव्यं शान्तिभिराहतं नो शाम्यति न शान्तिं यात्येवमित्येके केचिद्वदन्ति। तथा च काश्यपः—

भौमं शान्तिहतं नाशमुपगच्छति मार्दवम्।
नाभसं न शमं याति दिव्यमुत्पातदर्शनम्।। इति।।४-५।।

अथात्र स्वमतमाह—

**दिव्यमपि शममुपैति प्रभूतकनकान्नगोमहीदानैः।**
**रुद्रायतने भूमौ गोदोहात् कोटिहोमाच्च ॥६॥**

अधिक सुवर्ण, अन्न, गाय और पृथ्वी का दान करने से दिव्य उत्पात भी शान्त हो जाता है, फिर आन्तरिक्ष और भौम की तो बात ही क्या? अर्थात् वे दोनों तो शान्त होते ही हैं। शिवालय में भूमि पर गोदोहन और कोटिसंख्यक हवन से दिव्य उत्पात शान्त हो जाता है।।६।।

अपिशब्दः सम्भावनायां वर्तते। प्रभूतकनकान्नगोमहीदानैर्दिव्यमपि शममुपैति। कनकं सुवर्णम्। अन्नं भोज्यम्। गावो धेनवः। मही भूः। एषां प्रभूतैर्बहुभिः प्रदानैर्दिव्यमुत्पातं शममुपैति। अपि ग्रहणान्नाभसं भौमं च। तथा रुद्रायतने शिवगृहे। भूमाववनौ। गोदोहाद् गवां दोहनात्। कोटिहोमाच्च दिव्यमपि शममुपैति।।६।।

दैवमुत्पातं नृपतेः कतिविधं परिपाकमायातीत्याह—

**आत्मसुतकोशवाहनपुरदारपुरोहितेषु लोके च।**
**पाकमुपयाति दैवं परिकल्पितमष्टधा नृपतेः ॥७॥**

अपना शरीर, पुत्र, खजाना, वाहन, नगर, स्त्री, पुरोहित, जनपद—इन आठों में राजा दैव-कल्पित उत्पातों का फल प्राप्त करता है।।७।।

दैवमुत्पातं नृपते राज्ञोऽष्टधा परिकल्पितमष्टभिः प्रकारैः पाकमुपयाति फलं ददाति। तद्यथा—आत्मनि। सुते पुत्रे। कोशे भाण्डागारे। वाहनेष्वश्वादिषु। पुरे नगरे। दारेषु भार्यासु। पुरोहिते आचार्ये। एतेषु तथा लोके जनपदे। एवमष्टप्रकारम्। तथा च गर्गः—

पुरे जनपदे कोशे वाहनेऽथ पुरोहिते।
पुत्रेष्वात्मनि भृत्येषु पश्यते दैवमष्टधा।। इति।।७।।

अधुनोत्पातान् प्रदर्शयितुमाह—

**अनिमित्तभङ्गचलनस्वेदाश्रुनिपातजल्पनाद्यानि ।**
**लिङ्गार्चायतनानां नाशाय नरेशदेशानाम् ॥८॥**

शिवलिङ्ग, देवमूर्ति और देवस्थानों का विना कारण फटना, कम्पन होना, उनमें पसीना आना, उनका रोना, गिरना, उनमें शब्द होना आदि ( उनका वमन करना और खिसकना ) राजा और देश के नाश के लिये होता है।।८।।

लिङ्गं माहेश्वरम्। अर्चा सुरप्रतिमा। आयतनं देवनिर्मितं पुण्यस्थानम्। एषां लिङ्गार्चायतनानामनिमित्तं विना कारणं भङ्गः स्फोटनम्। चलनं कम्पनम्। स्वेदः प्रस्वेदः। अश्रु रोदनम्। निपातः पातनम्। जल्पनं सम्भाषणम्। आद्यग्रहणाद्वमनं प्रसर्पणं च। तथा च गर्गः—

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति वा।
मुहुर्नृत्यन्ति रोदन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति वा।।
उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति पतन्ति वा।
कूजन्ति विक्षिपन्ते च गात्रप्रहरणध्वजान्।।
अवाङ्मुखा वा तिष्ठन्ति स्थानात् स्थानं व्रजन्ति वा।
वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयो जलम्।।
प्रसर्पन्ति च जल्पन्ति वा चेष्टन्ते श्वसन्ति वा।
समन्ताद्यत्र दृश्यन्ते गात्रैर्वापि विचेष्टितैः।। इति।

एतानि सर्वाणि यथोक्तानि नरेशदेशानाम्। नरेशस्य राज्ञः। देशस्य जनपदस्य च नाशाय भवन्ति।।८।।

अथान्यदप्याह—

**दैवतयात्राशकटाक्षचक्रयुगकेतुभङ्गपतनानि ।**
**सम्पर्यासनसादनसङ्गश्च न देशनृपशुभदाः ॥९॥**

देवस्थानों में यात्रा के समय गाड़ी की धुरी, पहिया, युग ( जुआ ) या ध्वजा का भङ्ग होना, गिरना, उलटना, सादन या कहीं पर चिपट जाना देश और राजा के लिये शुभकारी नहीं हैं।।९।।

दैवतयात्रायां देवतोत्सवे। केचित् सुरयात्रायामिति पठन्ति। शकटस्याक्षस्य चक्रमध्यवर्तिनः काष्ठस्य चक्रस्य युगस्य केतोर्ध्वजस्य चैषां भङ्गः स्फोटनं पतनं वा। एतानि। तथा एतेषामेव सम्पर्यासनं परिवर्तनम्। सादनं सज्जनम्। सङ्ग आसक्तिः। यत्र कुत्रचिदेते सर्व एव न देशनृपशुभदाः। देशस्य जनपदस्य। नृपस्य च राज्ञो न शुभप्रदा इति।।९।।

अधुना यद्वैकृतं येष्वशुभदं तत्प्रदर्शयितुमाह—

**ऋषिधर्मपितृब्रह्मप्रोद्भूतं वैकृतं द्विजातीनाम् ।**
**यद्रुद्रलोकपालोद्भवं पशूनामनिष्टं तत् ॥१०॥**

गुरुसितशनैश्चरोत्थं पुरोधसां विष्णुजं च लोकानाम्।
स्कन्दविशाखसमुत्थं माण्डलिकानां नरेन्द्राणाम् ॥११॥

वेदव्यासे मन्त्रिणि विनायके वैकृतं चमूनाथे।
धातरि सविश्वकर्मणि लोकाभावाय निर्दिष्टम् ॥१२॥

देवकुमारकुमारीवनिताप्रेष्येषु वैकृतं यत् स्यात्।
तन्नरपतेः कुमारककुमारिकास्त्रीपरिजनानाम् ॥१३॥

रक्षः पिशाचगुह्यकनागानामेवमेव निर्दिष्टम्।
मासैश्चाप्यष्टाभिः सर्वेषामेव फलपाकः ॥१४॥

मुनि, धर्म, पिता और ब्रह्मा में उत्पन्न विकृति ब्राह्मणों को; महादेव और लोकपालों ( इन्द्र आदि ) में उत्पन्न विकृति पशुओं को; बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर में उत्पन्न विकृति पुरोहितों को; विष्णु में उत्पन्न विकृति मनुष्यों को; कार्तिकेय और विशाख देव में उत्पन्न विकृति मण्डलाधिप राजाओं को; वेदव्यास में उत्पन्न विकृति मन्त्री को; गणेश में उत्पन्न विकृति सेनापति को; ब्रह्मा और विश्वकर्मा में उत्पन्न विकृति मनुष्यों को; देवकुमारों में उत्पन्न विकृति राजकुमारों को; देवकुमारी में उत्पन्न विकृति राजकुमारियों को; देवाङ्गनाओं में उत्पन्न विकृति राजपत्नियों को एवं देवताओं के दास में उत्पन्न विकृति राजाओं के सेवकों को अशुभ फल प्रदान करने वाली होती है। इसी प्रकार राक्षसों में उत्पन्न विकृति राजकुमारों को, पिशाचों में उत्पन्न विकृति राजकुमारियों को, यक्षों में उत्पन्न विकृति राजपत्नियों को और नागों में उत्पन्न विकृति राजसेवकों को अशुभ फल देने वाली होती है। इन सभी उत्पातों का फल आठ महीने में घटित होता है।।१०-१४।।

ऋषयो मुनयः। धर्मो देवविशेषः। पितरः प्रसिद्धा भूतजना लेपमयाः कुत्रचित् क्रियन्ते। ब्रह्मा पितामहः। एतेषु यत्प्रोद्भूतमुत्पन्नं वैकृतं विकारस्तद् द्विजातीनां ब्राह्मणानामनिष्टमशुभप्रदमित्यर्थः।

यच्च रुद्रस्य महादेवस्य वैकृतं लोकपालादीनामिन्द्रादीनां च यद्वैकृतं तदुत्पन्नं तत्पशूनां चतुष्पदानामनिष्टमशुभम्।

गुरुर्जीवः। सितः शुक्रः। शनैश्चर आर्किः। तदुत्थं तत्सम्भवमनिष्टं पुरोधसां पुरोहितानाम्। विष्णुजं नारायणोद्भूतं वैकृतं लोकानां जनानामनिष्टम्। स्कन्दः कुमारः। विशाखो देवविशेषः। तत्समुत्थं तदुद्भूतं माण्डलिकानां मण्डलाधिपानां नरेन्द्राणां राज्ञामनिष्टम्।

वेदव्यासो व्यास एव। वेदव्यासे यद्वैकृतं तन्मन्त्रिणि सचिवे अनिष्टम्। विनायके गणपतौ वैकृतं तच्चमूनाथे सेनापतावनिष्टम्। धातरि प्रजापतौ सविश्वकर्मणि विश्वकर्मसहिते यद्वैकृतं तल्लोकानां जनानामभावाय विनाशाय निर्दिष्टं कथितम्।

देवकुमाराणां यद्वैकृतं तन्नरपतेः कुमाराणामनिष्टम्। एवं देवकुमारीणां यद्वैकृतं

तद्राजकुमारीणामनिष्टम्। देववनितानां सुरस्त्रीणां यद्वैकृतं तन्नृपस्त्रीणामनिष्टम्। देवप्रेष्याणां देवदासानां यद्वैकृतं भवेत्तद्राजदासानामनिष्टमिति।

रक्षो राक्षसः। पिशाचा देवयोनयः। गुह्यका यक्षाः। नागाः प्रसिद्धाः। एषां वैकृतमेवमेव वानेन प्रकारेण निर्दिष्टं कथितम्। एतदुक्तं भवति—रक्षःपिशाचगुह्यकनागानां ये कुमारकुमारीवनिताप्रेष्यास्तेषु यद्वैकृतं तन्नरपतेः कुमारकुमारिकास्त्रीपरिजनानामनिष्टम्। एषामुक्तानामुत्पातानां सर्वेषामष्टाभिर्मासैरतीतैः फलपाकः।।१०-१४।।

अथैतेषामुत्पातानां शान्त्यर्थमाह—

**बुद्ध्वा देवविकारं शुचिः पुरोधास्त्र्यहोषितः स्नातः।**
**स्नानकुसुमानुलेपनवस्त्रैरभ्यर्चयेत् प्रतिमाम् ॥१५॥**
**मधुपर्केण पुरोधा भक्ष्यैर्बलिभिश्च विधिवदुपतिष्ठेत्।**
**स्थालीपाकं जुहुयाद्विधिवन्मन्त्रैश्च तल्लिङ्गैः ॥१६॥**

देवता में विकृति को जानकर पवित्र, संयत, स्नान किया हुआ, तीन दिन तक व्रती पुरोहित को विकारयुक्त देवताओं को स्नान, पुष्प, चन्दन, वस्त्र, दही मिला हुआ भोजन पदार्थ और बलि आदि से विधिपूर्वक पूजन तथा स्थालीपाक ( चरु ) से तत्तद् देवता का मन्त्र पढ़ते हुये अग्नि में हवन करना चाहिये।।१५-१६।।

देवविकारं सुरवैकृतं बुद्ध्वा ज्ञात्वा। पुरोहितः। शुचिः शौचयुक्तः। समाहितः संयतः। स्नातश्च कृतस्नानः। त्र्यहोषितो दिनत्रयं कृतोपवासः। स्नानैः। कुसुमैश्च पुष्पैः। अनुलेपनैः समालम्भनैः। वस्त्रैरम्बरैः प्रतिमामुत्पन्नविकारामभ्यर्चयेत् पूजयेत्।

पुरोधाः पुरोहितो मधुपर्केण दध्ना संयुक्तेन भक्ष्यैर्मोदकैर्लोपिकापूपादिभिर्बलिभिरुपहारैश्च विधिवद्विधानेनोपतिष्ठेत् पूजयेत् स्थालीपाकं चरुं तल्लिङ्गैस्तदीयैर्मन्त्रैर्विधिवद्विधानेनाग्नौ जुहुयात्।।१५-१६।।

अथ कालप्रमाणं शान्तिप्रभावं चाह—

**इति विबुधविकारे शान्तयः सप्तरात्रं**
**द्विजविबुधगणार्चा गीतनृत्योत्सवाश्च।**
**विधिवदवनिपालैर्यैः प्रयुक्ता न तेषां**
**भवति दुरितपाको दक्षिणाभिश्च रुद्धः ॥१७॥**

पूर्वोक्त देवविकार होने पर राजा सात रात्रि तक ब्राह्मण और देवताओं की पूजा, गीत, नृत्य, रात्रि-जागरण आदि उत्सव करे। इस प्रकार जिन राजाओं द्वारा किया जाता है, उनको पूर्वोक्त शान्ति और दक्षिणा से रुद्ध उत्पात का अनिष्ट फल नहीं होता।।१७।।

इत्यनेन विधानेन विबुधविकारे सुरविकृतौ सप्तरात्रं सप्ताहं शान्तयः कर्तव्याः। द्विजातीनां ब्राह्मणानां विबुधानां देवानां गणानां गजवक्त्रप्रभृतीनाम्। अथवा द्विजगणानां

ब्राह्मणानां समूहानां विबुधगणानां देववृन्दानामर्चा पूजाः तथा गीतं नृत्यमुत्सवाश्च रात्रि-जागरणं कार्यम्। एते यैरवनिपालै राजभिर्विधिवत्सम्यग्विधानेन प्रयुक्ताः कारिताः तेषां राज्ञां दुरितपाक उत्पातानिष्टफलं न भवति। यतो दक्षिणाभिश्च रुद्धो निवारित इति।।१७।।

## इति लिङ्गवैकृतम्

●

अथान्यानुत्पातानाह—

**राष्ट्रे यस्यानग्निः प्रदीप्यते दीप्यते च नेन्धनवान्।**
**मनुजेश्वरस्य पीडा तस्य च राष्ट्रस्य विज्ञेया ॥१८॥**

जिस राजा के राज्य में विना अग्नि की ज्वाला दिखाई दे और काष्ठयुत अग्नि प्रज्ज्वलित न हो तो उस राजा और देश को पीड़ा होती है।।१८।।

यस्य मनुजेश्वरस्य राज्ञो राष्ट्रे जनपदे अनग्निः प्रदीप्यते विनाग्निना ज्वाला दृश्यते। तथेन्धनवान् काष्ठयुक्तोऽग्निर्न दीप्यते न ज्वलति। यत्रैवं तत्र मनुजेश्वरस्य राज्ञस्तस्य च राष्ट्रस्य देशस्य पीडा विज्ञेया ज्ञातव्या।।१८।।

अन्यदाह—

**जलमांसार्द्रज्वलने नृपतिवधः प्रहरणे रणो रौद्रः।**
**सैन्यग्रामपुरेषु च नाशो वह्नेर्भयं कुरुते ॥१९॥**

जल, मांस और गीली वस्तु में अकारण जलन उत्पन्न हो तो राजा की मृत्यु, खड्ग आदि में जलन उत्पन्न हो तो भयंकर युद्ध और सेनाओं या नगर में अग्नि नहीं मिले तो अग्नि का भय होता है।।१९।।

जलमुदकम्। मांसमामिषम्। आर्द्रमशुष्कं यत्किञ्चित्। एषां ज्वलने नृपतिवधो राज्ञो मरणम्। प्रहरणे आयुधे खड्गादौ ज्वलिते रौद्रो घोरो रणः सङ्ग्रामः। सैन्ये सेनायाम्। ग्रामे। पुरे च नगरे। एतेषु वह्नेरग्नेर्नाशोऽनुपलब्धिः। वह्निभयमग्निभीतिं कुरुते।।१९।।

अथान्यत्—

**प्रासादभवनतोरणकेत्वादिष्वननलेन दग्धेषु।**
**तडिता वा षण्मासात् परचक्रस्यागमो नियमात् ॥२०॥**

प्रासाद ( देवगृह ), घर, तोरण या ध्वज अग्नि के विना या बिजली से दग्ध हो जायँ तो छः मास बाद निश्चय ही दूसरे राजा की सेनाओं का आगमन होता है।।२०।।

प्रासादो देवगृहम्। भवनं वेश्म। तोरणं प्रसिद्धम्। केतुर्ध्वजः। आदिग्रहणात् कोष्ठागारकुशूलादयः। एतेष्वननलेन विनाऽग्निना दग्धेषु। तडिता वा विद्युता वा दग्धेषु सत्सु षण्मासात् षड्भिर्मासैः परतो नियमान्निश्चयात् परचक्रस्यान्यनृपसैन्यस्याऽऽगमो भवति।।२०।।

अथान्यत्—

**धूमोऽनग्निसमुत्थो रजस्तमश्चाह्निजं महाभयदम्।**
**व्यभ्रे निश्युडुनाशो दर्शनमपि चाह्नि दोषकरम् ॥२१॥**

अग्नि के विना धूम अथवा दिन में धूली या अन्धकार दिखाई दे तो अधिक भय होता है तथा रात्रि के समय मेघरहित आकाश में नक्षत्रों का अदर्शन और दिन में दर्शन हो तो अधिक भयकारी होता है।।२१।।

अनग्निसमुत्थो धूमो विनाग्निना यत्र धूमो दृश्यते। तथा अह्निजं दिनसम्भवं रजो धूलिस्तमोऽन्धकारश्च तन्महाभयदं महद्भयं ददाति। तथा च गर्गः—

अनिशानि तमांसि स्युर्यदि वा पांशवो रजः।
धूमश्चानग्निना यत्र तत्र विन्द्यान्महद्भयम्।। इति।

व्यभ्रे निश्युडुनाशः। निशायां रात्रौ व्यभ्रे विगतमेघे उडूनां नक्षत्राणां नाशोऽदर्शनम्। तथा सत्यादित्ये दिने नक्षत्राणां दर्शनम्। एतद्दोषकरम्। दोषान् करोति महाभयमित्यर्थः।।२१।।

अथान्यदाह—

**नगरचतुष्पादण्डजमनुजानां भयकरं ज्वलनमाहुः।**
**धूमाग्निविस्फुलिङ्गैः शय्याम्बरकेशगैर्मृत्युः ॥२२॥**

नगर, पशु, पक्षी या मनुष्यों में अग्नि के विना जलन पैदा हो तो अधिक भयकारी होता है। शय्या, वस्त्र या केशों में धूम, अग्नि की ज्वाला या अग्नि की चिनगारियाँ दिखाई दें तो स्वामी की मृत्यु होती है।। २२।।

नगराणां पुराणाम्। चतुष्पदानां गवादीनाम्। अण्डजानां पक्षिणाम्। मनुष्याणां मनुजानाम्। ज्वलनं सज्वालत्वं महाभयकरमित्याहुरुक्तवन्तो मुनयः। शय्या आस्तरणम्। अम्बरं वस्त्रम्। केशा मूर्धजाः। शय्याम्बरकेशगैर्धूमाग्निविस्फुलिङ्गैः, धूमः प्रसिद्धः। अग्निर्ज्वालारूपः, विस्फुलिङ्गा अग्निकणाः, एतैर्दृष्टैस्तत्स्वामिनो मृत्युर्भवति। तथा च गर्गः—

शयनासनयानेषु केशप्रावरणेषु च।
दृश्यन्ते विस्फुलिङ्गा वा धूमो वा मरणाय तत्।। इति।।२२।।

यथान्यत्—

**आयुधज्वलनसर्पणस्वनाः कोशनिर्गमनवेपनानि वा।**
**वैकृतानि यदि वायुधेऽपराण्याशु रौद्ररणसङ्कुलं वदेत् ॥२३॥**

खड्ग आदियों में जलन उत्पन्न होना, उनका चलायमान होना, उनमें शब्द होना, उनका म्यान से निकल आना अथवा शस्त्र में अन्य किसी प्रकार का विकार उत्पन्न होना—ये सब शीघ्र ही राज्य में भयङ्कर संग्राम कराते हैं।।२३।।

आयुधानां खड्गादीनां ज्वलनम्। सर्पणं गमनम्। स्वनाः शब्दाः। एते यदि भवन्ति।

कोशः परिधारकस्तस्मान्निर्गमनं निष्क्रमणम्। वेपनं कम्पनम्। एतानि वा भवन्ति। अथवायुधेऽपराण्यन्यानि वैकृतानि विकाराणि जल्पितहसितरुदितानि भवन्ति। तदाऽऽशु क्षिप्रमेव रौद्रं रणसङ्कुलं क्रूरं युद्धं निकटवर्ति वदेद् ब्रूयात्। भयावहः सङ्ग्रामो भवतीत्यर्थः। ननु—'जलमांसार्द्रज्वलने नृपतिबधः प्रहरणे रौद्रः' इत्यस्य निदेशस्य—

आयुधज्वलनसर्पणस्वनाः केशनिर्गमनवेपनानि वा।
वैकृतानि यदि वायुधेऽपराण्याशु रौद्ररणसङ्कुलं वदेत्।।

इत्यनेन सह केचिद् द्विरुक्तिं चोदयन्ति, यथा यत्प्रहरणज्वलने फलमुक्तं तदेवायुधज्वलने, न च प्रहरणानामायुधानां च भेदोऽस्तीति।

अत्रोच्यते, नग्नजिता चित्रलक्षणे आयुधानां त्रयो भेदा अभिहिताः—प्रहरणानि, पाणिमुक्तानि, यन्त्रमुक्तानि चेति। तत्र प्रहरणानि खड्गादीनि, पाणिमुक्तानि चक्रादीनि, यन्त्रमुक्तानि अश्मशरास्त्रदण्डाश्चेति। योऽयमायुध इति संज्ञा सर्वव्यापिनी। यस्मादायुधानामेते प्रहरणादयो भेदाः। यद्यायुधनिर्देशेन प्राक् फलमभिधाय पश्चात् प्रहरणनिर्देशेन तदेव फलनिर्देशं करोति तदा गतार्थत्वाद् द्विरुक्तिदोषः स्यात्। अथ पुनः प्राक् प्रहरणनिर्देशेन फलमुक्तं पश्चादायुधनिर्देशेन प्रहरणनिर्देशेन च खड्गादीनामेव ग्रहणं स्यान्न पाणिमुक्तादीनामायुधभेदानामेतदाशङ्क्याऽऽचार्येण पुनरायुधज्वलनस्य फलमुक्तम्। तस्माद् द्विरुक्तिदोषो नात्रावगन्तव्य इति।

नन्वायुधसंज्ञा सर्वव्यापिनी। यदायुधग्रहणेनैव प्रहरणादीनि परिगृहीतानि। एवं च फलभेदोऽस्ति तस्मात् प्रहरणनिर्देशोऽतीव विरुध्यत इत्युच्यते। अयमाचार्यस्याभिप्रायो यथा पृथक् प्रहरणायुधनिर्देशाद् भेदो मया प्रदर्शितो भेदप्रज्ञापनार्थं प्रहरणनिर्देश इति।।२३।।

एषामुत्पातानां शान्तिमाह—

**मन्त्रैराग्नेयैः क्षीरवृक्षात् समिद्भिर्होतव्योऽग्निः सर्षपैः सर्पिषा च।**
**अग्न्यादीनां वैकृते शान्तिरेवं देयं चास्मिन् काञ्चनं ब्राह्मणेभ्यः ॥२४॥**

( इसी अध्याय के १८ वें श्लोक से लेकर यहाँ तक अग्निविकारजनित जो अशुभ फल कहे गये हैं, उनकी शान्ति के लिये ) आक की लकड़ी, सरसों और घृत से अग्नि में हवन करना चाहिये। इस तरह करने से अशुभ फल की शान्ति होती है। इस उत्पात में ब्राह्मणों को सुवर्ण-दक्षिणा देनी चाहिये।।२४।।

'राष्ट्रे यस्याग्निः प्रदीप्यते' इत्यत आरभ्य ये उत्पाताः कथितास्ते अग्न्यादयः। तेषामग्न्यादीनां वैकृते विकारे आग्नेयैरग्निदैवत्यैर्मन्त्रैः क्षीरवृक्षादर्कादिकात्समिद्भिः। सर्षपैः सिद्धार्थकैः। सर्पिषा च घृतेनाग्निर्हुताशनो होतव्यः। एवमनेन प्रकारेण शान्तिः। अस्मिन्नुत्पाते ब्राह्मणेभ्यो विप्रेभ्यः काञ्चनं सुवर्णं दक्षिणार्थं देयम्।।२४।।

**इत्यग्निवैकृतम्**

अथान्यानुत्पातानाह—

**शाखाभङ्गेऽकस्माद्वृक्षाणां निर्दिशेद्रणोद्योगम्।**
**हसने देशभ्रंशं रुदिते च व्याधिबाहुल्यम् ॥२५॥**

अचानक वृक्ष की शाखा टूट जाने से युद्ध की तैयारियाँ, वृक्षों के हँसने से देश का नाश और वृक्षों के रोने से व्याधि की अधिकता होती है।।२५।।

अकस्माद्वृक्षाणां शाखाभङ्गे शाखास्फोटने रणोद्योगं सङ्ग्रामविभ्रमं निर्दिशेद्वदेत्। तथा वृक्षाणामेव हसने देशभ्रंशं देशविनाशम्। रुदिते च रोदने वृक्षाणामेव व्याधिबाहुल्यं रोगप्राचुर्यम्।।२५।।

अथान्यदप्याह—

**राष्ट्रविभेदस्त्वनृतौ बालवधोऽतीव कुसुमिते बाले।**
**वृक्षात् क्षीरस्रावे सर्वद्रव्यक्षयो भवति ॥२६॥**

ऋतुवर्जित काल में वृक्षों में पुष्प और फलों की उत्पत्ति होने से राज्य में विभेद, छोटे वृक्ष में बहुत पुष्प आने से बालकों का नाश और वृक्षों से दूध निकलने पर द्रव्यों का नाश होता है।।२६।।

वृक्षाणामनृतावृतुवर्जिते काले पुष्पफलोद्गमे सम्भवे राष्ट्रस्य विभेदो भवति। बाले बालवृक्षे अतीव कुसुमिते सजातपुष्पे बालानां शिशूनां वधो मरणम्। तथा च गर्गः—

स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमनार्तवम्।
बालानां मरणं कुर्याद्बालानां फलपुष्पजम्।। इति।

तथा वृक्षात् द्रुमात्क्षीरस्रावे दुग्धे स्रुते सर्वद्रव्याणां क्षयो विनाशो भवति।।२६।।

अन्यदप्याह—

**मद्ये वाहननाशः संग्रामः शोणिते मधुनि रोगः।**
**स्नेहे दुर्भिक्षभयं महद्भयं निःस्रुते सलिले ॥२७॥**

वृक्ष से मद्य निकलने पर वाहनों ( अश्वादिकों ) का नाश, रक्त निकलने पर युद्ध, शहद निकलने पर रोग, तेल निकलने पर दुर्भिक्ष का भय और वृक्ष से जल निकलने पर अधिक भय होता है।।२७।।

वृक्षान्मद्ये निःस्रुते निर्गते वाहनानामश्वादीनां नाशः क्षयः। शोणिते रक्ते निःस्रुते संग्रामो युद्धं भवति। मधुनि माक्षिके निःस्रुते रोगो भवति। स्नेहे तैलादिके निःस्रुते दुर्भिक्ष-भयं भवति। सलिले जले निःस्रुते महदतुलं भयं भवति।।२७।।

अन्यदप्याह—

**शुष्कविरोहे वीर्यान्नसंक्षयः शोषणे च विरुजानाम्।**
**पतितानामुत्थाने स्वयं भयं दैवजनितं च ॥२८॥**

सूखे हुये वृक्षों में विरोह ( पुनः अङ्कुर ) होने से बल और अन्न का नाश तथा गिरे हुये वृक्षों के अपने-आप उठने से दैवजनित भय होता है।।२८।।

शुष्कविरोहे शुष्काणां नीरसानां वृक्षाणां विरोहे वीर्यान्नसंक्षय एव। पतितानां वृक्षाणां स्वयमात्मनैवोत्थाने ऊर्ध्वस्थितौ दैवजनितं दैवोत्पन्नं भयं भवति। चशब्दः समुच्चये।

अन्यदप्याह—

**पूजितवृक्षे ह्यनृतौ कुसुमफलं नृपवधाय निर्दिष्टम्।**
**धूमस्तस्मिन् ज्वालाऽथवा भवेन्नृपवधायैव ॥२९॥**

प्रधान वृक्ष में पुष्प और फलों की उत्पत्ति राजा के नाश के लिए और उस ( प्रधान वृक्ष ) पर धूप या अग्नि की ज्वाला भी राजा के नाश के लिये ही होती है।।२९।।

पूजितवृक्षे प्रधानतरौ अनृतौ कुसुमफलं कुसुमानां फलानां चोद्गमो नृपस्य राज्ञो वधाय नाशाय निर्दिष्टं कथितम्। अथवा तस्मिन् वृक्षे धूमो ज्वाला अथवा भवेत्तदा नृपवधायैव राजमृत्यवे भवति।।२९।।

अन्यदप्याह—

**सर्पत्सु तरुषु जल्पत्सु वापि जनसंक्षयो विनिर्दिष्टः।**
**वृक्षाणां वैकृत्ये दशभिर्मासैः फलविपाकः ॥३०॥**

वृक्षों के चलने या उनसे किसी प्रकार के शब्द निकलने पर मनुष्यों का नाश होता है। सभी वृक्षों के विकारजन्य फल दश मास में घटित होते हैं।।३०।।

तरुषु वृक्षेषु सर्पत्सु गच्छत्सु जल्पत्सु व्याहरत्सु वा जनानां लोकानां क्षयो विनाशो विनिर्दिष्टः कथितः। वृक्षाणां सर्वेषां वैकृत्ये विकारे दशभिर्मासैर्गतैः फलस्य विपाको भवति।।३०।।

अत्र शान्तिमाह—

**स्रग्गन्धधूपाम्बरपूजितस्य छत्रं विधायोपरि पादपस्य।**
**कृत्वा शिवं रुद्रजपोऽत्र कार्यो रुद्रेभ्य इत्यत्र षडेव होमाः ॥३१॥**

**पायसेन मधुनापि भोजयेद् ब्राह्मणान् घृतयुतेन भूपतिः।**
**मेदिनी निगदितात्र दक्षिणा वैकृते तरुकृते हितार्थिभिः ॥३२॥**

इस उत्पात में सुगन्ध द्रव्य, धूप और वस्त्रों से पूजित विकारयुत वृक्ष के ऊपर छत्र रखकर एकादश रुद्रों के मन्त्रों का जप करे। 'रुद्रेभ्यः स्वाहा' इस मन्त्र से केवल छः बार हवन करे, घृतयुत पायस से ब्राह्मणों को भोजन करावे; साथ ही इस वृक्षविकारजन्य उत्पात में प्राणियों के हितचिन्तक मुनियों ने दक्षिणा में पृथ्वी देने को कहा है।।३१-३२।।

पादपस्य वृक्षस्य स्रग्भिर्मालाभिः। गन्धैः सुगन्धद्रव्यैः। धूपैर्गुग्गुलप्रभृतिभिः। अम्बरै-

संघैः पूजितस्यार्चितस्योपरि मूर्द्धनि छत्रमातपत्रं विधाय दत्वा अत्रास्मिन्नुत्पातविषये रुद्राणां मन्त्राणामेकादशरुद्राणामनुवाकानां जपः कार्यः। रुद्रेभ्यः स्वाहा इत्यत्र षडेव होमाः कार्याः।

एवं कृत्वा शिवं श्रेयो भवति। भूपती राजा पायसेन क्षीरिण्या आज्यमिश्रेण ब्राह्मणान् द्विजान् भोजयेत्। अत्रास्मिंस्तरुकृते वृक्षजे वैकृते विकारे मधुना माक्षिकेण च घृतयुतेन हितार्थिभिर्मुनिभिर्मेदिनी भूर्दक्षिणा निगदिता उक्ता।।३१-३२।।

## इति वृक्षवैकृतम्

●

अथान्यानप्युत्पातानाह—

**नालेऽब्जयवादीनामेकस्मिन् द्वित्रिसम्भवो मरणम्।**
**कथयति तदधिपतीनां यमलं जातं च कुसुमफलम् ॥३३॥**

कमल, जौ आदि ( गेहूँ और कौनी ) के एक नाल में दो या तीन बाल की उत्पत्ति हो तो क्षेत्र के अधिपति का मरण होता है तथा यमल पुष्प या फलों की उत्पत्ति हो तो भी उसके अधिपति का मरण होता है।।३३।।

अब्जानि पद्मादीनि। यवाः प्रसिद्धाः। आदिग्रहणाद् गोधूमप्रियङ्गुधान्यानि। एतेषामन्यतमस्यैकस्मिन्नाले द्वित्रिसम्भवो द्वौ त्रयो वा भवन्ति, तदा तदधिपतीनां तेषां यवादीनामधिपतयः स्वामिनस्तेषां मरणं कथयत्याचष्टे। तथा यमलं द्विगुणितम्। द्विपुटादिवर्जं पद्मं कुसुमं पुष्पं फलं च जातम् तदा तदधिपतीनां मरणमेव कथयति।।३३।।

अन्यदप्याह—

**अतिवृद्धिः सस्यानां नानाफलकुसुमसम्भवो वृक्षे।**
**भवति हि यद्येकस्मिन् परचक्रस्यागमो नियमात् ॥३४॥**

यदि धान्यों की अधिक वृद्धि तथा एक वृक्ष में अनेक प्रकार के फल और पुष्पों की उत्पत्ति हो तो निश्चय ही परचक्र का आगम होता है।।३४।।

सस्यानामतीवात्यर्थं वृद्धिर्बाहुल्यम्। एकस्मिन् वृक्षे तरौ नानाविधानां बहुप्रकाराणां फलानां कुसुमानां पुष्पाणां च सम्भव उत्पत्तिर्यद्येवं भवति, तदा नियमान्निश्चयात् परचक्रस्याऽऽगमो भवति।।३४।।

अन्यदप्याह—

**अर्धेन यदा तैलं भवति तिलानामतैलता वा स्यात्।**
**अन्नस्य च वैरस्यं तदा तु विन्द्याद् भयं सुमहत् ॥३५॥**

यदि तिल के परिमाण से आधे तेल का परिमाण हो या तिल से बिलकुल तेल नहीं निकलता हो और अन्न में विरसता मालूम हो तो अति भय होता है।।३५।।

तिलानामर्धेन यदा तैलं भवति यावत्प्रमाणं तैलं प्राप्तं तदर्धं भवतीत्यर्थः। अथवा

अतैलता तैलाभावः स्याद् भवेत्। अन्नस्य भोज्यस्य च वैरस्यं विरसत्वं तदा सुमहद्भयं विन्द्याज्जानीयात्। अतीव भवतीत्यर्थः।।३५।।

अथैषामुत्पातानां शान्तिमाह—

**विकृतकुसुमं फलं वा ग्रामादथवा पुराद्बहिः कार्यम्।**
**सौम्योऽत्र चरुः कार्यो निर्वाप्यो वा पशुः शान्त्यै ॥३६॥**

**सस्ये च दृष्ट्वा विकृतिं प्रदेयं तत्क्षेत्रमेव प्रथमं द्विजेभ्यः।**
**तस्यैव मध्ये चरुमत्र भौमं कृत्वा न दोषं समुपैति तज्जम् ॥३७॥**

विकारयुत पुष्प और फलों को गाँव से बाहर कर देना चाहिये तथा सोम देव की चरु बनानी चाहिये और शान्ति के लिये बकरा भी दान करना चाहिये। धान्यों में पूर्वोक्त विकार देखकर पहले उस क्षेत्र को ही ब्राह्मण के लिए दे देना चाहिये और उसी क्षेत्र के मध्य में पार्थिव चरु बनाने से भूमि से उत्पन्न दोष स्वामी को नहीं प्राप्त होता है।।३६-३७।।

विकृतं सविकारं कुसुमं पुष्पं फलं वा ग्रामात् पुराद् नगराद्वा बहिः कार्यम्। गृहीत्वा वा त्यजेत्। अत्रास्मिन् उत्पाते सौम्यः सोमदैवत्यश्चरुः कार्यः। तथा पशुश्छागः शान्त्यै शान्त्यर्थे निर्वाप्यो देयः। वाशब्दोऽत्र समुच्चये।

सस्ये च विकृतिं विकारं दृष्ट्वा विलोक्य तत्क्षेत्रं प्रथममादौ द्विजेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो देयम्। अत्रास्मिन्नुपसर्गे तस्यैव क्षेत्रस्यैव मध्ये भौमं भूमिदैवतं पार्थिवं चरुं कृत्वा तज्जं भूमिजं दोषं स्वामी न समुपैति न प्राप्नोति।।३६-३७।।

**इति सस्यवैकृतम्**

अथान्यानुत्पातानाह—

**दुर्भिक्षमनावृष्टावतिवृष्टौ क्षुद्भयं परभयं च।**
**रोगो ह्यनृतुभवायां नृपतिवधोऽनभ्रजातायाम् ॥३८॥**

अनावृष्टि हो तो दुर्भिक्ष, अतिवृष्टि हो तो दुर्भिक्ष तथा शत्रुभय, वर्षा ऋतु से भिन्न ऋतु में वृष्टि हो तो रोग और विना मेघ की वृष्टि हो तो राजा की मृत्यु होती है।।३८।।

अनावृष्टौ दुर्भिक्षं भवति। अतिवृष्टावतिवर्षणे क्षुद्भयं दुर्भिक्षभयं परभयं च भवति। अनृतुभवायां वर्षाकालं वर्जयित्वा अन्यस्मिन्नृतौ वृष्टौ रोगो भवति। अनभ्रजातायां मेघं विनोत्पन्नायां वृष्टौ नृपतिवधो राज्ञो मरणं भवति।।३८।।

अथान्यानप्याह—

**शीतोष्णविपर्यासो नो सम्यगृतुषु च सम्प्रवृत्तेषु।**
**षण्मासाद्राष्ट्रभयं रोगभयं दैवजनितं च ॥३९॥**

शीत और उष्ण में व्यत्यय होने पर अर्थात् गर्मी के समय में ठण्ढी और ठण्ढ के समय में गर्मी पड़ने पर तथा जिस ऋतु का जो धर्म है वह ठीक-ठीक नहीं होने से छः मास बाद राष्ट्र-भय और दैव-जनित ( पूर्व-जन्मार्जित पाप के द्वारा ) रोग-भय होता है।

ऋतुषु शिशिरादिषु सम्यक् च न प्रवृत्तेषु। गणितदृष्ट्या न प्रवर्तितेषु शीतोष्णविपर्यासो व्यत्ययः। उष्णकाले शीतत्वं शीतकाले उष्णत्वम्। षण्मासादनन्तरं राष्ट्रभयं भवति। तथा दैवजनितं प्राक्कर्मार्जितं रोगभयं भवति।।३९।।

अन्यदप्याह—

**अन्यर्त्तौ सप्ताहं प्रबन्धवर्षे प्रधाननृपमरणम्।**
**रक्ते शस्त्रोद्योगो मांसास्थिवसादिभिर्मरकः ॥४०॥**

**धान्यहिरण्यत्वक्फलकुसुमाद्यैर्वर्षितैर्भयं विन्द्यात्।**
**अङ्गारपांशुवर्षे विनाशमायाति तन्नगरम् ॥४१॥**

वर्षा से भिन्न ऋतु में लगातार एक सप्ताह तक वृष्टि होने पर प्रधान राजा का मरण, रक्त की वृष्टि होने पर युद्ध और मांस, हड्डी, वसा आदि ( घृत और तेल ) की वृष्टि होने पर मरी ( मरकी ) पड़ती है। धान्य, सोना, वृक्ष की छाल, फल, पुष्प, आदि ( पत्र आदि ) की वृष्टि हो तो भय एवं कोयले और धूली की वृष्टि हो तो नगर का नाश होता है।।४०-४१।।

वर्षाकालं वर्जयित्वा अन्यस्मिन्नृतौ सप्ताहं सप्तदिनानि प्रबन्धवर्षे सततायां वृष्टौ प्रधानस्य नृपस्य राज्ञो मरणं भवति। रक्तं वृष्टे शस्त्रोद्योगः सङ्ग्रामो भवति। मांसास्थिवसादिभिः, मांसमामिषम्, अस्थि प्रसिद्धम्, वसा मज्जा, आदिग्रहणात् घृततैलं गृह्यते। एतैर्वृष्टैर्मरको भवति जनानां मरणम्।

धान्यं शालयः। हिरण्यं सुवर्णादि। त्वग्वृक्षसम्भवैव। फलं प्रसिद्धमेव। कुसुमं पुष्पम्। आदिग्रहणात् पर्णादि। एतैर्वर्षितैर्भयं विन्द्याज्जानीयात्। अङ्गारवर्षे पांशुवर्षे च तन्नगरं यत्र वर्षति नाशमायाति विनाशं प्राप्नोति।।४०-४१।।

अन्यदप्याह—

**उपला विना जलधरैर्विकृता वा प्राणिनो यदा वृष्टाः।**
**छिद्रं वाप्यतिवृष्टौ सस्यानामीतिसञ्जननम् ॥४२॥**

यदि मेघ के विना ओलों की वृष्टि, विकारयुत प्राणियों की वृष्टि या अतिवृष्टि होने पर भी कहीं-कहीं पर छिद्र ( अवृष्टि ) हो तो धान्यों को ईति ( अतिवृष्टि आदि ) का भय होता है।।४२।।

विना जलदैर्मेघैरुपलाः पाषाणा वृष्टाः। अथवा विकृताः सविकाराः प्राणिनः खरोष्ट्राऽश्वमार्जारशृगालप्रभृतयो वृष्टाः। अतिवृष्टौ वापि छिद्रं मध्ये कुत्रचिदवृष्टिरित्यर्थः। तच्च सस्यानामीतिसञ्जननमुपद्रवोत्पादकम्।।४२।।

( क्षीरघृतक्षौद्राणां दध्नो रुधिरोष्णवारिणां वर्षे।
देशविनाशो ज्ञेयोऽसृग्वर्षे चापि नृपयुद्धम् ॥[1]

दूध, घी, शहद, रुधिर अथवा गर्म जल की वृष्टि होने पर देश का नाश एवं रक्त की वृष्टि होने पर राजाओं में परस्पर युद्ध होता है।। )

अन्यानप्याह—

**यद्यमलेऽर्के छाया न दृश्यते प्रतीपा वा।
देशस्य तदा सुमहद्भयमायातं विनिर्देश्यम् ॥४३॥**

निर्मल सूर्यकिरण होने पर भी यदि वृक्ष आदि द्रव्यों की छाया नहीं दिखाई दे या उल्टी दिखाई दे तो देश में अति भय उत्पन्न होता है।।४३।।

अमले निर्मले अर्के सूर्ये सति यदि वृक्षादीनां छाया प्रतिविम्बं न दृश्यते, अथवा प्रतीपा विपर्ययस्था दृश्यते सूर्याभिमुखी, तदा देशस्य जनस्य सुमहदतिप्रभूतं भयमायातं प्राप्तं विनिर्देश्यं वक्तव्यमिति।।४३।।

अन्यदप्याह—

**व्यभ्रे नभसीन्द्रधनुर्दिवा यदा दृश्यतेऽथवा रात्रौ।
प्राच्यामपरस्यां वा तदा भवेत्क्षुद्भवं सुमहत् ॥४४॥**

मेघरहित आकाश में दिन या रात्रि में इन्द्रधनुष पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखाई दे तो अत्यन्त दुर्भिक्ष होता है।।४४।।

व्यभ्रे विगताभ्रे नभस्याकाश इन्द्रधनुरिन्द्रचापं तच्च दिवा दिवसे यदि दृश्यते, अथवा रात्रौ निशि दृश्यते। प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि। अपरस्यां पश्चिमायां वा। तदा सुमहदतिप्रभूतं क्षुद्भयं दुर्भिक्षं भवति।।४४।।

अथैतेषामुत्पातानां शान्तिमाह—

**सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां यागः स्मृतो वृष्टिविकारकाले।
धान्यान्नगोकाञ्चनदक्षिणाश्च देयास्ततः शान्तिमुपैति पापम् ॥४५॥**

सूर्य, चन्द्रमा, मेघ और वायु के विकार-जन्य उत्पात के समय यज्ञ करना चाहिये तथा शाली धान्य, भोज्यान्न, गाय और सुवर्ण की दक्षिणा ब्राह्मणों को देनी चाहिये। ऐसा करने से पाप की शान्ति होती है।।४६।।

सूर्य आदित्यः। इन्दुश्चन्द्रः। पर्जन्यो मेघः। समीरणो वायुः। एषां वृष्टिविकारकाले वर्षणविकृतिसमये यागः स्मृत उक्तः। तथा धान्यानि शालयः। अन्नं भोज्यम्। गावो धेनवः। काञ्चनं सुवर्णम्। एता दक्षिणा ब्राह्मणेभ्यो देयाः। ततोऽनन्तरं पापमनिष्टं शान्तिमुपैति गच्छति।।४५।।

**इति वृष्टिवैकृतम्**

●

१. श्लोकोऽयं बृहत्संहिताया अन्यसंस्करणे नोपलभ्यते।

अथान्यानुत्पातानाह—

**अपसर्पणं नदीनां नगरादचिरेण शून्यतां कुरुते।**
**शोषश्चाशोष्याणामन्येषां वा ह्रदादीनाम् ॥४६॥**

**स्नेहासृङ्मांसवहाः सङ्कुलकलुषाः प्रतीपगाश्चापि।**
**परचक्रस्यागमनं नद्यः कथयन्ति षण्मासात् ॥४७॥**

यदि नगर के मध्य या पास में बहती हुई नदियाँ दूर चली जायँ या नहीं सूखने वाले ह्रद आदि सूख जायँ तो शीघ्र ही नगर प्राणियों से शून्य हो जाता है। यदि नदियों में तेल, रुधिर या मांस बहने लगें या जल स्वल्प और मलिन हो जाय तो छः मास बाद परचक्र का आगमन होता है।।४६-४७।।

नदीनां सरितां नगरात् पुरादपसर्पणं गमनं दूरतोऽचिरेण शीघ्रमेव नगरस्य शून्यतामुत्सादनं कुरुते। तथा अशोष्याणां बहुलजलानां स्थानानां शोषो जलाभावः। अन्येषां वा ह्रदादीनाम्। ह्रदो यत्र पातालादुदकमागच्छति स्वयमेव। आदिग्रहणात् स्रोतसामपि शोषः शून्यतामेव कुरुते।

**स्नेहासृगिति**। नद्यः सरितः। स्नेहासृङ्मांसवहाः, स्नेहं तैलादि। असृग्रक्तम्, मांसामामिषम्, यदा वहन्ति; तथा सङ्कुलाः स्वल्पाः। कलुषा अनिर्मलाः। प्रतीपगा यत आगतास्तत्रैव यान्ति। एवंविधा नद्यः षण्मासात्षड्भिर्मासैः परतः परचक्रस्यागमनं कथयन्ति प्रवदन्ति।।४६-४७।।

अन्यदप्याह—

**ज्वालाधूमक्वाथारुदितोत्क्रुष्टानि चैव कूपानाम्।**
**गीतप्रजल्पितानि च जनमरकायोपदिष्टानि ॥४८॥**

कूप में अग्नि की ज्वाला, धूआँ, जल का खौलना, रोने का शब्द, गीत या और किसी प्रकार के शब्द लोगों की मृत्यु के सूचक होते हैं।।४८।।

कूपानां ज्वाला प्रज्वलनम्, धूमः, क्वाथः फेनः, आरुदितम्, उत्क्रुष्टमुद्घोषितम्, एतानि यदि भवन्ति; तथा गीतम्, प्रजल्पितं व्याहरणमेतानि सर्वाणि जनानां लोकानां मरकाय मृत्यवे उपदिष्टान्युक्तानि।।४८।।

अन्यदप्याह—

**सलिलोत्पत्तिरखाते गन्धरसविपर्यये च तोयानाम्।**
**सलिलाशयविकृतौ वा महद्भयं तत्र शान्तिमिमाम् ॥४९॥**

विना खोदी हुई जमीन में जल निकलना, जल के गन्ध और रसों में विपर्यय होना तथा जलाशयों में विकार उत्पन्न होना अग्निभय करने वाला होता है। इसकी शान्ति का प्रकार आगे कहते हैं।।४९।।

अखाते प्रदेशे सलिलस्य जलस्योत्पत्तिः सम्भवः। तोयानां जलानां गन्धरसविपर्यये। गन्धस्य सौगन्धस्य रसस्य स्वादुताया विपर्यये अन्यत्वे। सलिलाशयानामुदकाधाराणां विकृतौ विकारे स्वरूपान्यत्वे महदतीव भयं भवति। तत्र चेमां वक्ष्यमाणां शान्तिमाह।।४९।।

तां चाह—

**सलिलविकारे कुर्यात् पूजां वरुणस्य वारुणैर्मन्त्रैः।**
**तैरेव च जपहोमं शममेवं पापमुपयाति ॥५०॥**

जल में विकार होने पर वरुण के मन्त्रों से पूजा, जप और हवन करना चाहिये। ऐसा करने से भावी अशुभ फल का निवारण हो जाता है।।५०।।

सलिलविकारे जलविकृतौ वरुणस्यापाम्पतेर्वारुणैर्मन्त्रैः पूजामर्चां कुर्यात्, तैरेव वारुणैर्मन्त्रैर्जपं होमं चाग्नौ कुर्यात्। एवमनेन प्रकारेण पापमनिष्टं शमं शान्तिमुपयाति प्राप्नोति।।५०।।

**इति जलवैकृतम्**

●

अथान्यानुत्पातानाह—

**प्रसविकारे स्त्रीणां द्वित्रिचतुष्प्रभृतिसम्प्रसूतौ वा।**
**हीनातिरिक्तकाले च देशकुलसंक्षयो भवति ॥५१॥**

स्त्रियों को किसी प्रकार का प्रसवविकार ( घोड़ा, हाथी, बैल, सर्प आदि जन्तु की तरह जातक ) होने पर अथवा एक साथ दो, तीन, चार आदि बच्चे होने पर अथवा प्रसवकाल ( 'तत्कालमिन्दुसहितो द्विरसांशको य' इत्यादि से निर्णीत काल ) से पहले या बाद में प्रसव होने पर देश और कुल का नाश होता है।।५१।।

स्त्रीणां योषितां प्रसवविकारे प्रसूतिविकृतौ। प्रसवविकारः श्वाद्यङ्गसादृश्यम्। अथवा द्वित्रिचतुष्प्रभृतिसम्प्रसूतौ। द्वित्रिचतुष्पञ्चषट्सप्ताष्टनवदश वा जायन्ते। हीनातिरिक्तकाले, हीने अपरिपूर्णे। अतिरिक्ते चाधिके प्रसवे देशसङ्क्षयो देशविनाशः। कुलसंक्षयो वंशविच्छेदश्च भवति।।५१।।

**वडवोष्ट्रमहिषगोहस्तिनीषु यमलोद्भवे रणमरणमेषाम्।**
**षण्मासात् सूतिफलं शान्तौ श्लोकौ च गर्गोक्तौ ॥५२॥**

घोड़ी, ऊँटनी, भैंस, गाय और हथिनी को एक साथ दो बच्चे हों तो उन ( घोड़ा आदि ) का नाश होता है। छः मास बाद प्रसवविकार का फल प्राप्त होता है। इसकी शान्ति संस्कृत व्याख्या में पठित दो श्लोकों द्वारा करानी चाहिये।।५२।।

वडवा अश्वतरी। उष्ट्रा करभी। महिषी। गौः। हस्तिनी करिणी। एतासु यमलोद्भवे द्वाभ्यां जनने एषामेवाश्वादीनां मरणं भवति। तथा च गर्गः—

अकाले प्रसवे चैव कालातीतेऽथवा पुनः।
असङ्ख्याजनने चैव युग्मस्य प्रसवे तथा।।
अमानुषाणि काण्डानि सञ्जातव्यञ्जनानि वा।
अनङ्गा ह्यधिकाङ्गा वा हीनाङ्गाः सम्भवन्ति वा।।
विमुखाः पक्षिसदृशास्तथार्धपुरुषाश्च वा।
विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत्।।
अप्राप्तवयसे गर्भे द्वौ चतुष्पात् त्रयोऽपि वा।
अत्युच्चा विनताश्चापि प्रजायन्तेऽनयो भवेत्।।
वडवा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते।
विजन्यं विकृतं वापि षड्भिर्मासैर्नृपक्षयः।। इति।

**षण्मासादिति।** सूतिफलं प्रसूतिफलं षण्मासात् परतो भवति। अत्र शान्तौ गर्गोक्तौ गर्गमहर्षिकथितौ श्लोकौ द्वाविमौ वक्ष्यमाणौ।।५२।।

एतौ चाह—

**नार्यः परस्य विषये त्यक्तव्यास्ता हितार्थिना।**
**तर्पयेच्च द्विजान् कामैः शान्तिं चैवात्र कारयेत्।।५३।।**

**चतुष्पदाः स्वयूथेभ्यस्त्यक्तव्याः परभूमिषु।**
**नगरं स्वामिनं यूथमन्यथा तु विनाशयेत्।।५४।।**

अपना हित चाहने वाले मनुष्य को विकारयुत स्त्रियों को अन्य देश में ले जाकर परित्याग कर देना चाहिये; साथ ही इच्छानुसार ब्राह्मणों को प्रसन्न कर इस उत्पात की शान्ति करनी चाहिये। इसी प्रकार विकारयुत चतुष्पदों को भी समूह से अलग कर अन्य स्थान पर ले जाकर त्याग देना चाहिये; अन्यथा वे विकारयुक्त चतुष्पद सम्बद्ध नगर, नगर के स्वामी और समूह का नाश कर देते हैं।।५३-५४।।

ता नार्यो योषितः सञ्जातविकारा हितार्थिना हितमिच्छता परस्यान्यस्य विषये देशे त्यक्तव्याः। द्विजान् ब्राह्मणान् कामैरिच्छाभिस्तर्पयेत् पूजयेत्, तथाऽत्रास्मिन्नुत्पाते शान्तिं च कारयेत्।

चतुष्पदा वडवादयः स्वयूथेभ्य आत्मीयवृन्देभ्यः परभूमिष्वन्यदेशेषु त्यक्तव्याः। एवं कृते श्रेयो भवति। अन्यथाऽपरित्यागात्नगरं पुरं स्वामिनमधिपतिं यूथं तु विनाशयेत् क्षयं नयति।।५३-५४।।

**इति प्रसववैकृतम्**

अथान्यानुत्पातानाह—

**परयोनावभिगमनं भवति तिरश्चामसाधु धेनूनाम्।**
**उक्षाणो वान्योन्यं पिबति श्वा वा सुरभिपुत्रम्।।५५।।**

**मासत्रयेण विन्द्यात्तस्मिन्निःसंशयं परागमनम्।**
**तत्प्रतिघातायैतौ श्लोकौ गर्गेण निर्दिष्टौ ॥५६॥**

एक जाति के पशु दूसरी जाति के पशु के साथ मैथुन करें, गाय या बैल परस्पर एक-दूसरे का स्तनपान करें तो तीन मास बाद निःसंशय परचक्र का आगमन होता है। इसके निवारण के लिये संस्कृत टीका में पठित गर्गोक्त दो श्लोक द्रष्टव्य हैं।।५५-५६।।

तिरश्चां तिर्यग्जातीनां चतुष्पदप्रायाणां परयोनावन्ययोनावभिगमनं यदि भवति, तदा-ऽसाधु अशोभनम्। तथा धेनूनां गवामन्योन्यं परस्परं स्तनपाने सति, तथोक्षाणो वृषभा वा अन्योन्यं स्तनं पिबन्ति वत्सांश्च वर्जयित्वा, अथवा सुरभिपुत्रं गोस्तनं श्वा सारमेयः पिबति।

तस्मिन्नुत्पाते मासत्रयेण परागमनं निःसंशयमसन्देहं विन्द्याज्जानीयात्। तथा च गर्गः—

वियोनिषु यदा यान्ति मिश्रीभावः प्रजायते।
खरोष्ट्रहयमातङ्गा मनुष्या वा न साधु तत्।।
अकालसक्ता दृश्यन्ते काले च विमदा यदि।
मातङ्गोष्ट्रहयश्वानः पक्षिणो वा न साधु तत्।।
धेनुं धेनुः पिबेद्यत्रानुड्वानं ह्यनुडुत्तथा।
श्वा वा पिबेद्धेनुमथ धेनुः श्वानमथापि वा।।
प्राप्तेषु त्रिषु मासेषु परचक्रागमं वदेत्।। इति।

एतेषामुत्पातानां प्रतिघाताय विनाशाय श्लोकौ द्वावेतौ गर्गेण निर्दिष्टौ कथितौ।।

तावेवाह—

**त्यागो विवासनं दानं तत्तस्याशु शुभं भवेत्।**
**तर्पयेद् ब्राह्मणांश्चात्र जपहोमांश्च कारयेत् ॥५७॥**

**स्थालीपाकेन धातारं पशुना च पुरोहितः।**
**प्राजापत्येन मन्त्रेण यजेद्बह्वन्नदक्षिणम् ॥५८॥**

विकारयुत पशुओं को छोड़ देने से या दूसरी जगह कर देने से शीघ्र ही चतुष्पदजन्य उत्पातों की शान्ति हो जाती है। इस उत्पात में ब्राह्मणों को सन्तुष्ट, जप और हवन करना चाहिये तथा चरु, पशु एवं प्राजापत्य मन्त्रों से ब्रह्मा का यज्ञ सम्पन्न कर प्रभूत अन्न की दक्षिणा देनी चाहिये।।५७-५८।।

त्यागस्त्यजनम्। विवासनमन्यत्र स्थानम्। दानमन्यस्य ब्राह्मणादेः प्रतिपादनं यत्तस्य चतुष्पदस्याशु क्षिप्रमेव शुभं भवेत् स्यात्। अत्रास्मिन्नुपसर्गे ब्राह्मणान् द्विजांस्तर्पयेत् पूजयेत्। जपं मन्त्राणामद्भुतं होमानग्नौ च कारयेत्।

पुरोहितः स्थालीपाकेन चरुणा पशुना च छागादिना धातारं प्रजापतिं प्राजापत्येन मन्त्रेण बह्वन्नं प्रभूतान्नं बहुदक्षिणं च यजेत्।।५७-५८।।

**इति चतुष्पदवैकृतम्**

अथान्यानप्युत्पातानाह—

**यानं वाहवियुक्तं यदि गच्छेन्न व्रजेच्च वाहयुतम्।**
**राष्ट्रभयं भवति तदा चक्राणां सादभङ्गे च ॥५९॥**

यदि अश्व आदि वाहन, वाह ( सवार ) से अलग होकर भागे, सवार के साथ नहीं चले और रथ का पहिया जमीन में गढ़ जाय या टूट जाय तो राष्ट्र को भय होता है।।५९।।

यानमश्वादिकं वाहेन पुरुषेण वियुक्तं यदि गच्छेद् व्रजेत्। वाहेन युतं न व्रजेत्। तदा राष्ट्रस्य भयं भवति। तथा चक्राणां रथचक्राणां सादे मज्जने भङ्गे च स्फोटने राष्ट्रभयमेव भवति।।५९।।

अन्यानप्याह—

**गीतरवतूर्यशब्दा नभसि यदा वा चरस्थिरान्यत्वम्।**
**मृत्युस्तदा गदा वा विस्वरतूर्ये पराभिभवः ॥६०॥**

यदि आकाश में गीत या तुरही का शब्द सुनाई पड़े या स्थिर पदार्थ चर और चर पदार्थ स्थिर दिखाई दे तो मरण और रोग होता है। अथवा तुरही बजने से विकारयुत शब्द हो तो शत्रुओं से पराजय होती है।।६०।।

नभस्याकाशे गीतरवा गीतशब्दास्तूर्यशब्दा वा श्रूयन्ते। अथवा चरस्थिरान्यत्वम्, अस्थिरस्य शकटादेः स्थिरता, स्थिरस्य वृक्षादेश्चरत्वम्, तदा मृत्युर्मरणम्, गदा रोगा भवन्ति। तथा विस्वरतूर्ये तूर्याणामाहतानां यद्यन्यादृशः सविकारः शब्द उत्पद्यते तदा पराभिभवो भवति, परैः शत्रुभिरभिभवः पराजयः।।६०।।

अन्यानप्याह—

**अनभिहततूर्यनादः शब्दो वा ताडितेषु यदि न स्यात्।**
**व्युत्पत्तौ वा तेषां परागमो नृपतिमरणं वा ॥६१॥**

यदि विना बजाये तुरही से शब्द हो और बजाने पर शब्द न निकले या अनेक प्रकार के शब्द निकलें तो शत्रु सेनाओं का आगमन और राजा का मरण होता है।।६१।।

अनभिहतानामताडितानां तूर्याणां नादः शब्दो यदि वा ताडितेष्वाहतेषु शब्दो रवो न स्यान्न भवेत्। तथा तूर्याणां व्युत्पत्तौ वा। विविधा उत्पत्तिर्व्युत्पत्तिर्नानाशब्दकृत्। परागमः परचक्रस्यागमो भवति नृपते राज्ञो मरणं वा।।६१।।

अन्यदप्याह—

**गोलाङ्गलयोः सङ्गे दर्वीशूर्पाद्युपस्करविकारे।**
**क्रोष्टुकनादे च तथा शस्त्रभयं मुनिवचश्चेदम् ॥६२॥**

बैल और हल का अचानक संयोग हो जाने, दर्वी ( चमचा = करौछ ), शूर्प ( सूप = छाज ) आदि गृह-सामग्री में विकार उत्पन्न होने और शृगाल ( गीदड़ ) के

विकारयुत शब्द होने से भय होता है, यह मुनि का वचन है।।६२।।

लाङ्गलं हलम्। गोलाङ्गलयोः सङ्गः परस्परं श्लेषः। गौर्यत्र हललग्ना दृश्यते इति तस्मिंस्तथा दर्वीशूर्पाद्युपस्करविकारे, दर्वी प्रसिद्धा, शूर्पमपि प्रसिद्धमेव। दर्वीशूर्पविकारे। उपस्करभाण्डानां विकारे वैकृते। आदिग्रहणान्मुशले उलूखलादि गृह्यते। एषां विकारे स्वरूपान्यत्वे। हसने गायने रोदने वा। क्रोष्टुकः शृगालस्तत्सदृशे तेषामेव नादे शब्दे शस्त्रभयं भवति। इदं वक्ष्यमाणमत्रास्मिन्नुत्पाते शान्त्यर्थं मुनिवचः ऋषिवाक्यमिति।।६२।।

तच्चाह—

**वायव्येष्वेषु नृपतिर्वायुं शक्तुभिरर्चयेत्।**
**आवायोरिति पञ्चर्चो जप्तव्याः प्रयतैर्द्विजैः ॥६३॥**

**ब्राह्मणान् परमान्नेन दक्षिणाभिश्च तर्पयेत्।**
**बह्वन्नदक्षिणा होमाः कर्तव्याश्च प्रयत्नतः ॥६४॥**

इन पूर्वोक्त वायव्य विकारों में सत्तू ( सतुआ ) से वायु देवता की पूजा करे। नियमयुत होकर ब्राह्मण 'आवायोः' इत्यादि पाँच ऋचाओं का जप करे। पायस से ब्राह्मणों को तृप्त करे और प्रयत्नपूर्वक बहुत अन्न की दक्षिणा देकर हवन करे।।६३-६४।।

एषु वायव्येषूत्पातेषु नृपती राजा वायुमनिलं शक्तुभिरर्चयेत् पूजयेत्, तथा प्रयतैः संयतैर्द्विजैर्ब्राह्मणैरावायोरित्यादिकाः पञ्चर्चो जप्तव्या इति। पञ्च ऋचो जप्तव्यो इति।

परमान्नेन पायसेन दक्षिणाभिश्च ब्राह्मणांस्तर्पयेत् तथा होमा बह्वन्नदक्षिणाः प्रभूतभोज्याः प्रभूतदक्षिणाः प्रयत्नतश्च कर्तव्या इति।।६३-६४।।

**इति वायव्यवैकृतम्**

अथान्यानप्युत्पातानाह—

**पुरपक्षिणो वनचरा वन्या वा निर्भया विशन्ति पुरम्।**
**नक्तं वा दिसचराः क्षपाचरा वा चरन्त्यहनि ॥६५॥**

**सन्ध्याद्वयेऽपि मण्डलमाबध्नन्तो मृगा विहङ्गा वा।**
**दीप्तायां दिश्यथवा क्रोशन्तः संहता भयदाः ॥६६॥**

यदि नगर में रहने वाले पक्षी वन में और वन में रहने वाले पक्षी निर्भय होकर नगर में प्रवेश करें या दिन में चलने वाले पक्षी रात्रि में और रात्रि में चलने वाले पक्षी दिन में चलें एवं सूर्य के उदय और अस्त समय में वन में रहने वाले पशु और पक्षी सूर्याभिमुख होकर मण्डल बाँधकर बैठें या सब इकट्ठे होकर अधिक शब्द करते हुये दिखाई दें तो भय देने वाले होते हैं।।६५-६६।।

पुरपक्षिणो ग्राम्यविहगा यदि वनचरा भवन्ति। वनेऽरण्ये चरन्ति, तथा वन्याः पक्षिणो निर्भया विगतभीतयो वा पुरं नगरं प्रविशन्ति। अथवा दिवसचराः पक्षिणः काकादयो नक्तं रात्रौ चरन्ति। क्षपाचरा रात्रिचारिणः कौशिकादयोऽहनि दिवसे चरन्ति।

अन्यानप्याह—मृगा अरण्यप्राणिनः, विहङ्गा पक्षिणो वा सन्ध्याद्वयेऽपि सूर्योदयास्तसमययोर्मण्डलं चक्राकारमाबध्नन्तो रचयन्तः अथवा संहताः समेता बहवोऽतीव क्रोशन्तो वाच्यमाना दृश्यन्ते। दीप्तायां दिशि तत्कालं रवेर्वशेन या दीप्ता तस्याम्। तदा भयदा इति। यस्यां रविस्तिष्ठति सा दीप्तेति तल्लक्षणम्।।६५-६६।।

अन्यानप्याह—

**श्येनाः प्ररुदन्त इव द्वारे क्रोशन्ति जम्बुका दीप्ताः।**
**प्रविशेन्नरेन्द्रभवने कपोतकः कौशिको यदि वा ॥६७॥**

यदि श्येन ( बाज ) अधिक रोते हुये की तरह दिखाई दे, सूर्य की तरफ मुख करके शृगाल ( गीदड़ ) पुरद्वार पर शब्द करे तथा राजभवन में कबूतर या उल्लू प्रवेश करे तो भय देने वाला होता है। कहीं-कहीं पर 'श्यानः' की जगह 'श्वानः' पाठ मिलता है।।६७।।

श्येनाः प्राचिकाः पक्षिणः प्रकर्षेण रुदन्तो रोदमाना इव भवन्ति तथा जम्बुकाः शृगाला दीप्ताः सूर्याभिमुखाः क्रूरशब्दाश्च द्वारे पुरद्वारे क्रोशन्ति शब्दं कुर्वते, नरेन्द्रभवने राजगृहे, कपोतकः पक्षी कौशिक उलूको यदि वा प्रविशेत्। तथा च गर्गः—

श्येनगृध्रबलाकाश्च वामना मुण्डचारिणः।
शब्दायन्त इवात्यर्थं प्रदीप्ताः सङ्घशो यदि।।
रुदन्ति विविधं यत्र तदेवाशु विनश्यति।
यद्यभीक्ष्णं कपोता वा प्रविशन्ति वसन्ति वा।।
राजवेश्मन्युलूका वा तच्छून्यमचिराद् भवेत्।। इति।।६७।।

अथान्यानुत्पातानाह—

**कुक्कुटरुतं प्रदोषे हेमन्तादौ च कोकिलालापाः।**
**प्रतिलोममण्डलचराः श्येनाद्याश्चाम्बरे भयदाः ॥६८॥**

**गृहचैत्यतोरणेषु द्वारेषु च पक्षिसङ्घसम्पातः।**
**मधुवल्मीकाम्भोरुहसमुद्भवश्चापि नाशाय ॥६९॥**

यदि प्रदोष समय में मुर्गा और हेमन्त ऋतु के आदि में कोयल बोलें तथा आकाश में बाज आदि मांस भक्षण करने वाले पक्षी वृत्ताकार मार्ग में प्रदक्षिण क्रम से चलें तो भय देने वाले होते हैं। घर, प्रधान वृक्ष, तोरण ( पुरद्वार ) या गृहद्वार पर पक्षियों के समुदायों का गिरना तथा इन्हीं घर आदि पर मधु ( शहद ) का छत्ता, वल्मीक ( वमई ) और कमलों की उत्पत्ति नाश के लिये होती है।।६८-६९।।

प्रदोषे रात्रिमुखे कुक्कुटरुतं तथा हेमन्तादौ हेमन्तप्रमुखे कोकिलालापाः परभृतां

शब्दाः। श्येनाद्याः सर्वपक्षिणो मांसाशिनः। आदिग्रहणात् काकवकप्लवकङ्का गृह्यन्ते। एते अम्बरे आकाशे प्रतिलोममण्डलचराः, अप्रदक्षिणेन मण्डलेन चरन्तस्तथाभूता भयदा भयं जनयन्ति।

गृहं वेश्म। चैत्यं प्रधानवृक्षः। तोरणं प्रसिद्धम्। एतेषु गृहचैत्यतोरणेषु द्वारेषु पक्षिसङ्घानां खगवृन्दानां सम्पातः श्लेषो यत्र, तथैतेष्वेव गृहादिषु मधुवल्मीकाम्भोरुहसमुद्भवः, मधूनां माक्षिकानाम्, वल्मीकस्य च सरीसृपकृतमृत्स्तूपस्य। अम्भोरुहस्य पद्मादेः समुद्भव उत्पत्तिश्चापि नाशाय भवति।।६८-६९।।

अन्यानप्याह—

**श्वभिरस्थिशवावयवप्रवेशनं मन्दिरेषु मरकाय।**
**पशुशस्त्रव्याहारे नृपमृत्युर्मुनिवचश्चेदम् ॥७०॥**

यदि कुत्ते हड्डी या शव के कोई अंग घर में ले आवें तो मरी पड़ती है तथा पशु या शस्त्र मनुष्य की तरह बोलें तो राजा की मृत्यु होती है, ऐसा मुनियों का वचन है।।७०।।

श्वभिः सारमेयैर्मन्दिरेषु गृहेष्वस्थिशवावयवानां प्रवेशनम्। अस्थ्नः शवावयवस्य मृतपुरुषाङ्गस्य प्रवेशनं मरकाय भवति। पशूनां च चतुष्पदानां शस्त्राणां च व्याहारे पुंवत्सम्भाषमाणे नृपस्य राज्ञो मृत्युर्मरणं भवति।. इदं च वक्ष्यमाणं शान्त्यर्थं मुनिवचः ऋषिवाक्यम्।।७०।।

तच्चाह—

**मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धीमान् सदक्षिणान्।**
**देवाः कपोत इति च जप्तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः ॥७१॥**
**सुदेवा इति चैकेन देया गावः सदक्षिणाः।**
**जपेच्छाकुनसूक्तं वा मनो वेदशिरांसि च ॥७२॥**

मृग और पक्षियों में पूर्वोक्त विकार होने पर दक्षिणा के साथ हवन करे, पाँच ब्राह्मणों के द्वारा 'देवाः कपोत' इत्यादि मन्त्र का तथा एक ब्राह्मण के द्वारा 'सुदेवा' इत्यादि मन्त्र का जप करावे, दक्षिणा के साथ गोदान करे और शाकुन सूक्त या 'वेदशिरांसि' इत्यादि मन्त्र का जप करे।।७१-७२।।

मृगाणां पक्षिणां विकारेषु वैकृतेषु सदक्षिणान् दक्षिणाभिः सहितान् होमान् कुर्यात्। पञ्चभिर्द्विजैर्ब्राह्मणैर्देवाः कपोत इति जप्तव्याः।

सुदेवा एतत्पदं यस्य मन्त्रस्यादि स चैकेन द्विजेन जप्तव्यः। तेषां ब्राह्मणानां गावो धेनवः सदक्षिणा देयाः। शाकुनसूक्तं च मन्त्रं जपेत्पठेत्। वा मनो मन्त्रम्। वेदशिरांस्यथर्वशिरःप्रभृतीनि जपेत्।।७१-७२।।

**इति मृगपक्ष्यादिवैकृतम्**

अथान्यानुत्पातानाह—

**शक्रध्वजेन्द्रकीलस्तम्भद्वारप्रपातभङ्गेषु ।**
**तद्वत्कपाटतोरणकेतूनां नरपतेर्मरणम् ॥७३॥**

इन्द्रध्वज, इन्द्रकील और स्तम्भद्वार के गिरने या टूटने से तथा कपाट, तोरण और ध्वज के गिरने या टूटने से राजा का मरण होता है।।७३।।

शक्रध्वज इन्द्रध्वजः। इन्द्रकीलो द्वारार्गलः। स्तम्भद्वारे प्रसिद्धे। एषामन्यतमस्य प्रतातः पतनं भङ्गः स्फोटनं वा तेषु दृष्टेषु। कपाटं द्वारापिधानम्। तोरणं प्रसिद्धम्। केतुर्ध्वजः। एतेषामपि तद्वत्प्रपातो भङ्गो दृश्यते, तदा नरपते राज्ञो मरणं विनिर्दिशेद्वदेत्।।७३।।

अन्यानप्याह—

**सन्ध्याद्वयस्य दीप्तिर्धूमोत्पत्तिश्च काननेऽनग्नौ ।**
**छिद्राभावे भूमेर्दरणं कम्पश्च भयकारी ॥७४॥**

दोनों सन्ध्याओं में तेज का होना, वन या अग्निरहित स्थान में धूम की उत्पत्ति होना, छिद्राभाव वाली भूमि का फट जाना या कम्पन होना भयकारी होता है।।७४।।

सन्ध्याद्वयस्य सूर्योदयास्तमययोर्दीप्तिस्तेजः। कानने वने चानग्नौ अग्निरहिते धूमोत्पत्तिर्धूमसम्भवः तथा छिद्राभावे व्रणं विना भूमेरवनेर्दरणं स्फोटनं कम्पश्चलनं च भयकारी भयं करोति।।७४।।

**पाखण्डानां नास्तिकानां च भक्तः साध्वाचारप्रोज्झितः क्रोधशीलः ।**
**ईर्ष्युः क्रूरो विग्रहासक्तचेता यस्मिन् राजा तस्य देशस्य नाशः ॥७५॥**

जिस देश में पाखण्डी और नास्तिक मनुष्यों का भक्त, सज्जनों के आचरणों से रहित, क्रोधी, परछिद्रान्वेषी, खल तथा सदा युद्ध की इच्छा रखने वाला राजा हो, उस देश का नाश होता है।।७५।।

यस्मिन् देशे ईदृशो राजा नृपतिस्तस्य देशस्य नाशो भवति। कीदृशो राजा? पाखण्डानां वेदबाह्यानां नास्तिकानां च लौकायतिकानां भक्तस्तत्परः, तथा साध्वाचारप्रोज्झितः, साधूनां सज्जनानां सम्बन्ध्याचारः प्रोज्झितस्त्यक्तो येन। क्रोधशीलः क्रोधपरः। ईर्ष्युः परमत्सरः। क्रूरः खलः। विग्रहासक्तचेताः, विग्रहे सर्वकालमकालेऽपि आसक्तं चेतो यस्य।।७५।।

अन्यानप्याह—

**प्रहर हर छिन्धि भिन्धीत्यायुधकाष्ठाश्मपाणयो बालाः ।**
**निगदन्तः प्रहरन्ते तत्रापि भयं भवत्याशु ॥७६॥**

जिस स्थान पर शस्त्र, काठ ( छड़ी आदि ) और पत्थर हाथ में लेकर 'मारो, छीन लो, काटो, तोड़ डालो' इत्यादि कहते हुये बालक गण एक-दूसरे के ऊपर प्रहार करें; वहाँ शीघ्र भय होता है।।७६।।

बाला: शिशव:। आयुधकाष्ठाश्मपाणय:, आयुधानि खड्गादीनि कृत्रिमरूपाणि, काष्ठानि लगुडानि, अश्मन: पाषाणा:, पाणिषु हस्तेषु येषां ते तथाभूता:, प्रहर हर छिन्धि भिन्धि इति निगदन्त: प्रवदन्त: परस्परमन्योन्यं प्रहरन्ते घ्नन्ति यत्र तत्राप्याशु क्षिप्रमेव भयं भवति। तथा च पराशर:—

यदि धनुरसिकाष्ठलोष्टहस्ता: पुरशिशवो रणवत्समाचरन्ति।
प्रहर हर जहीत्युदाहरन्ते भयमचिरात्तुमुलं निवेदयन्ति।। इति।।७६।।

अन्यानप्याह—

**अङ्गारगैरिकाद्यैर्विकृतप्रेताभिलेखनं यस्मिन्।**
**नायकचित्रितमथवा क्षये क्षयं याति न चिरेण ।।७७।।**

जिस घर की दीवाल पर कोयले, गेरू आदि ( पीले और नीले ) रङ्गों से विकृत मृत पुरुषों के चित्र बनाये जायँ या कोयले आदि से बनाये हुये गृहस्वामी के चित्र दिखाई दें तो वह घर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।।७७।।

यस्मिन् क्षये गृहे अङ्गारगैरिकाद्यैर्विदग्धकाष्ठेन गैरिकेण वा। आदिग्रहणादन्यै: पीतनीलै रङ्गैर्विकृतानां विरूपाणां प्रेतानां मृतपुरुषाणां चाभिलेखनमालेखनम्, अथवा नायको गृहस्वामी अङ्गारगैरिकाद्यैश्चित्रित आलेखितोऽपि कृतो यत्र दृश्यते गृहे तद्गृहं न चिरेण शीघ्रमेव क्षयं नाशं याति।।७७।।

अन्यानप्याह—

**लूतापटाङ्गशबलं न सन्ध्ययो: पूजितं कलहयुक्तम्।**
**नित्योच्छिष्टस्त्रीकं च यद् गृहं तत्क्षयं याति ।।७८।।**

जो घर मकरियों के जाल से व्याप्त हो, दोनों सन्ध्याओं में देवादि के पूजन से रहित हो, प्रतिदिन कलहयुत हो और अपवित्र स्त्रियों से युत हो, उसका नाश हो जाता है।

लूताशब्देन जालकरा उच्यन्ते, तदीयैस्तन्तुभिर्यें पटा अङ्गान्यवयवाश्च तदीयान्येव, तैर्गृहं शबलं व्यामिश्रितम् तथा सन्ध्ययोर्द्वयो: सूर्योदयास्तमययोर्यत्र पूजितं नार्चितम्, तथा नित्यं कलहयुक्तं प्रतिदिनं यत्र कलह: क्रियते तथा यद्गृहं नित्योच्छिष्टस्त्रीकं नित्यं सर्वकालमुच्छिष्टा: स्त्रियो यत्र तत्क्षयं नाशं याति।।७८।।

अन्यानप्याह—

**दृष्टेषु यातुधानेषु निर्दिशेन्मरकमाशु सम्प्राप्तम्।**
**प्रतिघातायैतेषां गर्ग: शान्तिं चकारेमाम् ।।७९।।**

यदि प्रत्यक्ष में राक्षस दिखाई दे तो बहुत शीघ्र मरी पड़ती है। इन पूर्वोक्त उत्पातों के नाश के लिये गर्ग मुनि ने आगे कथित प्रकार की तरह शान्ति कही है।।७९।।

यातुधानेषु यक्षेषु प्रत्यक्षमवलोकितेषु आशु क्षिप्रमेव मरकं सम्प्राप्तं निकटवर्तिनं

निर्दिशेद्वदेत्। एतेषामुत्पातानां प्रतिघाताय नाशायेमां वक्ष्यमाणां शान्तिं गर्गश्चकार कृतवान्।

तां चाह—

**महाशान्त्योऽथ बलयो भोज्यानि सुमहान्ति च।**
**कारयेत महेन्द्रं च माहेन्द्रीं च समर्चयेत् ॥८०॥**

पूर्वोक्त उत्पातों की अधिक शान्ति करनी चाहिये। बलि और अधिक भोज्य करना चाहिये तथा इन्द्र और इन्द्राणी का अधिक पूजन करना चाहिये।।८०।।

महाशान्त्यो महत्योऽतिप्रभूताः शान्त्यः। अथ बलयमुपहाराः तथा सुमहान्त्यपि प्रभूतानि भोज्यानि च कारयेत। महेन्द्रमिन्द्रं च कारयेत। माहेन्द्रीमिन्द्राणीं च समर्चयेत् पूजयेत्।।८०।।

**इति शक्रध्वजेन्द्रकीलादिवैकृतम्**

अथ यत्र कालेषूत्पाता दृष्टा विफला भवन्ति तानाह—

**नरपतिदेशविनाशे केतोरुदयेऽथवा ग्रहेऽर्केन्द्वोः।**
**उत्पातानां प्रभवः स्वर्तुभवश्चाप्यदोषाय ॥८१॥**

राजा के विनाश, देश के ऊपर आपत्ति, केतु के उदय और सूर्य, चन्द्र के ग्रहण के समय उत्पन्न उत्पात तथा आगे कथित की तरह अपने ऋतु में उत्पन्न उत्पात दोष के लिये नहीं होते है।।८१।।

नरपतिविनाशे राजमरणे, तथा देशविनाशे परदेशलुण्ठनं यदा क्रियते, तथा केतोरुदये शिखिनो दर्शने अथवा ग्रहेऽर्केन्द्वोः सूर्याचन्द्रमसोरुपप्लवे। एतेषु कालेषु उत्पातानां प्रभव उत्पत्तिः तथा स्वर्तुभवः। स्वर्तावात्मीय ऋतौ वक्ष्यमाणानामुत्पातानां प्रभव उत्पत्तिर-दोषाय भवति। यत्र यदनिष्टं फलयुक्तं तन्न भवति।।८१।।

अथ स्वर्तुस्वभावकृतानुत्पातान् वक्ष्यामीत्याह—

**ये च न दोषान् जनयन्त्युत्पातानृतुस्वभावकृतान्।**
**ऋषिपुत्रकृतैः श्लोकैर्विद्यादेतैः समासोक्तैः ॥८२॥**

जो उत्पात ऋतु-स्वभावजनित दोष को नहीं उत्पन्न करता है, उनको संक्षेप में कहे गये ऋषिपुत्रकृत आगे कथित पद्यों के द्वारा जानना चाहिये।।८२।।

ये चोत्पाता ऋतुस्वभावकृता ऋतुस्वभावेनोत्पद्यन्ते दोषाननिष्टफलं न जनयन्ति नोत्पादयन्ति। तानृतुस्वभावकृतानृषिपुत्रकृतैः ऋषिपुत्रो नामाचार्यस्तत्कृतैः श्लोकैरिमैः समासोक्तैः समासेन सङ्क्षेपेण य उक्तास्तैर्विद्याज्जानीयात्।।८२।।

तत्र वसन्ते प्राकृतानुत्पातानाह—

**वज्राशनिमहीकम्पसन्ध्यानिर्घातनिःस्वनाः।**
**परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमयोदयाः ॥८३॥**

**द्रुमेभ्योऽन्नरसस्नेहबहुपुष्पफलोद्गमाः ।**
**गोपक्षिमदवृद्धिश्च शिवाय मधुमाधवे ॥८४॥**

वज्र ( बिजली ), अशनि ( पत्थरों की वर्षा या उल्कापात ), भूकम्प, दीप्ता, सन्ध्या, निर्घात, शब्द, सूर्य-चन्द्र का परिवेष, धूली, धूम, रक्त वर्ण के रवि का उदयास्त, वृक्षों से भोजन, मधुरादि रस और तेल आदि की उत्पत्ति, गाय और पक्षियों में काम की वृद्धि— ये सब उत्पात चैत्र और वैशाख मास में कल्याण के लिये होते हैं।।८३-८४।।

एत उत्पाता मधौ माधवे च वैशाखे मासि शिवाय श्रेयसे भवन्ति। के तानित्याह— **वज्राशनीत्यादि**। वज्रं विद्युत्, अशनिरश्मवर्षणमुल्काभेदो वा। महीकम्पो भूकम्पः। सन्ध्या प्रसिद्धा दीप्ता। यतस्तस्या लक्षणमुक्तम्। निर्घातनिःस्वना निर्घातशब्दाः अथवा निर्घाताः केवलाः, निःस्वनाश्च शब्दा यथा तथोच्चरिताः। परिवेषः सूर्याचन्द्रमसोः। रजो धूलिर्नभसि। धूमः काननेषु। तथा रक्तस्य लोहितवर्णस्यार्कस्य सूर्यस्यास्तमयोदयौ।

द्रुमेभ्यो वृक्षेभ्योऽन्नस्य भोजनस्य। रसानां मधुरादीनाम्। स्नेहस्य तैलादेः। बहूनां पुष्पाणां फलानां चोद्गमः सम्भवः। गवां धेनूनां पक्षिणां च मदवृद्धिः कामानुसेवनम्।।८३-८४।।

अथ ग्रीष्मे आह—

**तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम् ।**
**अनग्निज्वलनस्फोटधूमरेण्वनिलाहतम् ॥८५॥**

**रक्तपद्मारुणा सन्ध्या नभः क्षुब्धार्णवोपमम् ।**
**सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत् ॥८६॥**

सदा उल्कापात से मलिन आकाश, सूर्य-चन्द्र के पीले मण्डल, अग्नि के विना ज्वाला का शब्द, धूप, धूली और वायु से आहत रक्तकमल की तरह लोहित वर्ण की सन्ध्या, तरङ्गयुत समुद्र की तरह आकाश, नदियों में जल का सूखना—ये सब उत्पात ग्रीष्म ( ज्येष्ठ और आषाढ़ ) में शुभ होते हैं।।८५-८६।।

एतानुत्पातान् ग्रीष्मे ज्येष्ठाषाढयोर्दृष्ट्वा विलोक्य शुभं वदेत् ब्रूयात्। नभ आकाशं तारापातेनोल्कापातेन च कलुषमनिर्मलमनवरतपतनात्, तथा कपिलवर्णे अर्केन्द्वोः सूर्याचन्द्रमसोर्मण्डले बिम्बे यत्र। अनग्निज्वलनं विनाऽग्निना ज्वलनं ज्वाला स्फोटस्तेनैव शब्दः, अथवा नभसः स्फोटः शब्दः धूमः। रेणुर्धूलिः। अनिलो वायुः। एतैराहतमुपहतम्।।८५-८६।।

तथा सन्ध्या रक्तपद्मारुणा रक्तपद्मवदरुणा लोहिता। नभ आकाशं क्षुब्धार्णवोपमं क्षुब्धसमुद्रसदृशम्। जलवीचिभिरिव व्याप्तम्। सरितां नदीनामम्बुसंशोषणं जलाभावः।

अथ वर्षास्वाह—

**शक्रायुधपरीवेषविद्युच्छुष्कविरोहणम् ।**
**कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं रसनं दरणं क्षितेः ॥८७॥**

**सरोनद्युदपानानां वृद्ध्यूर्ध्वतरणप्लवाः ।**
**सरणं चाद्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम् ॥८९॥**

इन्द्रधनुष, सूर्य-चन्द्र का परिवेष, बिजली और सूखे वृक्षों में अङ्कुर निकलना, पृथ्वी का काँपना, उलटना, स्वरूप बदलना, शब्द करना, फटना, सरोवरों का बढ़ जाना, नदियों का ऊपर आना, वापी, कूप, तालाब आदि में अधिक जल होना, पर्वत और गृहों का चलायमान होना—ये सब उत्पात वर्षा ऋतु में शुभ हैं।।८७-८८।।

वर्षास्वेतन्न भयावहं न भयप्रदम्। शुभमित्यर्थः। शक्रायुधमिन्द्रचापम्। परिवेषः। सूर्याचन्द्रमसोः। विद्युत्तडित्। शुष्कविरोहणं शुष्काणां तरूणां पुनर्विरोहणं सरसत्वम्। क्षितेर्भूमेः कम्पश्चलनम्। उद्वर्त्तनं परिवर्त्तनम्। वैकृत्यं विकृतता विकारः स्वरूपान्यत्वम्। क्षितेर्भूमे रसनं शब्दः श्लेषणं वा। दरणं निःसरणं स्फोटनमित्यर्थः।

सरोनद्युदपानानां यथाक्रमं वृद्ध्युर्ध्वतरणप्लवाः, सरसां वृद्धिर्वर्द्धनम्। नदीनामूर्ध्व-तरणमूर्ध्वगमनम्, उदपानानां वापीकूपतडागानां प्लवो जलप्लवः। अद्रीणां पर्वतानां गेहानां गृहाणां सरणं लुण्ठनमिति।।८७-८८।।

अथ शरद्याह—

**दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम् ।**
**ग्रहनक्षत्रतारागणां दर्शनं च दिवाऽम्बरे ॥८९॥**
**गीतवादित्रनिर्घोषा वनपर्वतसानुषु ।**
**सस्यवृद्धिरपां हानिरपापाः शरदि स्मृताः ॥९०॥**

दिव्य स्त्री, गन्धर्व, रथ तथा आश्चर्य करने वाली वस्तुओं का दर्शन, दिन के समय ग्रह-नक्षत्र आदि का दर्शन, वन तथा पर्वतों में गीत और वाद्यों की ध्वनि, धान्य की वृद्धि और जल की हानि—ये सब शरद् ऋतु में अपाप ( शुभ ) हैं।।८९-९०।।

एत उत्पाताः शरदि शरत्काले अपापाः शुभफलदाः स्मृता उक्ताः। दिव्यस्त्रीणामप्सर आदीनाम्। भूतानां गन्धर्वाणां देवयोनीनाम्। विमानानां रथानाम्। अद्भुतानामाश्चर्योत्पादकानां च दर्शनम्। तथा अम्बरे आकाशे दिवा दिवसे ग्रहनक्षत्रतारागणां दर्शनम्।

वनेष्वरण्येषु पर्वतसानुष्वद्रिसमभागेषु। गीतस्य वादित्राणां च निर्घोषाः शब्दाः श्रूयन्ते। सस्यानां वृद्धिरभ्यधिकता। अपां जलानां च हानिरल्पत्वम्।।८९-९०।।

अथ हेमन्ते आह—

**शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम् ।**
**रक्षोयक्षादिसत्त्वानां दर्शनं वागमानुषी ॥९१॥**
**दिशो धूमान्धकाराश्च सनभोवनपर्वताः ।**
**उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः ॥९२॥**

वायु तथा तुषार ( बर्फ ) में ठण्ढापन, मृग और पक्षियों का शब्द, राक्षस, यक्ष आदि प्राणियों का दर्शन, मनुष्य के विना वाणी, अन्धकारयुत आकाश, वन, पर्वत और दिशा तथा उच्च में सूर्य का उदयास्त होना—ये सब हेमन्त में शुभ हैं।।९१-९२।।

एत उत्पाता: शोभना इष्टफला हेमन्ते स्मृता उक्ता:। शीतस्यानिलस्य वायोस्तुषारस्य च भाव:। मृगाणां पक्षिणां च नर्दनं शब्द:। रक्षसां यक्षाणां सत्त्वानां च प्राणिनामदृश्यानां दर्शनम्। आदिग्रहणाद् भूतप्रेतपिशाचवेतालानां च दर्शनम्। अमानुषी मानुषेण विना वाक्।

दिश आशा धूमान्धकारा धूमेनान्धकारीकृता:। कीदृश्यो दिश:? सनभोवनपर्वता:, सह नभसा आकाशेन वनैररण्यै: पर्वतैश्च सहिता:, तथा सूर्यस्यादित्यस्योदयास्तमयावुच्चैरुच्चतरौ स्थानात्।। ९१-९२।।

अथ शिशिरे आह—

**हिमपातानिलोत्पाता विरूपाद्भुतदर्शनम्।**
**कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम् ॥९३॥**

**चित्रगर्भोद्भवा: स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु।**
**पत्राङ्कुरलतानां च विकारा: शिशिरे शुभा: ॥९४॥**

हिमपात, वायुसम्बन्धी उत्पात, भयानक प्राणियों का आश्चर्य करने वाला दर्शन, काले अञ्जन की तरह रात और उल्कापात से पीला आकाश, स्त्रियों के गर्भ से नाना प्रकार के ( घोड़ा आदि के अङ्गसदृश ) प्राणियों की उत्पत्ति, गाय, बकरी, घोड़ा, मृग और पक्षियों के गर्भ से विजातीय प्राणियों की उत्पत्ति, पत्र-लता और अङ्कुरों में विकार—ये सब शिशिर ऋतु में शुभ होते हैं।।९३-९४।।

एत उत्पाता: शिशिरे शुभा इष्टफलदा:। हिमस्य तुहिनस्य पात: पतनम्। अनिलोत्पाता वाय्वपस्पर्शा:। विरूपाणां भीषणीयानां सत्त्वानामद्भुतानामाश्चर्योत्पादकानां च दर्शनम्। दिव्यपुरुषादीनाम्। आकाशं नभ: कृष्णाञ्जनाभम्, कृष्णाञ्जनवदाभा कान्तिर्यस्य। तारापातैरुल्कापातै: पिञ्जरं चित्रितम्।

स्त्रीषु योषित्सु चित्रा नानाप्रकारा: श्वाद्यङ्गसदृशा: गर्भोद्भवा: गर्भाणां सम्भवा: तथा गोषु, अजेषु छागेषु, अश्वेषु तुरगेषु, मृगेषु, पक्षिषु च विचित्रगर्भोद्भवा:। गोऽजाश्वानां मृगपक्षिणां प्रकृतेर्विपर्यास:। पत्राणां पर्णानामङ्कुराणां लतानां विकारा विकृतय इति।।९३-९४।।

अत्रैव विशेषमाह—

**ऋतुस्वभावजा ह्येते दृष्टा: स्वर्त्तौ शुभप्रदा:।**
**ऋतोरन्यत्र चोत्पाता दृष्टास्ते चातिदारुणा: ॥९५॥**

ये ऋतु-स्वभावजनित उत्पात अपने ऋतु में शुभ फल देने वाले होते हैं; पर अन्य ऋतु में दिखाई दें तो अति कष्ट देने वाले होते हैं।।९५।।

एते यथोक्ता उत्पाता ऋतुस्वभावेन जायन्ते उत्पद्यन्ते स्वर्तावात्मीयर्तौ दृष्टा अवलोकिताः शुभप्रदा भवन्ति। ऋतोरन्यत्राऽस्मिन् काले दृष्टास्त उत्पाताश्चातिदारुणा अतिकष्टफला भवन्ति।।९५।।

यद्यद्विशेषफलप्रदं भवति तत्तदाह—

**उन्मत्तानां च या गाथाः शिशूनां यच्च भाषितम्।**
**स्त्रियो यच्च प्रभाषन्ते तस्य नास्ति व्यतिक्रमः ॥९६॥**

पागलों की गाथा ( गीत आदि ), बालकों का वचन और स्त्रियों की वाणी का उल्लंघन नहीं होता अर्थात् जो बोलते हैं, सब सत्य होते हैं।।९६।।

उन्मत्तानां विचित्राणां या गाथाः प्राकृतकाव्यम्। शिशूनां बालानां यच्च भाषितं व्याहृतम्, यच्च स्त्रियो योषितः प्रभाषन्ते व्याहरन्ति। तस्य व्यतिक्रमोऽन्यथात्वं नास्ति न विद्यते। सर्वथा तद्भवतीत्यर्थः। येन कारणेनैतत्सत्यरूपं भवति।।९६।।

तत्प्रदर्शनार्थमाह—

**पूर्वं चरति देवेषु पश्चाच्चरति मानुषान्।**
**नाचोदिता वाग्वदति सत्या ह्येषा सरस्वती ॥९७॥**

विना प्रेरणा के नहीं बोलने वाली यह सत्यरूप सरस्वती पहले देवताओं में विचरण करती थी, बाद में मनुष्यों को प्राप्त हुई।।९७।।

एषा भगवती सरस्वती सत्या सत्यरूपा अचोदिता अप्रेरिता न वदति न ब्रवीति। यतः प्रथमं पूर्वं देवेषु चरति देवलोकं याति। देवप्रेरिता पश्चादनन्तरं मानुषान् गच्छति।।९७।।

अथोत्पातशास्त्रज्ञस्य प्रभावमाह—

**उत्पातान् गणितविवर्जितोऽपि बुद्ध्वा**
**विख्यातो भवति नरेन्द्रवल्लभश्च।**
**एतत्तन्मुनिवचनं रहस्यमुक्तं**
**यज्ज्ञात्वा भवति नरस्त्रिकालदर्शी ॥९८॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुत्पात-**
**लक्षणाध्यायः षट्चत्वारिंशः ॥४६॥**

गणित को नहीं जानने वाले मनुष्य भी पूर्वोक्त उत्पातों को जान कर यशस्वी और राजा के प्रिय होते हैं। यह मुनि का वचन गोपनीय कहा गया है, जिसको जान कर मनुष्य त्रिकालदर्शी होता है।।९८।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायामुत्पाताध्यायः षट्चत्वारिंशः ॥४६॥**

गणितविवर्जितो ग्रहगणितरहितोऽप्युत्पातान् बुद्ध्वा ज्ञात्वा विख्यातः कीर्तियुक्तो नरेन्द्रवल्लभो नृपप्रियश्च भवति। एतत्तद्रहस्यं परमार्थं मुनिवचनमृषिवाक्यमुक्तं कथितम्। यज्ज्ञात्वा बुद्ध्वा नरः पुरुषस्त्रिकालदर्शी त्रिकालं पश्यति। अतीतानागतवर्तमानकालज्ञो भवतीत्यर्थः।।९८।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृता-**
**वुत्पाताध्यायः षट्चत्वारिंशः ॥४६॥**

# अथ मयूरचित्रकाध्यायः

अथ मयूरचित्रकं व्याख्यायते। तत्रादावेव तत्प्रदर्शनार्थमाह—

**दिव्यान्तरिक्षाश्रयमुक्तमादौ मया फलं शस्तमशोभनं च।**
**प्रायेण चारेषु समागमेषु युद्धेषु मार्गादिषु विस्तरेण ॥१॥**

**भूयो वराहमिहिरस्य न युक्तमेतत्**
**कर्तुं समासकृदसाविति तस्य दोषः।**
**तज्ज्ञैर्न वाच्यमिदमुक्तफलानुगीति**
**यद्बर्हिचित्रकमिति प्रथितं वराङ्गम् ॥२॥**

**स्वरूपमेव तस्य तत्प्रकीर्तितानुकीर्तनम्।**
**ब्रवीम्यहं न चेदिदं तथाऽपि मेऽत्र वाच्यता ॥३॥**

पहले चार ( चन्द्रग्रह समागम ), युद्ध, मार्ग ( शुक्रचार ) और आदि ( मण्डल ) में दिव्य तथा आन्तरिक्ष के आश्रयवश शुभाशुभ फल विस्तारपूर्वक मैंने ( वराहमिहिर ने ) कहे हैं; फिर उसी फलप्रसङ्ग को लेकर यहाँ कहना संक्षेप करने वाले वराहमिहिर के लिये ठीक नहीं है; क्योंकि विस्तार करना उनका दोष है। पर यहाँ पुनरुक्त दोष है, ऐसा पण्डितों को नहीं कहना चाहिये। यतः यह बर्हिचित्रक नामक प्रकरण संहिता का प्रसिद्ध अङ्ग है। पुनरुक्त फल होने से ही इस मयूरचित्रक का निश्चित स्वरूप ज्ञान होगा अर्थात् पूर्व फल-कथन के अतिरिक्त पुनः यहाँ पर मयूरचित्रक का सम्बन्ध लेकर उसी फल का वर्णन कर देना ही उसका स्वरूप है; अतः फिर नहीं कहने से भी मेरी निन्दा होगी।।१-३।।

मया आदौ प्रथमं दिव्यान्तरिक्षाश्रयं फलम्। ग्रहाश्च नक्षत्राण्याश्रयो यस्य तद्दिव्यम्। उल्कानिर्घातपवनपरिवेषगन्धर्वनगरेन्द्रचापाद्याश्रयो यस्य तदान्तरिक्षम्। तच्च शस्तं शुभमशोभनं चाशस्तं प्रायेण बाहुल्येन चारेषु समागमेषु चन्द्रग्रहसंयोगेषु। युद्धेषु। मार्गादिषु मार्गेषु शुक्रचारोक्तेषु। आदिग्रहणान्मण्डलेषु सर्वं विस्तरेणोक्तं कथितम्।

एतत्सर्वं पूर्वोक्तं भूयः पुनर्वराहमिहिरस्य वक्तुं न युक्तं नोपपन्नम्। यतोऽसौ वराहमिहिरः समासकृदिति संक्षेपकृदिति तस्य वराहमिहिरस्य दोषो व्यासकृतः। पुनरुक्तं कर्तुं न युज्यते। यस्माद्यतो बर्हिचित्रकं मयूरचित्रकं वराङ्गं संहितायाः प्रधानमङ्गं प्रथितं प्रसिद्धम्। अतोऽत्रोक्तफलानुगीति तज्ज्ञैर्न वाच्यम्। उक्तानां कथितानां फलानामनुगीति पुनः कीर्तनं पण्डितैर्न वक्तव्यम्।

**स्वरूपमेवेति**। तस्य मयूरचित्रकस्य च तदेव स्वरूपं चरितं यत्प्रकीर्तितानामनुकीर्तनं

पुनःकरणम्। अहं यदीदं मयूरचित्रकं न ब्रवीमि न वच्मि तथाऽप्यत्र मे वाच्यता भवति, यथा किमिति वराहमिहिरेण नोक्तम्।।१-३।।

तदत्र ग्रहणचारोक्तफलमाह—

**उत्तरवीथिगता द्युतिमन्तः क्षेमसुभिक्षशिवाय समस्ताः।**
**दक्षिणमार्गगता द्युतिहीनाः क्षुद्भयतस्करमृत्युकरास्ते ॥४॥**

यदि प्रकाशयुत होकर ग्रह उत्तर वीथियों ( नाग, गज और ऐरावतसंज्ञक वीथी ) में गमन करें तो क्षेम, सुभिक्ष और कल्याण के लिये होते हैं। यदि प्रकाशहीन होकर दक्षिण मार्ग ( मृग, अज और दहनसंज्ञक वीथी ) में गमन करें तो दुर्भिक्ष, चोरभय और मृत्यु को करते हैं।।४।।

उत्तरवीथयो नागगजैरावताः तासु सर्व एव भौमादयस्ताराग्रहा गता ये च द्युतिमन्तस्तेजस्विनः क्षेमसुभिक्षशिवाय भवन्ति। तथा त एव ग्रहा दक्षिणमार्गगता मृगाजदहनाख्यासु वीथिषु स्थिताः। द्युतिहीनाः कान्तिरहिताः। क्षुद्भयतस्करमृत्युकराः, क्षुद्भयं दुर्भिक्षम्, तस्करांश्चौरान्, मृत्युं मरणं च कुर्वन्ति। अर्थादेव मध्यवीथिषु गता मध्यफलाः। तथा च गर्गः—

वर्णवन्तः स्वमार्गस्था नागवीथीविचारिणः।
यदि ताराग्रहाः सन्ति सर्वलोकहितावहाः।।
वैश्वानरपथप्राप्ता एकनक्षत्रचारिणः।
पञ्च ताराग्रहाश्चेत् स्युर्विन्द्याल्लोकस्य संक्षयम्।। इति।।४।।

अन्यदप्याह—

**कोष्ठागारगते भृगुपुत्रे पुष्यस्थे च गिराम्प्रभविष्णौ।**
**निर्वैराः क्षितिपाः सुखभाजः संहृष्टाश्च जना गतरोगाः ॥५॥**

यदि कोष्ठागार ( मघा नक्षत्र ) में शुक्र और पुष्य नक्षत्र में बृहस्पति स्थित हो तो राजा लोग पारस्परिक द्वेषरहित और सुखी होते हैं तथा प्रजागण प्रसन्न और रोगरहित होते हैं।।५।।

कोष्ठागारं मघा तत्र गते तत्रस्थे भृगुपुत्रे शुक्रे गिराम्प्रभविष्णौ वाचां स्वामिनि बृहस्पतौ पुष्यस्थे च क्षितिपा राजानो निर्वैरा विगतद्वेषाः सुखभाजश्च भवन्ति। तथा जना लोकाः संहृष्टाः प्रमुदिता गतरोगाः स्वस्थदेहाश्च भवन्ति। तथा च गर्गः—

कोष्ठागारगते शुक्रे पुष्यस्थे च बृहस्पतौ।
विन्द्यात्तदा सुखं लोके शान्तशस्त्रमनामयम्।। इति ।।५।।

अन्यदप्याह—

**पीडयन्ति यदि कृत्तिकां मघां रोहिणीं श्रवणमैन्द्रमेव वा।**
**प्रोज्झ्य सूर्यमपरे ग्रहास्तदा पश्चिमा दिगनयेन पीड्यते ॥६॥**

यदि सूर्य को छोड़ कर अन्य ( चन्द्रादि ) ग्रह कृत्तिका, मघा, रोहिणी, श्रवणा या ज्येष्ठा नक्षत्र को पीड़ित ( दक्षिण मार्ग में गमन या योगतारा के भेदन से पीड़ित ) करते हों तो अन्याय से पश्चिम दिशा पीड़ित होती है।।६।।

सूर्यमादित्यं प्रोज्झ्य वर्जयित्वा अपरे सर्वे चन्द्रादयो ग्रहा यदा कृत्तिका, मघा, रोहिणी, श्रवणम्, ऐन्द्रं ज्येष्ठा, एतानि नक्षत्राणि पीडयन्ति दक्षिणमार्गगमनेन योगतारकाच्छादनेन भेदनेन वा। तदा पश्चिमा दिग् अपराशा अनयेनानीत्या पीड्यते। तथा च गर्गेणोच्यते—

वैष्णवं पित्रमाग्नेयं ज्येष्ठामपि च रोहिणीम्।
पीडयन्ति यदैतानि राहुषष्ठानुचारिणः।।
दुर्भिक्षं जायते लोके सस्यमत्र न रोहति।
शुष्यन्ति सरितः सर्वाः पर्जन्यश्च न वर्षति।। इति।।६।।

अन्यदप्याह—

**प्राच्यां चेद् ध्वजवदवस्थिता दिनान्ते**
**प्राच्यानां भवति हि विग्रहो नृपाणाम्।**
**मध्ये चेद् भवति हि मध्यदेशपीडा**
**रूक्षैस्तैर्न तु रुचिमन्मयूखवद्भिः ।।७।।**

यदि सन्ध्या समय में चन्द्र आदि ग्रह ध्वज की तरह पूर्व दिशा में दिखाई दें तो पूर्व दिशा में स्थित राजाओं में परस्पर विग्रह होता है तथा आकाश-मध्य में स्थित हों तो मध्य देश में पीडा होती है। पर इन चन्द्र आदि ग्रहों के रूखे रहने पर ही यह फल प्राप्त होता है। यदि निर्मल सुन्दर किरण वाले हों तो नहीं अर्थात् पूर्व दिशा या मध्य देश को पीड़ित नहीं करते हैं।।७।।

एत एव चन्द्रादयो ग्रहा दिनान्ते अस्तमयकाले प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि ध्वजवत्पताकासंस्थानेनावस्थिता यदि भवन्ति, तदा प्राच्यानां प्राग्देशवर्तिनां नृपाणां राज्ञां विग्रहो भवति परस्परं द्वेषः। अथ यदि मध्ये नभोमध्ये ध्वजवदवस्थिता भवन्ति, तदा मध्यदेशपीडा भवति। किं सर्वदा? न, इत्याह—**रूक्षैस्तैः**। तैर्ग्रहै रूक्षैः कलुषैः स्वल्पविम्बैर्यदुक्तं तदेव भवति प्राच्यानां नृपाणां विग्रहस्तथा मध्यदेशपीडा, न तु रुचिमन्मयूखवद्भिः, रुचिमद्भिर्दीप्तिमद्भिर्मयूखवद्भिः स्फुटरश्मिवद्भिश्च न भवति।।७।।

अन्यदप्याह—

**दक्षिणां ककुभमाश्रितस्तु तैर्दक्षिणापथपयोमुचां क्षयः।**
**हीनरूक्षतनुभिश्च विग्रहः स्थूलदेहकिरणान्वितैः शुभम् ।।८।।**

यदि चन्द्र आदि ग्रह दक्षिण दिशा में स्थित हों तो दक्षिण दिशा में मेघों का नाश करते हैं। यदि ये ग्रह अल्प विम्ब वाले और रूक्ष हों तो विग्रह तथा स्थूल बिम्ब वाले किरणयुक्त हों तो शुभ होता है।।८।।

तैर्ग्रहैर्दक्षिणां ककुभं याम्यां दिशमाश्रितैर्दक्षिणापथपयोमुचां दक्षिणस्यां दिशि पयोमुचां मेघानां क्षयो विनाशो भवति। तथा तैरेव दक्षिणां ककुभमाश्रितैर्हीनरूक्षतनुभिः, हीना अल्पा रूक्षा कलुषा तनुः शरीरं येषां तैस्तथाभूतैर्विग्रहैस्तैरेव स्थूलदेहैर्बृहद्बिम्बैः किरणान्वितै रश्मिवद्भिः शुभं तत्रैव वाच्यम्।।८।।

अन्यदप्याह—

**उत्तरमार्गे स्पष्टमयूखाः शान्तिकरास्ते तन्नृपतीनाम्।**
**ह्रस्वशरीरा भस्मसवर्णा दोषकराः स्युर्देशनृपाणाम् ॥९॥**

यदि चन्द्र आदि ग्रह स्पष्ट किरण वाले होकर उत्तर मार्ग में स्थित हों तो उत्तर दिशा में स्थित राजाओं में शान्ति करने वाले होते हैं। यदि अल्प बिम्ब वाले या भस्म के समान वर्ण वाले हों तो उस दिशा में स्थित राजाओं में दोष उत्पन्न करने वाले होते हैं।।९।।

त एव ग्रहा उत्तरमार्गे उत्तरस्यां दिशि उत्तरवीथिषु व्यवस्थिताः स्पष्टमयूखा विपुलरश्मयः। तन्नृपतीनामुत्तरपथराजानां शान्तिकराः शिवप्रदाः। तथा त एव ग्रहा ह्रस्वशरीराः स्वल्पविम्बा भस्मवर्णा विगतकान्तयः कलुषाश्च तद्देशनृपाणामुत्तरपथराजानां दोषकराः। तथा च गर्गः—

उत्तरोत्तरमार्गस्था रश्मिमालाधरा ग्रहाः।
विष्पन्दन्त इवात्यर्थं जयमाहुरुपस्थितम्।। इति।।९।।

अन्यदप्याह—

**नक्षत्राणां तारकाः सग्रहाणां धूमज्वालाविस्फुलिङ्गान्विताश्चेत्।**
**आलोकं वा निर्निमित्तं न यान्ति याति ध्वंसं सर्वलोकः सभूपः ॥१०॥**

यदि ग्रह और नक्षत्रों के तारे धूमज्वाला या अग्निकणों से व्याप्त या विना कारण प्रकाशरहित दिखाई दें तो उस देश में ( ग्रहभक्ति या कूर्म विभाग में कथित उस ग्रह या नक्षत्र के देश में ) स्थित राजा के साथ-साथ सब प्रजाओं का भी नाश होता है।।१०।।

येषां देशानां सम्बन्धिनां कूर्मविभागोक्तानां नक्षत्राणामश्विन्यादीनां यास्तारकास्ताश्च सधूमज्वालाविस्फुलिङ्गा धूमयुक्ता ज्वालायुक्ता वा विस्फुलिङ्गयुक्ता दृश्यन्ते यासु धूमेन ज्वालया विस्फुलिङ्गैरग्निकणैर्व्याप्ताः। केचित् पठन्ति धूमज्वालाविस्फुलिङ्गावृताश्च। अथवा निर्निमित्तं कारणं विना रजोनीहारमेघान्विता आलोकं दर्शनं न यान्ति। देशानां नक्षत्रोक्तानां ग्रहभक्तिकथितानां वा सभूपो नृपतिसहितः सर्वलोको निःशेषो जनो ध्वंसं नाशं याति गच्छति।।१०।।

अन्यदप्याह—

**दिवि भाति यदा तुहिनांशुयुगं द्विजवृद्धिरतीव तदाशु शुभा।**
**तदनन्तरवर्णरणोऽर्कयुगे जगतः प्रलयस्त्रिचतुष्प्रभृति ॥११॥**

जिस समय आकाश में दो चन्द्रमा दिखाई दें, उस समय शीघ्र ब्राह्मणों की वृद्धि और शुभ होता है। यदि दो सूर्य दिखाई दें तो क्षत्रियों में संग्राम होता है तथा तीन-चार आदि सूर्य दिखाई दें तो संसार का नाश होता है।।११।।

दिव्याकाशे यदा यस्मिन् काले तुहिनांशुयुगं चन्द्रयुग्मं भाति दृश्यते, तदा तस्मिन् काले आशु क्षिप्रं शुभा शोभना अतीवात्यर्थं द्विजानां ब्राह्मणानां वृद्धिर्भवति। तथा अर्क-युगे सूर्ययुग्मे दृष्टे तदनन्तरवर्णस्य ब्राह्मणात् परस्य क्षत्रियाख्यस्य रण: संग्रामो भवति। तथा त्रिषु चतुर्षु पञ्चसु वा सूर्येषु दृष्टेषु जगतो जनस्य प्रलय: संहार इति। तथा च गर्ग:—

द्विचन्द्रं गगनं दृष्ट्वा विन्द्याद् ब्रह्मसमुत्थितम्।
द्वौ वा सूर्यौ यदा स्यातां तदा क्षत्रं विरुद्ध्यति।।
दृष्ट्वा त्रिचतुर: सूर्यानुदितान् सर्वतो दिशम्।
शस्त्रेण जनमारेण तद्युगान्तरदर्शनम्।। इति।।११।।

अन्यदप्याह—

**मुनीनभिजितं ध्रुवं मघवतश्च भं संस्पृशन्**
**शिखी घनविनाशकृत् कुशलकर्महा शोकद:।**
**भुजङ्गमथ संस्पृशेद् भवति वृष्टिनाशो ध्रुवं**
**क्षयं व्रजति विद्रुतो जनपदश्च बालाकुल: ॥१२॥**

यदि केतु सप्तर्षि मण्डल, अभिजित् नक्षत्र, ध्रुवतारा या ज्येष्ठा नक्षत्र को स्पर्श करे तो मेघों का नाश, अमङ्गल, कर्मों की हानि और शोक देने वाला होता है। यदि आश्लेषा नक्षत्र को स्पर्श करे तो निश्चय ही वृष्टि का नाश और क्षुधा-पिपासा आदि से पीड़ित बालकों को साथ लेकर लोग वहाँ से चल कर नष्ट होते हैं।।१२।।

शिखी केतुर्मुनीन् सप्तर्षीन्। अभिजिदभिजित्तारकं ध्रुवं ध्रुवतारकं मघवत इन्द्रस्य भं ज्येष्ठा। एतानि यदि संस्पृशेत् स्पर्शयति तदा घनानां मेघानां विनाशकृद्विनाशं करोति। कुशलकर्महा कुशलमारोग्यं कर्माणि च यानि क्रियन्ते तानि हन्ति। शोकद: शोकं च ददाति। अथ भुजङ्गमाश्लेषां यदि स्पृशेत्तदा ध्रुवं निश्चितं वृष्टिनाशो भवति, अवृष्टिर्जायते। तथा जनपदो लोको बालाकुल: शिशुभिराकुलीकृतश्चलितश्च क्षयं विनाशं व्रजति गच्छति।।१२।।

अन्यदप्याह—

**प्राग्द्वारेषु चरन् रविपुत्रो नक्षत्रेषु करोति च वक्रम्।**
**दुर्भिक्षं कुरुते महदुग्रं मित्राणां च विरोधमवृष्टिम् ॥१३॥**

यदि शनि प्राग्द्वार ( कृत्तिका आदि सात नक्षत्रों ) में विचरण करते हुये वक्री हो जाय तो दुर्भिक्ष, मित्रों में अत्यधिक विरोध और अवृष्टि करता है।।१३।।

यात्रायां यानि प्राग्द्वारिकाणि कृत्तिकाद्यानि सप्त नक्षत्राणि उक्तानि तेषु च सप्तसु

नक्षत्रेषु रविपुत्रः शनैश्चरस्तिष्ठेद्यदा च वक्रं करोति प्रतीपगमनमाश्रयति। तदा महदुग्रमतीव कष्टं दुर्भिक्षं कुरुते। येषु देशेषु भानि नक्षत्राणि तेषु विशेषतः। तथा मित्राणां सुहृदां च परस्परं विरोधं द्वेषमवृष्टिं च करोति। तथा च गर्गः—

विलम्बितगतिः सौरः प्राग्द्वारेषु यदा भवेत्।
महाभयानि चत्वारि विजानीयात् समन्ततः।।
अनावृष्टिभयं घोरं दुर्भिक्षं मित्रविग्रहम्।। इति।।१३।।

अन्यदप्याह—

**रोहिणीशकटमर्कनन्दनो यदि भिनत्ति रुधिरोऽथवा शिखी।**
**किं वदामि यदनिष्टसागरे जगदशेषमुपयाति संक्षयम् ॥१४॥**

यदि रोहिणी शकट को शनि, मंगल या केतु भेदन करे तो अधिक क्या कहा जाय, सम्पूर्ण विश्व ही अनिष्ट सागर में पड़ कर नष्ट हो जाता है, अर्थात् उस समय अमंगल ही अमङ्गल चारो तरफ दिखाई देते हैं।।१४।।

अर्कनन्दनः सौरो यदि रोहिणीशकटं भिनत्ति विदारयति रुधिरोऽङ्गारको वा शिखी केतुरथवा, तदा अनिष्टसागरे अनिष्टसमुद्रे अशेषं सर्वं जगद्विश्वं संक्षयं विनाशं याति। किमन्यदपरं वदामि कथयामि यदनिष्टं न भवति। तथा च गर्गः—

रोहिणीशकटं भौमो भिनत्त्यर्कसुतोऽथवा।
केतुर्वा जगतो ब्रूयात् प्रलयं समुपस्थितम्।। इति।।१४।।

अन्यदप्याह—

**उदयति सततं यदा शिखी चरति भचक्रमशेषमेव वा।**
**अनुभवति पुराकृतं तदा फलमशुभं सचराचरं जगत् ॥१५॥**

जिस समय केतु सदा दिखाई दे या सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल में विचरण करे, उस समय चराचर के साथ सम्पूर्ण जगत् बराबर किये हुये पूर्वार्जित अशुभ फलों का अनुभव करता है।।१५।।

शिखी केतुर्यदा सततं सर्वकालमुदयति दर्शनं गच्छति, अशेषं समग्रं भचक्रं नक्षत्रमण्डलमेव वा चरति विचरति, तदा सचराचरं जङ्गमस्थावराख्यं जगद्विश्वं पुराकृतमन्यजन्मार्जितं फलमशुभमनिष्टमनुभवत्युपभुंक्ते इत्यर्थः।।१५।।

अधुना चन्द्रचारोक्तफलमाह—

**धनुःस्थायी रूक्षो रुधिरसदृशः क्षुद्भयकरो**
**बलोद्योगं चन्द्रः कथयति जयं ज्याऽस्य च यतः।**
**गवां शृङ्गो गोघ्नो निधनमपि सस्यस्य कुरुते**
**ज्वलन् धूमायन् वा नृपतिमरणायैव भवति ॥१६॥**

यदि चन्द्र धनुषाकार होकर रूक्ष और रक्त वर्ण का दिखाई दे तो दुर्भिक्ष और सेनाओं में परस्पर युद्ध का भय करता है तथा इस चन्द्र की ज्या जिस तरफ रहती है, उस तरफ के राजाओं की विजय होती है। गौ के शृङ्ग की तरह शृङ्ग हो तो गौ और धान्यों का नाश करता है तथा प्रज्ज्वलित या धूम की तरह दिखाई दे तो राजाओं के मरण के लिये होता है।।१६।।

चन्द्र इन्दु:। धनु:स्थायी चापसंस्थान:। रूक्ष: कलुष:। रुधिरसदृशो लोहितवर्ण-स्तथाभूत:। क्षुद्भयकरो दुर्भिक्षभयं करोति। तथा बलानां सैन्यानामुद्योगं युद्धं कथयत्याचष्टे। अस्य चन्द्रमसो यतो यस्यां दिशि ज्या गुण: स्थिता, तत्र ये नृपा: स्थितास्तेषां जयम्। गवां शृङ्गो गोविषाणो गोघ्नो गवां नाशकर: सस्यस्यापि निधनं विनाशं कुरुते। अथ ज्वलन् ज्वालामुद्वहन्। धूमायन् वा धूमं समुद्वहन् वा। नृपते राज्ञो मरणाय मृत्यव एव भवति।।१६।।

अन्यदप्याह—

**स्निग्ध: स्थूल: समशृङ्गो विशालस्तुङ्गश्चोदग्विचरन्नागवीथ्याम्।**
**दृष्ट: सौम्यैरशुभैर्विप्रयुक्तो लोकानन्दं कुरुतेऽतीव चन्द्र: ।।१७।।**

यदि स्निग्ध, स्थूल, समान शृङ्ग वाला, विशाल और उन्नत होकर उत्तर तरफ नागवीथी में स्थित चन्द्र शुभ ग्रह से देखा जाता हो और पापग्रह से युत न हो तो मनुष्यों को अतिशय आनन्द देता है।।१७।।

एवंविधश्चन्द्र: शशी दृष्टोऽतीवात्यर्थं लोकानां जनानामानन्दं तुष्टिं कुरुते। कीदृश:? स्निग्धो निर्मल:, स्थूलो घन:, समशृङ्गस्तुल्यविषाण:, विशालो विस्तीर्ण:, तुङ्ग उच्चस्थ:, उदगुत्तरशृङ्ग:, उत्तरशृङ्गोन्नत इत्यर्थ:। नागवीथ्याम् 'नागा तु पवनयाम्यानलानि'त्युक्ता तस्यां विचरंस्तिष्ठन् सौम्यै: शुभग्रहैर्बुधजीवशुक्रैर्दृष्टो विलोकित:। अशुभै: पापैरादित्य-भौमसौरैर्विप्रयुक्तो विरहित:।।१७।।

अन्यदप्याह—

**पित्र्यमैत्रपुरुहूतविशाखात्वाष्ट्रमेत्य च युनक्ति शशाङ्क:।**
**दक्षिणेन न शुभ: शुभकृत्स्याद्यद्युदक्चरति मध्यगतो वा ।।१८।।**

यदि चन्द्रमा मघा, अनुराधा, ज्येष्ठा, विशाखा और चित्रा नक्षत्र में जाकर दक्षिण मार्ग में होकर गमन करे तो अशुभ और उत्तर मार्ग या मध्य में होकर गमन करे तो शुभ करने वाला होता है।।१८।।

पित्र्यं मघा। मैत्रमनुराधा। पुरुहूतो ज्येष्ठा। विशाखा। त्वाष्ट्रं चित्रा। एतानि नक्षत्राणि शशाङ्कश्चन्द्र: समेत्य प्राप्य दक्षिणेन याम्येन भागेन यदि युनक्ति संयोगं करोति, तदा न शुभोऽनिष्टफलद:। यद्युदगुत्तरेण चरति गच्छति प्रागुक्तेषु नक्षत्रेषु मध्यगतो वा मध्येन गच्छति, तदा शुभकृच्छुभफलं करोति।।१८।।

अथ परिघपरिधिदण्डामोघरश्मिरोहितैरावतानां लक्षणमाह—

**परिघ इति मेघरेखा या तिर्यग्भास्करोदयेऽस्ते वा।**
**परिधिंस्तु प्रतिसूर्यो दण्डस्त्वृजुरिन्द्रचापनिभः ॥१९॥**
**उदयेऽस्ते वा भानोर्ये दीर्घा रश्मयस्त्वमोघास्ते।**
**सुरचापखण्डमृजु यद्रोहितमैरावतं दीर्घम् ॥२०॥**

सूर्य के उदय या अस्त समय में तिरछी मेघ की रेखा 'परिघ' संज्ञक, प्रतिसूर्य 'परिधि' संज्ञक और स्पष्ट इन्द्रधनुष के समान रेखा 'दण्ड' संज्ञक होती है तथा उदय या अस्त समय में सूर्य के लम्बे किरण 'अमोघ' संज्ञक, स्पष्ट इन्द्रधनुष के खण्ड 'रोहित' संज्ञक और लम्बे सीधे इन्द्रधनुष 'ऐरावत' संज्ञक होते हैं।।१९-२०।।

भास्करस्यादित्यस्योदये अस्तमये वा तिर्यग् या स्थिता मेघरेखा भवति, स परिघ इति परिघसंज्ञः। तथा प्रतिसूर्यः परिधिसंज्ञः। इन्द्रचापनिभः शक्रधनुःसदृशः ऋजुः स्पष्टो दण्डसंज्ञः।

**उदयेऽस्ते वेति**। भानोरादित्यस्योदयेऽस्तमये वा ये दीर्घा आयामिनो रश्मयः किरणास्ते त्वमोघाख्या अमोघसंज्ञाः। सुरचापखण्डमिन्द्रधनुःखण्डं यदृजु स्पष्टं तद्रोहितसंज्ञम्। तदेव यदि दीर्घं भवति तदैरावतसंज्ञं ज्ञेयम्।।१९-२०।।

अथ सन्ध्यालक्षणमाह—

**अर्धास्तमयात् सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्।**
**तेजःपरिहानिमुखाद्भानोरर्धोदयो यावत् ॥२१॥**
**तस्मिन् सन्ध्याकाले चिह्नैरेतैः शुभाशुभं वाच्यम्।**
**सर्वैरेतैः स्निग्धैः सद्यो वर्षं भयं रूक्षैः ॥२२॥**

अर्धास्त सूर्यबिम्ब के अनन्तर स्पष्ट रूप से ताराओं को दिखाई देने तक पश्चिमा सन्ध्या और ताराओं के प्रकाशहानि के समय से अर्धोदित सूर्यबिम्ब काल तक प्राक् सन्ध्या होती है। इस सन्ध्या समय में वक्ष्यमाण चिह्नों के द्वारा शुभाशुभ फल कहना चाहिये, जैसे कि समस्त आकाशस्थित बिम्बगण स्निग्ध हों तो शीघ्र वर्षा और रूखे हों तो भय उत्पन्न होता है।।२१-२२।।

भानोरादित्यस्यार्धास्तमयादारभ्य यावत्तारका नभसि न व्यक्तीभूता न परिस्फुटाः, तावदपरा सन्ध्या। तथा तारकाणां तेजःपरिहानिमुखाद्दीप्तिनिवृत्तेरारभ्य यावद् भानोरर्कस्यार्धोदयस्तावत् पूर्वा सन्ध्या।

तस्मिन् यथोद्दिष्टे सन्ध्यासमये एतैः प्रागुक्तैश्चिह्नैर्वक्ष्यमाणैश्च शुभाशुभं फलं वाच्यं वक्तव्यम्। एतैस्तथा वक्ष्यमाणैश्च चिह्नैः सर्वैः स्निग्धैः सस्नेहैः सद्यस्तस्मिन्नहनि वर्षं ज्ञेयम्। तस्मिन्नेवाहनि वर्षति। तैरेव रूक्षैः सद्यो भयमिति।।२१-२२।।

अथ वृष्टिज्ञानमाह—

**अच्छिन्नः परिघो वियच्च विमलं श्यामा मयूखा रवेः**
**स्निग्धा दीधितयः मितं सुरधनुर्विद्युच्च पूर्वोत्तरा।**
**स्निग्धो मेघतरुर्दिवाकरकरैरालिङ्गितो वा यदा**
**वृष्टिः स्याद्यदि वाऽर्कमस्तसमये मेघो महान् छादयेत् ॥२३॥**

अखण्डित परिघ, निर्मल आकाश, सूर्य की श्याम वर्ण किरणें, स्निग्ध दीधिति, श्वेत वर्ण के इन्द्रधनुष, पूर्वोत्तरा विद्युत् और स्निग्ध या सूर्य के किरणों से व्याप्त मेघवृक्ष हो तो वर्षा होती है अथवा यदि सायंकाल में बहुत बड़ा मेघ सूर्यबिम्ब को आच्छादित करे तो भी वृष्टि होती है।।२३।।

परिघोऽच्छिन्नोऽखण्डः। सकल इत्यर्थः। वियदाकाशं विमलं निर्मलम्। रवेरादित्यस्य मयूखा रश्मयः श्यामाः श्यामवर्णाः। ते च मेघाख्याः। तथा दीधितयः सामान्यरश्मयो येऽन्ये अमोघवर्जितास्ते स्निग्धाः। सुरधनुरिन्द्रचापं सितं श्वेतम्। पूर्वोत्तरा चैशानी विद्युत्तडिद् दृश्यते। मेघतरुर्मेघ एव वृक्षाकारः, स च स्निग्धो निर्मलः। अथवा सर्व एव मेघतरुर्दिवाकरकरैः सूर्यरश्मिभिरालिङ्गितो व्याप्तः समन्ततस्तदा वृष्टिर्वर्षणं स्याद् भवेत्। यदि वाऽस्तसमये सूर्यास्तमयवेलायामर्कं रविं महान् मेघो बृहद् घनः छादयेत् स्थगयेत्तथापि वृष्टिः स्यात्।।२३।।

अधुनार्कचारोक्तं फलमाह—

**खण्डो वक्रः कृष्णो ह्रस्वः काकाद्यैर्वा चिह्नैर्विद्धः।**
**यस्मिन् देशे रूक्षश्चार्कस्तत्राभावः प्रायो राज्ञः ॥२४॥**

जिस देश में खण्डित, कुटिल, कृष्ण, स्वल्प, काक आदि पक्षियों के चिह्नों से व्याप्त या रूक्ष सूर्यविम्ब दिखाई दे तो प्रायः उस देश के राजा का नाश होता है।।२४।।

अर्क आदित्यो यस्मिन् देशे खण्डोऽसकलः। वक्रः कुटिलो दीर्घश्च। कृष्णोऽसितवर्णः। ह्रस्वः स्वल्पविम्बः। अथवा काकाद्यैश्चिह्नैर्विद्धः। आदिग्रहणाद् ध्वांक्षकबन्धप्रहरणा ग्रहीतव्याः। तैर्विद्धः। तथा रूक्षो न निर्मलः। एवंविधो दृश्यते। तस्मिन् देशे यो राजा तस्य राज्ञः प्रायो बाहुल्येनाभावो विनाश इत्यर्थः। तथा च गर्गः—

खण्डो वा कृष्णवर्णो वा ह्रस्वः पिङ्गलकोऽथवा।
यत्रार्को दृश्यते तत्र राज्ञो मृत्युं विनिर्दिशेत्।। इति।।२४।।

अथ युद्धकाले जयपराजयज्ञानमाह—

**वाहिनीं समुपयाति पृष्ठतो मांसभुक् खगगणो युयुत्सतः।**
**यस्य तस्य बलविद्रवो महानग्रगैस्तु विजयो विहङ्गमैः ॥२५॥**

युद्ध की इच्छा करने वाले जिस राजा की सेनाओं के पीछे होकर मांस खाने वाले पक्षीसमूह गमन करें, उस राजा की सेनाओं को युद्ध से भागना पड़ता है एवं यदि पक्षी

गण सेनाओं के आगे होकर गमन करें तो विजय होती है।।२५।।

यस्य राज्ञो युयुत्सतो योद्धुमिच्छतो वाहिनीं सेनां मांसभुगामिषादः खगगणः पक्षिसमूहः पृष्ठतः पश्चात् समुपयाति गच्छति तस्य महानतीव बलविद्रवः सेनापलायनं भवति। अग्रगैषः पुरोगैर्विहङ्गमैः पक्षिभिर्विजयो भवति।।२५।।

अथ गन्धर्वपुरलक्षणमाह—

**भानोरुदये यदि वास्तमये गन्धर्वपुरप्रतिमा ध्वजिनी।**
**विम्बं निरुणद्धि तदा नृपतेः प्राप्तं समरं सभयं प्रवदेत् ॥२६॥**

सूर्य के उदय या अस्त समय में पताकायुत गन्धर्व नगर की प्रतिमा सूर्यबिम्ब को छादित करे तो राजा को भयङ्कर युद्ध की प्राप्ति होगी—ऐसा कहना चाहिये।।२६।।

भानोरादित्यस्योदये अस्तमये वा यदि गन्धर्वपुरप्रतिमा गन्धर्वनगरतुल्या ध्वजिनी सेना यदा विम्बं मण्डलं निरुणद्धि छादयति, तदा नृपते राज्ञः समरं संग्रामं सभयं भयसहितं प्राप्तमायातमिति प्रवदेद् ब्रूयात्। तथा च गर्गः—

आदित्ये सरथा सेना सन्ध्याकाले यदा भवेत्।
प्रत्यासन्नं विजानीयाद् भूमिपस्य पराजयम्।। इति।।२६।।

अथ सन्ध्यालक्षणमाह—

**शस्ता शान्तद्विजमृगघुष्टा सन्ध्या स्निग्धा मृदुपवना च।**
**पांशुध्वस्ता जनपदनाशं धत्ते रूक्षा रुधिरनिभा वा ॥२७॥**

यदि सन्ध्याकाल में सूर्य के विरुद्ध दिशा में मुख करके पक्षीगण और जङ्गली पशुगण मधुर शब्द करें तथा निर्मल थोड़ी वायु चले तो शुभ होता है। यदि धूलियों से व्याप्त, रूक्ष और लोहित वर्ण की सन्ध्या दिखाई दे तो देशों का नाश होता है।।२७।।

सन्ध्या शान्तैरनर्काभिमुखैर्मधुरस्वरैर्द्विजैः पक्षिभिर्मृगैरारण्यपशुभिश्च घुष्टा कृतशब्दा शस्ता शुभदा, तथा स्निग्धा निर्मला, मृदुपवना अल्पवाता च शस्ता, पांशुध्वस्ता रजसा कलुषीकृता, रूक्षा निःस्नेहा, रुधिरनिभा वा लोहितवर्णा जनपदानां नाशं संक्षयं धत्ते ददाति।।२७।।

अथात्मनः पेशलत्वं प्रदर्शयितुमाह—

**यद्विस्तरेण कथितं मुनिभिस्तदस्मिन्**
**सर्वं मया निगदितं पुनरुक्तवर्जम्।**
**श्रुत्वाऽपि कोकिलरुतं बलिभुग्विरौति**
**यत्तत् स्वभावकृतमस्य पिकं न जेतुम् ॥२८॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मयूरचित्रकाध्यायः सप्तचत्वारिंशः ॥४७॥**

गर्ग आदि मुनियों ने विस्तारपूर्वक जिन विषयों को कहा है, पुनरुक्त दोष रहते उन सब विषयों को इस मयूरचित्र नामक अध्याय में मैंने कहा है। इतने पर भी यदि दुर्जन गण बोलते ही रहें तो मेरी क्या हानि है? क्योंकि कोयल के शब्द सुनकर भी जो काक शब्द करता है, वह स्वाभाविक शब्द होता है, न कि कोयल को जीतने की इच्छा से।।२८।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां मयूरचित्रका-**
**ध्यायः सप्तचत्वारिंशः ॥४७॥**

मुनिभिर्गर्गादिभिर्यन्मयूरचित्रकं विस्तरेण व्यासेन कथितमुक्तं तत्सर्वमस्मिन् मयूरचित्रके मया पुनरुक्तवर्जं निगदितमुक्तम्। आदौ तावन्मयूरचित्रकं पुनरुक्तं तत्रापि मुनिभिः पुनरुक्तं कृतं तन्मया नोक्तम्। यद्यप्येवं तथापि कोकिलस्य परभृतस्य रुतं शब्दितं श्रुत्वा आकर्ण्य बलिभुक्काकस्तदनुसारेण विरौति यत्तदस्य काकस्य स्वभावकृतं प्राकृतं प्रकृतिभवमेवायाति, न पिकं कोकिलं जेतुं शक्नोति। अनेनात्मनः पेशलत्वं प्रदर्शितं भवति।।२८।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ मयूरचित्रकं**
**नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥**

# अथ पुष्यस्नानाध्यायः

अथ पुष्यस्नानं व्याख्यायते। तत्रादावेव प्रयोजनप्रदर्शनार्थमाह—

**मूलं मनुजाधिपतिः प्रजातरोस्तदुपघातसंस्कारात्।**
**अशुभं शुभं च लोके भवति यतोऽतो नृपतिचिन्ता ॥१॥**

इस संसार में प्रजारूप वृक्ष का मूल स्वरूप राजा है। यतः उस राजा का विघात होने से प्रजाओं का अशुभ और संस्कार से शुभ होता है; अतः राजा के शुभवृद्धि के लिये चिन्ता करनी चाहिये।।१।।

प्रजातरोः प्रजावृक्षस्य मनुजाधिपतिः राजा मूलं यथा वृक्षस्य शाखिनो मूलवर्धने वृद्धिः सर्वत्रावयवेषु भवति। एवं राजनि विवृद्धे प्रजाः सुस्थिताः। तदुपघातात्तस्य प्रजातरोर्मूलविघाताद्विनाशो जनपदस्यानिष्टमशुभं भवति। तत्संस्काराच्छुभमिष्टं भवति। वृक्षवद्यतो यस्मादतोऽस्माद्धेतोर्नृपतिचिन्ता राज्ञः शुभवृद्ध्यर्थं चिन्ता कार्या। यत्नो विधेय इति। यतो मूलात् फलसम्भवः फलसम्भवात् प्रजावृद्धिस्तदुपजीवनात्।।१।।

अत्राऽऽगमप्रर्दनार्थमाह—

**या व्याख्याता शान्तिः स्वयम्भुवा सुरगुरोर्महेन्द्रार्थे।**
**तां प्राप्य वृद्धगर्गः प्राह यथा भागुरेः शृणुत ॥२॥**

जो शान्ति इन्द्र के लिये ब्रह्माजी ने बृहस्पति से कही थी, उसी को पाकर वृद्धगर्गाचार्य ने भागुरि से जिस तरह कही, उसी तरह उस शान्ति को सुनो।।२।।

या शान्तिः स्वयम्भुवा ब्रह्मणा महेन्द्रस्य सुराधिपस्यार्थे सुरगुरोर्बृहस्पतेर्व्याख्याता कथिता तां शान्तिं वृद्धगर्गः प्राप्य लब्ध्वा यथा येन प्रकारेण भागुरेर्मुनिप्रधानस्य शिष्यस्य प्राहोक्तवान् तथा तां शान्तिं शृणुताऽऽकर्णयत। तथा च वृद्धगर्गः—

देवाश्चादितिजैः सार्धं स्पर्धमाना हि मानिनः।
परस्परं महद्युद्धं चक्रुः सर्वे सुरासुराः।।
ततो दैत्यगणैः क्रुद्धैर्देवाः सर्वे विनिर्जिताः।
ततोऽङ्गिराः सुरगुरुर्ध्यानसक्तोऽभवत्पुरा।।
पुरन्दराभिषेकार्थं बृहस्पतिरकल्पयत्।
तिष्यमात्मीयनक्षत्रं यस्य देवो बृहस्पतिः।।
तेन चैवाभिषिक्तश्च देवराजः पुरन्दरः।
ततो बलसमारूढो नाशयामास दानवान्।।
देवाश्च हृष्टमनसः पुरीं प्राप्यामरावतीम्।
पुष्यस्नानं बलतरं तदारभ्य प्रवर्तितम्।। इति।।२।।

अथ पुष्यस्नानविधिमाह—

**पुष्यस्नानं नृपतेः कर्तव्यं दैववित्पुरोधाभ्याम्।**
**नातः परं पवित्रं सर्वोत्पातान्तकरमस्ति ॥३॥**

ज्यौतिषि और पुरोहित के द्वारा राजा को पुष्य स्नान कराना चाहिये। इससे अधिक पवित्र और सभी उत्पातों को नाश करने वाला दूसरा कोई उपाय नहीं है।।३।।

नृपते राज्ञः पुष्यस्नानं पुष्येण नक्षत्रेण स्नपनम्। दैववित्पुरोधाभ्याम्। दैववित्सांवत्सरः, पुरोधा आचार्यः, एताभ्यां कर्तव्यम्। अतोऽस्मात् पुष्यस्नानात् परं प्रकृष्टं परमं पवित्रं पावनं तथा सर्वेषां निःशेषाणामुत्पातानामुपसर्गाणामन्तकरं नाशकरमन्यदपरं नास्ति न विद्यते।।३।।

कस्मिन् स्थाने पुष्यस्नानं नृपतिः कुर्यादित्याह—

**श्लेष्मातकाक्षकण्टकिकटुतिक्तविगन्धिपादपविहीने ।**
**कौशिकगृध्रप्रभृतिभिरनिष्टविहगैः परित्यक्ते ॥४॥**

**तरुणतरुगुल्मवल्लीलताप्रतानान्विते वनोद्देशे ।**
**निरुपहतपत्रपल्लवमनोज्ञमधुरद्रुमप्राये ॥५॥**

श्लेष्मातक ( लसौड़ा ), अक्ष ( बहेड़ा ), कण्टक ( खैर आदि ), कटु, तिक्त ( निम्बू आदि ) और दुर्गन्धियुत वृक्षों से रहित, उल्लू, गिद्ध आदि अशुभकारक पक्षियों से रहित, नूतन वृक्ष, गुल्मलताओं के समुदाय से युत, पत्र, पल्लव, सुन्दर, मधुर ( स्वादुयुत ) वृक्षों के समूह से युत वन के समीप में राजा को पुष्य स्नान करना चाहिये।।४-५।।

एवंविधे वनोद्देशे वनभूमौ पुष्यस्नानं कुर्यात्। कीदृशे? **श्लेष्मातकेति**। श्लेष्मातको वृक्षविशेषः। अक्षो विभीतकः। कण्टकिनः सकण्टका वृक्षाः खदिरप्रभृतयः कटुस्तीक्ष्णो निम्बो वा। तिक्तास्तिक्तस्वादा निम्बाद्याः। विगन्धिनो विगतगन्धा दुर्गन्धा ये पादपा वृक्षास्तैर्विहीने वर्जिते। तथा कौशिका उलूकाः। गृध्रप्रभृतयो गृध्राद्याः काकाद्याः काककङ्कप्लवश्येनकपोताः। अनिष्टा अप्रशस्ता ये विहगाः पक्षिणस्तैः परित्यक्ते वर्जिते।

तरुणैरभिनवैस्तरुभिर्वृक्षैः। गुल्मैरेकमूलजैः शाखासमूहैः सूक्ष्मैः। वल्लीभिः प्रसिद्धाभिः। लताप्रतानो लतानां समूहो विस्तारस्तेनान्वितः संयुक्तो योऽसौ वनोद्देशस्तस्मिन्। तथा निरुपहतानि निरुपसृष्टानि पत्राणि पर्णानि पल्लवा अभिनवा अङ्कुरा येषां मनोज्ञानां चित्ताह्लादकानां मधुराणां स्वादूनां द्रुमाणां वृक्षाणां प्रायो बाहुल्यं यत्र तत्रेति।।४-५।।

अन्यत्कीदृश इत्याह—

**कृकवाकुजीवजीवकशुकशिखिशतपत्रचाषहारीतैः ।**
**क्रकरचकोरकपिञ्जलवञ्जुलपारावतश्रीकैः ॥६॥**

**कुसुमरसपानमत्तद्विरेफपुंस्कोकिलादिभिश्चान्यैः ।**
**विरुते वनोपकण्ठे क्षेत्रागारे शुचावथवा ॥७॥**

मुर्गा, तीतर, तोता, मयूर, शतपत्र ( कठफोरवा ), चाष ( नीलकण्ठ ), हारीत ( हारिल ), क्रकर ( करील, चकोर, कपिञ्जल, वञ्जुल, कबूतर, श्रीकण्ठ )—इन पक्षियों के शब्दों से युक्त पुष्पों के रसास्वादन से मत्त भ्रमर, श्रेष्ठ कोकिल आदि और अन्य सुन्दर पक्षियों के शब्दों से युत वन के समीप शुद्ध पुण्यभूमि में पुष्यस्नान करना चाहिये।।६-७।।

अथवैदृशे वनोपकण्ठे वनसमीपे पुष्यस्नानं कुर्यात्। कीदृशे? कृकवाकुः कुक्कुटः। जीवजीवकौ पक्षिविशेषौ प्रसिद्धौ। शुकः कीरः। शिखी मयूरः। शतपत्रो दार्वाघाटः पक्षी। चाषहारीतावपि पक्षिविशेषौ। एतैर्विरुते कृतशब्दे। तथा क्रकरः। चकोरः। कपिञ्जलः। वञ्जुलः। पारावतः। श्रीकः श्रीकण्ठः। एतैरपि पक्षिविशेषैर्विरुते।

तथा कुसुमानां पुष्पाणां रसपानेन रसास्वादनेन ये मत्ताः प्रहृष्टा द्विरेफा भ्रमराः। तथान्ये वा ये पुंस्कोकिलादयः। पुंस्कोकिलः प्रधानकोकिकः। आदिग्रहणाच्चक्रवाकसारसहंसा गृह्यन्ते। तैरपि विरुते। अथवा शुचौ शुद्धे क्षेत्रागारे क्षेत्रे पुण्यस्थाने यदागारं गृहं तत्र। क्षेत्रागारमपि कदाचिद्रुधिरमेध्यसम्पर्कान्न शुचि भवत्यत उक्तं क्षेत्रागारे शुचाविति।।६-७।।

अन्यत्कीदृशे स्थाने पुष्यस्नानं कुर्यादित्याह—

**ह्रदिनीविलासिनीनां जलखगनखविक्षतेषु रम्येषु।**
**पुलिनजघनेषु कुर्याद् दृङ्मनसोः प्रीतिजननेषु ॥८॥**

जलचर पक्षी रूप नखों से क्षत, दृष्टि और मन को आनन्ददायक नदी रूप कामिनियों के तटरूप सुन्दर जंघाओं पर ( सुन्दर नदीतट पर ) पुष्यस्नान करना चाहिये।।८।।

ह्रदिन्यो नद्यस्ता एव विलासिन्यो वारयोषितस्तासां यानि पुलिनानि तीराणि तान्येव जघनानि नितम्बप्रदेशास्तेषु कुर्यात्। कीदृशेषु? जलखगनखविक्षतेषु, जलखगा उदकचराः पक्षिणस्तैर्नखविक्षतेषु करप्रहतेषु, तथा रम्येषु रमणीयेषु, दृङ्मनसोः प्रीतिजननेषु, दृशोश्चक्षुषोः, मनसश्चित्तस्य यानि प्रीतिं तुष्टिं जनयन्त्युत्पादयन्ति तथाभूतेषु। अत एव विलासिनीनां जघनेषु सादृश्यम्।।८।।

अन्यत्कीदृशेषु कुर्यादित्याह—

**प्रोत्प्लुतहंसच्छत्रे कारण्डवकुररसारसोद्गीते।**
**फुल्लेन्दीवरनयने सरसि सहस्राक्षकान्तिधरे ॥९॥**

उड़ते हुये हंसरूप छत्र वाले कारण्डव, कुरर और सारस पक्षियों के ध्वनिरूप गाने से युत, खिले हुये नीलकमलरूप नेत्रों से युत; अत एव इन्द्र के समान कान्ति वाले सरोवर के तीर पर स्नान करना चाहिये।।९।।

अथवा सरसि कुर्यात्। कीदृशे? सहस्राक्षकान्तिधरे, सहस्राक्ष इन्द्रस्तस्य सम्बन्धिनीं कान्तिं रुचिं यो धारयति विभर्ति तस्मिन्। किम्भूते? प्रोत्प्लुतहंसच्छत्रे, प्रोत्प्लुता उड्डीयमाना ये हंसाः पक्षिविशेषाः, त एव छत्रमातपत्रं यत्र। तथा कारण्डवैः कुररैः सारसैश्च पक्षिविशेषैरुद्गीतं गानं क्रियते यत्र। फुल्लानि विकसितानि इन्दीवराणि नीलोत्पलानि नयनानि नेत्राणि यत्र। अत एव सहस्राक्षस्य सादृश्यम्।।९।।

अन्यत्कीदृशे कुर्यादित्याह—

**प्रोत्फुल्लकमलवदनाः कलहंसकलप्रभाषिण्यः ।**
**प्रोत्तुङ्गकुड्मलकुचा यस्मिन्नलिनीविलासिन्यः ॥१०॥**

खिले हुए कमलरूप मुख वाली, राजहंस के मधुर शब्दरूप वाक्य वाली और कमल के कली रूप ऊँचे स्तन वाली पुष्करिणी रूप स्त्री के जंघा ( तट ) पर पुष्य-स्नान करना चाहिये।।१०।।

अथवा यस्मिन् स्थाने नलिनीविलासिन्यः पुष्करिण्य एव विलासिन्यः वारयोषितस्तत्र कुर्यात्। कीदृशः? प्रोत्फुल्लकमलवदनाः, प्रोत्फुल्लानि प्रविकसितानि कमलानि यानि पद्मानि तान्येव वदनानि मुखानि यासाम् तथा कलहंसा राजहंसास्तेषां कलं मधुरं यत् क्वणं शब्दस्तदेव प्रभाषणं वचनं यासाम् तथा प्रोत्तुङ्गानि उच्चानि यानि कुड्मलानि कर्णि-कास्तान्येव कुचाः स्तना यासाम्। केचित् प्रोद्बद्धकुड्मलकुचा इति पठन्ति। प्रकर्षेणोद्बद्धानि अतिकठिनानि यानीति। अत एव विलासिनीनां सादृश्यम्।।१०।।

अन्यत्कीदृशे स्थाने कुर्यादित्याह—

**कुर्याद् गोरोमन्थजफेनलवशकृत्खुरक्षतोपचिते ।**
**अचिरप्रसूतहुङ्कृतवल्गितवत्सोत्सवे गोष्ठे ॥११॥**

गायों के जुगाली करने से गिरे हुये फेन और गोबर खुरों से ताडित जहाँ पर हो तथा उत्पन्न हुए बछड़ों के हुङ्कार और कूदना-फाँदना रूप उत्सवयुत गोष्ठ स्थान में पुष्यस्नान करना चाहिये।।११।।

अथवा गोष्ठे गोस्थाने कुर्यात्। कीदृशे? गोरोमन्थजफेनलवशकृत् खुरक्षतोपचिते गो रोमन्थो गोरोमन्थः। गवां चर्वितचर्वणम्। तस्माज्जातो योऽसौ फेनलवो लालाबिन्दुः। तथा शकृद्गोमयस्तु खुरैः शफैर्यानि क्षतानि छिद्राणि तैरुपचिते संयुक्ते। तथा अचिरप्रसूताः सद्य एव जाता ये वत्सास्तर्णकास्तेषां हुङ्कृतो हुङ्कारशब्दः। तथा वल्गितं क्रीडितं तदेवोत्सवो महो यत्र।।११।।

अन्यत्कीदृशे स्थाने कुर्यादित्याह—

**अथवा समुद्रतीरे कुशलागतरत्नपोतसम्बाधे ।**
**घननिचुललीनजलचरसितखगशबलीकृतोपान्ते ॥१२॥**

अथवा सकुशल आये हुये रत्नयुत नावों से व्याप्त तथा घने निचुल ( समुद्रफल ) वृक्षों के ऊपर लीन जलचर और सफेद पक्षियों से चित्रित समीप भाग है जिसका, ऐसे समुद्र के तीर में पुष्यस्नान करना चाहिये।।१२।।

अथवा समुद्रतीरे सागरकुले कुर्यात्। कीदृशे? कुशलागतरत्नपोतसम्बाधे, कुशले-नाविघ्नेनाऽऽगताः प्राप्ता ये रत्नानां मणीनां पोतास्तेषां सम्बाधः सङ्घट्टो यत्र। सङ्कट

इत्यर्थः। तथा घनाः सन्तता ये निचुला वृक्षविशेषास्तेषु ये लीनाः श्लिष्टा जलचरा जलप्राणिनः, तथा सिताः श्वेता ये खगाः पक्षिणः, तैः शबलीकृताश्चित्रिता उपान्ताः समीपा यत्र।।१२।।

अन्यत्कीदृशे कुर्यादित्याह—

**क्षमया क्रोध इव जितः सिंहो मृग्याभिभूयते येषु।**
**दत्ताभयखगमृगशावकेषु तेष्वाश्रमेष्वथवा ॥१३॥**

अथवा जहाँ पर शान्ति से क्रोध की तरह हरिणियों से सिंह जीत लिया गया हो अर्थात् हरिणी और सिंह साथ-साथ रहते हों तथा अभयदान पाकर पक्षी और मृग के बच्चे निर्भय घूमते हैं, ऐसे मुनियों के आश्रम में पुष्यस्नान करना चाहिये।।१३।।

अथवा आश्रमेषु मुनिनिवासेषु कुर्यात्। कीदृशेषु? येषु सिंहो हरिः, मृग्या एण्या अभिभूयते कृतपरिभवः सम्पाद्यते। कथम्? क्षमया क्रोध इव जितः। यथा क्षमया क्षान्त्या क्रोधः कोपो जितः। तथा खगानां पक्षिणां मृगाणामेणानां च सम्बन्धिनो ये शावकाः पोतकास्तेषु अभया दत्तो येषु। येषु गतेषु हिंसां न कश्चित् करोतीत्यर्थः।।१३।।

अन्यत्कीदृशेषु कुर्यादित्याह—

**काञ्चीकलापनूपुरगुरुजघनोद्वहनविघ्नितपदाभिः ।**
**श्रीमति मृगेक्षणाभिर्गृहेऽन्यभृतवल्गुवचनाभिः ॥१४॥**

अथवा करधनी, पायजेब और भारी जंघाओं के भार से मन्द गति वाली तथा कोयल की तरह मधुर बोलने वाली मृगनयना स्त्रियों से शोभित गृह में पुष्यस्नान करना चाहिये।

अथवा गृहे वेश्मनि कुर्यात्। कीदृशे? श्रीमति। श्रीर्विद्यते यस्मिन्। तथा एवंविधाभिः स्त्रीभिर्युक्ते? किम्भूताभिः? काञ्चीकलापनूपुरगुरुजघनोद्वहनविघ्नितपदाभिः, काञ्ची मेखला तस्या यः कलापो विस्तारस्तस्योद्वहनेन विघ्नितौ मन्दगामिनौ पादौ चरणौ यासां ताभिः। मृगेक्षणाभिः, हरिणसदृशनेत्राभिः। अन्यभृतवल्गुवचनाभिः, अन्यभृतः कोकिलस्तद्वद्वल्गु रम्यं मधुरं वचनं यासां ताभिर्युक्ते।।१४।।

अन्यत्कीदृशेषु स्थानेषु कुर्यादित्याह—

**पुण्येष्वायतनेषु च तीर्थेषूद्यानरम्यदेशेषु।**
**पूर्वोदक्प्लवभूमौ प्रदक्षिणाम्भोवहायां च ॥१५॥**

अथवा पवित्र देवस्थान, तीर्थ, जलाशय, उपवन, सुन्दर देश, पूर्व या उत्तर तरफ नीची भूमि पर प्रदक्षिण क्रम से जहाँ जल बहता हो, ऐसे स्थान में पुष्यस्नान कराना चाहिये।।१५।।

पुण्येषु पवित्रेष्वायतनेषु च देवस्थानेषु च कुर्यात्। पुण्येषु तीर्थेषु सलिलाशयेषु। उद्यानेषूपवनेषु। रम्येषु रमणीयेषु देशेषु स्थानेषु। तथा पूर्वोदक्प्लवभूमौ, पूर्वस्यां दिश्युत्त-

रस्यां वा यस्यां भूमौ प्लवो निम्नता। तथा प्रदक्षिणाम्भोवहायाम् प्रादक्षिण्येन यस्यामम्भः पानीयं वहति। तथा च वृद्धगर्गः—

समुद्रतीरे उद्याने नदीनां सङ्गमे शुभे।
महाह्रदेऽथवा तीर्थे देवतायतने तथा।।
सर्वर्तुकुसुमोपेते वने द्विजवरैर्युते।
गृहे रम्ये विविक्ते वा पुष्यस्नानं समाचरेत्।। इति।।१५।।

अथ भूलक्षणमाह—

**भस्माङ्गारास्थ्यूषरतुषकेशश्वभ्रकर्कटावासैः ।**
**श्वाविधमूषकविवरैर्वल्मीकैर्या च सन्त्यक्ता ॥१६॥**

**धात्री घना सुगन्धा स्निग्धा मधुरा समा च विजयाय ।**
**सेनावासेऽप्येवं योजयितव्या यथायोगम् ॥१७॥**

राख, कोयला, हड्डी, ऊषर, भूसी, केश, गड्ढा हो तथा केंकड़ा, बिल में रहने वाला जन्तु, चूहा और दीमक आदि से रहित, अन्तःसार वाली, सुगन्धयुत, निर्मल, मधुर और समभूमि विजय के लिए होती है। सेनाओं के निवास के लिए भी पूर्वोक्त भूमि युक्तिपूर्वक प्रयोग करनी चाहिये।।१६-१७।।

या धात्री भूरेवंविधा तस्यां पुष्यस्नानं कुर्यात्। कीदृशी? भस्मना भूतिना। अङ्गारैर्दग्धकाष्ठैः। अस्थिभिः। ऊषराः ससिकताश्च ताभिः। तुषैः शालिचर्मभिः। केशैः। श्वभ्रैः खातैः। कर्कटाः प्राणिनो मृगजातयस्तेषामावासा गृहाणि विद्यन्ते येषां तैः सन्त्यक्ता रहिता। तथा श्वाविधैर्विलवासिभिः प्राणिभिः। मूषकविवरैराखुविलैः। वल्मीकैश्च या सन्त्यक्ता वल्मीककृतैर्मृत्स्तूपै रहिता सा शुभा। चशब्दः समुच्चये। न केवलं भस्माङ्गारादिदोषै रहिता यावच्छ्वाविधादिभिर्दोषैश्च रहितेति।

तथा च धात्री घना अन्तःसारा। सुगन्धा शोभनसुरभिः। स्निग्धा सस्नेहा। मधुरा सस्वादा। समा च तुल्या निम्नोन्नतरहिता। एवंविधा विजयाय भवति। न केवलं स्नाने यावत्सेनावासे सैन्यनिवासनेऽप्येषा भूर्यथायोगं यथायुक्ति सैन्यनिवेशे विभागेन योजयितव्या प्रयोज्या ग्राह्येति।।१६-१७।।

अथ तत्र विधानमाह—

**निष्क्रम्य पुरान्नक्तं दैवज्ञामात्ययाजकाः प्राच्याम् ।**
**कौबेर्यां वा कृत्वा बलिं दिशीशाधिपायां वा ॥१८॥**

**लाजाक्षतदधिकुसुमैः प्रयतः प्रणतः पुरोहितः कुर्यात् ।**
**आवाहनमथ मन्त्रस्तस्मिन् मुनिभिः समुद्दिष्टः ॥१९॥**

दैवज्ञ, मन्त्री और याजक लोग रात में पुर से निकल कर पूर्वोक्त स्थान के पूर्व, उत्तर

या ईशान कोण में नम्र होकर पुरोहित को खीर, अक्षत, दधि और पुष्पों के द्वारा बलि देनी चाहिये इसके बाद मुनियों द्वारा कथित आवाहन-मन्त्र पढ़ना चाहिये।।१८-१९।।

दैवज्ञः सांवत्सरिकः। अमात्यो मन्त्री। याजकः पुरोधाः। एते दैवज्ञामात्ययाजकाः पुरान्नगरान्नक्तं रात्रौ निष्क्रम्य निर्गत्य प्राच्यां पूर्वस्यां दिशि कौबेर्यामुत्तरस्यां दिशि ईशाधिपायामैशान्यां दिशि आशायां बलिमुपहारं कुर्युः।

**लाजाक्षतेति**। प्रयतः संयुतः। प्रणतः प्रह्वः। पुरोहितो लाजाभिरक्षतैर्यवैर्दध्ना क्षीरविकारेण कुसुमैः पुष्पैरावाहनमामन्त्रणं कुर्यात्। तस्मिन्नावाहने मुनिभिर्गर्गादिभिरयं वक्ष्यमाणो मन्त्रः समुद्दिष्ट उक्तः।।१८-१९।।

अधुना तमेवाह—

**आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाभिलाषिणः।**
**दिशो नागा द्विजाश्चैव ये चाप्यन्येंऽशभागिनः ॥२०॥**

**आवाह्यैवं ततः सर्वानेवं ब्रूयात् पुरोहितः।**
**श्वः पूजां प्राप्य यास्यन्ति दत्त्वा शान्तिं महीपतेः ॥२१॥**

जो देवता इसमें पूजा के इच्छुक हैं, वे दिशा, नाग, ब्राह्मण और अन्य अंश भोगी गण सभी यहाँ आगमन करें। इस तरह पुरोहित सबका आवाहन करके वक्ष्यमाण रूप से प्रार्थनापूर्वक बोले—'आप सब आगामी प्रातःकाल में पूजा पाकर राजा को शान्ति प्रदान करके जायँगे'।।२०-२१।।

सर्वे सुरा ये चात्रास्मिन् पूजाभिलाषिणोऽर्चार्थिनस्ते सर्वः एव निःशेषा आगच्छन्तु आयान्तु। तथा दिश आशाः। नागाः पन्नगाः। द्विजा मुनयः। ये चाप्यन्ये परे चानुकीर्तिताः। अंशभागिनो भागभाजस्ते आयान्तु।

एवमनेन प्रकारेण सर्वानशेषानावाह्य परिनिमन्त्र्य ततः पश्चादनन्तरं पुरोहित आचार्य एवमनेन प्रकारेण ब्रूयाद्वदेत्। येऽत्र सुरा आगतास्ते श्वः प्रातः पूजामर्चां प्राप्य लब्ध्वा महीपते राज्ञः शान्तिं श्रेयो दत्वा यास्यन्ति गमिष्यन्ति।।२०-२१।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**आवाहितेषु कृत्वा पूजां तां शर्वरीं वसेयुस्ते।**
**सदसत्स्वप्ननिमित्तं यात्रायां स्वप्नविधिरुक्तः ॥२२॥**

आवाहित देवता आदि की पूजा करके सभी ( दैवज्ञ, मन्त्री, याजक ) वह रात्रि वहीं व्यतीत करें। बाद में रात्रि में जो स्वप्न दिखाई दे, तदनुसार ही शुभाशुभ फल जानना चाहिये, इसको जानने की विधि यात्रा नामक ग्रन्थ में कही गई है।।२२।।

तेष्वावाहितेषु सुरेषु पूजामर्चां विधाय तां शर्वरीं रात्रिं ते दैवज्ञामात्ययाजका वसेयुस्तिष्ठेयुः। किमर्थम्? सदसत्स्वप्ननिमित्तम्, शुभाशुभसन्दर्शनार्थम्। यात्रायां यज्ञेष्वश्वमे-

धीयायां स्वप्नविधिः स्वप्नपरीक्षणविधिरुक्तः कथितः। तथा च यात्रायाम्—

दुकूलमुक्तामणिभूत्नरेन्द्रः समन्त्रिदैवज्ञपुरोहितोऽतः।
स्वदेवतागारमनुप्रविश्य निवेशयेत्तत्र दिगीश्वरार्चाम्।।
अभ्यर्च मन्त्रैस्तु पुरोहितस्तामधश्च तस्यां भुवि संस्कृतायाम्।
दर्भैश्च कृत्वा स्तरमक्षतैस्तां लिखेत् समन्तात्सितसर्षपैश्च।।
ब्राह्मीं सदूर्वामथ नागपुष्पीं कृत्वोपधानं शिरसि क्षितीशः।
पूजार्घजान् पुष्पफलाभिधानानाशासु दध्याच्चतुरः क्रमेण।।
यज्जाग्रते दूरमुदैति दैवमावर्त्य मन्त्रं प्रयतस्त्रिरेतम्।
लघ्वेकभुग्दक्षिणपार्श्वशायी स्वप्नं परीक्षेत यथोपदेशम्।।
नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च।
वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः।।
भगवन् देवदेवेश शूलभृद् वृषवाहन।
इष्टानिष्टं समाचक्ष्व स्वप्ने स्वप्नस्य शाश्वतम्।।
इष्टमन्त्रान् ततः स्मृत्वा शिवशक्तिपुरोगमान्।
अभ्यर्थनं ततस्तस्य कृत्वा सुप्रयतो नृपः।।
एकवस्त्रे कुशास्तीर्णे सुप्तः प्रयतमानसः।
निशान्ते पश्यति स्वप्नं शुभं वा यदि वाऽशुभम्।। इति।।२२।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**अपरेऽहनि प्रभाते सम्भारानुपहरेद्यथोक्तगुणान्।**
**गत्वाऽवनिप्रदेशे श्लोकाश्चाप्यत्र मुनिगीताः ॥२३॥**

दूसरे दिन प्रातःकाल उस पृथ्वी प्रदेश में जाकर उक्त गुणों से युत सामान एकत्रित करें। यहाँ पर मुनि ( वृद्ध गर्ग ) से कथित ये वक्ष्यमाण श्लोक हैं।।२३।।

अपरेऽहनि द्वितीयदिने प्रभाते प्रभातसमये तस्मिन्नेवावनिप्रदेशे भूस्थाने गत्वा यथोक्तगुणान् यथोपयोज्यान् सम्भारानुपहरेत् ढौकयेत्। अत्राप्यस्मिन्नर्थे श्लोका मुनिगीताः, मुनिना महर्षिणा वृद्धगर्गेण गीताः कथिताः। अपिशब्दः सम्भावनायाम्।।२३।।

तांश्चाह—

**तस्मिन् मण्डलमालिख्य कल्पयेत्तत्र मेदिनीम्।**
**नानारत्नाकरवतीं स्थानानि विविधानि च ॥२४॥**

**पुरोहितो यथास्थानं नागान् यक्षान् सुरान् पितॄन्।**
**गन्धर्वाप्सरसश्चैव मुनीन् सिद्धांश्च विन्यसेत् ॥२५॥**

**ग्रहांश्च सर्वनक्षत्रै रुद्रांश्च सह मातृभिः।**
**स्कन्दं विष्णुं विशाखं च लोकपालान् सुरस्त्रियः ॥२६॥**

**वर्णकैर्विविधैः कृत्वा हृद्यैर्गन्धगुणान्वितैः ।**
**यथास्वं पूजयेद्विद्वान् गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥२७॥**

**भक्ष्यैरन्नैश्च विविधैः फलमूलामिषैस्तथा ।**
**पानैश्च विविधैर्हृद्यैः सुराक्षीरासवादिभिः ॥२८॥**

पूर्वोक्त शुभ लक्षणयुत भूप्रदेश में एक मण्डल बनाकर अनेक प्रकार के रत्नों के समुदाय से युत पृथ्वी की और बहुत तरह के स्थानों की कल्पना करे। बाद में पुरोहित प्राधान्य क्रम से नाग, यक्ष, देव, पितर, गन्धर्व, अप्सरा, मुनि और सिद्धों की स्थापना करे तथा अश्विनी आदि सब नक्षत्रों के साथ ग्रह, ब्राह्मी आदि माताओं के साथ रुद्र, कार्तिकेय, विष्णु, विशाखा, लोकपाल और देवताओं की स्त्री ( इन्द्राणी, गौरी, लक्ष्मी आदि ) को मन को प्रसन्न करने वाली सुगन्धियों से युत नाना प्रकार के वर्णों से बना कर विद्वान् सुगन्धित द्रव्य, माला, चन्दन, भोज्यान्न, नाना प्रकार के फल, मूल, मांस, नाना प्रकार के चित्ताह्लादक पान वस्तु, मद्य, दुग्ध, आसव आदि से पूजा करे।।२४-२८।।

तस्मिन् भूप्रदेशे यत्र पुष्यस्नानं क्रियते पूर्वोद्दिष्टलक्षणश्लेष्मातकाक्षकण्टकीत्यादिके मण्डलमालिख्य विरचय्य तस्मिन् स्थाने मेदिनीं भूमिं नानारत्नाकरवतीं नानाप्रकाराणां रत्नानामाकर उत्पत्तिस्थानं तद्विद्यते यस्यां तां तथाभूताम्। बहूनि रत्नानि तत्र स्थापयेदित्यर्थः। तथा विविधानि नानाप्रकाराणि स्थानानि सन्निवेशस्थानानि च कल्पयेत् कारयेत्।

ततः पुरोहित आचार्यो नागान् पन्नगान्। यक्षान् गुह्यकान्। सुरान् देवान्। पितॄन् देव-विशेषांश्च यथास्थानं यथाप्राधान्यानुसारेण समालिखेत्। गन्धर्वान् देवयोनीन्। अप्सरसो देवयोषितः। मुनीनृषीन्। सिद्धान् देवयोनींश्च विन्यसेत्।

ग्रहानादित्यादीन् सर्वनक्षत्रैरश्विन्यादिभिः सह। तथा रुद्रान् देवविशेषान् मातृभिर्देवताभि-र्ब्राह्म्यादिभिः सह लिखेत्। स्कन्दं कुमारम्। विष्णुं नारायणम्। विशाखं स्कन्दग्रहम्। लोकपाला इन्द्राग्नियमनिर्ऋतिपाशिवायुकुबेरैशानास्तान्। सुरस्त्रियो देवस्त्रियः। यथा इन्द्राणी गौरी लक्ष्मीः।

विविधैर्नानाप्रकारैर्धातुविशेषैः सितरक्तपीतकृष्णव्यामिश्रैः। हृद्यैश्चित्ताह्लादकैर्गन्ध-गुणान्वितैर्गन्धगुणसंयुक्तैः सुगन्धैरित्यर्थः। तथाभूतैः कृत्वा ततो विद्वान् पण्डितो गन्धैः सुगन्धद्रव्यैर्माल्यैः स्रग्भिरनुलेपनैः समालम्भनैर्यथास्वं पूजयेदर्चयेत्। एतदुक्तं भवति— यो यस्मिन् स्थाने लिखितो वर्णकानुसारेण तं तत्रैव गन्धमाल्यानुलेपनैर्यथार्हैः पूजयेदर्चयेत्।

तथा भक्ष्यैर्विविधैर्नानाकारैर्मोदकलोपिकापूपादिभिः। अन्नैश्च नानाप्रकारैरोदनपायसा-दिभिः। नानाप्रकारैः फलैः श्रीफलादिभिः। मूलैः प्रसिद्धैः। आमिषैर्मांसैः। विविधैर्नाना-प्रकारैर्हृद्यैर्हृदयचोदकैः पानैर्मदकरैः। तथा सुरया मद्येन क्षीरेण दुग्धेन। आसवेन मध्वासवेन। आदिग्रहणाल्लेह्यपेयचोष्यादिभिरन्यैश्च पानविशेषैः पूजयेत्।।२४-२८।।

अतः परं पूजां कथयामीत्याह—

**कथयाम्यतः परमहं पूजामस्मिन् यथाभिलिखितानाम्।**
**ग्रहयज्ञे यः प्रोक्तो विधिर्ग्रहाणां स कर्तव्यः ॥२९॥**

**मांसौदनमद्याद्यैः पिशाचदितितनयदानवाः पूज्याः।**
**अभ्यञ्जनाञ्जनतिलैः पितरो मांसौदनैश्चापि ॥३०॥**

**सामयजुर्भिर्मुनयस्त्वृग्भिर्गन्धैश्च धूपमाल्ययुतैः।**
**अश्लेषकवर्णैस्त्रिमधुरेण चाभ्यर्चयेद् नागान् ॥३१॥**

**धूपाज्याहुतिमाल्यैर्विबुधान् रत्नैः स्तुतिप्रणामैश्च।**
**गन्धर्वानप्सरसो गन्धैर्माल्यैश्च सुसुगन्धैः ॥३२॥**

**शेषांस्तु सार्ववर्णिकबलिभिः पूजां न्यसेच्च सर्वेषाम्।**
**प्रतिसरवस्त्रपताकाभूषणयज्ञोपवीतानि ॥३३॥**

इसके बाद इस यज्ञ में अभीष्ट देवताओं की पूजन-विधि बताते हैं। यात्रा नामक पुस्तक के ग्रहयज्ञ प्रकरण में ग्रहों की पूजन विधि जो बताई गई है, उसी तरह यहाँ पर भी ग्रहों की पूजा करनी चाहिये। मांस, भात, मद्य आदि से पिशाच, दैत्य और दानवों की पूजा करनी चाहिये। अभ्यञ्जन ( स्निग्ध पदार्थ ), कज्जल, तिल, मांस और भात से पितरों की; साम तथा यजुर्वेदों के मन्त्र, सुगन्ध द्रव्य, धूप और मालाओं से मुनियों की; अश्लेषक ( अमिश्रित ) वर्ण और त्रिमधुर ( मधु, घृत और शर्करा ) से सर्पों की; धूप, घृत, हवन, माला, रत्न, स्तोत्र और प्रणामों से देवताओं की; सुगन्ध द्रव्य, माला और सुन्दर गन्धों से गन्धर्व तथा अप्सराओं की एवं समस्त वर्णयुत वलियों से शेष ( यज्ञ आदि ) की पूजा करनी चाहिये। पूजन के बीच-बीच में सबको कुङ्कुम से रक्त किया हुआ सूत्र, वस्त्र, ध्वजा, भूषण और यज्ञोपवीत देना चाहिये।।२९-३३।।

**कथयामीति**। अतोऽस्मात्परमहमाचार्योऽस्मिन् मण्डले यथाभिलिखितानां विन्यस्तानां पूजामर्चां कथयामि वक्ष्यामि। ग्रहाणामादित्यादीनां यात्रायां ग्रहयज्ञे योऽयं विधिः प्रोक्तः कथितः स एवात्र कर्तव्यः। तद्यथा—

यात्रायां ग्रहयज्ञे तत्रार्चा ताम्रमयसवितुः।
पालाशिकी समिद् वैकङ्कतजाता तथा स्रुक् च।
आकृष्णेति च मन्त्रो रक्ता गन्धाः सहागुरुणा।।
माषाऽतसीतिलाल्वकमुद्गान् चणकान् विहाय भोज्यविधिः।
वकुलार्कागस्त्यपलाशशल्यकीकुसुमपूजा च।।
अष्टशतसस्मितेभ्यो विप्रेभ्यो दक्षिणा हिताग्निभ्यः।
देया वृषकनकमही सहस्रकिरणं समुद्दिश्य।। इत्यादि।

**मांसौदनमद्याद्यैरिति**। पिशाचा देवयोनयः। दितितनया दैत्याः। दानवा दनुपुत्राश्च। मांसेनामिषेणौदनेन भक्तेन मद्येन मधुना न पूज्या अर्चनीयाः। आदिग्रहणात् सुरासवैः। तथा पितरोऽभ्यञ्जनेन स्नेहदानेन। अञ्जनेन तिलतैलाभ्यञ्जनेन कज्जलेन च तिलैर्मांसौदनेन च। एतैः पूज्याः।

**सामयजुर्भिरिति**। मुनयः ऋषयः सामभिर्यजुर्भिः ऋग्भिश्च। तथा गन्धैः सुगन्धद्रव्यैः धूपमाल्ययुतैः। धूपैर्गुग्गुलप्रभृतिभिर्माल्यैश्च स्रग्भिः सहितैः। तथा नागान् पन्नगान्। अश्लेषकवर्णैः। यत्र बहूनां वर्णानामश्लेषस्संयोगो नास्ति तैः। तथा त्रिमधुरेण च, मधुना घृतेन शर्करया चेत्यर्थः। एतैः पूजयेत्।

**धूपाज्याहुतिमाल्यैरिति**। विबुधान् देवान् धूपैराज्येन घृतेनाहुतिभिर्होमैर्माल्यैः स्रग्भिः रत्नैर्मणिभिः स्तुतिभिस्तोत्रैः प्रणामैर्नमस्कारैश्च पूजयेत्। गन्धर्वानप्सरसश्च गन्धैः सुगन्धद्रव्यैर्माल्यैश्च स्रग्भिः पूजयेत्। सुसुगन्धैः शोभनगन्धैः।

शेषान् यक्षान् सार्ववर्णिकबलिभिः पूजयेत्। सार्ववर्णिकैर्बहुवर्णकैश्च बलिभिरुपहारैर्बहुद्रव्यमितैश्च पूजयेत्। सर्वेषां मण्डले यथाभिलिखितानां विरचितानां पूजामर्चां न्यसेत् कारयेत्। तथा प्रतिसरमन्तरान्तरात् कुङ्कुमेन रक्तं सूत्रम्। वस्त्रमम्बरम्। पताका ध्वजः। भूषणमलङ्करणम्। यज्ञोपवीतं सुप्रसिद्धम्। एतानि च सर्वेषां न्यसेत्।।२९-३३।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**मण्डलपश्चिमभागे कृत्वाग्निं दक्षिणेऽथवा वेद्याम्।**
**आदद्यात् सम्भारान् दर्भान् दीर्घानगर्भांश्च ॥३४॥**

मण्डल के पश्चिम या दक्षिण भाग में वेदी बना कर उस पर अग्निस्थापन करके सामग्रियों को एकत्रित करे। लम्बे, अच्छिन्न और गर्भरहित कुशाओं को लावे।।३४।।

मण्डलस्य पश्चिमभागे पश्चिमायां दिशि दक्षिणेऽथवा दक्षिणभागे वेदिं कुर्यात्। वेदीलक्षणमस्माभिः प्रागुक्तं नीराजने। तस्यां वेद्यामग्निं हुताशनं कृत्वा प्रज्वाल्य ततः सम्भारानौपयोगिनादद्यात् ढौकयेत्। दर्भान् दीर्घानच्छिन्नानगर्भान् गर्भरहितांश्चाऽऽहरेत्।।३४।।

अन्यत्किमित्याह—

**लाजाज्याक्षतदधिमधुसिद्धार्थकगन्धसुमनसो धूपः।**
**गोरोचनाञ्जनतिलाः स्वर्तुजमधुराणि च फलानि ॥३५॥**

**सघृतस्य पायसस्य च तत्र शरावाणि तैश्च सम्भारैः।**
**पश्चिमवेद्यां पूजां कुर्यात् स्नानस्य सा वेदी ॥३६॥**

खीर, घृत, अक्षत, दधि, मधु, सरसों, सुगन्ध द्रव्य, पुष्प, धूप, गोरोचन, कज्जल, तिल, स्व ऋतु के उत्पन्न मधुर फल—यह सामग्री है। इस सामग्री में प्रत्येक के साथ-साथ घृत और खीर का शराव ( मिट्टी का पात्र ) देवे। इनसे वेदी के पश्चिम भाग में

पूजा करे, क्योंकि वह पुष्यस्नान की वेदी होती है।।३५-३६।।

लाजाः प्रसिद्धाः। आज्यं घृतम्। अक्षता यवाः। दधि क्षीरविकारः। मधु माक्षिकम्। सिद्धार्था गौरसर्षपाः। गन्धाः सुगन्धद्रव्याणि। सुमनसः पुष्पाणि। धूपः प्रसिद्धः। गोरोचना गोपित्तसम्भवा। अञ्जनं प्रसिद्धम्। तिलास्तथा। स्वर्तुजानि स्वर्तावात्मीयर्तौ जातानि उत्पन्नानि यानि मधुराणि फलानि।

तथा तस्मिन् मण्डले सघृतस्य घृतसहितस्य च पायसस्य शरावाणि मृन्मयानि पात्राणि सुपरिपूर्णानि दातव्यानि। तैश्च सम्भारैः पूर्वोक्तैः पश्चिमायां वेद्यां पूजां कुर्यात्। यतः सा वेदी स्नातस्य। तस्यां पुष्यस्नानं कार्यमित्यर्थः।।३५-३६।।

ततः किं कुर्याद्रित्याह—

**तस्याः कोणेषु दृढ़ान् कलशान् सितसूत्रवेष्टितग्रीवान्।**
**साक्षीरवृक्षपल्लवफलापिधानान् व्यवस्थाप्य ॥३७॥**
**पुष्यस्नानविमिश्रेणापूर्णानम्भसा सरत्नांश्च।**
**पुष्यस्नानद्रव्याण्यादद्याद् गर्गगीतानि ॥३८॥**

इसके चारों कोणों में दृढ़, सफेद सूत्र से वेष्टित गले वाले, दूध वाले, वृक्ष के पल्लव फलों से ढके चार कलशों को स्थापित करे। उनको पुष्यस्नान की ओषधियों से मिश्रित जल से, रत्नों से और गर्ग महर्षि के द्वारा प्रतिपादित पुष्यस्नान के द्रव्यों से परिपूर्ण करे।।३७-३८।।

तस्या वेद्याः कोणेष्वस्रेषु चतुर्षु दृढ़ानभग्नान् कलशान् घटान् सितसूत्रवेष्टितग्रीवान्। सितेन श्वेतवर्णेन सूत्रेण तन्तुना वेष्टिता ग्रीवा कण्ठो येषां तान्। तथाभूतान् व्यवस्थाप्य स्थापयित्वा। कीदृशान्? सक्षीरवृक्षपल्लवफलापिधानान्, सक्षीरा वृक्षा अर्कादयस्तेषां ये पल्लवा अभिनवपत्राणि तथान्यानि च फलानि तान्येव समन्तादपिधानमाच्छादनं येषाम्।

पुनः कीदृशान्? पुष्यस्नानौषधिविमिश्रेणाम्भसा जलेनाऽऽपूर्णान् सुभरितान्। सरत्नान् रत्नसहितांश्च। गर्गगीतानि गर्गमहर्षिणा कथितानि पुष्यस्नानार्थं द्रव्याण्यादद्यात् ढौकयेदिति। तथा च गर्गः—

कलशैर्हेमताम्रैश्च राजतैर्मृन्मयैस्तथा।
सूत्रसंवेष्टितग्रीवैश्चन्दनागुरुचर्चितैः ।।
प्रशस्तवृक्षपत्रैश्च फलपुष्पसमन्वितैः।
पुण्यतोयेन सम्पूर्णैं रत्नगर्भैर्मनोहरैः।। इति।।३७-३८।।

अथ पुष्यस्नानद्रव्याण्याह—

**ज्योतिष्मतीं त्रायमाणामभयामपराजिताम्।**
**जीवां विश्वेश्वरीं पाठां समङ्गां विजयां तथा ॥३९॥**

सहां च सहदेवीं च पूर्णकोशां शतावरीम्।
अरिष्टिकां शिवां भद्रां तेषु कुम्भेषु विन्यसेत् ॥४०॥

ब्राह्मीं क्षेमामजां चैव सर्वबीजानि काञ्चनीम्।
मङ्गल्यानि यथालाभं सर्वौषध्यो रसास्तथा ॥४१॥

रत्नानि सर्वगन्धांश्च बिल्वं च सविकङ्कतम्।
प्रशस्तनाम्न्यश्चौषध्यो हिरण्यं मङ्गलानि च ॥४२॥

ज्यौतिष्मती ( कंगनी = मालकाकणी ), त्रायमाणा ( चिरायते का फल ), अभया ( हर्रे = हरीर ), अपराजिता ( विष्णुक्रान्ता ), जीवा ( जीवन्ती = डोढी ), विश्वेशरी ( सोंठ ), पाठा ( पाढ़ = पाढ़रि ), समङ्गा ( रक्तमञ्जिष्ठा = पसरन ), विजया ( भंग ), सहा (मुद्गपर्णी = वनमूड़ ), सहदेवी ( सहदेई ), पूर्णकोशा ( नागरमोथा ), शतावरी, अरिष्टिका ( रीठा ), शिवा ( शमी ), भद्रा ( बला )—इन ओषधियों को पूर्व स्थापित चारो कलशों में डाल दे। ब्राह्मी, क्षेमा ( काष्ठगुग्गुल ), अजा ( औषधिविशेष ), सब प्रकार के बीज, काञ्चनी ( हलदी = हरदी, 'निशाह्वा काञ्चनी पीता हरिद्रा वरवर्णनी'त्यमरः ), अन्य मङ्गल द्रव्य ( दधि, अक्षत, पुष्प आदि )—इन द्रव्यों में जितने की प्राप्ति हो, उतने ही लेना चाहिये। सब ओषधि, सब रस, रत्न, सब सुगन्धद्रव्य, बेल, विकङ्कत ( कंटाप = कंघी ), प्रशस्त ओषधि ( जया, जयन्ती, जीवन्ती, जीवपुत्रिका, पुनर्नवा, विष्णुक्रान्ता, चक्राङ्गा, वाराही और लक्षणा ), सुवर्ण आदि धातु, माङ्गलिक ओषधि ( गोरोचन, सरसों, दूर्वा, हस्तिमद आदि ) सब द्रव्यों को पूर्वस्थापित कलशों में डाल दे।।३९-४२।।

ज्योतिष्मतीं सुसन्नद्धाम्। त्रायमाणां प्रसिद्धाम्। अभयां हरीतकीम्। अपराजितां शमीम्। जीवां जीवन्तीम्। विश्वेश्वरीं पद्मचारिणीम्। पाठां प्रसिद्धाम्। समङ्गां रक्तमञ्जिष्ठाम्। विजयां वचाम्। सहां मुद्गपर्णीम्। सहदेवीं प्रसिद्धाम्। पूर्णकोशां प्रसिद्धाम्। शतावरीं प्रसिद्धामेव। अरिष्टिकां प्रसिद्धाम्। शिवां प्रसिद्धाम्। भद्रां बलाम्। एता ओषधीस्तेषु प्रागुद्दिष्टेषु कुम्भेषु विन्यसेत् क्षिपेत्।

ब्राह्मीं प्रसिद्धाम्। क्षेमां काष्ठगुग्गुलम्। चोरकमिति प्रसिद्धम्। अजां प्रसिद्धाम्। केचिदेडिकाक्षीमिच्छन्ति। सर्वाणि च बीजानि। काञ्चनीं सुप्रसिद्धाम्। अन्यानि मङ्गल्यानि द्रव्याणि दध्यक्षतकुसुमादीनि। यथालाभमेतानि द्रव्याणि यावन्ति प्राप्यन्ते तावन्त्येव ग्राह्याणि नान्येषां विकल्पः। सर्वा ओषधयः। रसाश्च सर्व एव मधुराम्ललवणतिक्तकटुकषायाः।

रत्नानि मणिविशेषाः। सर्वगन्धाश्च निःशेषसुगन्धद्रव्याणि। बिल्वं फलम्। सविकङ्कतं विकङ्कतफलेन सह। प्रशस्तनाम्न्यो या ओषधयः। यथा—जया। जयन्ती। जीवन्ती। जीवपुत्रिका। पुनर्नवा। विष्णुक्रान्ता। चक्राङ्गा। वाराही। लक्षणा। हिरण्यं सुवर्णादयो धातवः। मङ्गलानि च मङ्गलवन्त्यौषधानि। यथा—गोरोचना। सर्षपः। दूर्वाहस्तिमदमिति। एवमादि।।३९-४२।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**आदावनडुहश्चर्म जरया संहतायुषः ।**
**प्रशस्तलक्षणभृतः प्राचीनग्रीवमास्तरेत् ॥४३॥**

**ततो वृषस्य योधस्य चर्म रोहितमक्षतम् ।**
**सिंहस्याथ तृतीयं स्याद् व्याघ्रस्य च ततः परम् ॥४४॥**

**चत्वार्येतानि चर्माणि तस्यां वेद्यामुपास्तरेत् ।**
**शुभे मुहूर्ते सम्प्राप्ते पुष्ययुक्ते निशाकरे ॥४५॥**

पहले वृद्ध होकर मरे हुये, प्रशस्त लक्षणों ( ६१ वें अध्याय में कथित लक्षणों ) से युत बैल का चर्म लेकर पूर्वाभिमुख करके बिछावे। इसके बाद लोहित वर्ण वाले योद्धा बैल का छिद्ररहित चर्म बिछावे, बाद में तृतीय सिंह का चर्म और इसके बाद चतुर्थ व्याघ्र का चर्म बिछावे। पुष्य नक्षत्रगत चन्द्र के समय शुभ मुहूर्त में वेदी के ऊपर इन चारो चमड़ों को बिछावे।।४३-४५।।

आदौ प्रथमनडुहो बलीवर्दस्य चर्म। कीदृशस्य? जरया वार्द्धकेन संहतायुषो मृतस्य। पुनः कीदृशस्य? प्रशस्तलक्षणभृतः, प्रशस्तानि गोलक्षणोक्तानि लक्षणानि बिभर्ति धारयति तस्य। ततश्च प्राचीनग्रीवं पूर्वाभिमुखकण्ठमास्तरेत् प्रसारयेत्।

ततोऽनन्तरं योधस्य वृषस्य रोहितं लोहितवर्ण चर्म। अक्षतमच्छिद्रमास्तरेत्। द्वितीयम्। अनन्तरं सिंहस्य चर्म तृतीयं चाऽऽस्तरेत्। ततः परं चतुर्थं व्याघ्रस्य चर्माऽऽस्तरेत्।

एतानि चत्वारि चर्माणि तस्यां प्रागुक्तायां वेद्यामुपास्तरेत्। कस्मिन् काले? निशाकरे चन्द्रे पुष्ययुक्ते पुष्यस्य योगतारकसमीपस्थे, शुभे च मुहूर्ते सम्प्राप्ते।।४३-४५।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**भद्रासनमेकतमेन कारितं कनकरजतताम्राणाम् ।**
**क्षीरतरुनिर्मितं वा विन्यस्यं चर्मणामुपरि ॥४६॥**

**त्रिविधस्तस्योच्छ्रायो हस्तः पादाधिकोऽर्धयुक्तश्च ।**
**माण्डलिकानन्तरजित्समस्तराज्यार्थिनां शुभदः ॥४७॥**

चमड़े के ऊपर सोना, चाँदी, ताँबा या दुधैले वृक्ष का बना हुआ सुन्दर आसन बिछावे। इस भद्रासन की ऊँचाई तीन प्रकार ( एक हाथ पादाधिक हस्त = तीस अंगुल और डेढ हाथ ) की होनी चाहिये। प्रथम माण्डलिक राजा का शुभ करने वाला, द्वितीय विजयेच्छु राजा का हित करने वाला और तृतीय चक्रवर्ती राजा बनने की इच्छा रखने वाले राजा का शुभकारी होता है।।४६-४७।।

कनकं सुवर्णम्। रजतं रूप्यम्। ताम्रं प्रसिद्धम्। एषां कनकरजतताम्राणामेकतमेनान्यतमेन भद्रासनं भद्रपीठं कारितं निर्मितम्। अथवा क्षीरतरवः क्षीरवृक्षा अर्कपिप्पलौ-

दुम्बरादयस्तन्निर्मितं तन्मयम्। तथाभूतं तेषां प्राक्तनानां चर्मणामुपर्युपरि स्थितानामुपरि विन्यस्यं स्थाप्यम्।

**त्रिविधस्तस्योच्छ्राय इति**। तस्य भद्रासनस्य त्रिविधस्त्रिप्रकार उच्छ्राय औच्च्यम्। हस्तः शयो माण्डलिकानां राज्ञां शुभदः शर्मदः। पादाधिको हस्तः, त्रिंशदङ्गुलानीत्यर्थः। अनन्तरजितां विजिगीषूणां राज्ञां शुभदः। अर्धयुक्तो हस्तः। सार्धशयः समस्तराज्यार्थिनां राजाधिराजैषिणां राज्ञां शुभदः।।४६-४७।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**अन्तर्धाय हिरण्यं तत्रोपविशेन्नरेश्वरः सुमनाः।**
**सचिवाप्तपुरोहितदैवपौरकल्याणनामवृतः ॥४८॥**

उस भद्रासन के मध्य में सुवर्ण देकर मन्त्री, विश्वस्त बन्धु, पुरोहित, दैवज्ञ और शुभ ( जयराज, सिंहराज, बन्धुराज, व्याघ्रराज आदि ) नामों से युत पुरवासियों के साथ प्रसन्न चित्त होकर राजा बैठे।।४८।।

तत्र तस्मिन् भद्रासने हिरण्यं सुवर्णमन्तर्धायाभ्यन्तरे क्षिप्त्वा नरेश्वरो राजा सुमनाः शोभनचित्तः। उपविशेदध्यारोहेत्। सचिवैर्मन्त्रिभिः। आप्तैर्जनैर्विश्वस्तैर्बन्धुभिः। पुरोहितेनाचार्येण। दैवशब्देन दैवज्ञः। सांवत्सरिक उच्यते। एतैर्वृतः समायुक्तः। तथा अन्यैश्च पौरैर्जनैः कल्याणनामभिर्वृतः परिवृतः। कल्याणनामानः शुभनामानः। यथा—जयराजः, सिंहराजः, बन्धुराजः, व्याघ्रराजः इत्येवमादि।।४८।।

किम्भूतो राजेत्याह—

**वन्दिजनपौरविप्रैः प्रघुष्टपुण्याहवेदनिर्घोषैः।**
**समृदङ्गशङ्खतूर्यैर्मङ्गलशब्दैर्हतानिष्टः ॥४९॥**

बन्दिजन, पुरवासी तथा ब्राह्मणों के द्वारा उद्घोषित पुण्याह शब्द, वेदध्वनि, मृदङ्ग, शङ्ख और तुरही के मङ्गल शब्दों से नष्ट हो गया है अनिष्ट जिसका, ऐसा राजा उस आसन पर बैठे।।४९।।

वन्दिनश्चाटुकारिणस्तैर्वन्दिजनैः। तथा पौरैश्च नागरैः। विप्रैर्ब्राह्मणैः। एतैः कीदृशैः? प्रघुष्टपुण्याहवेदनिर्घोषैः। प्रकर्षेण घुष्ट उद्घोषितः पुण्याहशब्दो वेदशब्दश्च यैः। एतैः। तथा समृदङ्गशंखतूर्यैर्मङ्गलशब्दैः, सह मृदङ्गशब्दैः, शङ्खशब्दैः, तूर्यशब्दैर्ये मङ्गलशब्दा वर्तन्ते तैर्हतो विनाशितोऽनिष्टोऽशुभः शब्दो यस्य स तथोक्तः।।४९।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**अहतक्षौमनिवसनं पुरोहितः कम्बलेन सञ्छाद्य।**
**कृतबलिपूजं कलशैरभिषिञ्चेत् सर्पिषा पूर्णैः ॥५०॥**

नवीन रेशमी वस्त्र पहने हुये और कर लिया है बलि और पूजा जिसने, ऐसे राजा को कम्बल से आच्छादित करके पुरोहित घृतपूर्ण कलश से अभिषेक करे।।५०।।

ततः पुरोहितो राजानमभिषिञ्चेत्। कीदृशं राजानम्? अहतक्षौमनिवसनम्, अहतं नवं क्षौमं क्षुभाकृतं निसवनं यस्य। तथा कृतबलिपूजम्, कृतो बलिरुपहारः। पूजा अर्चा च येन तम्। कथमभिषिञ्चेत्? कम्बलेनौर्णिकेन सञ्छाद्य छादयित्वा। कैरभिषिञ्चेत्? कलशैः सर्पिषा पूर्णैः, घृतपरिपूर्णैः कुम्भैरित्यर्थः।।५०।।

तथा कलशप्रमाणमाह—

**अष्टावष्टाविंशतिरष्टशतं वापि कलशपरिमाणम्।**
**अधिकेऽधिके गुणोत्तरमयं च मन्त्रोऽत्र मुनिगीतः ॥५१॥**

आठ, अट्ठाईस, एक सौ आठ या आठ सौ कलश का प्रमाण है। अधिक-अधिक प्रमाण के कलश अधिक-अधिक गुण देते हैं। इस घृत के अभिषेक में मुनि ( वृद्धगर्ग ) के द्वारा प्रतिपादित आगे मन्त्र हैं।।५१।।

अष्टौ कलशाः, अष्टाविंशतिर्वा, अष्टशतमष्टाधिकं शतं वा। एतत्कलशानां परिमाणम्। अधिकेऽधिके कलशपरिमाणे गुणोत्तरं गुणाधिक्यम्। अत्र घृताभिषेके मन्त्रोऽयं मुनिगीतो मुनिना वृद्धगर्गेण उक्तः।।५१।।

तमेवाह—

**आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम्।**
**आज्यं सुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥५२॥**

**भौमान्तरिक्षं दिव्यं वा यत्ते कल्मषमागतम्।**
**सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छतु ॥५३॥**

घृत तेज है, घृत प्रकृष्ट पाप का नाश करने वाला है। घृत देवताओं का आहार है। घृत में लोक ( भूः आदि ) स्थापित हैं, भौम ( चराचरोद्भव ), आन्तरिक्ष ( उल्का, निर्घात, पवन, परिवेश, गन्धर्वपुर, इन्द्रचाप आदि से उत्पन्न ), दिव्य ( ग्रहनक्षत्रोद्भव ) जो पाप तुम्हारे ऊपर आये हों, वे सब घी के स्पर्श से नाश को प्राप्त हों।।५२-५३।।

आज्यं घृतं तदेव तेजः समुद्दिष्टं कथितम्। तथा आज्यं परं प्रकृष्टं पापहरं कल्मष-नाशनम्। आज्यं सुराणां देवानामाहारो भोजनम्। आज्ये लोका भूर्लोकादयः प्रतिष्ठिताः स्थापिताः।

ते तव कल्मषं यत्पापं दिव्यं ग्रहनक्षत्रविकारजम्। आन्तरिक्षमुल्कानिर्घातपवन-परिवेषगन्धर्वपुरपुरन्दरचापादिजातम्। भौमं वा चरस्थिरोद्भवम्। आगतं प्राप्तम्। तत्सर्व-माज्यसंस्पर्शात् घृतसंस्पर्शमात्रादेव प्रणाशं क्षयमुपगच्छतु प्रयातु।।५२-५३।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**कम्बलमपनीय ततः पुष्यस्नानाम्बुधिः सफलपुष्पैः।**
**अभिषिञ्चेन्मनुजेन्द्रं पुरोहितोऽनेन मन्त्रेण ॥५४॥**

इसके बाद पुरोहित राजा के शरीर पर से कम्बल उतार कर फल-फूलों के साथ पुष्यस्थानीय जल से आगे कथित मन्त्र के द्वारा अभिषेक करे।।५४।।

ततोऽनन्तरं कम्बलमपनीयापास्य। ततः सफलपुष्पैः फलपुष्पसहितैः। पुष्यस्नानाम्बुभिः पुष्यस्नानद्रव्ययुक्तैर्जलैः। पुरोहित आचार्यो मनुजेन्द्रं राजानमनेन मन्त्रेणाभिषिञ्चेदभिषेकं कुर्यादिति।।५४।।

अथ तमेव स्नानमन्त्रमाह—

सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च साध्याश्च समरुद्गणाः ॥५५॥

आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ।
अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ॥५६॥

कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा।
दनुश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥५७॥

देवपत्न्यश्च सा नोक्ता देवमातर एव च।
सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥५८॥

नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः।
संवत्सरा दिनेशाश्च कलाः काष्ठाः क्षणा लवाः ॥५९॥

सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः।
एते चान्ये च मुनयो वेदव्रतपरायणाः ॥६०॥

सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधनाः।
वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ॥६१॥

सरितश्च महाभागा नागाः किम्पुरुषास्तथा।
वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ॥६२॥

सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च।
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥६३॥

भृगुः सनत्कुमारश्च सनकोऽथ सनन्दनः।
सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्यो भगन्दरः ॥६४॥

एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जाबालिकश्यपौ।
दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ॥६५॥

मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेपो विदूरथः।
ऊर्ध्वः संवर्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः ॥६६॥

द्वैपायनो यवक्रीतो देवराजः सहानुजः।
पर्वतास्तरवो वल्ल्यः पुण्यान्यायतनानि च ॥६७॥
प्रजापतिर्दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः।
वाहनानि च दिव्यानि सर्वलोकाश्चराचराः ॥६८॥
अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम्।
एते चान्ये च बहवः पुण्यसङ्कीर्तनाः शुभैः ॥६९॥
तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणैः।
यथाभिषिक्तो मघवानेतैर्मुदितमानसैः ॥७०॥

सभी देवता तुम्हारा अभिषेक करें—सिद्ध, पुरातन देव ( ब्रह्मा, विष्णु, शिव ), साध्य, वायु के समुदाय, आदित्य, वसु, रुद्र, वैद्यों में श्रेष्ठ दोनों अश्विनीकुमार, अदिति, देवमाता, स्वाहा, सिद्धि, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, श्री, सिनीवाली ( दृश्यचन्द्रा ), कुहू ( अदृश्यचन्द्रा अमावस्या ), दनु, सुरसा, विनता, कद्रू, देवपत्री, देवमाता, दिव्य अप्सरायें—ये सब तुम्हारा अभिषेक करें। अश्विनी आदि नक्षत्र, मुहूर्त, पक्ष, अहोरात्र की सन्धि, संवत्सर, सूर्यादि सात ग्रह, कला, काष्ठा, क्षण, लव—ये सब काल के शुभ अवयव तुम्हारा अभिषक करें। ये सब तथा अन्य भी वेदव्रतपरायण, शिष्य और स्त्रियों के साथ तपस्वीगण तुम्हारा अभिषेक करें। विमान पर चलने वाले देवतागण, मनु, समुद्र, नदी, प्रधान नाग, किन्नर, वैखानस, श्रेष्ठ ब्राह्मण, आकाशमार्ग से गमन करने वाले, स्त्रियों के साथ सप्तर्षि गण, सभी ध्रुवस्थान, मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा, भृगु, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, दक्ष, जैगीषव्य, भगन्दर, एकत, द्वित, त्रित, जाबालि, कश्यप, दुर्वासा, दुर्विनीत, कण्व, कात्यायन, मार्कण्डेय, दीर्घतप, शुनःशेप, विदूरथ, ऊर्व, संवर्त्तक, च्यवन, अत्रि, पराशर, द्वैपायन ( व्यास ), यवक्रीत, भाइयों के साथ देवराज ( इन्द्र ), पर्वत, वृक्ष, लता, पुण्यगृह, प्रजापति, दिति, गौ, विश्व की मातायें, दिव्य वाहन, चराचर समस्त लोक, अग्नि, पितर, तारा, मेघ, आकाश, दिशा, जल—ये सब तथा अन्य भी पवित्र कीर्ति वाले, सभी उत्पातों का नाश करने वाले, पवित्र जल से जिस तरह प्रसन्न चित्त होकर इन्द्र का अभिषेक किया गया था, उसी तरह तुम्हारा अभिषेक करें।।५५-७०।।

अथ पयोऽभिषेकमन्त्रः सुबोधस्तथापि मन्दबुद्धिव्युत्पादनाय किञ्चिद् व्याख्यायते। सुरा देवास्त्वां नृपमभिषिञ्चन्तु। ये च सिद्धा देवयोनयः। पुरातनाः ब्रह्माद्याः सुराः। साध्याः समरुद्गणाः, मरुतां गणैर्वायुसमूहैः सहिताः। भिषग्वरौ वैद्यप्रधानावश्विनौ। अदिति-र्देवमाता सुरजननी। स्वाहाद्या देवताः। सिनीवाली दृश्यचन्द्रा अमावास्या यस्यां प्रभाते शशी दृश्यते, नष्टक्षपाकरा अमावास्या कुहूः, यस्यां प्रभाते चन्द्रमा न दृश्यते। दनु-प्रभृतयः कश्यपपत्न्यः। देवपत्न्यः सुरदाराः। देवमातरः सुरजनन्यः। एताः सर्वास्त्वाम-

भिषिञ्चन्तु। दिवि भवा दिव्याः। अप्सरसां गणाः समूहाः। नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि सप्तविंशतिः। मुहूर्ताः क्षणाः। पक्षाहोरात्राणि। तेषां ये च सन्धयः। संवत्सरा वर्षाणि। दिनेशाः सूर्योदयः सप्तग्रहाः। कलाद्याः कालावयवाः। कालस्याङ्गानि। एत उक्ता अन्ये परे च मुनयः ऋषयो वेदव्रतपरायणा वेदासक्ताः। सशिष्याः शिष्यसहिताः। सदाराः सकलत्राः। तपोधनास्तपःप्रधानाः तपस्विनः। वैमानिका विमानेन ये यान्ति। मनवः। सागरैः समुद्रैः सहिताः। सरितो नद्यः। महाभागाः प्रधानाः। नागाः। किम्पुरुषाः किन्नराः। वैखानसा वैहायसा इति संज्ञाविकृताः। महाभागा द्विजानां मुनीनाम्। सप्तर्षयो मरीच्यादयो मुनयः। इहैव सप्तर्षिचारे उक्ताः। सदाराः सपत्नीकाः ध्रुवस्थानानि ध्रुवप्रदेशाः। दीर्घतपा मुनिविशेषः। द्वैपायनो व्यासः। देवराज इन्द्रः। सहानुजैर्भ्रातृभिः सह। जीमूता मेघाः। खं नभः। दिश आशाः। जलमुदकम्। एते ये उक्तास्तथा अन्येऽपरे बहवः प्रभूताः। पुण्य-सङ्कीर्तनाः। पुण्यं पवित्रं सङ्कीर्तनं येषां ते तथाभूताः। शुभैः पवित्रैः। तोयैर्जलैस्त्वाम-भिषिञ्चन्तु। किम्भूतैः? सर्वोत्पातनिबर्हणैः, सर्वेषामुत्पातानां यानि निबर्हणानि नाशकर्तृणि तैः। निःशेषानिष्टनिवारणैः। यथा येन प्रकारेणैतैः पूर्वोक्तैर्देवतामुनिभिः। मुदितमानसैः संहृष्टचित्तैः। मघवानिन्द्रः पूर्वमभिषिक्तस्तथा ते अभिषिञ्चन्त्विति।।५५-७०।।

अथान्यान्मन्त्रानप्याह—

**इत्येतैश्चान्यैश्चाप्यथर्वकल्पाहितैः सरुद्रगणैः।**
**कौष्माण्डमहारौहिणकुबेरहृद्यैः समृद्ध्या च ॥७१॥**

इन मन्त्रों के अतिरिक्त अथर्वकल्प में कथित मन्त्रों से, रुद्रगण ( 'एकदशानुवाका रुद्राः' ), कौष्माण्ड ( 'षडनुवाका मरुद्गणाः' ), महारोहिण और कुबेरहृदय नामक ऋचा से अभिषेक करें।।७१।।

इत्येवंप्रकारैरेतैर्मन्त्रैस्तथान्यैरपरैरप्यथर्वकल्पाहितैरथर्वकल्पनिर्दिष्टैः। सरुद्रगणै रुद्रगणसहितैः। एकादशानुवाका रुद्राः। कौष्माण्डैः, षडनुवाकाः कौष्माण्डाः महारौहिणेन मन्त्रेण। कुबेरहृदयेन समृद्ध्या ऋचा।।७१।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**आपोहिष्ठातिसृभिर्हिरण्यवर्णेति चतसृभिर्जप्तम्।**
**कार्पासिकवस्त्रयुगं बिभृयात् स्नातो नराधिपतिः ॥७२॥**

स्नान करके राजा आपोहिष्ठा इत्यादि तीन ऋचाओं और हिरण्यवर्णां इत्यादि चार ऋचाओं से अभिमन्त्रित वस्त्र पहने।।७२।।

ततो नराधिपती राजा स्नातः कृतस्नानः कार्पासिकवस्त्रयुगं बिभृयाद्धारयेत्। कार्पासिकेत्यनेनान्यवस्त्राणां परिहारः। कीदृशम्? आपोहिष्ठेति तिसृभिर्ऋग्भिर्जप्तं तथा हिरण्यवर्णेति चतसृभिर्ऋग्भिर्जप्तम्। आपोहिष्ठा हिरण्यवर्णेत्याद्यपदग्रहणम्।।७२।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**पुण्याहशङ्खशब्दैराचान्तोऽभ्यर्च्य देवगुरुविप्रान्।**
**छत्रध्वजायुधानि च ततः स्वपूजां प्रयुञ्जीत ॥७३॥**

इसके बाद पवित्र होकर राजा देवता, गुरु और ब्राह्मणों की पूजा करके छत्र, ध्वज और खड्ग की पूजा करे; तत्पश्चात् अभीष्ट देवता की पूजा करे।।७३।।

ततो नृपः पुण्याहशङ्खशब्दैश्च सहाऽऽचान्तः शुद्धकायो देवान् सुरान्। गुरूनुपाध्यायान्। विप्रान् ब्राह्मणान्। अभ्यर्च्य सम्पूज्य। तथा छत्रध्वजायुधानि, छत्रमातपत्रम्, ध्वजं चिह्नम्, आयुधं खड्गादि। एतानि सम्पूज्य ततोऽनन्तरं स्वपूजामात्मीयेष्टदेवतार्चां प्रयुञ्जीत कारयेदिति।।७३।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषाभिर्ऋग्भिरेताभिः।**
**परिजप्तं वैजयिकं नवं विदध्यादलङ्कारम् ॥७४॥**

आयुष्यं, वर्चस्यं, रायस्पोष आदि छः ऋचाओं से अभिमन्त्रित विजय करने वाला नवीन आभूषण राजा पहने।।७४।।

ततोऽनन्तरं नवमभिनवमलङ्कारं विभूषणादि वैजयिकं विजयावहं विदध्याद्धारयेत्। कीदृशम्? आयुष्यं वर्चस्यम्। रायस्पोषाभिरेताभिः षड्भिर्ऋग्भिः परिजप्तमभिमन्त्रितम्।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**गत्वा द्वितीयवेदीं समुपविशेच्चर्मणामुपरि राजा।**
**देयानि चैव चर्माण्युपर्यपर्येवमेतानि ॥७५॥**
**वृषस्य वृषदंशस्य रुरोश्च पृषतस्य च।**
**तेषामुपरि सिंहस्य व्याघ्रस्य च ततः परम् ॥७६॥**

बाद में द्वितीय वेदी पर जाकर राजा चमड़े के ऊपर बैठे, चमड़ों को आगे दी गई विधि के अनुसार ऊपर-ऊपर रक्खे। जैसे सबसे पहले बैल का, बाद में बिल्ली का, इसके बाद काले मृग का, इसके बाद हरिण का, इसके बाद सिंह का और अन्त में व्याघ्र का चमड़ा रक्खे।।७५-७६।।

ततो द्वितीयवेदीं दक्षिणां गत्वा प्राप्य तत्र च राजा नृपश्चर्मणामुपरि समुपविशेत्तिष्ठेत्। तथोपर्युपरि चर्माण्यनेकप्रकारेणैतानि स्थाप्यानि यानि तानीत्याह।

**वृषस्येति**। तद्यथा—वृषस्य बलीवर्दस्य सम्बन्धि प्रथमं दद्यात्। तत्रोपरि वृषदंशस्य मार्जारस्य। तस्योपरि रुरोर्मृगजातेः। तस्योपरि पृषतस्य च मृगजातेरेव। तेषामुपरि सिंहस्य हरेः। ततः परं तस्योपरि व्याघ्रस्येति।।७५-७६।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**मुख्यस्थाने जुहुयात् पुरोहितोऽग्निं समित्तिलघृताद्यैः ।**
**त्रिनयनशक्रबृहस्पतिनारायणनित्यगतिऋग्भिः ॥७७॥**

पुरोहित मुख्य स्थान ( दक्षिण स्थान ) में लकड़ी, तिल, घृत आदि से रुद्र, इन्द्र, बृहस्पति, विष्णु और वायुसम्बन्धी ऋचा पढ़ कर अग्नि में आहुति दे।।७७।।

पुरोहित आचार्यः। मुख्यस्थानं प्रधानस्थानं दक्षिणस्थानमित्यर्थः। समित्तिलघृताद्यैः, समिद्भिः, तिलैः घृतेनाज्येन च। आदिग्रहणादन्यैः शान्तिकैः श्रीफलादिभिरग्निं जुहुयात्। त्रिनयनो रुद्रः। शक्र इन्द्रः। बृहस्पतिर्देवगुरुः। नारायणो विष्णुः। नित्यगतिर्वायुः। एतत्सम्बन्धिन्य ऋचस्ताभिः।।७७।।

अन्यच्च—

**इन्द्रध्वजनिर्दिष्टान्यग्ननिमित्तानि दैवविद् ब्रूयात् ।**
**कृत्वाऽशेषसमाप्तिं पुरोहितः प्राञ्जलिर्ब्रूयात् ॥७८॥**

दैवज्ञ इन्द्रध्वज में कथित अग्नि के लक्षण को बोले, सबकी समाप्ति के अनन्तर पुरोहित हाथ जोड़ कर बोले।।७८।।

दैवित् सांवत्सरिकः। इन्द्रध्वजनिर्दिष्टानीन्द्रध्वजोक्तानि। अग्निनिमित्तानि अग्निलक्षणानि ब्रूयाद् वदेत्। तद्यथा—

स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः स्निग्धः प्रदक्षिणशिखो हुतभुग् नृपस्य।
गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहारां धात्रीं समुद्ररशनां वशगां करोति।।

एतत्सर्वं विचार्यम्। अशेषसमाप्तिं सर्वकर्मणां परिसमाप्तिं कृत्वा ततः प्राञ्जलिः पुरोहितः। अञ्जलिं कृत्वा आचार्य इदं ब्रूयाद्वदेत्।।७८।।

किं तदित्याह—

**यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवात् ।**
**सिद्धिं दत्त्वा तु विपुलां पुनरागमनाय च ॥७९॥**

हे देवगण! आप सब राजा द्वारा प्रदत्त पूजा को प्राप्त कर उनको महान् सिद्धि देकर फिर आगमन के लिये गमन करें।।७९।।

सर्वे देवगणाः सुरसमूहाः पार्थिवाद्राज्ञः पूजामर्चामादाय गृहीत्वा तस्य च विपुलां विस्तीर्णां सिद्धिं दत्वा पुनर्भूयः। आगमनाय च प्रयान्तु व्रजन्तु।।७९।।

ततो राज्ञा किं कर्तव्यमित्याह—

**नृपतिरतो दैवज्ञं पुरोहितं चार्चयेद्धनैर्बहुभिः ।**
**अन्यांश्च दक्षिणीयान् यथोचितं श्रोत्रियप्रभृतीन् ॥८०॥**

इसके बाद राज़ा बहुत प्रकार के धनों से दैवज्ञ और पुरोहित की पूजा करे तथा अन्य दक्षिणा देने के लायक श्रोत्रिय आदि की भी यथोचित पूजा करे।।८०।।

अतोऽनन्तरं नृपती राजा दैवज्ञं सांवत्सरं पुरोहितं चाचार्यं बहुभिः प्रभूतैर्धनैर्वित्तैरर्चयेत्। तथा अन्यान् दक्षिणीयान् दक्षिणार्हान् यथोचितं कुलशीलपाठश्रुतानुसारेण श्रोत्रियप्रभृतीन् यजमानाग्निहोतृंश्चार्चयेत्। तथा च गर्गः—

दत्वा वित्तं ब्राह्मणेभ्यो गावो हेमपरिष्कृताः।
वास्तु युग्यं मही रूप्यं तेभ्यश्च बहुभोजनम्।।
शङ्खभेरीस्वनैर्दिव्यैर्गीतैश्चैव मनोहरैः।
सम्प्रविश्य ततो राजा सचिवैः परिवारितः।।
श्वेतकुञ्जरमारूढः श्वेतमश्वमथापि वा।
श्वेतचन्दनलिप्ताङ्गः श्वेताम्बरधरः शुभः।।
पुरस्ताद्विकरेद्वित्तमाशीर्वादैश्च पूजितः।। इति।।८०।।

ततः किं कुर्यादित्याह—

**दत्त्वाऽभयं प्रजानामाघातस्थानगान् विसृज्य पशून्।**
**बन्धनमोक्षं कुर्यादभ्यन्तरदोषकृद्वर्जम् ।।८१।।**

प्रजाओं को अभयदान देकर बध्य स्थानगत पशु ( छाग ) आदि को छोड़कर अभ्यन्तर ( राजा के शरीर या अन्तःपुर ) में जिन्होंने अपराध किया है, उनके सिवाय समस्त बन्धन स्थानस्थित पुरुषों को मुक्त करे।।८१।।

ततः प्रजानां लोकानामभयं दत्वा आघातस्थानगान् वध्यस्थानप्राप्तान् पशून् छागादीन् विसृज्य विमुच्य ततो बन्धनमोक्षं कुर्यात्। बन्धनस्थान् पुरुषान् परित्यजेत्। किं त्वभ्यन्तर-दोषकृद्वर्जम्। अभ्यन्तरे नृपशरीरे अन्तःपुरे वा यैर्दोषः कृतस्तान् वर्जयित्वेत्यर्थः।।८१।।

अथ पुष्यस्नानमाहात्म्यमाह—

**एतत्प्रयुज्यमानं प्रतिपुष्यं सुखयशोऽर्थवृद्धिकरम्।**
**पुष्याद्विनार्धफलदा पौषी शान्तिः परा प्रोक्ता ।।८२।।**

प्रत्येक पुष्य नक्षत्र में किया हुआ यह स्नान सुख, यश और धन की वृद्धि करने वाला होता है। पुष्य नक्षत्र को छोड़कर अन्य नक्षत्र में यथाविधि यह स्नान करने से आधा फल देने वाला होता है। पर पुष्य नक्षत्रयुत पूर्णिमा के दिन का यह स्नान सर्वोत्कृष्ट है।।८२।।

एतत् स्नानं प्रतिपुष्यं पुष्यं पुष्यं प्रति प्रयुज्यमानं क्रियमाणं सुखयशोऽर्थवृद्धिकरं सुखस्य यशसेऽर्थस्य वृद्धिकरं भवति। पुष्याद्विना अन्यत्र क्रियमाणमर्धफलं यथोक्तात् फलादर्धं ददाति। पौषी शान्तिः। पुष्यनक्षत्रेण युता पौषी पौर्णमासी च परा प्रकृष्टा प्रोक्ता कथिता।।८२।।

अथ केषु कालेषु पुष्यस्नानं कुर्यादित्याह—

**राष्ट्रोत्पातोपसर्गेषु राहोः केतोश्च दर्शने।**
**ग्रहावमर्दने चैव पुष्यस्नानं समाचरेत् ॥८३॥**

राज्य में किसी प्रकार का उत्पात या उपसर्ग ( उपद्रव ) होने पर तथा केतु का दर्शन होने पर पुष्यस्नान करना चाहिये।।८३।।

राष्ट्रे राज्ये। उत्पातेषु दिव्यान्तरिक्षभौमेषु। तथोपसर्गेषूपद्रवेषु। अन्येषु व्याध्यादिषु। राहोर्दर्शने रविचन्द्रग्रहणे। केतोर्दर्शने केतूदये। ग्रहावमर्दने ग्रहयुद्धे चैवमनेन प्रकारेण स यथा पुष्यस्नानं समाचरेत् कारयेत्।।८३।।

अन्यच्चाह—

**नास्ति लोके स उत्पातो यो ह्यनेन न शाम्यति।**
**मङ्गलं चापरं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते ॥८४॥**

इस लोक में इस तरह का कोई उत्पात नहीं है, जो इस स्नान से नष्ट न हो और ऐसा कोई माङ्गलिक कार्य नहीं है, जो इससे अधिक फल देने वाला हो।।८४।।

लोके स उत्पातो नास्ति न विद्यते यो ह्यनेन पुष्यस्नानेन न शाम्यति न शमं याति; अति तु सर्व एव शाम्यतीत्यर्थः। हिर्यस्मादर्थे। अस्मात् पुष्यस्नानाद्यदतिरिच्यते श्रेष्ठतरं तदपरमन्यन्मङ्गलं नास्ति न विद्यते। तथा च गर्गः—

प्रतिपुष्येण यो राजा स्नायीत विधिपूर्वकम्।
तस्य राष्ट्रे न सीदन्ति मर्त्या ये जन्तवो भुवि।। इति।।८४।।

अन्यत् पुष्यस्नानमाहात्म्यमाह—

**अधिराज्यार्थिनो राज्ञः पुत्रजन्म च काङ्क्षतः।**
**तत्पूर्वमभिषेके च विधिरेष प्रशस्यते ॥८५॥**

महाराजाधिराज पद की और पुत्र की इच्छा करने वाले राजा को उसके प्रथम अभिषेक में भी यही विधि प्रशस्त है।।८५।।

राज्ञो नृपस्याधिराज्यार्थिनोऽधिराज्यमिच्छतस्तथा पुत्रजन्म सुतसम्भवं च कांक्षतः समभिलषितः। तत्पूर्वं तत्प्रथमं योऽभिषेकस्तस्मिन्नप्यभिषेके एष एव विधिः प्रशस्यते स्तूयत इष्यत इति। अतोऽभीष्टमभिलाषी किल्विषक्षयार्थं माङ्गलिकं स्नानं कुर्वीतेति स्थितिः।।८५।।

अन्यदप्याह—

**महेन्द्रार्थमुवाचेदं बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिः।**
**स्नानमायुष्प्रजावृद्धिसौभाग्यकरणं परम् ॥८६॥**

बहुत बड़ी कीर्ति वाले बृहस्पति ने इन्द्र के लिये यह स्नान कहा था। यह स्नान आयु और प्रजा की वृद्धि करने वाला तथा सौभाग्य प्रदान करने वाला है।।८६।।

इदं स्नानं बृहस्पतिः सुरगुरुर्बृहत्कीर्तिर्विपुलकीर्तिः, महेन्द्रार्थं देवराजहितार्थंमुवाचोक्तवान्। कीदृशम्? आयुष्प्रजावृद्धिसौभाग्यकरणम्, आयुषो जीवितस्य प्रजानां सुतानां च वृद्धिं करोति। सौभाग्यकरणं परं प्रकृष्टम्।।८६।।

अन्यदप्याह—

**अनेनैव विधानेन हस्त्यश्वं स्नापयेत्ततः।**
**तस्यामयविनिर्मुक्तं परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥८७॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पुष्य-**
**स्नानाध्यायाष्टचत्वारिंशः ॥४८॥**

जो राजा इस पूर्वोक्त विधि से हाथी और घोड़ों को भी अभिषेक कराता है, रोग से मुक्त होकर उसके वे हाथी-घोड़े परम सिद्धि प्राप्त करते हैं।।८७।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां पुष्यस्नानाध्यायोऽष्टचत्वारिंशः ॥४८॥**

यो राजा अनेनैव पूर्वोक्तेन विधानेन हस्त्यश्वं गजतुरगं स्नापयेत् तस्य राज्ञस्तद्धस्त्यश्वमामयविनिर्मुक्तं रोगरहितं परां प्रकृष्टां सिद्धिमाप्नुयाल्लभत इति।।८७।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ पुष्यस्नानं**
**नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥**

# अथ पट्टलक्षणाध्यायः

अथ पट्टलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेवाऽऽगमप्रदर्शनार्थमाह—

**विस्तरशो निर्दिष्टं पट्टानां लक्षणं यदाचार्यैः।**
**तत्संक्षेपः क्रियते मयाऽत्र सकलार्थसम्पन्नः ॥१॥**

प्राचीन आचार्यों ने विस्तारपूर्वक जो पट्टों ( नरेन्द्र-मुकुटों ) का लक्षण कहा है, यहाँ पर सकल अर्थ से युत उसी को संक्षेप करके कहते हैं।।१।।

आचार्यैः काश्यपादिर्भिर्यत्पट्टानां नरेन्द्रमुकुटानां लक्षणं विस्तरशो विस्तरेण निर्दिष्टमुक्तम्। तस्य मया सकलार्थसम्पन्नः परिपूर्णार्थसमासः संक्षेपः क्रियते विरच्यत इति।।१।।

अधुना तदेवाह—

**पट्टः शुभदो राज्ञां मध्येऽष्टावङ्गुलानि विस्तीर्णः।**
**सप्त नरेन्द्रमहिष्याः षड् युवराजस्य निर्दिष्टः ॥२॥**
**चतुरङ्गुलविस्तारः पट्टः सेनापतेर्भवति मध्ये।**
**द्वे च प्रसादपट्टः पञ्चैते कीर्तिताः पट्टाः ॥३॥**

मध्य में आठ अङ्गुल विस्तार वाला मुकुट राजा का, सात अङ्गुल विस्तार वाला रानी का, छः अङ्गुल विस्तार वाला युवराज का और चार अङ्गुल विस्तार वाला सेनापति का शुभ करने वाला होता है तथा दो अङ्गुल विस्तार वाला मुकुट प्रसादपट्ट कहलाता है, यह मुकुट राजा किसी को भी पहना सकता है। इस तरह ये पाँच मुकुट कहे गये हैं।।२-३।।

राज्ञां नृपाणां पट्टो मुकुटो मध्ये मध्यभागे अष्टावङ्गुलानि विस्तीर्णः कार्यः। नरेन्द्र-महिष्या राजपत्न्याः सप्ताङ्गुलानि मध्ये विस्तीर्णः। षडङ्गुलानि युवराजस्य निर्दिष्टः कथितः।

सेनापतेश्चमूनाथस्य मध्ये चतुरङ्गुलविस्तीर्णः कार्यः। द्वे चाङ्गुले प्रसादपट्टो विस्तीर्णः कार्यः। प्रसादपट्टं राजा कस्यचिद्बध्नाति। एवमेते पञ्च पट्टाः कीर्तिता उक्ताः।।२-३।।

अन्यदप्याह—

**सर्वे द्विगुणायामा मध्यादर्धेन पार्श्वविस्तीर्णाः।**
**सर्वे च शुद्धकाञ्चनविनिर्मिताः श्रेयसो वृद्ध्यै ॥४॥**

सब पूर्वोक्त मुकुट के विस्तार से द्विगुणित दैर्घ्य और विस्तार का आधा पार्श्व का विस्तार होना चाहिये। ये शुद्ध सुवर्ण के बने हों तो श्रेयवृद्धिकारक होते हैं।।४।।

सर्वे पञ्चैव पट्टा द्विगुणायामाः। विस्तारात् द्विगुणायामा द्विगुणा दीर्घाः कर्तव्याः।

यस्य पट्टस्य यो विस्तार उक्तस्तस्य दैर्घ्यं विस्तारद्विगुणं कार्यम्। यथा नृपपट्टोऽष्टावङ्गुलानि विस्तीर्णः स च षोडशाङ्गुलायामः कार्यः। एवमन्येषामप्यायामप्रमाणं ज्ञेयम्। तथा पट्टस्य मध्ये यो विस्तार उक्तस्तस्यार्धेन पार्श्वयोर्विस्तारः कार्यः। यथा नृपपट्टोऽष्टावङ्गुलानि मध्याद्विस्तीर्णः, स च पार्श्वयोश्चतुरङ्गुलविस्तारः कार्य इति। एवमन्येषामपि। सर्वे च पट्टाः शुद्धेन शुभेन काञ्चनेन सुवर्णेन विनिर्मिता रचिताः श्रेयसो वृद्ध्यै वृद्धये भवन्ति। आरोग्यस्य वृद्धिं कुर्वन्ति।।४।।

अन्यल्लक्षणमप्याह—

**पञ्चशिखो भूमिपतेस्त्रिशिखो युवराजपार्थिवमहिष्योः।**
**एकशिखः सैन्यपतेः प्रसादपट्टो विना शिखया ॥५॥**

पाँच शिखा वाला राजा के लिये, तीन शिखा वाला युवराज तथा रानी के लिये और एक शिखा वाला मुकुट सेनापति के लिये शुभकारी होता है। प्रसादपट्ट विना शिखा का बनाना चाहिये।।५।।

भूमिपते राज्ञः पञ्च शिखः पट्टः कार्यः। पञ्चशिखा यस्य स तथाभूतः। युवराजस्य तथा पार्थिवमहिष्या नृपपत्न्यास्त्रिशिखः कार्यः। सैन्यपतेश्चमूनाथस्यैकशिखः। प्रसादपट्टः शिखया विना शिखावर्जितः कार्यः।।५।।

अत्रैव शुभाशुभज्ञानमाह—

**क्रियमाणं यदि पत्रं सुखेन विस्तारमेति पट्टस्य।**
**वृद्धिजयौ भूमिपतेस्तथा प्रजानां च सुखसम्पत् ॥६॥**

यदि मुकुट के बनाये हुये पत्र अनायास फैल जायँ तो राजा की वृद्धि और विजय होती है तथा प्रजा को सुख-सम्पत्ति प्राप्त होती है।।६।।

पट्टस्य सम्बन्धि पत्रं क्रियमाणं यदि सुखेनाक्लेशेन विस्तारमेत्यायाति तदा भूमिपते राज्ञो वृद्धिजयौ भवतः। तथा प्रजानां लोकानां च सुखसम्पत् सौख्यवृद्धिर्भवति।।६।।

अन्यदप्याह—

**जीवितराज्यविनाशं करोति मध्ये व्रणः समुत्पन्नः।**
**मध्ये स्फुटितस्त्याज्यो विघ्नकरः पार्श्वयोः स्फुटितः ॥७॥**

यदि बनाते हुये मुकुट के मध्य में छिद्र हो जाय तो प्राण-राज्य दोनों का नाश करता है। मध्य में फट जाय तो उसका त्याग कर देना चाहिये तथा दोनों पार्श्व में फटा हो तो विघ्नकारी होता है।।७।।

पट्टस्य क्रियमाणस्य मध्ये व्रणश्छिद्रः समुत्पन्नो जीवितस्यायुषो राज्यस्य च विनाशं करोति। तथा मध्ये यः स्फुटितः स त्याज्यः। पार्श्वयोः स्फुटितः स विघ्नकरः विघ्नं करोति। तथा च काश्यपः—

क्रियमाणं यदा पत्रं मध्ये स्फुटति भिद्यते।
तदा नृपभयं प्रोक्तं यस्यार्थे वा प्रकल्पितम्।।
सुलक्षणं प्रमाणस्थं सुकरं च हितावहम्।
सुरूपं दर्शनीयं च प्रजानां वृद्धिदं स्मृतम्।। इति।।७।।

अथाशुभे लक्षणे दृष्टे किं कुर्यादित्याह—

**अशुभनिमित्तोत्पत्तौ शास्त्रज्ञः शान्तिमादिशेद्राज्ञः।**
**शस्तनिमित्तः पट्टो नृपराष्ट्रविवृद्धये भवति ।।८।।**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पट्ट-**
**लक्षणाध्याय एकोनपञ्चाशः।।४९।।**

यदि मुकुट में अशुभ लक्षण दिखाई दे तो शास्त्र को जानने वाले पण्डित राजा को शान्ति कराने का आदेश करें तथा शुभ लक्षणयुत मुकुट राजा-राज्य दोनों की वृद्धि के लिये होता है।।८।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां पट्टलक्षणाध्याय एकोनपञ्चाशः ।।४९।।**

अशुभनिमित्तस्याशुभलक्षणस्योत्पत्तौ सत्यां शास्त्रज्ञः पट्टलक्षणज्ञो राज्ञो नृपस्य शान्तिमादिशेद्वदेत्। यः पट्टः शस्तनिमित्तः शुभलक्षणसंयुक्तः स नृपस्य राज्ञो राष्ट्रस्य च विवृद्धये भवति।।८।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ पट्टलक्षणं**
**नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ।।४९।।**

# अथ खड्गलक्षणाध्यायः

अथ खड्गलक्षणं व्याख्यायते। तत्रादावेव खड्गस्य प्रमाणं व्रणानां च शुभाशुभ-ज्ञानार्थमाह—

**अङ्गुलशतार्धमुत्तम ऊनः स्यात् पञ्चविंशतिः खड्गः ।**
**अङ्गुलमानाज्ज्ञेयो व्रणोऽशुभो विषमपर्वस्थः ॥१॥**

पचास अङ्गुल प्रमाण वाला खड्ग उत्तम, पच्चीस अङ्गुल का अधम और पच्चीस अङ्गुल से पचास अङ्गुल के भीतर का खड्ग मध्यम होता है। अङ्गुलमान को लेकर विषम पर्व पर स्थित व्रण अशुभ है, जैसे—प्रथम, तृतीय, पञ्चम आदि विषम अङ्गुल पर आगे कथित लक्षणयुत व्रण हो तो अशुभ होता है।।१।।

उत्तमः प्रधानखड्गः। अङ्गुलशतार्धं पञ्चाशदङ्गुलानि दीर्घ इत्यर्थः। पञ्चविंशतिरङ्गुलानि च ऊनः कनीयान् खड्गः स्याद्भवेत्। अनयोः प्रमाणयोर्मध्ये स्थितः पञ्चाशत् ऊनः पञ्चविंशतेरधिकः स मध्यम एव। अङ्गुलमानाद्यो व्रणो विषमपर्वस्थः। अङ्गुलगणनया विषमाङ्गुले स्थितः। प्रथमतृतीयपञ्चमसप्तमादिष्वङ्गुलेषु स्थितः सोऽशुभोऽनिष्टफलदः। अर्थादेव समाङ्गुलेषु द्वितीयचतुर्थषष्ठमादिषु यः स्थितः स शुभः। मिश्रेष्वङ्गुलेषु मध्यम इति।।१।।

अथ व्रणानामाकृतिलक्षणमाह—

**श्रीवृक्षवर्धमानातपत्रशिवलिङ्गकुण्डलाब्जानाम् ।**
**सदृशा व्रणाः प्रशस्ता ध्वजायुधस्वस्तिकानां च ॥२॥**

बेल, वर्धमान, छत्र, शिवलिङ्ग, कुण्डल, कमल, पताका, खड्ग और शुभ वस्तुओं का व्रण ( चिह्न ) प्रशस्त होता है।।२।।

श्रीवृक्षो बिल्वः। वर्धमानं चिह्नविशेषो वर्धमानवास्तुनः सदृशम्। केचिच्छरावक-मितीच्छन्ति। आतपत्रं छत्रम्। शिवलिङ्गं प्रसिद्धम्। कुण्डलं कर्णाभरणम्। अब्जं पद्मम्। एषां सदृशास्तुल्या आकृत्या ये व्रणास्ते खड्गे प्रशस्ताः शुभदाः। तथा ध्वजस्य चिह्नस्य पताकारूपस्य। आयुधस्य खड्गादेः। स्वस्तिकस्य चिह्नस्य स्वस्तिकवास्तुनः सदृशाश्च व्रणाः प्रशस्ता एव।।२।।

अथाशुभलक्षणान्याह—

**कृकलासकाककङ्कक्रव्यादकबन्ध्यवृश्चिकाकृतयः ।**
**खड्गे व्रणा न शुभदा वंशानुगताः प्रभूताश्च ॥३॥**

गिरगिट, काक, गिद्ध, मांसभोजी पक्षी, विना शिर के पुरुष और बिच्छू की आकृति

का व्रण शुभ नहीं होता है तथा वंश ( खड्ग के उच्च भाग में ) अनुगत ( स्थित ) नाना आकृति वाले व्रण भी शुभ नहीं होते हैं।।३।।

कृकलासः प्राणिविशेषः। काककङ्कौ प्रसिद्धौ। क्रव्यादा मांसाशिनो विहङ्गाः श्येन-गृध्रप्रभृतयः। कबन्धच्छिन्नशिराः पुमान्। वृश्चिकः कीटजातिः। एतेषां सदृशी आकृतिर्येषां ते व्रणाः खड्गे अशोभना अशुभदाः, तथा वंशानुगताः, वंशशब्देन खड्गमध्य उच्चभाग उच्यते। तत्र ये अनुगताः स्थिताः प्रभूताश्च बहवोऽपि श्वाकृतयस्तेऽप्यशुभा एव।।३।।

अन्यल्लक्षणमाह—

**स्फुटितो ह्रस्वः कुण्ठो वंशच्छिन्नो न दृङ्मनोऽनुगतः।**
**अस्वन इति चानिष्टः प्रोक्तविपर्यस्त इष्टफलः ॥४॥**

फटा हुआ, छोटा, टूटा हुआ, वंशप्रदेश से कटा हुआ, दृष्टि और मन से अप्रिय तथा शब्दरहित खड्ग अशुभकारी और इसके विपरीत लक्षणयुत खड्ग शुभकारी होता है।

स्फुटितः क्वचित् क्वचिदुच्चाटित इव दृश्यते। ह्रस्वः प्रमाणहीनः। कुण्ठो भग्नः। वंशच्छिन्नो वंशप्रदेशाद्विच्छिन्न इव दृश्यते, न च दृङ्मनोऽनुगतः। दृशोश्चक्षुषोर्मनसश्चित्तस्य यो नानुगतो न प्रियः। अस्वनो निःशब्दो यस्याऽऽहतस्य शब्दो नोत्पद्यत इति। एवंविधोऽनिष्टो न शुभः। प्रोक्तविपर्यस्त इष्टफलः। उक्तदोषलक्षणेभ्यो विपर्यस्तो विपरीतलक्षणस्य इष्ट-फलः शुभफलः। अस्फुटितो दीर्घस्तीक्ष्णो वंशप्रदेशादविच्छिन्नो दृङ्मनोऽनुगतः सस्वन इति शुभलक्षणानि। एतैर्युक्त इष्टफलः।।४।।

अथ खड्गचेष्टितमाह—

**क्वणितं मरणायोक्तं पराजयाय प्रवर्तनं कोशात्।**
**स्वयमुद्गीर्णे युद्धं ज्वलिते विजयो भवति खड्गे ॥५॥**

खड्ग से अचानक शब्द हो तो मरण, म्यान से नहीं निकलता हो तो पराजय, म्यान से अपने-आप निकल जाय तो युद्ध और अनायास खड्ग प्रज्ज्वलित हो जाय तो विजय होती है।।५।।

स्वयमेव खड्गस्य क्वणितं शब्दो मरणायोक्तम्। खड्गस्वामिनो मृत्यवे कथितम्। कोशात् परीवारादप्रवर्तनमनिर्गमनं युद्धकाले पराजयाय भवति। स्वयमुद्गीर्णे परीवारात् स्वयमेव निर्गते खड्गे युद्धं संग्रामो भवति। संग्रामकाले ज्वलिते सज्वाले खड्गे विजयो भवति।।५।।

अथ परिभाषार्थमाह—

**नाकारणं विवृणुयान्न विघट्टयेच्च**
**पश्येन्न तत्र वदनं न वदेच्च मूल्यम्।**
**देशं न चास्य कथयेत् प्रतिमानयेन्न**
**नैव स्पृशेन्नृपतिरप्रयतोऽसियष्टिम् ॥६॥**

राजा अकारण खड्ग को म्यान से न निकाले, न चलाये, उसमें अपना मुख न देखे, उसकी कीमत न बतावे, उसका उत्पत्तिस्थान न बतावे, अङ्गुलियों से न नापे और असंयत होकर उसको स्पर्श न करे।।६।।

नृपती राजा असियष्टिं खड्गयष्टिमकारणं निष्प्रयोजनं न विवृणुयाद् विगतावरणं न कुर्यात्, नोद्धाटयेदित्यर्थः, तथा अकारणं न विघट्टयेद् न चालयेत्। तत्र तस्यां खड्गयष्टौ वदनं मुखं न पश्येद् न निरीक्षयेत्, तथा अकारणं मूल्यं न वदेद् न ब्रूयात्। तथा खड्गस्य देशं जातिं न कथयेत्। अमुकदेशजोऽयं खड्ग इति। न प्रतिमानयेद् नाङ्गुलैर्मिनुयात्, तथा अप्रयतोऽसमाहितोऽपि यष्टिं न स्पृशेत्।।६।।

अन्यल्लक्षणमाह—

**गोजिह्वासंस्थानो नीलोत्पलवंशपत्रसदृशश्च।**
**करवीरपत्रशूलाग्रमण्डलाग्राः प्रशस्ताः स्युः ।।७।।**

गाय के जीभ के समान आकृति वाला, नीलकमलदल के सदृश, बाँस के पत्रसदृश, करवीर फूल के पत्रसदृश, शूल की तरह अग्र भाग वाला और वर्त्तुलाकार अग्र भाग वाला खड्ग प्रशस्त होता है।।७।।

एते खड्गाः प्रशस्ताः स्युर्भवेयुः। के? ते, गोजिह्वासंस्थानः। यत्र गोजिह्वासदृशी आकृतिः तथा नीलोत्पलवंशपत्रसदृशः, कुवलयदलाकृतिः। वंशपत्रसदृशश्च यः, करवीरपत्रसदृशो वा, तथा शूलाग्रः शूलाकारमयं यस्य। मण्डलाग्रो मण्डलाकारमयं परिवर्तुलं यस्य यथाभूत इति।।७।।

अन्यच्चाह—

**निष्पन्नो न छेद्यो निकषैः कार्यः प्रमाणयुक्तः सः।**
**मूले म्रियते स्वामी जननी तस्याग्रतश्छिन्ने ।।८।।**

यदि खड्ग प्रमाण से अधिक हो जाय तो उसको काटना नहीं चाहिये, किन्तु घिसकर प्रमाणतुल्य करना चाहिये। यदि खड्ग को मूल भाग से काटे तो राजा और अग्रभाग से काटे तो उसकी माता की मृत्यु होती है।।८।।

खड्गो निष्पन्नः कदाचित् प्रमाणादधिको भवति, तदा न छेद्यो न कल्पनीयः। स खड्गो निकषैर्निघर्षणैः प्रमाणयुक्तः कार्यः। कल्पिते तत्र दोषमाह—**मूले म्रियते स्वामीति।** तस्य खड्गस्य मूले छिन्ने स्वामी प्रभुर्म्रियते विपद्यते। अग्रतश्छिन्ने जननी, तस्य स्वामिनो माता म्रियते। तथा च काश्यपः—

उत्पन्नो न पुनश्छेद्यो निष्पन्नो यः प्रमाणतः।
मुष्ट्या भङ्गे म्रियेत् स्वामी तदग्रे तस्य मातरम्।।
तस्मान्न छेदयेत् खड्गमात्मनोऽशुभदं यतः।
निघर्षणैः प्रमाणस्थः कार्यो येन शुभो भवेत्।। इति।।८।।

अथ खड्गमुष्टौ दृष्टायां व्रणज्ञानमाह—

**यस्मिन् त्सरुप्रदेशे व्रणो भवेत् तद्वदेव खड्गस्य।**
**वनितानामिव तिलको गुह्यो वाच्यो मुखे दृष्ट्वा ॥९॥**

जिस तरह स्त्रियों के मुख पर तिल देखकर गुह्य स्थानीय तिल बताया जाता है, उसी तरह खड्ग की मूठ में दाग देखकर उसके मध्य में व्रण ( छेद ) कहना चाहिये।।९।।

खड्गस्य या शिखा मुष्टावन्तः प्रविशति स प्रदेशः त्सरुशब्दवाच्यः। यस्मिन् त्सरुप्रदेशे ग्रहणविभागे मूले मध्ये यो वा व्रणश्छिद्रं भवेत् स्यात्, तद्वत्तेनैव प्रकारेण खड्गस्य मूले मध्ये अग्रे वा भवेत्। एतदुक्तं भवति—यदि मुष्टिमूले व्रणो दृश्यते तदा खड्गस्यापि मूले व्रणो वाच्यः। अनेनानुसारेणान्तरालेऽपि योज्यम्। अत्र दृष्टान्तमाह—**वनितानामिव तिलक इति**। वनितानां स्त्रीणां यथा तिलकं मुखे दृष्ट्वा अवलोक्य स एव गुह्येऽपि वाच्यो वक्तव्यः। एवं यस्मिन् खड्गे मुष्टौ व्रणो भवति तस्मिन्निश्चयान्मध्ये व्रणोऽग्रे च वाच्यः।।९।।

अत्र व्रणज्ञानोपायमाह—

**अथवा स्पृशति यदङ्गं प्रष्टा निस्त्रिंशभृत्तदवधार्य।**
**कोशस्थस्यादेश्यो व्रणोऽस्ति शास्त्रं विदित्वेदम् ॥१०॥**

यदि कोई खड्गधारी पुरुष आकर प्रश्न करे कि 'इस खड्ग में व्रण है या नहीं' तो उस समय वह प्रश्नकर्ता जिस अङ्ग का स्पर्श करता हो, उसको निश्चय करके वक्ष्यमाण शास्त्र को जान कर कोशस्थित खड्ग में व्रण कहना चाहिये।।१०।।

वाशब्दः प्रकारे। अथवा निस्त्रिंशभृत्प्रष्टा खड्गे गृहीते ससंशयः पृच्छति, यथा अस्मिन् खड्गे व्रणोऽस्ति न वेति। तत्रायमुपायः—तस्मिन् काले यल्लग्नं वर्तते तस्य यदि केन्द्रस्थः पापग्रहो भवति, तदा निश्चयात्तस्मिन् खड्गे व्रणो भवति। एवं व्रणे ज्ञाते सति स निस्त्रिंशभृत्प्रष्टा यदङ्गं स्वावयवं स्पृशति तदङ्गं समवधार्यावलोक्य कोशस्थस्यैव खड्गस्य व्रण आदेश्यो वक्तव्यः। इदं वक्ष्यमाणमपि शास्त्रं विदित्वा ज्ञात्वा।।१०।।

तच्चाह—

**शिरसि स्पृष्टे प्रथमेऽङ्गुले द्वितीये ललाटसंस्पर्शे।**
**भ्रूमध्ये च तृतीये नेत्रे स्पृष्टे चतुर्थे च ॥११॥**

यदि प्रश्नकर्ता शिर को स्पर्श करे तो खड्ग मूल से प्रथम अङ्गुल में, ललाट का स्पर्श करे तो द्वितीय अङ्गुल में, भ्रूमध्य का स्पर्श करे तो तृतीय अङ्गुल में और नेत्र का स्पर्श करे तो चतुर्थ अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये।।११।।

निस्त्रिंशभृत्प्रष्टा पृच्छाकाले यद्यात्मीयं शिरः स्पृशति, तदा खड्गस्य मूलादेव प्रथमेऽङ्गुले व्रणो वाच्यः। एवं ललाटसंस्पर्शे द्वितीयेऽङ्गुले, भ्रूमध्ये स्पृष्टे तृतीयेऽङ्गुले, नेत्रे नयने दक्षिणे वामे वा स्पृष्टे चतुर्थेऽङ्गुले वाच्यः।।११।।

अन्यदप्याह—

**नासौष्ठकपोलहनुश्रवणग्रीवांसके च पञ्चाद्याः ।**
**उरसि द्वादशसंस्थस्त्रयोदशे कक्षयोर्ज्ञेयः ॥१२॥**

नासिका का स्पर्श करे तो पञ्चम अङ्गुल में, ओठ का स्पर्श करे तो छठे अङ्गुल में, गाल का स्पर्श करे तो सप्तम अङ्गुल में, ठोढ़ी का स्पर्श करे तो अष्टम अङ्गुल में, कान का स्पर्श करे तो नवम अङ्गुल में, गरदन का स्पर्श करे तो दशम अङ्गुल में, कन्धे का स्पर्श करे तो एकादश अङ्गुल में, छाती का स्पर्श करे तो बारहवें अङ्गुल में और कोखों का स्पर्श करे तो तेरहवें अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये।।१२।।

नासायां स्पृष्टायां पञ्चमेऽङ्गुले व्रणो वाच्यः। ओष्ठयोः स्पर्शने षष्ठेऽङ्गुले। कपोलौ मुखगण्डौ, तयोः स्पर्शने सप्तमेऽङ्गुले। हनुस्पर्शेऽष्टमेऽङ्गुले। श्रवणौ कर्णौ, तयोः स्पर्शने नवमे। ग्रीवा शिरोधरा, तस्याः स्पर्शने दशमे। अंसौ स्कन्धौ, तयोः स्पर्शने एकादशे। एवं पञ्चाद्याः, पञ्चादित आरभ्य। उरसि वक्षसि स्पृष्टे द्वादशसंस्थो द्वादशेऽङ्गुले व्रणो वक्तव्यः। कक्षयोः स्पृष्टयोस्त्रयोदशेऽङ्गुले व्रणो वाच्य इति।।१२।।

अन्यदप्याह—

**स्तनहृदयोदरकुक्षिनाभौ तु चतुर्दशादयो ज्ञेयाः ।**
**नाभीमूले कट्यां गुह्ये चैकोनविंशतितः ॥१३॥**

स्तन का स्पर्श करे तो चौदहवें अङ्गुल में, हृदय का स्पर्श करे तो पन्द्रहवें अङ्गुल में, पेट का स्पर्श करे तो सोलहवें अङ्गुल में, कुक्षि का स्पर्श करे तो सत्रहवें अङ्गुल में, नाभि का स्पर्श करे तो अट्ठारहवें अङ्गुल में, नाभि के मूल का स्पर्श करे तो उन्नीसवें अङ्गुल में, कटिप्रदेश का स्पर्श करे तो बीसवें अङ्गुल में और गुह्य स्थान का स्पर्श करे तो इक्कीसवें अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये।।१३।।

स्तनस्पर्शे चतुर्दशेऽङ्गुले व्रणो वक्तव्यः। हृदयस्पर्शने पञ्चदशे। उदरसंस्पर्शे षोडशे। कुक्षिस्पर्शने सप्तदशे। नाभिसंस्पर्शने अष्टादशे। एवं चतुर्दशादयो ज्ञेया ज्ञातव्याः। नाभिमूलं नाभेरधोभागः, तत्स्पर्शने एकोनविंशे। कटिस्पर्शने विंशे। गुह्यस्पर्शने एकविंशे। एवमेकोनविंशतितस्तदारभ्य।।१३।।

अन्यदप्याह—

**ऊर्वोर्द्व्यविंशे स्यादूर्वोर्मध्ये व्रणस्त्रयोविंशे ।**
**जानुनि च चतुर्विंशे जङ्घायां पञ्चविंशे च ॥१४॥**

ऊरू का स्पर्श करे तो बाईसवें अङ्गुल में, ऊरूद्वय के मध्य भाग का स्पर्श करे तो तेईसवें अङ्गुल में, जानु का स्पर्श करे तो चौबीसवें अङ्गुल में और जङ्घा का स्पर्श करे तो पच्चीसवें अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये।।१४।।

ऊर्वोः स्पर्शने द्वाविंशेऽङ्गुले व्रणो वाच्यः। ऊर्वोर्मध्यभागस्पर्शने त्रयोविंशे। जानुनि च जानुनोः स्पर्शने चतुर्विंशे। जङ्घायां स्पर्शने च पञ्चविंशे व्रणो वाच्यः।।१४।।

अन्यदप्याह—

**जङ्घामध्ये गुल्फे पाष्ण्यां पादे तदङ्गुलीष्वपि च।**
**षड्विंशतिकाद् यावत्त्रिंशदिति मतेन गर्गस्य ॥१५॥**

जङ्घाओं के मध्य भाग का स्पर्श करे तो छब्बीसवें अङ्गुल में, गुल्फ ( टखना = पाँव की गांठी ) का स्पर्श करे तो सत्ताईसवें अङ्गुल में, एड़ी का स्पर्श करे तो अट्ठाइसवें अङ्गुल में, पाँव का स्पर्श करे तो उन्तीसवें अङ्गुल में और पाँव की अङ्गुली का स्पर्श करे तो तीसवें अङ्गुल में व्रण कहना चाहिये। यह गर्गाचार्य के मत से कहे गये हैं।।१५।।

जङ्घयोर्मध्यभागस्पर्शने षड्विंशेऽङ्गुले व्रणो वाच्यः। गुल्फस्पर्शने सप्तविंशे। पार्ष्णिस्पर्शनेऽष्टाविंशे। पादस्पर्शने एकोनत्रिंशे। पादाङ्गुलीस्पर्शने त्रिंशे। एवं षड्विंशादङ्गुलात् प्रभृति यावत्त्रिंशदङ्गुलानि तावद्वाच्यम्। इत्यनेन प्रकारेण गर्गस्य मुनेर्मतेनेति। तथा च गर्गः—

शिरो ललाटं भ्रूमध्यं नेत्रघ्राणकपोलकम्।
हनुश्रोत्रं तथा ग्रीवा स्कन्धो वक्षश्च कक्षकम्।।
स्तनौ हृत् क्रोडकुक्षी च नाभिस्तन्मूलमेव च ।
कटिगुह्योरुमध्यं च जानुजङ्घे तयोरधः।।
गुल्फं पार्ष्णिस्तथा पादमङ्गुलिस्पर्शने ध्रुवम्।
मूलात् प्रभृति खड्गेऽपि व्रणं त्रिंशाङ्गुलं वदेत्।। इति।।१५।।

अथैतेषां व्रणानां फलान्याह—

**पुत्रमरणं धनाप्तिर्धनहानिः सम्पदश्च बन्धश्च।**
**एकाद्यङ्गुलसंस्थैर्व्रणैः फलं निर्दिशेत् क्रमशः ॥१६॥**

एक आदि अङ्गुल में व्रण हो तो क्रम से पुत्रमरण आदि फल कहना चाहिये। जैसे प्रथम अङ्गुल में व्रण हो तो पुत्र का मरण, द्वितीय में धन की प्राप्ति, तृतीय में धनहानि, चतुर्थ में सम्पत्ति और पञ्चम में बन्धन कहना चाहिये।।१६।।

मूलात् प्रभृति प्रथमेऽङ्गुले यदि व्रणो दृश्यते, तदा पुत्रमरणं सुतमृत्युः स्वामिनो भवति। द्वितीये धनाप्तिर्वित्तलाभः। तृतीये धनहानिरर्थनाशः। चतुर्थे सर्वार्थानां सम्पदः। पञ्चमे बन्धो बन्धनम्। एवमेकाद्यङ्गुलसंस्थैर्व्रणैः क्रमशः क्रमेण पारिपाट्या फलं निर्दिशेद् वदेत्।।१६।।

अन्येष्वाह—

**सुतलाभः कलहो हस्तिलब्धयः पुत्रमरणधनलाभौ।**
**क्रमशो विनाशवनिताप्तिचित्तदुःखानि षट्प्रभृति ॥१७॥**

षष्ठ आदि अङ्गुल में व्रण हो तो क्रम से सुतलाभ आदि फल कहना चाहिये। जैसे छठे अङ्गुल में व्रण हो तो पुत्रलाभ, सातवें में कलह, आठवें में हाथी का लाभ, नवें में पुत्रमरण, दशवें में धनलाभ, ग्यारहवें में विनाश, बारहवें में स्त्री की प्राप्ति और तेरहवें अङ्गुल में व्रण हो तो मन में दुःख होता है।।१७।।

सुतलाभः पुत्राप्तिः षष्ठेऽङ्गुले। कलहः सप्तमे। हस्तिलब्धिर्गजलाभोऽष्टमे। पुत्रमरणं सुतविनाशो नवमे। धनलाभो वित्तागमो दशमे। विनाशो मरणमेकादशे। वनिताप्तिः स्त्रीलाभो द्वादशे। चित्तदुःखं त्रयोदशे। एवं षट्प्रभृति षडादिष्वङ्गुलेषु क्रमशः क्रमेण विनिर्दिशेत् फलम्।।१७।।

अन्येष्वप्याह—

**लब्धिर्हानिः स्त्रीलब्धयो वधो वृद्धिमरणपरितोषाः।**
**ज्ञेयाश्चतुर्दशादिषु धनहानिश्चैकविंशे स्यात्।।१८।।**

यदि चौदहवें अङ्गुल में व्रण हो तो लाभ, पन्द्रहवें में हानि, सोलहवें में स्त्रीलाभ, सत्रहवें में वध, अट्ठारहवें में वृद्धि, उन्नीसवें में मरण और बीसवें अंगुल में व्रण हो तो प्रसन्नता होती है तथा इक्कीसवें अंगुल में व्रण हो तो धनहानि होती है।।१८।।

लब्धिरर्थलाभश्चतुर्दशेऽङ्गुले। हानिरर्थनाशः पञ्चदशे। स्त्रीलब्धिर्योषित्प्राप्तिः षोडशे। वधो मरणं सप्तदशे। वृद्धिरर्थादीनामष्टादशे। मरणमेकोनविंशे। परितोषश्चित्ततुष्टिर्विंशे। एवं चतुर्दशादिष्वङ्गुलेषु फलक्षयो ज्ञेयो ज्ञातव्यः। एकविंशे धनहानिर्वित्तनाशः स्याद् भवेत्।।१८।।

अन्येष्वाह—

**वित्ताप्तिरनिर्वाणं धनागमो मृत्युसम्पदोऽस्वत्वम्।**
**ऐश्वर्यमृत्युराज्यानि च क्रमात् त्रिंशदिति यावत्।।१९।।**

बाईसवें अंगुल में व्रण हो तो धन का लाभ, तेईसवें में मृत्यु, चौबीसवें में धनलाभ, पच्चीसवें में मरण, छब्बीसवें में सम्पत्ति, सत्ताईसवें में निर्धनता, अट्ठाईसवें में ऐश्वर्य, उनतीसवें में मरण और तीसवें अंगुल में व्रण हो तो राज्यलाभ होता है।।१९।।

वित्ताप्तिर्धनागमो द्वाविंशे। अनिर्वाणं मृत्युस्त्रयोविंशे। धनागमो वित्तलाभश्चतुर्विंशे। मृत्युर्मरणं पञ्चविंशे। सम्पदोऽर्थादीनां षड्विंशे। अस्वत्वं निर्धनत्वं सप्तविंशे। ऐश्वर्यमष्टाविंशे। मृत्युर्मरणमेकोनत्रिंशे। राज्यं त्रिंशे। एवं क्रमात् परिपाट्या त्रिंशद्यावत्फलानि वक्तव्यानीति।।१९।।

अतः परमाह—

**परतो न विशेषफलं विषमसमस्थास्तु पापशुभफलदाः।**
**कैश्चिदफलाः प्रदिष्टास्त्रिंशत्परतोऽग्रमिति यावत्।।२०।।**

तीस अंगुल के बाद विशेष फल नहीं होता, किन्तु सामान्य रूप से विषम अंगुल में व्रण हो तो अशुभ और सम में शुभ फल कहना चाहिये। कोई-कोई ( पराशर आदि आचार्य ) तीस अंगुल के बाद अग्रभाग तक फलरहित बताते हैं।।२०।।

अतोऽस्मात् त्रिंशतः परतो न विशेषफलं भवति, सामान्याद्विषमसमस्थाश्च पापशुभफलदाः। ये विषमाङ्गुलस्था व्रणास्ते पापफलदा अनिष्टफलदाः, ये च समाङ्गुलस्थास्ते शुभफलदाः। तथा च गर्गः—

अङ्गुलानि च पञ्चाशत्प्रधानः खड्ग उच्यते।
तदर्धको निकृष्टः स्यात्तन्मध्ये मध्यमः स्मृतः।।
विषमाङ्गुलसंस्थो यो व्रणः सोऽनिष्टदः स्मृतः।
शुभः समाङ्गुलस्थस्तु मध्यगो मध्यमः स्मृतः।।
त्रिंशद्यावद्विनिर्दिष्टमङ्गुलानां फलं ततः।
षोडशाङ्गुलगो ज्ञेयो व्रणो मध्यफलप्रदः।। इति।

कैश्चिदफला इति कैश्चिन्मुनिभिः पराशरादिभिस्त्रिंशत्परतोऽग्रं यावदफला निष्फला प्रदिष्टा उक्ताः। तथा च पराशरः—

'तेषां प्रमाणानि। जघन्यमङ्गुलानि पञ्चविंशतिः। मध्यमं त्रिंशत्। उत्तमं चत्वारिंशत्। अतो हीनमतिरिक्तं वा न धारयेत्। पूर्णात् प्रत्यङ्गुलान्तरितेषु व्रणेष्वनाकृतिषु यावत्त्रिंशदङ्गुलं तावत्क्रमात् फलनियमः। पुत्रनाशोऽर्थागमोऽर्थनाशोऽर्थसञ्चयो गृहदाहो मित्रलाभो व्याधिभयं सुखाप्तिर्ज्ञातिबन्ध आज्ञाप्राधान्यं विपक्षोत्पत्तिर्वाहनलाभः शोकः प्रव्रज्यासुतज्ञातिकुलच्छेदो माहात्म्यबललाभः सन्तापः क्लेशः पुत्रलाभो धनागमः शोकः प्रामाण्यमाधिपत्यमुपभोगो भयं दौर्भाग्यमैश्वर्यं राजपूजेति। परतः सर्वप्रशस्तं विन्द्यात्'।। इति।।२०।।

अथ गन्धलक्षणमाह—

**करवीरोत्पलगजमदघृतकुङ्कुमकुन्दचम्पकसगन्धः ।**
**शुभदोऽनिष्टो गोमूत्रपङ्कमेदःसदृशगन्धः ॥२१॥**
**कूर्मवसासृक्क्षारोपमश्च भयदुःखदो भवति गन्धः ।**
**वैदूर्यकनकविद्युत्प्रभो जयारोग्यवृद्धिकरः ॥२२॥**

करवीर, कमल, हाथी के मद, घृत, कुङ्कुम, कुन्द या चम्पापुष्प के समान सुगन्धि हो तो शुभदायी होता है। गोमूत्र, पङ्क या मेद ( हड्डी के अन्तर्गत तैल भाग ) की तरह गन्ध हो तो अशुभ फलदायी होता है। कछुआ, मज्जा, रक्त या क्षार की तरह गन्ध हो तो भय और दुःख देने वाला होता है। वैदूर्यमणि, सुवर्ण या बिजली के समान खड्ग में कान्ति हो तो जय, आरोग्य और उन्नतिकारक होता है।।२१-२२।।

करवीरं प्रसिद्धम्। उत्पलं नीलोत्पलम्। गजमदं हस्तिमदम्। घृतमाज्यम्। कुङ्कुमं प्रसिद्धम्। कुन्दः पुष्पविशेषः। चम्पकं पुष्पजातिः। एषां सगन्धः सदृशगन्धः खड्गः

शुभदः। गोमूत्रं प्रसिद्धम्। पङ्कः कर्दमः। मेदः प्रसिद्धम्, अस्थ्यन्तरगतः स्नेहभागः। एषां सदृशगन्धोऽनिष्टोऽशुभदः खड्गः।

कूर्मः प्राणी। वसा मज्जा। असृग्रक्तम्। क्षारं प्रसिद्धम्। एषामुपमः सदृशो गन्धो भयदुःखदो भवति, भयं दुःखं च ददाति। तथा वैदूर्यो मणिविशेषः। कनकं सुवर्णम्। विद्युत्तडित्। एषां सदृशप्रभः तुल्यकान्तिः खड्गो जयारोग्यवृद्धिकरः, जयमारोग्यं वृद्धिं च करोति।।२१-२२।।

अथ शस्त्रपानमाह—

**इदमौशनसं च शस्त्रपानं रुधिरेण श्रियमिच्छतः प्रदीप्ताम्।**
**हविषा गुणवत्सुताभिलिप्सोः सलिलेनाक्षयमिच्छतश्च वित्तम् ॥२३॥**
**वडवोष्ट्रकरेणुदुग्धपानं यदि पापेन समीहतेऽर्थसिद्धिम्।**
**झषपित्तमृगाश्वबस्तदुग्धैः करिहस्तच्छिदये सतालगर्भैः ॥२४॥**

उत्कृष्ट लक्ष्मी की इच्छा करने वाला अपने शस्त्र को रुधिर से पान देवे, गुणवान् पुत्रों की इच्छा करने वाले घृत से, अपरिमित धन की इच्छा करने वाले जल से, पाप ( बधादि ) से अर्थसिद्धि चाहने वाले घोड़ी, ऊँटनी, हथिनी के दूध से और हाथी के शुण्ड काटने की इच्छा वाले ताड़ के रस ( ताड़ी ) से मिश्रित मछली के पित्त तथा हरिणी, घोड़ी या छाग के दूध से शस्त्र को पान देवे।।२३-२४।।

इदं वक्ष्यमाणं शस्त्रपानमौशनसम्, उशनसा शुक्रेणोक्तम्। प्रदीप्तामुत्कृष्टां श्रियं लक्ष्मीमिच्छतः प्रार्थयतो रुधिरेण रक्तेन। गुणवत्सुताभिलिप्सोर्गुणवतः सुतान् पुत्रान् लब्धुमिच्छति यस्तस्य हविषा घृतेन पानम्। अक्षयमपरिमितं वित्तं धनमिच्छतः सलिलेन पानम्।

यदि पापेन बधादिना अर्थसिद्धिं समीहते प्रार्थयति, तदा वडवोष्ट्रेरेणुदुग्धपानम्, वडवा अश्वतरी, उष्ट्रा करभी, करेणुर्हस्तिनी, आसां दुग्धेन क्षीरेण पानम्। करिणां हस्तिनां हस्तच्छिदये करच्छेदनाय खड्गं य इच्छति तस्य झषपित्तेन मत्स्यपित्तेन। मृगो हरिणः। अश्वस्तुरगः। बस्तश्छागः। एषां दुग्धैः क्षीरैः। तैः किम्भूतैः? सतालगर्भैः, सह तालगर्भेण ये वर्तन्ते। तालो वृक्षस्तस्य गर्भो निर्यासः। तथा च पराशरः—

'अथ पायनानि क्षीरपायितमरिबधार्थी धारयेत्। तिलतैलारालाभ्यामर्थार्थी। पुत्रार्थी उदकेन। सर्पिषा श्रीकामः। साहसिकः शोणितेन। हस्त्यश्वोष्ट्रक्षीरैः शिलासारच्छेदकामः। अजाक्षीरेण तालवसया मत्स्यवडवाहरिणपित्तेन द्विरदस्कन्धच्छेदकामः। नित्यं चैनं धूपपुष्पगन्धोपहारैरर्चयित्वा शिरस्यपशायिनं कुर्यात्। नावमन्येत न चोच्छिष्टः संस्पृशेत्। नादर्शकी कुर्यात्। नानिमित्तं विवृणुयात्। न क्रीडनायास्य मुलं विवृणुयात्' इति।।२४।।

अन्यत्पानमाह—

**आर्कं पयो हुडुविषाणमषीसमेतं**
**पारावताखुशकृता च युतः प्रलेपः।**

**शस्त्रस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं**
**पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः ॥२५॥**

शस्त्र पर तिल का तेल मलने के बाद आक के वृक्ष के गोंद और मेष के सींग के भस्म से मिली हुई कबूतर और चूहे की बीट को उसके ऊपर लेप करे, बाद में तेज करके उससे पत्थर पर भी मारे तो वह नहीं टूटता है।।२५।।

आर्कं पयोऽर्कक्षीरम्। हुडुविषाणं मेषशृङ्गः। तस्मान्मषी तया समेतं सहितम्। पारावतः पक्षी। आखुर्मूषिकः। अनयोः शकृता विष्ठया च युतः संयुक्त एष प्रलेपः। शस्त्रस्य तैलमथितस्य खड्गादेस्तिलतैलेन मर्दितस्य एष प्रलेप उपरि देयः। ततस्तत्सहितमग्नौ क्षिप्त्वा तत्र सुतप्तस्य तदपास्य पूर्वोक्तं पानं देयम्। उक्तद्रव्याणां मध्यादेकतमम्, पश्चादनन्तरं शितस्य श्लक्ष्णीकृतस्य शिलासु पाषाणेषु विघातो न भवेत्, तासु न भज्यत इति।।२५।।

अथान्यत्पानमाह—

**क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते**
**दिनोषिते पायितमायसं यत्।**
**सम्यक् शितं चाश्मनि नैति भङ्गं**
**न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम् ॥२६॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां खड्ग-**
**लक्षणाध्यायः पञ्चाशत्तमः ॥५०॥**

केले की राख में मठ्ठा मिलाकर उसमें एक अहोरात्र तक लोहे को छोड़ दे, बाद में उसको निकाल कर तेज बनावे; फिर उससे पत्थर या अन्य लोहे पर भी मारे तो वह नहीं टूटता है।।२६।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायाङ्खड्गलक्षणाध्यायः पञ्चाशः ॥५०॥**

कदली वृक्षविशेषः प्रसिद्धो रम्भाख्यः। तां दग्ध्वा क्षारं यद्भवति, तस्मिन् क्षारे मथितेन तक्रेण युक्ते सहिते दिनोषिते अहोरात्रमेकीकृत्य स्थापिते यदाऽऽयासं लोहं पायितं दत्तपानं सम्यक् शितं तीक्ष्णीकृतमश्मनि पाषाणे भङ्गं नैति न याति, न च तस्यान्यलोहेष्वपरशस्त्रेष्वपि कौण्ठ्यं कुण्ठत्वं भवति।।२६।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ खड्गलक्षणं**
**नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥**

# अथाङ्गविद्याध्यायः

अतः परं केचिदङ्गविद्यां पठन्ति। आचार्येण प्रागेवोक्तं वास्तुविद्याङ्गविद्येति। तस्मादस्माभिर्व्याख्यायते। तत्रादावेव प्रयोजनप्रदर्शनार्थमाह—

**दैवज्ञेन शुभाशुभं दिगुदितस्थानाहृतानीक्षता**
**वाच्यं प्रष्टृनिजापराङ्गघटनां चालोक्य कालं धिया।**
**सर्वज्ञो हि चराचरात्मकतयाऽसौ सर्वदर्शी विभु-**
**श्चेष्टाव्याहृतिभिः शुभाशुभफलं सन्दर्शयत्यर्थिनाम् ॥१॥**

प्रश्नकर्त्ता की दिशा, उसकी वाणी, उसका स्थान और उससे लाई हुई वस्तु को देखते हुये, प्रश्नकर्ता के अपने और वहाँ पर स्थित दूसरे के अंग की घटना देखकर तथा समय को अपनी बुद्धि से विचार कर दैवज्ञ को शुभाशुभ फल कहना चाहिये; क्योंकि वह काल चराचर सब प्राणियों का आत्मस्वरूप होने के कारण विभु और सबको देखने वाला होता है। वही चेष्टा और वचनों के द्वारा प्रश्नकर्ता को शुभाशुभ फल दिखाता है।।१।।

दैवज्ञेन सांवत्सरिकेण इमानि च वस्तूनि ईक्षता विचारयता प्रष्टुः शुभाशुभफलं वाच्यं वक्तव्यम्। कानीत्याह—दिगाशा पूर्वादिका। उदितं व्याहृतमुक्तं प्रच्छकेन। स्थानं प्रदेशो यत्र स्थितः। आहृतं तत्कालं केनचिद्यत्किञ्चिदानीतम्। एतानीक्षता। तथा प्रष्टृनिजापराङ्गघटनां चालोक्य, प्रष्टुः प्रच्छकस्य निजाङ्गानामात्मीयावयवानामपराङ्गानामन्यावयवानां च घटनां स्थितिं स्पर्शनादिकां कालं च तत्काले दिनगतशेषं च धिया बुद्ध्या आलोक्य वीक्ष्य वाच्यम्। **सर्वज्ञो हीति**। यतोऽसौ कालश्चराचरात्मकतया चराणां जन्तूनाम्। अचराणां स्थावराणां स एवात्मा जीवभूतस्तेन चराचरात्मकत्वेन स एव विभुः प्रभुः। सर्वदर्शी सर्वमशेषं पश्यति तच्छीलः। हि यस्मादर्थे। चेष्टाव्याहृतिभिः, चेष्टाः स्पर्शनादिकाः क्रियाः। व्याहृतिर्व्याहरणं सम्भाषणम्। एताभिः शुभाशुभफलं सदसत्फलमर्थिनां पृच्छतां सन्दर्शयति प्रकटयति। तथा च पराशरः—

'इह खलु चराचराणां भूतानां कालोऽन्तरात्मा सर्वदा सर्वदर्शी शुभाशुभैर्यः फलसूचकः स विशेषेण प्राणिनां स्वपराङ्गेषु स्पर्शव्याहारेङ्गितचेष्टादिभिर्निमित्तैः फलमभिदर्शयति। तत्प्रयतो दैवज्ञोऽनुपहतमतिरवधार्य स्वशास्त्रार्थमनुस्मृत्य यशोधर्मानुग्रहार्थमर्थिनां शुभाशुभानामर्थानां भावाभावमभिनिर्दिशेत्' इति।

तत्र देशे दिशः कालं व्याहारं द्रव्यदर्शनम्।
अङ्गप्रत्यङ्गसंस्पर्शं समीक्ष्य फलमादिशेत्।। इति।।१।।

अधुना स्थाननिर्देशार्थमाह—

**स्थानं पुष्पसुहासिभूरिफलभृत्सुस्निग्धकृत्तिच्छदा-**
**सत्पक्षिच्युतशस्तसञ्ज्ञिततरुच्छायोपगूढं समम्।**
**देवर्षिद्विजसाधुसिद्धनिलयं सत्पुष्पसस्योक्षितं**
**सत्स्वादूदकनिर्मलत्वजनिताह्लादं च सच्छाद्वलम् ॥२॥**

जहाँ पुष्परूप सुन्दर मुसुकानयुत, बहुत से फलों से भरा हुआ, निर्मल छाल और पत्ते वाले, अशुभ पक्षियों से रहित और प्रशस्त संज्ञा वाले वृक्ष की छाया से आच्छादित तथा सम ( बराबर ) भूमि हो; देवता, ऋषि, ब्राह्मण, साधु या सिद्धों का स्थान हो; सुन्दर पुष्प और धान्यों से व्याप्त स्थान हो या सुन्दर, स्वादिष्ट, निर्मल जल से उत्पन्न, प्रसन्नता से युत सुन्दर दूर्वाओं से व्याप्त स्थान हो, वहाँ प्रश्न करना शुभ होता है।।२।।

एवंविधं स्थानं पृच्छायां सच्छुभदमित्यर्थः। कीदृशम्? एवविधानां तरूणां वृक्षाणां छाययोपगूढं छन्नम्। कीदृशानाम्? पुष्पाणि कुसुमानि तान्येव शोभनो हासो हसनं येषां ते पुष्पसुहासिनः। तथा भूरीणि प्रभूतानि फलानि धारयन्ति ये ते भूरिफलभृतः। तथा सुस्निग्धा कृत्तिस्त्वक् छदाः पर्णानि च येषां ते सुस्निग्धकृत्तिच्छदाः। तथाऽसत्पक्षिभिर-निष्टविहगैः काकोलूकादिभिश्च्युता रहितास्तथा शस्त्रसंज्ञिताः प्रशस्तनामानो ये च पलाश-पिप्पलन्यग्रोधप्रभृतयस्तेषाम्। समं निम्नोन्नतत्वरहितम्। देवाः सुराः। ऋषयो मुनयः। द्विजा ब्राह्मणाः। साधवः सज्जनाः। सिद्धा देवयोनयः। एषां निलयं स्थानम्। तथा सत्पुष्पैः सुगन्धकुसुमैः सस्यैश्च धान्यादिभिरुक्षितं अन्तःसेचितं तच्छुभम्। तथा स्वादूदकनिर्मल-त्वजनिताह्लादं च। स्वादु मृष्टं यदुदकं जलं निर्मलं प्रसन्नं तद्भावेन जनितमुत्पादितमाह्लादं चित्तसुखं येन तथाभूतेनोदकेन युक्तं सच्छाद्वलं शोभनदूर्वासंयुक्तं च सदिति। तथा च पराशरः—

'अथ पुष्पितफलितहरितस्निग्धत्वक्पत्रप्रशस्तनामाङ्कितसौम्यद्विजनिषेविततरुच्छा-योपगूढे सस्यकुसुमहरितमृदुशाद्वलसक्तमृष्टहृद्यप्रसन्नसलिलावकाशे देवर्षिसिद्धसाधुद्विजा-वासे प्राङ्मुखोत्तरोत्तरपूर्वाभिमुखो वा यः पृच्छेत्तस्य प्रार्थितार्थोपपत्तिमभिनिर्दिशेत्' इति।।२।।

अथाशुभस्थानप्रदर्शनार्थमाह—

**छिन्नभिन्नकृमिखातकण्टकिप्लुष्टरूक्षकुटिलैर्न सत्कुजैः।**
**क्रूरपक्षियुतनिन्द्यनामभिः शुष्कशीर्णबहुपर्णचर्मभिः ॥३॥**

जहाँ कटा-फटा, कीड़ों से खाये, काँटेदार, जले, रूखे और कुटिल वृक्ष हों तथा अशुभ पक्षियों ( काक, गृद्ध, बक आदि ) से युत, बहुत पत्र और खालों से रहित वृक्ष हो, वहाँ प्रश्न करना अशुभ होता है।।३।।

एवंविधैः कुजैवृक्षैर्युक्ते स्थाने न सद् शुभं प्रष्टुर्वदेत्? कीदृशैः? छिन्नैः कल्पितैः। भिन्नैः स्फटितैः। कृमिखातैः कीटभक्षितैः। सकण्टकिभिः सकण्टकैः। प्लुष्टैर्दग्धैः। रूक्षै-

रस्निग्धै:। कुटिलैरस्पष्टै:। न शोभनम्। कौ भूमौ जायन्त इति कुजा:। तथा क्रूरैरनिष्टै: पक्षिभिर्विहगै: काकगृध्रबकाद्यैर्युक्तै:। निन्द्यनामभि: कुत्सितसंज्ञैर्विभीतकवेतसप्रभृतिभि:। शुष्कैर्नीरसै:। तथा शीर्णानि च्युतानि बहूनि प्रभूतानि पर्णानि पत्राणि चर्माणि त्वचो येषां तै:।।३।।

तथान्यदप्याह—

**श्मशानशून्यायतनं चतुष्पथं तथाऽमनोज्ञं विषमं सदोषरं ।**
**अवस्कराङ्गारकपालभस्मभिश्चितं तुषै: शुष्कतृणैर्न शोभनम् ।।४।।**

श्मशान, शून्य देवगृह, चौराहा, चित्त में ग्लानि उत्पन्न करने वाला, विषम ( निम्नोन्नत ), सदा ऊषर रहने वाला, अशुद्ध फूटे भाण्ड, कोयला, आदमी की खोपड़ी, भस्म, तुष और सूखे घास से व्याप्त स्थान में प्रश्न करना अशुभ होता है।।४।।

एवंविधं स्थानं पृच्छायां न शोभनं न शुभदम्। कीदृशम्? श्मशानं शवशयनप्रदेशम्। शून्यायतनं उद्वसितदेवगृहम्। चतुष्पथं चत्वार: पन्थानो यत्र। तथा अमनोज्ञमचित्ताह्लादकम्। विषमं निम्नोन्नतम्। सदा सर्वकालमूषरं सिकतासंयुक्तम्। अवस्करैर्गृहच्युतैरशुचिभिरनुपयोग्यैर्भाण्डैश्चितं व्याप्तम्। तथा अङ्गारैर्दग्धकाष्ठै: कपालैरस्थिशकलैर्भस्मना च चितं संयुक्तम्। तथा तुषै: शालिचर्मभि: शुष्कैर्नीरसैस्तृणैश्च चितं न शोभनमिति।।४।।

अन्यदप्याह—

**प्रव्रजितनग्ननापितरिपुबन्धनसौनिकैस्तथा श्वपचै: ।**
**कितवयतिपीडितैर्युतमायुधमाध्वीकविक्रयैर्न शुभम् ।।५।।**

जहाँ पर संन्यासी, नंगे आदमी, नाई ( हजाम ), शत्रु, बन्धनशाला, कसाई, चाण्डाल, धूर्त, यति—ये सभी रहते हों, वहाँ प्रश्न नहीं करना चाहिये तथा शस्त्र और मद्य के विक्रयस्थान में भी प्रश्न करना अशुभ होता है।।५।।

एवंविधं स्थानं पृच्छायां न शुभम्। कीदृशम्? प्रव्रजितस्तापसो लिङ्गी। नग्नो विवस्त्र:। नापित: प्रसिद्ध: शिल्पी। रिपु: शत्रु:। बन्धनं बन्धनशाला। सौनिक: पशुघातक:। एतैर्युक्तं यत्स्थानम्। तथा श्वपचै: प्रसिद्धै:। कितवो द्यूतकर:। यतिस्त्रिदण्डी। पीडितो व्याध्यर्दित:। एतैर्युतं यत्स्थानम्। तथा आयुधशाला यत्र। माध्वीकं मधु तच्छाला यत्र। विक्रयशाला यत्राऽऽकल्पपालगृहसमीपमेतैर्न शुभमिति।।५।।

अथ दिक्काललक्षणमाह—

**प्रागुत्तरेशाश्च दिश: प्रशस्ता: प्रष्टुर्न वाय्वम्बुयमाग्निरक्ष: ।**
**पूर्वाह्णकालेऽस्ति शुभं न रात्रौ सन्ध्याद्वये प्रश्नकृतोऽपराह्णे ।।६।।**

पूर्व, उत्तर या ईशान कोण की तरफ मुंह करके प्रश्न करना शुभ और वायव्य, पश्चिम, दक्षिण, आग्नेय या नैर्ऋत्य कोण की तरफ मुख करके प्रश्न करना अशुभ होता है; साथ ही पूर्वाह्न समय में शुभ और रात्रि, दोनों सन्ध्याओं या अपराह्न में प्रश्न करना अशुभ होता है।।६।।

दिश आशाः। प्रागुत्तरेशाः, पूर्वा उत्तरा ऐशानी, इन्द्रकुबेरशिवदिशः। पृच्छायां प्रशस्ताः शुभाः। प्रष्टुः प्रच्छकस्य तदभिमुखः शुभ इत्यर्थः। न वाय्वम्बुयमाग्निरक्षः, वायवीवारुणदक्षिणाग्नेयीनैर्ऋताश्च न शुभाः। एता दिशः प्रष्टुः पूर्वाह्णकाले दिनस्य प्राग्भाग-समये प्रश्नकृतः प्रच्छकस्य शुभं शोभनफलमस्ति विद्यते। रात्रौ निशि सन्ध्याद्वये सायं प्रातरपराह्णे च न शोभनमिति। तथा च पराशरः—

'छिन्नभिन्नशुष्करूक्षवक्रजन्तुजग्धदग्धकण्टकिक्रव्यादद्विजनिषेविताप्रशस्तनामाङ्कित-पादपच्छाये श्मशानशून्यायतनचत्वरोषररिपुनापितायुधमद्यविक्रयशालासु नैर्ऋताग्नेययाम्य-वारुणवायव्याशाभिमुखः प्रचोदयेत्तस्येष्टमर्थमनर्थाय विन्द्यात्'।। इति। अपि च—

वेलाः सर्वाः प्रशस्यन्ते पूर्वाह्णे परिपृच्छताम्।
सन्ध्ययोरपराह्णे तु क्षपायां तु विगर्हिताः।। इति।।६।।

अथान्यच्छुभाशुभलक्षणमाह—

**यात्राविधाने हि शुभाशुभं यत्प्रोक्तं निमित्तं तदिहापि वाच्यम्।**
**दृष्ट्वा पुरो वा जनताहृतं वा प्रष्टुः स्थितं पाणितलेऽथ वस्त्रे ॥७॥**

यात्रा के विधान में जो शुभाशुभ निमित्त कहे गये हैं, उन निमित्तों को सम्मुख, किसी मनुष्य से लाये हुए, प्रश्नकर्ता के हस्त में या वस्त्र में देखकर शुभाशुभ फल कहना चाहिये। जैसे सरसों, शीशा, जल और कागज देख कर शुभ तथा कपाल, औषध और काले धान्य देख कर अशुभ कहना चाहिए।।७।।

यात्राविधाने यच्छुभाशुभं कथितं प्रोक्तम्—'सिद्धार्थकादर्शपयोऽञ्जनानि' इति शुभदम्। 'कार्पासौषधकृष्णधान्यम्' इत्यशुभदम्। तथा तत्र शाकुनं यन्निमित्तं प्रोक्तं तदिहापि प्रश्न-समये वाच्यं वक्तव्यम्। पुरोऽग्रतो वा दृष्ट्वाऽवलोक्य जनतया जनसमूहेन वा आहृतमानीतं प्रष्टुः प्रच्छकस्य पाणितले हस्ते वस्त्रे वा स्थितं दृष्ट्वा शुभमादिशेत्। तथा च पराशरः—

यात्राविधाने निर्दिष्टं निमित्तं यच्छुभाशुभम्।
तदेव दृष्ट्वा दैवज्ञो वाञ्छासिद्धिं विनिर्दिशेत्।। इति।।७।।

अधुना अङ्गानि पुंसंज्ञकान्याह—

**अथाङ्गान्यूर्वोष्ठस्तनवृषणपादं च दशना**
**भुजौ हस्तौ गण्डौ कचगलनखाङ्गुष्ठमपि यत्।**
**सशङ्खं कक्षांसं श्रवणगुदसन्धीति पुरुषे**

ऊरु, ओठ, स्तन, अण्डकोश, पाँव, दाँत, बाहु, हाथ, गाल, केश, कण्ठ, नख, अंगूठा, शंख, काँख, कन्धा, कान, गुप्तेन्द्रिय, दो अंगों के सन्धि स्थान—ये सब पुरुष-संज्ञक कहे गये हैं।

अथानन्तरं पुंसञ्ज्ञकान्यङ्गानि भवन्ति। ऊरू। ओष्ठौ दन्तच्छदौ। स्तनौ प्रसिद्धौ।

वृषणौ मुष्कौ। पादौ चरणौ। दशना दन्ताः। भुजौ बाहू। हस्तौ करौ। गण्डौ मुखकपोलौ। कचाः केशाः। गलं कण्ठम्। नखाः कररुहाः। अङ्गुष्ठौ हस्तपादाङ्गुष्ठौ। सशङ्खं कक्षांसम्, सह शङ्खाभ्यां वर्तते यत्कक्षांसम्। शङ्खौ प्रसिद्धौ। कक्षौ बाहुमूलतलौ। अंसौ स्कन्धौ। श्रवणौ कर्णौ। गुदं पायुस्थानम्। सन्धिग्रहणेन सर्वाङ्गसन्धय उच्यन्ते। इत्येवं प्रकाराः सर्व एव पुरुषे पुंसि ज्ञेयाः। तथा च पराशरः—

'अङ्गानि मुष्कस्तनपादोरुगुह्यभुजहस्तसमस्तकर्णांसशङ्खदन्तौष्ठाङ्गुष्ठनखगलगण्ड-केशसन्धयः पुरुषाख्यानि' इति।।

अथ स्त्रीसंज्ञकान्याह—

**स्त्रियां भ्रूनासास्फिग्वलिकटिसुलेखाङ्गुलिचयम् ॥८॥**
**जिह्वा ग्रीवा पिण्डिके पार्ष्णियुग्मं जङ्घे नाभिः कर्णपाली कृकाटी।**

भौंह, नाक, स्फिक् ( नितम्ब ), त्रिवली, कमर, करमध्य की सुन्दर रेखा, अंगुली, जीभ, गर्दन, दोनों जंघाओं के पृष्ठ भाग, एड़ी, जंघा, नाभि, कर्णपाली, कृकाटी ( गर्दन का पृष्ठ-भाग )—ये सब स्त्रीसंज्ञक अंग हैं।।८।।

एतान्यङ्गानि स्त्रियो भवन्ति। भ्रूः प्रसिद्धा। नासा घ्राणम्। स्फिजौ प्रसिद्धौ। वली लेखा यथा त्रिवली। कटिः प्रसिद्धा। सुलेखा शोभनलेखा करमध्यस्था। अङ्गुलिचयोऽङ्गुलिसमूहः। जिह्वा रसना। ग्रीवा शिरोधरा। पिण्डिके जङ्घयोः पश्चिमभागौ। पार्ष्णियुग्मं प्रसिद्धम्। जङ्घे प्रसिद्धे। नाभिस्तुन्दिः। कर्णपाली प्रसिद्धा। कृकाटी ग्रीवापश्चिमभागः। एतानि स्त्रीसंज्ञानि। तथा च पराशरः—'भ्रुवौ नासाग्रीवावलयोऽङ्गुलयो लेखा श्रोणिनाभी रसना जङ्घे पिण्डिके पालिस्फिजौ पार्ष्णिः कृकाटिकेति स्त्रीसञ्ज्ञानि' इति।।८।।

अथ नपुंसकाख्यान्याह—

**वक्त्रं पृष्ठं जत्रुजान्वस्थिपार्श्वं हृत्ताल्वक्षी मेहनोरस्त्रिकं च ॥९॥**
**नपुंसकाख्यं च शिरो ललाटमाद्यसंज्ञैरपरैश्चिरेण।**
**सिद्धिर्भवेज्जातु नपुंसकैर्नो रूक्षक्षतैर्भग्नकृशैश्च पूर्वैः॥१०॥**

मुख, पृष्ठ, काँखों की सन्धि, जानु, हड्डी, बगल, हृदय, तालु, नेत्र, लिङ्ग, छाती, त्रिक ( कटि का पश्चिम भाग ), शिर, ललाट—ये सब नपुंसक अंग हैं।

आद्य ( पुरुष ) संज्ञक अंगस्पर्श करते हुये प्रश्न करे तो शीघ्र सिद्धि होती है। अपर ( स्त्रीसंज्ञक ) अंग से देर में और नपुंसक संज्ञक अंग स्पर्श करते हुये प्रश्न करे तो कदापि सिद्धि नहीं होती है। यदि पुरुष संज्ञक या स्त्री संज्ञक अंग रूखा, क्षत, भग्न या कृश हो तो कदापि सिद्धि नहीं होती है।।९-१०।।

एतानि नपुंसकाख्यानि। वक्त्रं मुखम्। पृष्ठं शरीरपश्चिमभागः। जत्रुरुरःकक्षयोः सन्धिः। जानुनी प्रसिद्धे। अस्थीनि प्रसिद्धानि। पार्श्वे प्रसिद्धे। हृद्धृदयम्। तालुरास्यपृष्ठ-भागम्। अक्षिणी नेत्रे। मेहनं लिङ्गम्। उरो वक्षः। त्रिकं कटिपश्चिमभागो वलिप्रदेशाः।

शिरो मूर्धा। ललाटं मुखपृष्ठम्। एतत्सर्वं नपुंसकाख्यं स्याद्भवेदिति। तथा च पराशरः—

'शिरोललाटमुखचिबुकपृष्ठजठरजत्रुजान्वस्थिपार्श्वहृदयकर्णपीठाक्षिमेहनोरस्त्रिकतालि्वति नपुंसकाख्यानि' इति।

**आश्वाद्यसंज्ञैरिति**। आद्यसंज्ञैः प्रथमोक्तैः पुन्नामभिः स्पृष्टैराशु क्षिप्रमेव सिद्धिः स्याद् भवेत्। अपरैस्तदनन्तरोक्तैः स्त्रीनामभिः। चिरेण सिद्धिर्भवेत्। नपुंसकैः स्पृष्टैर्नो जातु न कदाचिदपि सिद्धिः स्यात्।

**रूक्षक्षतैरिति**। नेत्यनुवर्तते। पूर्वैः पुन्नामभिः स्त्रीनामभिर्वा रूक्षैरस्निग्धैः। क्षतैः सम्प्रहारैः। भग्नैः स्फुटितैः। कृशैरल्पमांसैः। न जातु न कदाचिदपि सिद्धिर्भवेदिति। तथा च पराशरः—

'तत्र पुन्नाम स्निग्धमुचितमनुपहतमक्षतमरोगमङ्गं स्पृष्टं दिग्देशकालव्याहारेष्टदर्शनैरुपपन्नं प्रष्टुः पृच्छार्थं सकलफलमभिनिवर्तयति। स्त्रीसञ्ज्ञमपि पूर्वोक्तलक्षणयुक्तं यत्नात् कालान्तरेण सफलम्। नपुंसकाख्यमकार्यसिद्धिमनर्थानां वाऽऽगमनं कुर्यात्' इति। अपि च—

पुंसंज्ञेष्वाशु सिद्धिः स्यात् स्त्रीसंज्ञेषु चिराद्भवेत्।
अशुभं त्वेव निर्दिष्टं नपुंसकसनामसु।।
पुरुषाख्ये नु संस्पृष्टे बाह्ये रूक्षेऽबले क्षते।
नार्थसिद्धिमतो ब्रूयादङ्गविद्याविशारदः।। इति।।९-१०।।

अथ पृथक् फलनिर्देशार्थमाह—

**स्पृष्टे वा चालिते वापि पादाङ्गुष्ठेऽक्षिरुग्भवेत्।**
**अङ्गुल्यां दुहितुः शोकं शिरोघाते नृपाद् भयम्॥११॥**

यदि प्रश्नकर्ता पाँव के अंगूठे का स्पर्श करते हुये या उसको हिलाते हुये प्रश्न करे तो नेत्ररोग, अंगुली का स्पर्श करते हुये या हिलाते हुये प्रश्न करे तो कन्या को शोक और शिर पर आघात करते हुए प्रश्न करे तो राजा से भय होता है।।११।।

तत्र पृच्छायां पादाङ्गुष्ठे स्पृष्टे चालिते वा प्रष्टुरक्षिरुग् नेत्रपीडा भवेत् स्यादिति वदेत्। अङ्गुल्यां स्पृष्टायां दृहितृशोकं वदेत्। शिरोघाते शिरोऽभिहन्यमानं पृच्छेत्तदा नृपाद्राजतो भयमिति। तथा च पराशरः—

'अथ पृथक् पृथक् फलनिर्देशः। तत्र पादाङ्गुष्ठे प्रचलयन् स्पृष्ट्वा वा पृच्छेत् प्रष्टुश्चक्षुरोगं विनिर्दिशेत्। अङ्गुलिं स्पृष्ट्वा दुहितृशोकं शिरोऽभिहन्यमानं राजतो भयम्' इति।।११।।

अन्यदप्याह—

**विप्रयोगमुरसि स्वगात्रतः कर्पटाहृतिरनर्थदा भवेत्।**
**स्यात् प्रियाप्तिरभिगृह्य कर्पटं पृच्छतश्चरणपादयोजितुः॥१२॥**

यदि प्रश्न करने वाला छाती को छूते हुए प्रश्न करे तो विप्रयोग ( किसी स्नेही से वियोग ) होता है। अपने शरीर से कोई वस्त्र उतारते हुए प्रश्न करे तो अनर्थ होता है और वस्त्र को पकड़ कर एक पाँव को दूसरे पाँव पर रखते हुए प्रश्न करे तो प्रिय का लाभ होता है।।१२।।

उरसि वक्षसि स्पृष्टे प्रष्टुः केनचित् सह विप्रयोगं वदेत्। स्वगात्रत आत्मीयशरीरात् कर्पटाहृतिः वस्त्रत्यागः, अनर्थदा अनिष्टदा भवेत् स्यात्। कर्पटं वसनमभिगृह्य प्राप्य चरणं पादं द्वितीयचरणे योजयति तस्य पृच्छतः प्रष्टुः प्रियाप्तिः प्रियलाभः स्याद्भवेत्। तथा च पराशरः—

उरः स्पृष्ट्वा विप्रयोगं स्वगात्राद्वस्त्रमुत्सृजेत्।
तस्यानर्थागमं पादं पादेन संस्प्रशेत् पटम्।।
तमभिगृह्य वा पृच्छेद्विन्द्यात् प्रियसमागमम्।। इति।।१२।।

अन्यदप्याह—

**पादाङ्गुष्ठेन विलिखेद् भूमिं क्षेत्रोत्थचिन्तया।**
**हस्तेन पादौ कण्डूयेत्तस्य दासीमयी च सा ॥१३॥**

यदि प्रश्नकर्त्ता पाँव के अंगूठे से भूमि पर लिखे तो खेत की चिन्ता और दोनों हाथों से दोनों पाँवों को खुजलावे तो दासी की चिन्ता कहनी चाहिये।।१३।।

प्रष्टा क्षेत्रोत्थचिन्तया पादाङ्गुष्ठेन भूमिमवनिं विलिखेत्। हस्तेन करेण पादौ चरणौ कण्डूयेत्तदा चित्तस्य सा च चिन्ता दासीमयी दासीकृता। तथा च पराशरः—

अङ्गुष्ठेन लिखेद् भूमिं क्षेत्रचिन्तां विचिन्तयेत्।
हस्तेन पादौ कण्डूयेत् कुर्याद्दासीकृतां स ताम्।। इति ।।१३।।

अन्यदप्याह—

**तालभूर्जपटदर्शनेंऽशुकं चिन्तयेत् कचतुषास्थिभस्मगम्।**
**व्याधिराश्रयति रज्जुजालकं वल्कलं च समवेक्ष्य बन्धनम् ॥१४॥**

यदि प्रश्न करने के समय ताड़ के वृक्ष के पत्ते, भोजपत्र या वस्त्र का दर्शन हो तो वस्त्र की चिन्ता कहनी चाहिये। केश, तुष ( धान्यों की भूसी ), हड्डी या भस्म पर बैठा हुआ प्रश्नकर्ता प्रश्न करे तो व्याधि होती है तथा प्रश्नकाल में रस्सी का जाल और वृक्ष का खाल देखने से बन्धन होता है।।१४।।

तालवृक्षपत्रदर्शने भूर्जपटदर्शने वा प्रष्टा अंशुकं वस्त्रं चिन्तयेत्। कचतुषास्थिभस्मगं व्याधिराश्रयति। कचाः केशाः। तुषं शालिचर्म। अस्थि प्रसिद्धम्। भस्म प्रसिद्धमेव। एषामन्यतम उपगतं प्रष्टारं व्याधिः पीडा। आश्रयति आवृणोति। रज्जुः प्रसिद्धा। जालकं यत्र पक्षिणो बध्यन्ते। वल्कलं त्वक्। एषामन्यतमे स्थितं तं वा समवेक्ष्यावलोक्य गृहीत्वा वा पृच्छेत् तदा बन्धनं वदेत्। तथा च पराशरः—

तालभूर्जपत्रदर्शने वस्त्रार्थं केशास्थि-
भस्मान्याक्रम्य व्याधिभयं ब्रूयात्।
निगडजालरज्ज्वाश्रित्य वल्कला-
न्यधिष्ठाय दर्शने वा बन्धनभयम्।। इति।।१४।।

अन्यदप्याह—

**पिप्पलीमरिचशुण्ठिवारिदै रोध्रकुष्ठवसनाम्बुजीरकैः ।**
**गन्धमांसिशतपुष्पया वदेत्पृच्छतस्तगरकेण चिन्तयेत् ॥१५॥**

**स्त्रीपुरुषदोषपीडितसर्वार्थसुतार्थधान्यतनयानाम् ।**
**द्विचतुष्पदक्षितीनां विनाशतः कीर्तितैर्दृष्टैः ॥१६॥**

यदि प्रश्नकाल में पीपल, मिर्च, सोंठ, मुस्ता ( नागरमोथा ), लोध्र, कूट, वस्त्र, नेत्रबाला, जीरा, गन्धमांसि ( बाल छड़ ), सोंफ और तगर के फूल का दर्शन हो तो क्रम से स्त्री के दोष, पुरुष के दोष, रोगी, सर्वनाश, अर्थनाश, पुत्रनाश, अर्थनाश, धान्यनाश, पुत्रनाश, द्विपदनाश, चतुष्पदनाश और भूमिनाश की चिन्ता कहनी चाहिए। जैसे पीपल के दर्शन से स्त्रीदोष की, मिर्च के दर्शन से पुरुषदोष की, सोंठ के दर्शन से रोगी इत्यादि की चिन्ता कहनी चाहिये।।१५-१६।।

पिल्पल्यादिदर्शने स्त्र्यधिकृतां चिन्तां क्रमशो वदेत्। तत्र पिप्पलीदर्शने या स्त्री दोषसंयुता सदोषा तत्कृतां चिन्तां प्रवदेत्। मरिचदर्शने पुरुषस्य दोषसंयुतस्य सपापस्य चिन्तां वदेत्। शुण्ठिदर्शने पीडितस्य व्याधितस्य मृतस्य वा चिन्ताम्। वारिदा मुस्तास्तेषां दर्शने सर्वनाशकृताम्। रोध्रदर्शने अर्थनाशकृताम्। कुष्ठदर्शने सुतनाशकृतां पुत्रविनाशजाम्। वसनं वस्त्रं तद्दर्शने अर्थनाशकृताम्। अम्बुनो बालकस्य दर्शने धान्यनाशकृताम्। जीरकमजाजी तद्दर्शने तनयस्य पुत्रस्य नाशकृताम्। गन्धमांस्या द्विपदानां द्विशफानां नाश-कृताम्। शतपुष्पया चतुष्पदानां चतुःशफानां नाशकृताम्। तगरकेण क्षितेर्भूमेर्नाशकृतां चिन्ताम्। एतैः कीर्तितैरुच्चारितैर्वा दृष्टैरवलोकितैर्वा विनाशतो विनाशहेतोः पृच्छा भवति। तथा च पराशरः—

'पिप्पलीनां दर्शने प्रदुष्टस्त्रीकृतां चिन्तां मरिचस्य पापपुरुषकृतां शृङ्गवेरस्य मृतचिन्ताम्। अजाज्याः सुतनाशकृतां रोध्रस्यार्थनाशकृतां मुस्तस्य सर्वनाशकृतां कुष्ठस्य सुतनाशकृतां वस्त्रस्यार्थनाशकृतां ह्रीवेरस्य धान्यनाशकृतां तगरस्य भूमिनाशकृतां शतपुष्पया चतुष्पन्नाशाय मांस्या द्विपदनाशकृताम्' इति।।१५-१६।।

अन्यदप्याह—

**न्यग्रोधमधुकतिन्दुकजम्बूप्लक्षाम्रबदरजातिफलैः ।**
**धनकनकपुरुषलोहांशुकरूप्यौदुम्बराप्तिरपि करगैः ॥१७॥**

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्त्ता के हाथ में बड़, महुआ, तिन्दु, जामुन, पाकड़, आम

और बैर का फल हो तो क्रम से धन, सुवर्ण, द्विपद, लोहा, वस्त्र, चाँदी और औदुम्बर ( ताँबा ) की प्राप्ति कहनी चाहिए। जैसे बड़ का फल हाथ में हो तो धन की प्राप्ति, महुआ का फल हाथ में हो तो सुवर्ण की प्राप्ति इत्यादि कहनी चाहिये।।१७।।

न्यग्रोधादिजातीफलैस्तत्सम्भवै: फलै: करगैर्हस्तगैर्धनाद्याप्तिर्भवति। तत्र न्यग्रोधजाती-फलै: प्रष्टुर्हस्तस्थैर्धनाप्तिर्वित्तलाभो भवेत्। मधुकफलै: कनकस्य प्राप्ति:। तिन्दुकफलै: पुरुषस्य द्विपदस्य प्राप्ति:। जम्बूफलैर्लोहस्य। प्लक्षफलैरंशुकस्य वस्त्रस्य। आम्रफलै रूप्यस्य। बदरफलैरौदुम्बरस्य ताम्रस्येति। तथा च पराशर:—

'अश्वत्थन्यग्रोधफलैर्हस्तस्थै: पृच्छेद्धनागममादिशेत्। मधुकौदुम्बरफलै: काञ्चनागमम्। द्विपदागमं तिन्दुकै:। वस्त्रागमं प्लक्षजै:। रूप्यस्यागममाम्रै:। ताम्रस्यागमं बदरै:। लोहस्या-गमं जम्बूकैरिति वा' इति।।१७।।

अन्यदप्याह—

**धान्यपरिपूर्णपात्रं कुम्भ: पूर्ण: कुटुम्बवृद्धिकरौ।**
**गजगोशुनां पुरीषं धनयुवतिसुहृद्विनाशकरम् ॥१८॥**

यदि प्रश्नकाल में धान्यों से परिपूर्ण पात्र या पूर्ण घट दिखाई दे तो कुटुम्बों की वृद्धि होती है। यदि हाथी की लीद, गाय का गोबर और कुत्ते की विष्ठा दिखाई दे तो क्रम से धन का विनाश, युवती स्त्री का विनाश और मित्रों का विनाश कहना चाहिये।।१८।।

धान्येन परिपूर्णं पात्रं भाजनं कुम्भ: पूर्णश्च तौ दृष्टौ कुटुम्बवृद्धिकरौ गजगोशुनां पुरीषं यथासंख्यं धनयुवतिसुहृद्विनाशकरं भवति। गजस्य हस्तिन पुरीषं दृष्टं धनस्यैश्वर्यस्य विनाशकरम्। गोपुरीषं गोमयं युवतीनां स्त्रीणां विनाशकरम्। शुन: पुरीषं सुहृदां मित्राणां विनाशकरमिति। तथा च पराशर:—

'धान्यपात्रपूर्णोदकुम्भदर्शने कुटुम्बवृद्धिं जानीयात्। हस्तिना द्रव्यागमम्। हस्तिशकृतो भ्रंशमैश्वर्यस्य वा। गोमयस्य स्त्रीव्यभिचारम्। शुन: सुहृद्विनाशम्' इति।।१८।।

अन्यदप्याह—

**पशुहस्तिमहिषपङ्कजरजतव्याघ्रैर्लभेत सन्दृष्टै:।**
**अविधननिवसनमलयजकौशेयाभरणसङ्घातम् ॥१९॥**

यदि प्रश्नकाल में पशु, हाथी, भैंस, कमल, चाँदी और बाघ दिखाई दे तो क्रम से कम्बल आदि ऊनी वस्त्र, धन, रेशमी वस्त्र, चन्दन, रेशमी वस्त्र और आभूषण की प्राप्ति होती है।।१९।।

पश्वादिभि: पृच्छासमये सन्दृष्टैरवलोकितैरव्याद्याभरणानां सङ्घातं समूहं प्रष्टा लभते। तत्र पशुदर्शने आविकस्यौर्णिकस्य कम्बलादेर्लाभ:। हस्तिन: करिणो दर्शने धनागम:। महिषस्य दर्शने निवसनस्य क्षौमवस्त्रस्य। पङ्कजस्य पद्मस्य दर्शने मलयजस्य चन्दनस्य।

रजतस्य रूप्यस्य दर्शने कौशेयवस्त्रस्य। व्याघ्रस्य सन्दर्शने आभरणागमः। तथा च पराशरः—

'महिषस्य क्षौमवस्त्रागमम्। मणिभाण्डस्य गजवाजिनामौर्णिकानाम्। व्याघ्रस्याभरणागमम्। पङ्कजस्य रक्तवस्त्रचन्दनलाभम्। रूप्यस्य कौशेयवस्त्राणाम्' इति।।१९।।

अन्यदप्याह—

**पृच्छा वृद्धश्रावकसुपरिव्राड्दर्शने नृभिर्विहिता।**
**मित्रद्यूतार्थभवा गणिकानृपसूतिकार्थकृता ॥२०॥**

यदि प्रश्नकाल में वृद्ध श्रावक ( कापालिक ) का दर्शन हो तो मित्र, द्यूत और धनसम्बन्धी चिन्ता तथा उत्तम संन्यासी का दर्शन हो तो वेश्या, राजा और प्रसूता स्त्री के लिये चिन्ता कहनी चाहिये।।२०।।

वृद्धश्रावकः कापालिकस्तद्दर्शने तदालोकने नृभिः पुम्भिर्मित्रद्यूतार्थभवा पृच्छा विहिता कृता मित्रार्थं द्यूतार्थं वा कृता। सुपरिव्राड्दर्शने यत्याद्यवलोकने लिङ्गिनो वा गणिकानृपसूतिकार्थकृता पृच्छा। गणिका वेश्या। नृपो राजा। सूतिका प्रसूता स्त्री। तत्कृता।।२०।।

अन्यदप्याह—

**शाक्योपाध्यायार्हन्निर्ग्रन्थिनिमित्तनिगमकैवर्तैः।**
**चौरचमूपतिवणिजां दासीयोधापणस्थवध्यानाम् ॥२१॥**

यदि प्रश्नकाल में बौद्धमतानुयायी, उपाध्याय, अर्हत्, निर्ग्रन्थी, दैवज्ञ, निगम और धीवर दिखाई दे तो क्रम से चोर, सेनापति, बनियाँ, दासी, योद्धा, दुकानदार और वध-सम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये।।२१।।

शाक्यादीनां दर्शने चौरादीनां पृच्छा। शाक्यदर्शने चौरकृता। उपाध्यायदर्शने चमूपतिकृता सेनापतिकृता। अर्हद्दर्शने वणिक्कृता। निर्ग्रन्थिदर्शने दासीकृता। नैमित्तिकस्य दैवविदो दर्शने योधकृता। निगमदर्शने आपणस्थस्य श्रेष्ठिनः कृता। कैवर्तस्य धीवरस्य दर्शने वध्यकृता चिन्ता इति।।२१।।

अन्यदप्याह—

**तापसे शौण्डिके दृष्टे प्रोषितं पशुपालनम्।**
**हृद्गतं प्रच्छकस्य स्यादुञ्छवृत्तौ विपन्नता ॥२२॥**

यदि प्रश्नकाल में तापस ( तपस्वी ) का दर्शन हो तो प्रवासी की और कलाल ( मद्य बेचने वाले ) का दर्शन हो तो पशुओं की रक्षासम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिए। यदि उञ्छ वृत्ति ( गिरे हुये एक-एक दाने को इकट्ठा करने वाले ) का दर्शन हो तो विपत्ति की चिन्ता कहनी चाहिए।।२२।।

तापसे दृष्टेऽवलोकिते प्रच्छकस्य प्रष्टुर्हृद्गतं चित्तस्थम्। प्रोषितः प्रवासी यः कश्चित् स्थितः। तं प्रवासिनम्। शौण्डिके मद्यासक्ते दृष्टे पशुपालनं चित्तस्थम्। उञ्छवृत्तौ शिलोञ्छवृत्तौ दृष्टे विपन्नतार्था चिन्ता। तथा च पराशरः—

'निर्ग्रन्थिदर्शने दासीपृच्छा। वृद्धश्रावकदर्शने मित्रद्यूतकृता वा। शाक्यस्य चौरकृता। परिव्राजकस्य नृपसूतिकागणिकार्था वा। उपाध्यायस्य चमूपतिकृता। नैगमस्य श्रेष्ठिकृता। नैमित्तिकस्य योधार्था। अर्हतो वाणिजिकार्था। उञ्छवृत्तिनो विपन्नार्था। तापसस्य प्रोषितार्था। शौण्डिकस्य पशुपालनार्था। कैवर्तस्य वध्यघातकृता' इति।।२२।।

अन्यदप्याह—

**इच्छामि प्रष्टुं भण पश्यत्वार्यः समादिशेत्युक्ते।**
**संयोगकुटुम्बोत्था लाभैश्वर्योद्गता चिन्ता ॥२३॥**

यदि प्रश्न करने के समय प्रश्नकर्त्ता के मुख से पहले-पहल 'मैं पूछना चाहता हूँ आप कहिए' इस तरह का शब्द निकले तो सन्धि या कुटुम्बसम्बन्धी, 'आप देखिये' इस तरह का शब्द निकले तो लाभसम्बन्धी और 'आप आज्ञा दें' इस तरह का शब्द निकले तो ऐश्वर्यसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये।।२३।।

इच्छामीत्याद्युक्ते यथासङ्ख्यं संयोगादिकृता चिन्ता ज्ञेया। इच्छामि प्रष्टुमिति भणेति उक्ते संयोगकुटुम्बकृतां चिन्तां वदेत्। पश्यत्वार्य इत्युक्ते लाभोद्गतां लाभार्थकृतां चिन्तां समादिशेत्। समादिशेत्युक्ते ऐश्वर्योद्गतां चिन्तामिति।।२३।।

अन्यदप्याह—

**निर्दिशेति गदिते जयाध्वजा प्रत्यवेक्ष्य मम चिन्तितं वद।**
**आशु सर्वजनमध्यगं त्वया दृश्यतामिति च बन्धुचौरजा ॥२४॥**

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्त्ता के मुख से पहले-पहल 'बताइये' ऐसा शब्द निकले तो जय या मार्गसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिए। 'देख कर मेरे हृदयगत बात को बताइये' ऐसा निकले तो बन्धुकृत और 'आप शीघ्र देखिये' ऐसा शब्द निकले तो सब लोगों के मध्यगत प्रश्नकर्त्ता को चोरसम्बन्धी चिन्ता कहनी चाहिये।।२४।।

निर्दिशेति गदिते उक्ते पृच्छा जयाध्वजा। जयार्थं जाता कृता। अध्वजा वा। प्रत्यवेक्ष्य वेति विचार्य मम चिन्तितं हृद्गतं वदेत्युक्ते बन्धुकृता। सर्वजनमध्यगं प्रष्टारमेवं वक्ति। आशु क्षिप्रमेव त्वया च दृश्यतामिति चौरजा तस्करकृता चिन्ता। तथा च पराशरः—

'आदिशार्येत्येवं पृच्छेदैश्वर्यचिन्ताम्। भणेत्युक्ते कुटुम्बकृताम्। इच्छामि प्रष्टुमिति संयोगकृताम्। पश्यत्वार्य इति लाभकृताम्। निर्दिशेत्यध्वकृताम्। जयपृच्छां वा। पृच्छामि तावदाचार्येति वा सम्यक् मां प्रत्यवेक्षस्वेति बन्धुकृताम्। अथ काले निःश्वसनान्तः सहसा बहुजनमध्यगतं दृश्यतामिति पृच्छेदिति चौरचिन्तां जानीयात्' इति।।२४।।

अथ चौरविज्ञानमाह—

**अन्तःस्थेऽङ्गे स्वजन उदितो बाह्यजे बाह्य एव**
**पादाङ्गुष्ठाङ्गुलिकलनया दासदासीजनः स्यात्।**
**जङ्घे प्रेष्यो भवति भगिनी नाभितो हृत्स्वभार्या**
**पाण्यङ्गुष्ठाङ्गुलिचयकृतस्पर्शने पुत्रकन्ये ॥२५॥**

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्ता भीतर के अंग का स्पर्श करे तो अपना मनुष्य, बाहर के अंग का स्पर्श करे तो बाहर के मनुष्य, पाँव के अंगूठे का स्पर्श करे तो दास, पाँव की अंगुली का स्पर्श करे तो दासी, जङ्घा का स्पर्श करे तो प्रेष्य ( दूत ), नाभि का स्पर्श करे तो बहन, हृदय का स्पर्श करे तो अपनी स्त्री, हाथ के अंगूठे का स्पर्श करे तो अपना पुत्र और हाथ की अंगुली का स्पर्श करे तो अपनी कन्या को चोर कहना चाहिये।।२५।।

अन्तःस्थे अभ्यन्तरस्थितेऽङ्गे अवयवे स्पृष्टे पृच्छायां चौरः स्वजन आत्मीय एव उदित उक्तः। बाह्यजेऽङ्गे स्पृष्टे बाह्य एवोदितश्चौरः। पादाङ्गुष्ठाङ्गुलिकलनया पादाङ्गुष्ठे स्पृष्टे दासश्चौरः। अङ्गुलीषु पादस्थास्वेव स्पृष्टासु दासीजनः स्याद्भवेत्। जङ्घस्पर्शने प्रेष्यः कर्मकरो भवति। नाभितो भगिनी। हृदि स्वभार्या आत्मीया जाया। पाणिर्हस्तः। तदङ्गुष्ठस्पर्शने पुत्रः। अङ्गुलिचयस्पर्शने कन्या आत्मीया तनया चौरी। एवं कृतस्पर्शने चौरज्ञानम्।।२५।।

अन्यदप्याह—

**मातरं जठरे मूर्ध्नि गुरुं दक्षिणवामकौ।**
**बाहू भ्राताऽथ तत्पत्नी स्पृष्ट्वैवं चौरमादिशेत् ॥२६॥**

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्त्ता पेट का स्पर्श करे तो माता, शिर का स्पर्श करे तो गुरु, दक्षिण भुजा का स्पर्श करे तो भाई और वाम भुजा का स्पर्श करे तो भाभी को चोर कहना चाहिये।।२६।।

जठरे उदरे स्पृष्टे मातरं स्वजननीं चौरीम्। मूर्ध्नि शिरसि स्पृष्टे गुरुम्। दक्षिणवामकौ बाहू तत्स्पर्शने यथासङ्ख्यं भ्राता तत्पत्नी। दक्षिणबाहुस्पर्शने। भ्राता वामे तत्पत्नी। एवमङ्गस्पर्शने चौरं तस्करमादिशेद्भवेत्। तथा च पराशरः—

'बाह्याङ्गस्पर्शने बाह्यचौरम्। अन्तः स्वकृतम्। तत्र पादाङ्गुष्ठे दासम्। अङ्गुलीषु दासीम्। जङ्घयोः प्रेष्यम्। जठरे मातरम्। हस्ताङ्गुलिषु दुहितरम्। अङ्गुष्ठे सुतम्। नाभ्यां भगिनीम्। गुरुं शिरसि। हृदि भार्याम्। दक्षिणबाहौ भ्रातरम्। वामे भ्रातृभार्याम्' इति।।२६।।

अथापहृतस्य लाभज्ञानमाह—

**अन्तरङ्गमवमुच्य बाह्यगस्पर्शनं यदि करोति पृच्छकः।**
**श्लेष्ममूत्रशकृतस्त्यजत्यथो पातयेत् करतलस्थवस्तु चेत् ॥२७॥**
**भृशमवनामिताङ्गपरिमोटनतोऽप्यथवा**
**जनधृतरिक्तभाण्डमवलोक्य च चौरजनम्।**

**हृतपतितक्षतास्मृतविनष्टविभग्नगतो-**
**न्मुषितमृताद्यनिष्टरवतो लभते न हृतम् ॥२८॥**

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्त्ता भीतर के अंगों को छोड़ कर बाहर के अंगों का स्पर्श करे, कफ फेंके, मूत्रोत्सर्ग या मलोत्सर्ग करे, अपने हाथ की वस्तु को गिरावे, अपने शरीर को झुकावे या अपने अंग को तोड़े तो चोरी गई वस्तु पुनः नहीं प्राप्त करता है तथा किसी के हाथ में खाली पात्र या चोर को देख कर भी चोरी गई वस्तु नहीं प्राप्त करता है। अथवा प्रश्न के समय 'हर लिया, गिर गया, कट गया, भूल गया, नष्ट हो गया, टूट गया, चोरी गया, मर गया आदि अनिष्ट शब्द उत्पन्न हों तो भी चोरी गई वस्तु' पुनः प्राप्त नहीं होती है।।२७-२८।।

एवंविधैर्निमित्तैः प्रष्टा हृतं न लभते। कैरित्याह—अन्तरङ्गमभ्यन्तरस्थितमवयवमवमुच्य परित्यज्य बाह्यगावयवस्पर्शनं यदि पृच्छकः करोति, अथवा श्लेष्ममूत्रशकृतस्त्यजति तत्कालं परित्यजति, अथवा करतलस्थं पाणितले स्थितं यत्किञ्चिद्वस्तु पातयेत्।

अथवा भृशमत्यर्थमवनामिताङ्ग अवनामितावयवाङ्गानामेव परिमोटनं चटचटाशब्द-मुत्पादयति। तथा तत्कालं जनधृतं लोकगृहीतं रिक्तभाण्डमवलोक्य दृष्ट्वा। तथा चौरजनं तस्करजनमवलोक्य, अथवा हतः पतितः क्षतः अस्मृतो विनष्टो विभग्नो गत उन्मुषितो मृतः। एषामनिष्टरवतः शब्दश्रवणात्। आदिग्रहणात् कष्टदुष्टानिष्टशीर्णशब्दश्रवणाद् हृतं प्रहृतं न लभत इति। तथा च पराशरः—

'अभ्यन्तरगं स्पृष्ट्वा बाह्यं स्पृशेन्निर्हरणं वा श्लेष्मपुरीषमूत्रत्यागं कुर्याद्धस्ताद्वा किञ्चित् पातयेत्। गात्राणि वा स्फोटयेत्। क्षतहृतपतितमुषितविस्मृतनष्टकष्टदुष्टानिष्ट-भग्नगतजीर्णशब्दप्रादुर्भावो वा स्यात्। रिक्तभाण्डतस्कराणां दर्शने न प्रष्टा लाभं विन्द्यात्' इति।।२८।।

अथ पीडार्तानां मरणज्ञानमाह—

**निगदितमिदं यत्तत्सर्वं तुषास्थिविषादिकैः**
**सह मृतिकरं पीडार्तानां समं रुदितक्षतैः ।**

नष्ट चिन्ता में प्रतिपादित पूर्वोक्त ( अन्तरङ्ग इत्यादि ) स्थिति यदि तुष ( धान्यों की भूसी ), हड्डी, विष आदि देखने के साथ अथवा रोने या छींक के साथ हो तो रोगियों की मृत्यु होती है।

अन्तरङ्गवमुच्येति आरभ्य यदिदं नष्टचिन्तायां निगदितमुक्तम्। तत्सर्वं तुषास्थिविषादिकैः सह साकं तथा रुदितक्षतैः सह समं पीडार्तानां रोगिणां मृतिकरं मरणं करोति। आदि-ग्रहणाच्छिन्नमृतिजग्धपाटितशब्दैरिति। तथा च पराशरः—

'अथ रोगाभिघातच्छर्दमूत्रपुरीषोत्सर्गे केशास्थिभस्मतुषविषादीनामशुभानां दर्शने तथा

छिन्नभिन्नव्यापन्नहतमृतावक्षतजग्धदग्धबद्धपाटितरुदितशब्दश्रवणे वा रोगिणां मरणमादिशेत्' इति।

अथ भोजनज्ञानमाह—

**अवयवमपि स्पृष्ट्वाऽन्तःस्थं दृढं मरुदाहरे-**
**दतिबहु तदा भुक्त्वाऽन्नं संस्थितः सुहितो वदेत् ॥२९॥**

यदि भीतर के दृढ अंगों को स्पर्श करके श्वास निकालते हुये प्रश्न करे तो प्रश्नकर्ता अधिक अन्न खाकर प्रसन्न बैठा है—ऐसा दैवज्ञ को कहना चाहिए।।२९।।

अन्तःस्थमभ्यन्तरस्थितमवयवं स्पृष्ट्वा मरुद्वायुमाहरेदुद्गिरन् पृच्छेत्तदा प्रच्छकोऽतिबहु अतिप्रभूतमन्नं भुक्त्वा सुहितोऽग्नितृप्तः स्थित इति वदेत्।।२९।।

अन्यदप्याह—

**ललाटस्पर्शनाच्छूकदर्शनाच्छालिजौदनम् ।**
**उरःस्पर्शात् षष्टिकाख्यं ग्रीवास्पर्शे च यावकम् ॥३०॥**

यदि प्रश्नकर्ता ललाट का स्पर्श करे या शूक धान्य ( यव आदि ) का दर्शन करे तो साठी का चावल, छाती का स्पर्श करे तो षष्टिक ( साठ रात में होने वाला ) धान्य एवं गर्दन का स्पर्श करे तो यव इसने खाया है—ऐसा कहना चाहिये।।३०।।

ललाटस्पर्शनात् शूकधान्यानां वा दर्शनाच्छालिजौदनं प्रच्छकेन भुक्तमिति वदेत्। उरःस्पर्शात् षष्टिकाख्यं धान्यविशेषान्नं ग्रीवास्पर्शे च ग्रावकं यवान्नम्।।३०।।

अन्यदप्याह—

**कुक्षिकुचजठरजानुस्पर्शे माषाः पयस्तिलयवाग्वः ।**
**आस्वादयते चोष्ठौ लिहते मधुरं रसं ज्ञेयम् ॥३१॥**

यदि प्रश्न के समय कोख, स्तन, पेट और जानु का स्पर्श करे तो क्रम से प्रश्नकर्त्ता माष ( उड़द ), जल और यव खाकर आया है तथा ओठ को चबावे या चाटे तो मधुर रस खाकर आया है—ऐसा कहना चाहिए।।३१।।

कुक्षिस्पर्शने माषा मुक्ताः। कुचौ स्तनौ। तत्स्पर्शने पयः क्षीरौदनम्। जठरमुदरम्। तत्स्पर्शने तिलौदनम्। जानुस्पर्शने यवागूः यावकम्। ओष्ठावास्वादयते लिहते वा प्रष्टा पृच्छति तदा तेन मधुरं रसं भुक्तमिति ज्ञेयम्।।३१।।

अन्यदप्याह—

**विसृक्के स्फोटयेज्जिह्वामाम्ले वक्त्रं विकूणयेत्।**
**कटुकेऽथ कषायेऽथ हिक्केत् ष्ठीवेच्च सैन्धवे ॥३२॥**

यदि प्रश्न के समय में सृक्क ( ओष्ठप्रान्त ) में जिह्वा मारे तो प्रश्नकर्ता खट्टा, मुख

खुजलावे तो कडुआ, हिचकी करे तो कषैला और थूके तो नमक खाया है—ऐसा कहना चाहिये।।३२।।

जिह्वां रसनां विसृक्के स्फोटयेत् प्रष्टा तदा तेनाम्लं भुक्तम्। वक्त्रं मुखं विकूणयेत् कटुके भुक्ते। असौ प्रच्छक: कषाये भुक्ते हिक्केत्। सैन्धवे लवणे भुक्ते ष्ठीवेत्।।३२।।

अन्यदप्याह—

**श्लेष्मत्यागे शुष्कतिक्तं तदल्पं**
**श्रुत्वा क्रव्यादं वा प्रेक्ष्य वा मांसमिश्रम्।**
**भ्रूगण्डौष्ठस्पर्शने शाकुनं तद्**
**भुक्तं तेनेत्युक्तमेतन्निमित्तम् ॥३३॥**

यदि प्रश्नकाल में कफ फेंके तो थोड़ी सूखी तीती वस्तु और मांसभोजी पक्षी को सुने या देखे तो मांसमिश्रित वस्तु तथा भ्रू, गाल या ओठ का स्पर्श करे तो प्रश्नकर्ता ने पक्षी का मांस खाया है—ऐसा कहना चाहिये।।३३।।

श्लेष्मपरित्यक्ते शुष्कं नीरसं तिक्तं तदल्पं स्तोकं च भुक्तम्। क्रव्यादं मांसाशिनं प्राणिनं श्रुत्वा प्रेक्ष्य दृष्ट्वा तन्मांसमिश्रं भुक्तम्। भ्रूगण्डौष्ठस्पर्शने शाकुनं मांसम्। तेन प्रष्ट्रा तद्भुक्तम्। इत्युक्तमेतत्कथितं निमित्तं चिह्नम्।।३३।।

अन्यदप्याह—

**मूर्धगलकेशहनुशङ्खकर्णजङ्घं बस्तिं च स्पृष्ट्वा।**
**गजमहिषमेषशूकरगोशशमृगमहिषमांसयुग्भुक्तम् ॥३४॥**

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्ता शिर, कण्ठ, ठोढ़ी, केश, कनपटी, कान, जंघा और बस्ति ( नाभि और लिंग के बीच का स्थान ) का स्पर्श करे तो क्रम से हाथी, भैंस, शूकर, मेष, गौ, खरगोश, मृग और भैंस के मांस से मिश्रित भोजन किया है—ऐसा कहना चाहिये।।३४।।

मूर्धादिस्पर्शने यथाक्रमं गजादिमांसं भुक्तं वक्तव्यम्। मूर्धा शिरस्तत्स्पर्शने गजमांसं कौञ्जरम्। गलस्पर्शने माहिषम्। केशस्पर्शने मेषमांसमौरभ्रम्। हनुस्पर्शने शूकरमांसम्। शङ्खस्पर्शने गोमांसम्। कर्णस्पर्शने शशमांसम्। जङ्घास्पर्शने मृगमांसम्। बस्तिस्पर्शने महिषमांसयुतमेव भुक्तम्।।३४।।

अन्यदप्याह—

**दृष्टे श्रुतेऽप्यशकुने गोधामत्स्यामिषं वदेद्भुक्तम्।**
**गर्भिण्या गर्भस्य च निपतनमेवं प्रकल्पयेत्प्रश्ने ॥३५॥**

यदि प्रश्नकाल में प्रश्नकर्ता अशकुन देखे या सुने तो गोह या मछली का मांस खाकर आया है—ऐसा कहना चाहिये। इसी तरह गर्भिणी के प्रश्न में गर्भस्राव की

कल्पना करनी चाहिये, जैसे गर्भिणी के प्रश्नकाल में अशकुन देखे या सुने तो गर्भस्राव कहना चाहिए।

अशकुने दृष्टे अवलोकिते वा दुर्निमित्ते गोधामिषं मत्स्यामिषं वा भुक्तं वदेद् ब्रूयात्। एवमेव गर्भपृच्छायामशकुने दुर्निमित्ते श्रुते दृष्टे वा गर्भिण्या: स्त्रियो गर्भनिपतनं प्रकल्पयेद् निर्दिशेदिति। तथा च पराशर:—

'अथ स्निग्धं दृढमभ्यन्तराङ्गं स्पृष्ट्वोद्गिरन् पृच्छेद् भुक्तमन्नं विन्द्यात्। तत्र ललाटस्पर्शे शूकानां वा शाल्योदनम्। उरसि संस्पृष्टे षष्टिकौदनम्। ग्रीवायां यवान्नम्। जठरे तिलौदनम्। कुक्षौ माषौदनम्। स्तनयो: क्षीरौदनम्। जानुनोर्यावकम्। स्वादयेदोष्ठौ वा परिलिहेत मधुरम्। आविसृक्के जिह्वामपि स्फोटयेदाम्लम्। विकूणयेत् कटुकम्। हिक्केत् कषायम्। निष्ठीवेत्तिक्तम्। शुष्कमल्पं श्लेष्माणमुत्सृजेदतिलवणम्। क्रव्यादानां दर्शने मांसप्रायम्। तत्र भ्रूगण्डजिह्वौष्ठसंस्पर्शने शाकुनम्। हन्वोर्वाराहम्। कर्णयो: पार्षदम्। जङ्घयोर्मार्गम्। केशानामौरभ्रम्। शङ्खयोर्गव्यम्। बस्तिगलयोर्माहिषम्। मूर्ध्नि कौञ्जरम्। पाटितच्छिन्नभिन्नानां स्पर्शने श्रवणे गोधामत्स्यमांसम्' इति।।३५।।

अथ गर्भिण्या जन्मज्ञानमाह—

**पुंस्त्रीनपुंसकाख्ये दृष्टेऽनुमिते पुरःस्थिते स्पृष्टे।**
**तज्जन्म भवति पानान्नपुष्पफलदर्शने च शुभम् ॥३६॥**

यदि गर्भिणी के प्रश्नकाल में प्रश्नकर्ता पुरुष, स्त्री या नपुंसक को देखे, उसकी चिन्ता करे, उसको सम्मुख स्थित देखे या उनका स्पर्श करे तो क्रम से उसी का जन्म कहना चाहिये अर्थात् पुरुष के दर्शन आदि से पुरुष का, स्त्री से स्त्री का और नपुंसक से नपुंसक का जन्म कहना चाहिये। इस समय आसव, अन्न, पुष्प, फल का दर्शन शुभ होता है।

गर्भस्थायां स्त्रियां किं जनयिष्यतीति पृच्छायां पुरुषे दृष्टेऽवलोकितेऽनुमिते वा चिन्तिते पुरोऽग्रत: स्थिते वा स्पृष्टे वा तस्मिंस्तज्जन्म पुंसो जन्म भवति। एवं स्त्रियां दृष्टायामनुमितायां वा पुरत: स्थितायां वा पृष्टायां स्त्रीजन्म भवति। नपुंसकाख्ये दृष्टेऽनुमिते वा पुरत: स्थिते स्पृष्टे वा नपुंसकजन्म भवति। पानान्नपुष्पफलदर्शने च शुभमिति। पानस्याऽऽसवस्य अन्नस्य भोजनादे: पुष्पाणां कुसुमानां फलानां च दर्शने शुभं जन्म सुखप्रसवो भवतीत्यर्थ:।।३६।।

अन्यदप्याह—

**अङ्गुष्ठेन भ्रूदरं वाङ्गुलिं वा स्पृष्ट्वा पृच्छेद्गर्भचिन्ता तदा स्यात्।**
**मध्वाज्याद्यैर्हेमरत्नप्रवालैरग्रस्थैर्वा मातृधात्र्यात्मजैश्च ॥३७॥**

यदि स्त्री अपने अंगूठे से भ्रूयुगल, पेट या अगुलियों का स्पर्श करके प्रश्न करे या प्रश्नकाल में मधु, घृत आदि ( शोभन फल आदि ), सुवर्ण, रत्न, मूँगा, मोती, धाई या पुत्र सम्मुख दिखाई दे तो गर्भ की चिन्ता कहनी चाहिये।।३७।।

स्त्री स्वाङ्गुष्ठेन भ्रूयुगमुदरमङ्गुलिं वा स्पृष्ट्वा पृच्छेत्तदा गर्भः स्याद्भवेत्। अथवा अग्रस्थैः पुरोऽवस्थितैः। मध्वाज्याद्यैः। मधु माक्षिकम्। आज्यं घृतम्। आदिग्रहणात् पुंनामभिः शोभनफलैश्च तथा हेमरत्नप्रवालैः हेम सुवर्णम्, रत्नानि मणयः, प्रवालं विद्रुमम्। तथा मातृधात्र्यात्मजैश्च माता जननी, धात्री स्तनदायिनी, आत्मजः पुत्रः। एतैरप्यग्रस्थैर्गर्भ-पृच्छामेव जानीयात्। तथा च पराशरः—

'अथ स्त्री भ्रुवौ जठरमङ्गुष्ठेन वाऽङ्गुलिं स्पृष्ट्वा पृच्छेद् गर्भपृच्छां जानीयात्। तथा फलच्छायावृक्षप्रवालाङ्कुरमधुघृतहेमगर्भप्राजापत्ये वा मातृधात्रीपुत्रनिदर्शनशब्दप्रादुर्भावे गर्भपृच्छामेव' इति।।३०।।

अन्यदप्याह—

**गर्भयुता जठरे करगे स्याद् दुष्टनिमित्तवशात्तदुदासः।**
**कर्षति तज्जठरं यदि पीठोत्पीडनतः करगे च करेऽपि ॥३८॥**

यदि प्रश्नकाल में स्त्री पेट पर हाथ रखकर प्रश्न करे तो गर्भ कहना चाहिये। यदि उस समय अशकुन दिखाई दे, प्रश्न करने वाली पीठ को मल कर पेट को खुजलावे या हाथ देकर प्रश्न करे तो गर्भपात कहना चाहिये।।३८।।

जठरे उदरे करगे हस्तेन स्पृष्टे स्त्रीगर्भयुता स्याद्भवेत्। तस्मिन्नेव पृच्छासमये दुष्टनिमित्तवशाद् दुष्टनिमित्तदर्शनात्। क्षतक्षुभितभग्नविनष्टदग्धक्षीरादिदर्शने श्रवणात्तदुदासो गर्भपतनं भवति। अथवा तज्जठरं पीठोत्पीडनतः पीठमर्दनं कृत्वा कर्षति कण्डूयेत्। करगे च करेऽपि हस्तं हस्तेन वा अवलम्ब्य पृच्छति तदापि तदुदास इति।।३८।।

अथ गर्भग्रहणकालज्ञानमाह—

**घ्राणाया दक्षिणे द्वारे स्पृष्टे मासोत्तरं वदेत्।**
**वामेऽब्दौ कर्ण एवं मा द्विचतुर्घ्नः श्रुतिस्तने ॥३९॥**

'गर्भ होगा या नहीं' इस तरह के प्रश्नकाल में स्त्री यदि नासिका के दक्षिण द्वार ( पिङ्गला नाड़ी ) का स्पर्श करे तो एक मास बाद, वाम द्वार ( इडा नाडी ) का स्पर्श करे तो दो वर्ष में, दक्षिण कर्ण का स्पर्श करे तो दो मास बाद, वाम कर्ण का स्पर्श करे तो दो वर्ष बाद, दक्षिण स्तन का स्पर्श करे तो चार साल बाद और वाम स्तन का स्पर्श करे तो दो वर्ष में गर्भस्थिति होगी—ऐसा कहना चाहिये।।३९।।

अङ्गुष्ठेनेत्यनुवर्तते घ्राणाया नासिकाया दक्षिणे द्वारे स्रोतसि अङ्गुष्ठेन स्पृष्टे गर्भग्रहणं मासोत्तरं वदेद् ब्रूयात्। मासेन गर्भग्रहणं भविष्यतीति। वामे स्रोतसि स्पृष्टे अब्दौ अब्दद्वयेन गर्भग्रहणं भवति। एवं वामे कर्णे वर्षद्वयेनैव। माःशब्देन मास उच्यते। मासो द्विचतुर्घ्नः श्रुतिस्तन इति। श्रुतिः कर्णः। दक्षिणे कर्णच्छिद्रे स्पृष्टे मासो द्विघ्नो द्विगुणितः। मासद्वयेन गर्भग्रहणं भवति। वामे वर्षद्वयेन। स्तनस्पर्शने मासश्चतुर्घ्नश्चतुर्भिर्मासैः। स्तनद्वयस्पर्शने-नेति।।३९।।

अन्यदप्याह—

**वेणीमूले त्रीन् सुतान् कन्यके द्वे कर्णे पुत्रान् पञ्च हस्ते त्रयं च।**
**अङ्गुष्ठान्ते पञ्चकं चानुपूर्व्या पादाङ्गुष्ठे पार्ष्णियुग्मेऽपि कन्याम् ॥४०॥**

यदि 'मुझे कितनी सन्तान होगी' इस तरह के प्रश्नकाल में स्त्री केशपाश का स्पर्श करे तो तीन लड़के और दो लड़कियाँ, कान का स्पर्श करे तो पाँच लड़के, हाथ का स्पर्श करे तो तीन लड़के, कनिष्ठा अंगुलि का स्पर्श करे तो एक लड़का, अनामिका का स्पर्श करे तो दो लड़के, मध्यमा का स्पर्श करे तो तीन लड़के, तर्जनी का स्पर्श करे तो चार लड़के, अगूठे का स्पर्श करे तो पाँच लड़के और पाँव के अंगूठे का या दोनों एड़ियों का स्पर्श करे तो केवल एक कन्या कहनी चाहिये।।४०।।

वेणी केशकलापः। तन्मूले पृच्छायां स्पृष्टे त्रीन् सुतान् द्वे कन्यके जनयिष्यसीति वक्तव्यम्। कर्णे कर्णयुग्मे पुत्रान् पञ्च। हस्ते हस्युग्मे त्रयम्। कनिष्ठाङ्गुलेनाऽऽरभ्याङ्गुष्ठान्तं यावदानुपूर्व्या क्रमेण पुत्रपञ्चकं सूते। तत्र कनिष्ठास्पर्शने एकं पुत्रम्। सुतद्वयमनामास्पर्शने। मध्यमायां त्रीन्। तर्जन्यां चतुरः। अङ्गुष्ठे पञ्च। पादाङ्गुष्ठस्पर्शे पार्ष्णियुग्मेऽपि स्पृष्टे कन्यामेकां सूत इति।।४०।।

अन्यदप्याह—

**सव्यासव्योरुसंस्पर्शे सूते कन्यासुतद्वयम्।**
**स्पृष्टे ललाटमध्यान्ते चतुस्त्रितनया भवेत् ॥४१॥**

यदि पूर्वोक्त प्रश्नकाल में स्त्री दक्षिण ऊरु का स्पर्श करे तो दो लड़कियाँ, वाम ऊरु का स्पर्श करे तो दो लड़के, ललाट के मध्य का स्पर्श करे तो चार लड़कियाँ और ललाट के अन्त का स्पर्श करे तो तीन लड़कियाँ होती हैं।।४१।।

सव्यं दक्षिणमूरु, तत्संस्पर्शे कन्याद्वयं सुतद्वयं च जनयति। अपसव्ये वामेऽप्येवमेव। ललाटमध्यान्ते स्पृष्टे यथासंख्यम्। ललाटमध्ये स्पृष्टे चतुस्तनया चतुष्पुत्रा। ललाटान्ते स्पृष्टे त्रितनया भवेत् स्यादिति। तथा च पराशरः—

'तत्र जठरस्पर्शे गर्भिणीमेवमेव ब्रूयात्। अङ्गुष्ठेन नासास्रोतसि दक्षिणे कुर्याद् मासान्तरेण गर्भग्रहणम्। वामाद् द्विवर्षान्तरेण। कर्णच्छिद्रे मासद्वयेन। वामे वर्षद्वयेन। स्तनयोरङ्गुष्ठेनैव स्पर्शे चतुर्भिर्मासैः। पीठमर्दकं कृत्वा चानन्तरमुदरं कण्डूयेदग्रहस्तं हस्तेनाभिगृह्य वा पृच्छेद् भग्नलौहिकपिठरकुद्दालककुठारस्रुतिचलितपतितभग्नदर्शनशब्दे प्रादुर्भावे वा गर्भपतनं विन्द्यात्; तथान्नपानपुष्पफलपक्षिद्विचतुष्पदानामन्यद्रव्याणां पुंसंज्ञकानां दर्शनशब्दप्रादुर्भावे पुंजन्म विद्यात्। स्त्रीसंज्ञानां स्त्रीजन्म। नपुंसकाख्ये नपुंसकानाम्। पुंसंज्ञमङ्गं संस्पृश्य गर्भिणी पृच्छेत् पुञ्जन्म विन्द्यात्। स्त्रीसंज्ञानां स्त्रीजन्म। नपुंसकाख्येषु नपुंसकानाम्'।

अथ विशेषः—'वेणीमूलमभिगृह्य पृच्छेत्तदा द्वे कन्यके त्रीन् पुत्रान् जनयिष्यसीति

ब्रूयात्। ललाटमध्यं स्पृशन्ती चत्वार्यप्रत्यानि। ललाटान्तं त्रीणि। कर्णयोः संस्पर्शे पञ्चापत्यानि। दक्षिणोरुसंस्पर्शे, द्वौ पुत्रौ द्वे च कन्यके जनयिष्यसीति। वामस्य तिस्रः कन्या द्वौ पुत्रौ। पादाङ्गुष्ठस्य कन्यकैका। पाष्ण्योः कन्यकैकैवेति' इति।।४१।।

अथ गर्भिण्याः कस्मिन्नक्षत्रे जन्तुर्जन्म भविष्यतीति ज्ञानार्थमाह—

**शिरोललाटभ्रूकर्णगण्डं हनुरदा गलम्।**
**सव्यापसव्यस्कन्धश्च हस्तौ चिबुकनालकम् ॥४२॥**

**उरः कुचं दक्षिणमप्यसव्यं हृत्पार्श्वमेवं जठरं कटिश्च।**
**स्फिक्पायुसन्ध्यूरुयुगञ्च जानू जङ्घेऽथ पादाविति कृत्तिकादौ ॥४३॥**

'सन्तान किस नक्षत्र में उत्पन्न होगी' इस तरह के प्रश्नकाल में यदि स्त्री शिर, ललाट, भौं, कान, गाल, कनपटी, दाँत, गर्दन, दक्षिण स्कन्ध, वाम स्कन्ध, दोनों हाथ, ठोढ़ी, कण्ठ, छाती, दक्षिण स्तन, वाम स्तन, हृदय, दक्षिण बगल, वाम बगल, पेट, कमर, स्फिक् ( कुल्ला ) और गुदा की सन्धि, दक्षिण ऊरु, वाम ऊरु, जानु, जंघा और पाँव का स्पर्श करे तो क्रम से कृत्तिका आदि नक्षत्र में जन्म कहना चाहिये। जैसे शिर का स्पर्श करे तो कृत्तिका, ललाट का स्पर्श करे तो रोहिणी, भौं का स्पर्श करे तो मृगशिरा इत्यादि में जन्म कहना चाहिये।।४२-४३।।

सूत इत्यनुवर्तते। पृच्छासमये गर्भिण्याः शिरःप्रभृतिसंस्पर्शे कृत्तिकादौ नक्षत्रे जन्म विन्द्यात्। तत्र शिरो मूर्धा तत्संस्पर्शे कृत्तिकानक्षत्रे जन्म भवति गर्भिणी सूते। एवं ललाटे रोहिण्याम्। भ्रुवौ मृगशिरसि। कर्णयोरार्द्रायाम्। गण्डयोः पुनर्वसौ। हन्वोस्तिष्ये। रदा दन्तास्तेष्वाश्लेषायाम्। गले ग्रीवायां मघासु। सव्ये दक्षिणस्कन्धस्पर्शे पूर्वफल्गुन्याम्। अपसव्ये वामस्कन्धसंस्पर्शे उत्तरफल्गुन्याम्। हस्तयोः संस्पर्शे हस्ते। चिबुके आस्याधः चित्रायाम्। नालके कण्ठे स्वातौ। उरसि वक्षसि विशाखायाम्। कुचौ स्तनौ तत्र दक्षिणस्तनसंस्पर्शने अनुराधायाम्, अपसव्ये वामे ज्येष्ठासु। हृदि मूले। पार्श्वद्वयमेवं प्राग्वत्। तेन दक्षिणे पार्श्वे पूर्वाषाढायाम्। वाम उत्तराषाढायाम्। जठरे श्रवणे। कट्यां धनिष्ठायाम्। स्फिग्गुदयोः सन्धिस्पर्शने शतभिषजि। दक्षिणोरुस्पर्शने पूर्वभद्रपदायाम्। वामोरुस्पर्शने उत्तरभद्रपदायाम्। जान्वो रेवत्याम्। जङ्घयोरश्विन्याम्। पादयोर्भरण्यामिति। तथा च पराशरः—

'शिरसि संस्पृष्टे कृत्तिकासु जन्म विन्द्यात्। ललाटे रोहिण्याम्। भ्रुवोर्मृगशिरसि। कर्णयोरार्द्रायाम्। गण्डयोः पुनर्वसौ। हन्वोस्तिष्ये। दन्तयोराश्लेषासु। ग्रीवायां मघासु। दक्षिणांसे प्राक्फल्गुन्याम्। वामांसे उत्तरफल्गुन्याम्। हस्ते हस्तयोः। चिबुके चित्रायाम्। स्वातौ नालके। उरसि विशाखायाम्। दक्षिणस्तेऽनुराधासु। ज्येष्ठासु वामे। हृदि मूले। दक्षिणपार्श्वे प्रागषाढासु। उत्तराषाढासु परपार्श्वे। जठरे श्रवणे। श्रोण्यां धनिष्ठासु। स्फिग्गुदयोर्वारुणे। दक्षिणोरुणा प्राक्प्रोष्ठपदायाम्। वामेनोत्तरपदायाम्। जानुभ्यां पौष्णे। जङ्घयोरश्विन्याम्। पादयोर्भरण्यामिति'।।४२-४३।।

अथोपसंहारार्थमाह—

**इति निगदितमेतद् गात्रसंस्पर्शलक्ष्म**
**प्रकटमभिमताप्त्यै वीक्ष्य शास्त्राणि सम्यक् ।**
**विपुलमतिरुदारो वेत्ति यः सर्वमेत-**
**न्नरपतिजनताभिः पूज्यतेऽसौ सदैव ॥४४॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामङ्ग-**
**विद्याध्याय एकपञ्चाशत्तमः ॥५१॥**

सब शास्त्रों को अच्छी तरह देख कर अभीष्ट-सिद्धि के लिये यह अति स्पष्ट 'अवयव-स्पर्शन-लक्षण' कहा गया है। जो अतिशय बुद्धिमान् उदार दैवज्ञ इसको पूर्ण रूप से जान लेता है, वह सदा राजा और प्रजा से पूजित होता रहता है।।४४।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायामङ्गविद्याध्याय एकपञ्चाशत्तमः ॥५१॥**

इतिशब्द उपसंहारे प्रकारे वा। एतद्गात्रसंस्पर्शलक्ष्म अवयवस्पर्शनलक्षणं प्रकटमतिस्फुटं विरचितम्। किं कृत्वा सम्यगागमतः शास्त्राणि गर्गपराशरादिभिर्विरचितानि वीक्ष्य दृष्ट्वा। किमर्थम्? अभिमताप्त्यै अभीष्टार्थसिद्धये। यो विपुलमतिर्विस्तीर्णबुद्धिरुदारो ह्यलब्धं सर्वं निरवशेषमेतद्वेत्ति जानाति असौ नरपतिभिर्नृपैर्जनताभिर्जनसमूहैर्दैवज्ञः सर्वदैव सर्वकालं पूज्यते अभ्यर्च्यत इति।।४४।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहितावृतावङ्गविद्या**
**नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥**

# अथ पिटकलक्षणाध्यायः

अतः परमपि केचित् पिटकलक्षणं पठन्ति। तदप्यस्माभिर्व्याख्यायते। तत्र ब्राह्मणादीनां वर्णानां पिटकलक्षणमाह—

**सितरक्तपीतकृष्णा विप्रादीनां क्रमेण पिटका ये।**
**ते क्रमशः प्रोक्तफला वर्णानां नाग्रजातानाम् ॥१॥**

ब्राह्मण आदि चार वर्णों को क्रम से सफेद, लाल, पीली और काली फुन्सी आगे कथित फल देने वाली होती है, किन्तु ब्राह्मणों को छोड़ कर अर्थात् केवल सफेद फुन्सी ब्राह्मणों को; सफेद और लाल क्षत्रियों को; सफेद, लाल और पीली वैश्यों को तथा सफेद लाल, पीली और काली फुन्सी शूद्रों को फल देने वाली होती है।।१।।

विप्रादीनां ब्राह्मणादीनां चतुर्णां वर्णानां क्रमेण परिपाट्या पिटकाः सितरक्तपीतकृष्णाः श्वेतलोहितहारिद्रकृष्णाः। ब्राह्मणानां सिताः, क्षत्रियाणां रक्ताः, वैश्यानां पीताः, शूद्राणां कृष्णा इति। एवं क्रमेण ये पिटका उक्तास्ते क्रमशोऽनुक्रमेण वर्णानां प्रोक्तफलाः कथितफलाः, किन्तु नाग्रजातानां ब्राह्मणवर्जितानाम्। एतदुक्तं भवति—सिता ब्राह्मणानां फलदा नान्ये। सितरक्ताः क्षत्रियाणां नान्ये। सितरक्तपीता वैश्यानां नान्ये। सितरक्तपीतकृष्णाः शूद्राणामिति।।१।।

अधुना विशेषेण फलमाह—

**सुस्निग्धव्यक्तशोभाः शिरसि धनचयं मूर्ध्नि सौभाग्यमारा-**
**द्दौर्भाग्यं भ्रूयुगोत्थाः प्रियजनघटनामाशु दुःशीलतां च।**
**तन्मध्योत्थाश्च शोकं नयनपुटगता नेत्रयोरिष्टदृष्टिं**
**प्रव्रज्यां शङ्खदेशेऽश्रुजलनिपतनस्थानगा रान्ति चिन्ताम् ॥२॥**

यदि सुन्दर, निर्मल और स्पष्ट कान्ति वाली फुन्सी शिर में हो तो धनसञ्चय, मस्तक में हो तो शीघ्र सौभाग्य, भ्रूयुगल में हो तो दौर्भाग्य, भ्रूमध्य में हो तो शीघ्र इष्ट बन्धुओं का संयोग और दुःशीलता, नेत्रपुट में हो तो शोक, दोनों नेत्रों में हो तो इष्टदर्शन, शंखस्थान में हो तो प्रव्रज्या ( संन्यास ) तथा अश्रुपात के स्थान में हो तो चिन्ता प्रदान करती है।।२।।

शिरसि मूर्धनि पिटकाः सुस्निग्धा अरूक्षास्तथा व्यक्तशोभा व्यक्ता स्फुटा शोभा कान्तिर्येषां ते तथाभूता धनचयं वित्तसमूहं कुर्वन्ति। मूर्ध्नि मुखपृष्ठे केशान्ते आराच्छीघ्रमेव सौभाग्यम्। भ्रूयुगोत्था भ्रूयुगलोत्पन्ना दौर्भाग्यं दुर्भाग्यत्वम्। तन्मध्योत्था भ्रूसङ्गमजनिता प्रियजनघटनामिष्टबन्धुसंयोगं दुःशीलतां दुष्टशीलत्वं चाशु शीघ्रमेव कुर्वन्ति। नयनपुटगता अक्षिकोशजाताः शोकं ददति। नेत्रयोश्चक्षुषोरिष्टदृष्टिमिष्टदर्शनम्। शङ्खदेशे शङ्खस्थाने

प्रव्रज्याम्। अश्रुजलनिपतनस्थानगा अश्रुजलं यत्र निपतति तत्र गताश्चिन्तां रान्ति ददति। तथा च पराशरः—

'अथ पिटकाः सितरक्तपीतकृष्णा द्विजादीनां वर्णानां क्रमात् स्थानवर्णविशेषणोत्तरोत्तरफलदा भवन्ति। तत्र मूर्ध्नि सुव्यक्तः सुस्निग्धः सुवर्णोऽभिषेकागमनं कुर्यात्। शिरसि धनागमम्। केशान्ते सौभाग्यम्। ललाटे धनसञ्चयम्। भ्रुवोर्दौर्भाग्यम्। सङ्गमे दौःशील्यमिष्टसङ्गमं च। नेत्रपुटयोः शोकम्। नेत्रयोरिष्टदर्शनम्। शङ्खदेशे प्रव्रज्याम्। चिन्तामश्रुपाते' इति।।२।।

अन्यदप्याह—

**घ्राणागण्डे वसनसुतदाश्चौष्ठयोरन्नलाभं**
**कुर्युस्तद्वच्चिबुकतलगा भूरि वित्तं ललाटे।**
**हन्वोरेवं गलकृतपदा भूषणान्यन्नपाने**
**श्रोत्रे तद्भूषणगणमपि ज्ञानमात्मस्वरूपम्।।३।।**

यदि नासिका में फुन्सी हो तो वस्त्रलाभ, गाल में हो तो पुत्रलाभ, ओंठ और ठोढ़ी में हो तो अन्नलाभ, ललाट तथा हनु में हो तो अधिक धनलाभ, कण्ठ में हो तो भूषण, अन्न और पान वस्तु का लाभ तथा कान में हो तो कान के आभूषणों का लाभ और अध्यात्म ज्ञान होता है।।३।।

घ्राणागण्डे यथाक्रमं वसनसुतदाः। तेन घ्राणायां नासादेशे वसनदा वस्त्रलाभप्रदाः पिटकाः। गण्डे सुतदाः पुत्रदाः। ओष्ठयोरन्नलाभमन्नागमं भोजनावाप्तिं कुर्युः। चिबुकतलमास्याधोभागः। तत्र गताः स्थितास्तद्वदन्नदा एव। ललाटे भूरि वित्तं प्रभूतं धनम्। हन्वोरेवं तत्र स्थिताः प्रभूतधनदा एव। गलकृतपदा गले कण्ठे कृतं पदं यैः। तत्र स्थिता इत्यर्थः। भूषणानि आभरणानि अन्नपाने च शोभने ददति। श्रोत्रे कर्णप्रदेशे। तद्भूषणगणमपि। तदिति कर्णपरामर्शस्तद्भूषणगणस्य कर्णालङ्कारसमूहस्यागमं तथा आत्मस्वरूपमध्यात्मज्ञानं प्राप्नोतीति। तथा च पराशरः—

'गण्डे सुतलाभम्। नासावंशे वस्त्रलाभम्। चिबुकाधरेष्वोष्ठाधरेष्वन्नम्। अभिहन्वोर्धनागमम्। गले चान्नपानमाभरणं च। शिरः सन्धौ ग्रीवायां चोपघातं शस्त्रेण कर्णयोस्तद्भूषणमात्मश्रवणं च' इति।।३।।

अन्यदप्याह—

**शिरःसन्धिग्रीवाहृदयकुचपार्श्वोरसि गता**
**अयोघातं घातं सुततनयलाभं शुचमपि।**
**प्रियप्राप्तिं स्कन्धेऽप्यटनमथ भिक्षार्थमसकृ-**
**द्विनाशं कक्षोत्था विदधति धनानां बहुमुखम्।।४।।**

यदि शिर की सन्धि, गर्दन, हृदय, स्तन, बगल और छाती में फुन्सी हो तो क्रम से

शस्त्रपीड़ा, आघात, पुत्रलाभ, शोक और प्रिय वस्तु की प्राप्ति होती है तथा कन्धे में हो तो भिक्षा के लिये बार-बार भ्रमण एवं कोख में हो तो धनों का अनेक तरह से नाश होता है।।४।।

शिर:सन्ध्यादिषु गता: पिटका यथाक्रममयोघातादिकं कुर्वन्ति। तेन शिर:सन्धावयोघातं शस्त्रपीडाम्। ग्रीवायां घातमुपतापम्। हृदये सुतलाभम्। कुचयो: स्तनयोश्च तनयलाभं पुत्रप्राप्तिम्। पार्श्वयो: शुचमपि शोकम्। उरसि वक्षसि गता: प्रियप्राप्तिमिष्टलाभम्। स्कन्धे अंसेऽपि असकृत् पुन: पुन: भिक्षार्थमटनं परिभ्रमणम्। अथशब्दश्चार्थे। कक्षोत्था: कक्षयो: सम्भूता धनानां वित्तानां बहुमुखमनेकप्रकारं विनाशं क्षयम्। विदधति कुर्वन्ति।।४।।

अन्यदप्याह—

**दु:खशत्रुनिचयस्य विनाशं पृष्ठबाहुयुगजा रचयन्ति।**
**संयमं च मणिबन्धनजाता भूषणाद्यमुपबाहुयुगोत्था: ।।५।।**

यदि पीठ में फुन्सी हो तो दु:खसमूह का और बाँह में हो तो शत्रुसमुदाय का नाश करती है। मणिबन्ध में हो तो हाथों का बन्धन और दोनों बाहु के समीप हो तो भूषण आदि ( अन्न, वस्त्र ) का लाभ कराती है।।५।।

पृष्ठबाहुयुगजा यथाक्रमं दु:खशत्रुनिचयस्य विनाशं रचयन्ति कुर्वन्ति। तत्र पृष्ठजाता दु:खनिचयस्य दु:खसमूहस्य विनाशं कुर्वन्ति। बाहुयुगजा: शत्रुनिचयस्यारिसमूहस्य विनाशम्। मणिबन्धनजाता: प्रकोष्ठस्थानोत्पन्ना: संयमं हस्तबन्धं कुर्वन्ति। उपबाहुयुगोत्था: प्रबाह्वोर्जाता भूषणाद्यमाभरणवस्त्रान्नदानं कुर्वन्ति। तथा च पराशर:—

'पार्श्वयो: शोकम्। उरसीष्टसङ्गमम्। स्कन्धयोर्भैक्ष्यचर्याम्। कक्षयोरर्थक्षयम्। हृत्स्तनयो: पुत्रलाभम्। पृष्ठे दु:खशमनम्। अरिविनाशं बाह्वो:। प्रबाह्वोराभरणम्। मणिबन्धने नियमनम्' इति।।५।।

अन्यदप्याह—

**धनाप्तिं सौभाग्यं शुचमपि कराङ्गुल्युदरगा:**
**सुपानान्नं नाभौ तदध इह चौरैर्धनहृतिम्।**
**धनं धान्यं बस्तौ युवतिमथ मेढ्रे सुतनयान्**
**धनु सौभाग्यं वा गुदवृषणजाता विदधति ।।६।।**

यदि हाथ में फुन्सी हो तो धनलाभ, अंगुलियों में हो तो सौभाग्य, पेट में हो तो शोक, नाभि में हो तो सुन्दर अन्न-जल का लाभ, नाभि के नीचे हो तो चोरों से धन का हरण, बस्ति ( नाभि और लिंग के मध्य ) में हो तो धन-धान्य का लाभ, लिंग में हो तो स्त्री और सुन्दर पुत्रों की प्राप्ति, गुदा में हो तो धनलाभ तथा अण्डकोश में हो तो सौभाग्य प्रदान करती है।।६।।

कराङ्गुल्युदरगा: पिटका यथाक्रमं धनाप्त्यादिकं विदधति कुर्वन्ति। तत्र करगता

धनाप्तिं वित्तागमम्। अङ्गुलिगताः सौभाग्यम्। उदरगताः शुचं शोकम्। नाभौ सुपानान्नं शोभनमन्नपानम्। तदधो नाभेरधोभागे इहास्मिन् पिटकलक्षणे चौरैस्तस्करैर्धनहृतिं वित्तहरणम्। बस्तौ धनं धान्यम्। मेढ्रे शिश्ने। युवतिं स्त्रियम्। सुतनयान् शोभनपुत्रान् विदधति। धनं सौभाग्यं वा गुदवृषणजाताः, गुदजाता अपानस्थानोद्भवा धनं वित्तम्। वृषणजाताः सौभाग्यमिति। तथा च पराशरः—

'पाणौ धनागमम्। सौभाग्यमङ्गुलिषु। शोकमुदरे। अन्नपानावाप्तिं च नाभौ। चौरैरर्थहरणं तदधरे। धनधान्यावाप्तिं बस्तौ। सौभाग्यमर्थलाभं च वृषणयोः। पुत्रजन्म स्त्रीलाभं मेहने। गुदे सौभाग्यम्' इति।।६।।

अन्यदप्याह—

**ऊर्वोर्यानाङ्गनालाभं जान्वोः शत्रुजनात् क्षतिम्।**
**शस्त्रेण जङ्घयोर्गुल्फेऽध्वबन्धक्लेशदायिनः ।।७।।**

यदि ऊरु में फुन्सी हो तो वाहन और स्त्री का लाभ, ज़ानु में हो तो शत्रुओं से क्षति, जांघ में हो तो शस्त्र से विनाश तथा गुल्फ ( टखना = पाँव की गांठी ) में हो तो मार्ग और बन्धन में कष्ट देती है।।७।।

ऊर्वोर्यानलाभं वाहनाप्तिम्, अङ्गनालाभं स्त्रीप्राप्तिं च ददति। जान्वोः शत्रुजनादरिलोकात् क्षतिं विनाशम्। जङ्घयोः शस्त्रेण विनाशम्। गुल्फे स्थिता अध्वनि पथि बन्धने च क्लेशदायिनः कष्टप्रदा भवन्ति। तथा च पराशरः—

'यानाङ्गनालाभमूर्वोः। जान्वोरुपरि रिपुघातम्। शस्त्रेण विनाशम्। जङ्घयोर्गुल्फयोरध्व-बन्धपरिक्लेशागमः' इति।।७।।

अन्यदप्याह—

**स्फिक्पार्ष्णिपादजाता धननाशागम्यगमनमध्वानम्।**
**बन्धनमङ्गुलिनिचयेऽङ्गुष्ठे च ज्ञातिलोकतः पूजाम् ।।८।।**

यदि स्फिक् ( कुल्ला ) में फुन्सी हो तो धननाश, एड़ी में हो तो अगम्य स्थान में गमन, पाँव में हो तो भ्रमण, अंगुलियों में बन्धन और अंगूठे में हो तो बन्धुओं से पूजा-सत्कार की प्राप्ति कराती है।।८।।

स्फिक्पार्ष्णिपादजाताः पिटका यथासङ्ख्यं धननाशागम्यगमनमध्वानं कुर्वन्ति। तत्र स्फिक्पार्ष्णिजाता धननाशागम्यगमनम्। पादजाता अध्वानम्। अङ्गुलिनिचयेऽङ्गुलिसमूहे बन्धनम्। अङ्गुष्ठे ज्ञातिलोकतो बन्धुजनात् पूजामाप्नोति लभते। तथा च पराशरः—

'स्पिजोरर्थहरणम्। पाष्ण्योंरगम्यगमनम्। पादयोरध्वगमनम्। नियमनमङ्गुल्याम्। अङ्गुष्ठेन जातिपूजाम्' इति।।८।।

अत्रैव विशेषफलमाह—

**उत्पातगण्डपिटका दक्षिणतो वामतस्त्वभीघाताः।**
**धन्या भवन्ति पुंसां तद्विपरीताश्च नारीणाम् ।।९।।**

उत्पात ( अंगस्पन्दन ), गण्ड ( एक प्रकार की फुन्सी ) और फुन्सी दक्षिण में आघात तथा वाम में पुरुषों के शुभ होते हैं। इसके विपरीत स्त्रियों के; जैसे—उत्पात, गण्ड और पिटक वाम में आघात तथा दक्षिण में शुभ होते हैं।।९।।

अङ्गस्पन्दनमुत्पात:। गण्डपिटकौ प्रसिद्धौ। एते पुंसां पुरुषाणां दक्षिणतो धन्या: शुभा भवन्ति। दक्षिणशरीरार्धभाग इत्यर्थ:। अभीघाता: प्रहारा वामतो धन्या:। नारीणां स्त्रीणां तद्विपरीताश्च धन्या:। उत्पातगण्डपिटका वामतो दक्षिणतोऽभीघाता इति।।९।।

अथान्येषामतिदेशार्थमाह—

**इति पिटकविभाग: प्रोक्त आमूर्धतोऽयं**
**व्रणतिलकविभागोऽप्येवमेव प्रकल्प्य: ।**
**भवति मशकलक्ष्मावर्तजन्मापि तद्व-**
**न्निगदितफलकारि प्राणिनां देहसंस्थम् ॥१०॥**

**इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पिटकलक्षणं**
**नामाध्यायो द्विपञ्चाशत्तम: ॥५२॥**

इस तरह शिर से लेकर प्रत्येक अंग की फुन्सियों के फल कहे गये हैं। इसी तरह व्रण और तिल के फल की भी कल्पना करनी चाहिये तथा प्राणियों के शरीर में मशक, चिह्न और रोमावर्त्तजन्य फल भी पूर्वोक्तानुसार ही प्राप्त होते हैं।।१०।।

**इति 'विमला' हिन्दीटीकायां पिटकलक्षणाध्याय: द्विपञ्चाशत्तम: ॥५२॥**

इत्येवं प्रकार: पिटकानां विभागो मया आमूर्धत आमस्तकात् प्रोक्त: कथित:। व्रणानां तिलकानां च विभागोऽप्येवमेव प्रकल्प्यश्चिन्तनीय:। येष्वङ्गेषु यत्फलं पिटकानां प्रोक्तं तदेव व्रणतिलकविभागे ज्ञेयम्। मशक: कृष्णो बिन्दु:। लक्ष्म प्रसिद्धम्। स्थाने लोम-निचय आवर्तो लोमावर्त:। मशकलक्ष्मावर्तसम्भवमपि प्राणिनां सत्त्वानां देहसंस्थं शरीरेऽव-संस्थं तद्वत्तेनैव प्रकारेण निगदितफलकारि भवति। पिटकोक्तं फलं प्रयच्छतीत्यर्थ:।।१०।।

**इति श्रीभट्टोत्पलविरचितायां संहिताविवृतौ पिटक-**
**लक्षणं नाम द्विपञ्चाशत्तमोध्याय: ॥५२॥**

**इति पूर्वार्द्धं**

# श्लोकानुक्रमणी


| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| अंशुविरोधे युद्धानि | २९५ |
| अकलुषांशुजटिलः पृथुमूर्तिः | १८३ |
| अग्नयः पितरस्तारा | ५७५ |
| अग्रतः पृष्ठतो वापि | ३८९ |
| अङ्गारगैरिकाद्यैः | ५४० |
| अङ्गिरसो ज्ञानयुता | २५५ |
| अङ्गुलशतार्धमुत्तम | ५८५ |
| अङ्गुष्ठेन भ्रूदरं वाङ्गुलिं | ६१० |
| अच्छिन्नरज्जुं दृढकाष्ठमातृकं | ४९३ |
| अच्छिन्नः परिघो वियच्च | ५५५ |
| अच्छिन्नमवनिगाढं | ४४४ |
| अजोऽव्ययः शाश्वत एकरूपो | ४९२ |
| अणुरपटुमयूखो नीचगोऽन्यैर्जितो | ३१९ |
| अण्डजहा रविजो यदि | २१३ |
| अतसी वेतसपुष्पैः | ३९२ |
| अतिमुक्तककुन्दाभ्यां | ३९२ |
| अतिवृद्धिः सस्यानां | ५२७ |
| अतिवृष्ट्युल्कादण्डान् | ४७१ |
| अत्युत्तमोत्तमोनं | १९८ |
| अत्राक्रान्ते मृत्युः | १९१ |
| अत्रारोहेच्छूलिक | १९२ |
| अत्रारोहेद् द्रविडा | १८९ |
| अत्रोदितमारोहेद् | १९८ |
| अथ तु भुजगेन्द्ररूपः | १०१ |
| अथ दक्षिणेन लङ्का | २६० |
| अथ पूर्वस्यामञ्जन | २५८ |
| अथ मधुरसुरभिफलकुसुम | ५११ |
| अथवाञ्जनशैलशिला | ३५५ |
| अथवा समुद्रतीरे | ५६१ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| अथवा स्पृशति यदङ्गं | ५८८ |
| अथाङ्गान्यूर्वोष्ठ | ५९८ |
| अधिराज्यार्थिना राज्ञः | ५८० |
| अनभिहततूर्यनादः | ५३५ |
| अनलभयमनलवर्णं | १६८ |
| अनवरतसञ्चयवहं | ४५४ |
| अनिमित्तभङ्गचलन | ५१९ |
| अनियतचारः खलु चेद् | १०१ |
| अनिलोऽनिलेन निहितः | ४१० |
| अनुगच्छति पृष्ठतः शशी | ३६१ |
| अनुलोमगेऽभ्रवृक्षे | ४०१ |
| अनेकवर्णाकृतिखे प्रकाशते | ४५० |
| अनेनैव विधानेन | ५८१ |
| अन्तःस्थेऽङ्गे स्वजन उदितो | ६०६ |
| अन्तरङ्गमवमुच्य बाह्यग | ६०६ |
| अन्तर्धाय हिरण्यं | ५७२ |
| अन्तर्वेदीं सरयूं | १२९ |
| अन्नं जगतः प्राणाः | ३२६ |
| अन्यत्तौ सप्ताहं | ५२९ |
| अन्यानपि च स देशान् | २२९ |
| अन्येनात्राक्रान्ते | १९० |
| अन्यैश्च कुम्भैनृपनामचिह्नैः | ३५९ |
| अपचारेण नराणा | ५१६ |
| अपरस्यां चलकेतुः | २२९ |
| अपरस्यां मणिमान् मेघ | २६२ |
| अपरस्यां स्वात्याद्यं | १९३ |
| अपरेण पद्मकेतुः | २३५ |
| अपरेऽहनि प्रभाते | ५६५ |
| अपसर्पणं नदीनां | ५३१ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| अपसव्ये संग्रामः | ३९६ |
| अप्यर्णवस्य पुरुषः | ५२ |
| अप्रदीपा यथा रात्रिः | ६० |
| अप्राप्यमकरमर्कों | ६९ |
| अभिजिच्छ्रवणधनिष्ठा | ४१६ |
| अभिभवति यतः पुरं | ४३४ |
| अभिहितविपरीतलक्षणे | २९१ |
| अभ्यर्चिता न परुषं | ५०० |
| अभ्युच्छ्रायादेकं यदि | ९० |
| अभ्यर्चितापणगृहं | ४८३ |
| अभ्युन्नता वियति संहत | ३१२ |
| अमलवपुरवक्रमण्डलः | ८२ |
| अमृतास्वादविशेषात् | ९९ |
| अम्बरमद्रकमालव | २६३ |
| अम्बरमध्याद बह्व्यो | ४२८ |
| अयं विशेषोऽभिहितो | ३०३ |
| अरभङ्गे बलभेदो | ४८२ |
| अरुणकिरणानुरूपे | १२६ |
| अर्कग्रहात्तु शशिनो | १४२ |
| अर्कात् सिते द्वितीये | ४६० |
| अर्कोदयेऽधिकरणिक | ४५६ |
| अर्कोदये विजृम्भति | ४५४ |
| अर्थस्थाने क्रूरः | ४६२ |
| अर्द्धोदितोपरक्तो | ११५ |
| अर्द्धोन्नते च लाङ्गल | ८७ |
| अर्धास्तमयात् सन्ध्या | ५५४ |
| अर्धास्तमितानुदितात् | ३९५ |
| अर्धेन यदा तैलं | ५२७ |
| आर्यम्णं हौतभुजं | १५२ |
| अवनत्याऽर्कं ग्रासो | १०८ |
| अवमर्दनमिति निःशेष | १२४ |
| अवयवमपि स्पृष्ट्वा | ६०८ |
| अविकृतसलिलनिपातैः | १४० |
| अविदित्वैव यच्छास्त्रं | ६३ |
| अविरतजनरावं | ४९४ |
| अव्युच्छिन्ना रेखा | ९० |
| अशनिः स्वनेन महता | ४२५ |
| अशुभनिमित्तोत्पत्तौ | ५८४ |
| अशुभमपि विलोक्य खञ्जनं | ५१४ |
| अशुभाकृतिघनगन्धर्व | ४०१ |
| अश्मकवैदर्भाणां | १९५ |
| अश्विन्यामश्मकपं | २३७ |
| अश्विन्यामश्वहराः | २७५ |
| अष्टमराशाविक्षुः | ४६७ |
| अष्टमराशिगतेऽर्के | ४६० |
| अष्टावष्टाविंशति | ५७३ |
| अष्टाश्रि नीलरक्तं | ४८९ |
| असिकेशं भौजङ्गे | २३७ |
| असितघननिरुद्धमेव वा | ३५५ |
| असितविचित्रनील | ८१ |
| असिते सितेन निहिते | ३०३ |
| असिमुशलं सप्तदशात् | १४५ |
| अस्तं याते नीचां | ४५६ |
| अहतक्षौमनिवसनं | ५७२ |
| अहताम्बरसंवीतां | ४८३ |
| अहिदेवे कृत्रिम | २६९ |
| अहिवरुणपुरन्दर | २०६ |
| अहुताशेऽनलरूपं | २१५ |
| आगच्छन्तु सुराः सर्वे | ५६४ |
| आग्नेये सितकुसुमा | २६७ |
| आग्नेयेऽम्बुदनाशः | ४१५ |
| आग्नेय्यां दिशि कोशल | २५९ |
| आग्नेय्यां दिशि चन्द्रमा | ३६२ |
| आग्नेय्यामपगमनं | १३६ |
| आजे तस्करपशुपालहिंस्र | २७४ |
| आज्यं तेजः समुद्दिष्टं | ५७३ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| आत्मसुतकोशवाहन | ५१८ |
| आदावनडुहश्चर्म | ५७१ |
| आदित्यहस्ताभिजिदा | २७५ |
| आदित्या वसवो रुद्रा | ५७४ |
| आदित्ये पाञ्चनद | २०७ |
| आदित्ये सत्यौदार्य | २६८ |
| आद्यं द्वितीयं च शेभे तु | १७७ |
| आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो | १७४ |
| आद्यः प्लवङ्गो नवमे युगेऽब्दः | १८० |
| आद्योऽङ्गिराः श्रीमुखभावसाह्वौ | १७६ |
| आधूम्रया तु शिखया | २३१ |
| आनर्ताबुदपुष्कर | २८७ |
| आपोहिष्ठातिसृभि | ५७६ |
| आप्येऽङ्गवङ्गकौशल | २१० |
| आप्ये मृदवो जलमार्ग | २७२ |
| आप्ये सलिलजपीडा | १९७ |
| आब्रह्मादिविनिःसृतम् | ४ |
| आभीराञ्छबरान् सपह्लवान् | ११९ |
| आमध्याह्नाद्राजो | ४५६ |
| आम्रैः क्षेमं भल्लात | ३९३ |
| आयुधज्वलनसर्पणस्वनाः | ५२३ |
| आयुधभृन्नररूपं | ४०२ |
| आयुष्यं वर्चस्यं | ५७७ |
| आरक्षकनटनर्तक | २८२ |
| आर्कं पयो हुडुविषाणमषी | ५९३ |
| आर्द्रं द्रव्यं स्पृशति यदि वा | ३८१ |
| आर्यम्णं हौतभुजं | १५२ |
| आर्यम्णे मार्दवशौच | २७० |
| आलभ्य मन्त्रेण महा | ३५० |
| आवन्तिका जनपदाः | १२९ |
| आवन्तोऽथानर्तो | २६६ |
| आवरणं महदिन्दोः | १०४ |
| आवर्त इति निशार्धे | २३५ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| आवर्षात् प्रथमे दर्शने | ५१४ |
| आवाहितेषु कृत्वा | ५६४ |
| आवाह्यैवं ततः सर्वा | ५६४ |
| आशाग्रहोपघाते | ४३१ |
| आश्रमतोरणमूलं | ५०४ |
| आश्लेषार्द्धाद्दक्षिण | ६७ |
| आश्लेषासु भुजङ्गम | १९६ |
| आश्वयुजेऽब्देऽजस्रं | १६७ |
| आश्विनवारुणमूलानि | १५२ |
| आषाढपर्वण्युदपानवप्र | १३४ |
| आषाढपौर्णमास्यां तु | ३७४ |
| आषाढीपर्वतकाले | ३७७ |
| आषाढे जायन्ते | १६६ |
| आषाढ्यां समतुलिता | ३६८ |
| आसन्नक्रमयोगात् | २९३ |
| आसन् मघासु मुनयः | २५२ |
| आसीत्तमः किलेदं | ४ |
| आहिर्बुध्न्ये फलमूल | १९८ |
| आहिर्बुध्न्ये विप्राः | २७४ |
| इक्षुमतीत्यथ तस्कर | २७८ |
| इक्ष्वाकुरलकनाथश्च | २३८ |
| इच्छामि प्रष्टुं भण | ६०५ |
| इति निगदितमेतद् | ६१४ |
| इति पिटिकविभागः | ६१९ |
| इति विबुधविकारे | ५२१ |
| इत्येतैश्चान्यैश्चा | ५७६ |
| इदमौशनसं च शस्त्रपानं | ५९३ |
| इन्द्रध्वजनिर्दिष्टा | ५७८ |
| इन्द्राग्निदैवते रक्त | २७१ |
| इन्द्राग्निदैवं दशमं युगं | १८० |
| इन्द्रर्कमण्डलाकृतिः | ९९ |
| इन्दीवरासन्नसितोत्पलान्विता | २४६ |
| इन्दोः पयोदविगमोपहितां | २४६ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| इष्टद्रव्याकारः | ४८५ |
| इष्टस्थाने सौम्या | ४६९ |
| ईतिप्राया प्रचुरपवना | १७८ |
| ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजाले | २४८ |
| उक्तं यदुत्तिष्ठति शक्रकेतौ | ४८७ |
| उक्तविपरीतरूपः | २१८ |
| उक्तविपरीतलक्षण | २९९ |
| उत्तरतः कैलासो | २६३ |
| उतरतः स्वसुतस्य | ३०६ |
| उत्तरदिगादिपतिता | ४२९ |
| उत्तरमयनमतीत्य | ६९ |
| उत्तरमार्गे स्पष्टमयूखाः | ५५० |
| उत्तरमार्गो याम्यादि | १८७ |
| उत्तरवीथिगता द्युतिमन्तः | ५४८ |
| उत्तररवीथिषु शुक्रः | १८८ |
| उत्पतद्भिरिव खं | ५०७ |
| उत्पातगण्डपिटिका | ६१८ |
| उत्पातान् गणितविवर्जितोऽपि | ५४५ |
| उदगादिपुरोहित | ४४९ |
| उदगायतो महान् | २२७ |
| उदगारोग्यसुभिक्षक्षेम | १६८ |
| उदपानयन्त्रगान्धर्व | २८२ |
| उदयगिरिभद्रगौडक | २५८ |
| उदयति सततं यदा शिखी | ५५२ |
| उदयन्नेव सुभिक्ष्यं | २३३ |
| उदयशिखरिसंस्थो | ३८१ |
| उदयसमये यः स्निग् | २९० |
| उदये च मुनेरगस्त्य | २४५ |
| उदयेऽस्ते वा भानो | ५५४ |
| उदितं यदि शीतदीधितिम् | ३६१ |
| उदितः पश्चादेकः | ३२३ |
| उद्गारोग्यसुभिक्ष | १६८ |
| उद्यानदेवतालय | ४८० |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| उद्यानसलिलकामुक | २८५ |
| उद्युक्तान् सह वाहनै | ९५ |
| उद्योतिनः प्रसन्ना | ३९८ |
| उद्वृत्तदस्युगणभूरिरणाकुलानि | ३१८ |
| उन्नतमीषच्छृङ्गं | ८७ |
| उन्मत्तानां च या गाथाः | ५४५ |
| उपरिचरवसुप्रवर्तितं | ४९७ |
| उपरिचरस्यामरपो | ४७८ |
| उपला विना जलधरैः | ५२९ |
| उपहतदाम्भिकराक्षस | २८८ |
| उभयपार्श्वगतौ परिधी | ४०३ |
| उरः कुचं दक्षिणमप्यसव्यं | ६१३ |
| उल्कया यदा शशी | ९६ |
| उल्कया विनिहतः शिखि- | २५० |
| उल्कानिपातास्तडितोऽशनिश्च | ३५८ |
| उल्का पक्षेण फलं | ४२४ |
| उल्काभिताडितशिखः | २३९ |
| उल्का मन्त्रिविनाशं | १४० |
| उल्काशनिधूमाद्यैः | २५४ |
| उल्का शिरसि विशाला | ४२६ |
| ऊर्ध्वकरो दिवसकरः | ७५ |
| ऊर्वोर्द्वाविंशे स्या | ५८५ |
| ऊर्वोर्यानाङ्गनालाभं | ६१८ |
| ऋज्वी हिता प्रजानाम् | १५७ |
| ऋज्व्यतिवक्रावक्रा | १५६ |
| ऋतुविपरीतास्तरवो | ७१ |
| ऋतुस्वभावजा ह्येते | ५४४ |
| ऋषिधर्मपितृब्रह्म | ५१९ |
| एकं दीप्त्या योजनं भाति | ४०६ |
| एकचरणानुविद्धाः | २६४ |
| एकतश्च द्वितश्चैव | ५७४ |
| एकर्क्षे चत्वारः | ३२३ |
| एकादशमुद्वंशं | ४८९ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| एकादशे पिङ्गलकालयुक्त | १८१ |
| एकैकमब्देषु नवाहतेषु | १७० |
| एकैकस्मिन्नृक्षे | २५३ |
| एको दुर्भिक्षकरो | ७४ |
| एतत्प्रयुज्यमानं | ५७९ |
| एते सर्वे मोक्षा | १३९ |
| एवमुपरागकारणम् | १०४ |
| ऐन्द्रं स्तुतकुलजाति | ४१६ |
| ऐन्द्रस्य शीतकिरणो | ८५ |
| ऐन्द्राग्राख्ये त्रैगर्त | २०९ |
| ऐन्द्राग्न्याख्ये वैश्वे | ३४६ |
| ऐन्द्रे भूपविरोधः | ११० |
| ऐशान्यां मेरुकनष्ट | २६४ |
| औशीनरमपि सौम्ये | २३७ |
| कङ्कटकङ्कणवनवासि | २६० |
| कङ्का नाम वरुणजा | २२६ |
| कटुतिक्तरसायनविध | २८७ |
| कथयन्ति पार्थिववधं | ४५४ |
| कथयाम्यतः परमहं | ५६७ |
| कनकशिलाचयविवरज | ३४८ |
| कन्यागते दिनकरे | ४७३ |
| कपिलः प्रधानमाह | ५ |
| कम्बलमपनीय ततः | ५७३ |
| करवीरोत्पलगजमद | ५९२ |
| करिणश्च हस्तिकरणै | ३९२ |
| कर्किणि कोद्रवकदली | ४६६ |
| कर्किण्यर्के मधुगन्ध | ४७२ |
| कर्णाटमहाटविचि | २६० |
| कर्षकपाखण्डिवणिक् | ११५ |
| कलशेष्वेताः कृत्वा | ५०२ |
| कलशोदकेषु शाखा | ५०६ |
| कलिङ्गवङ्गान् मगधान् | १३५ |
| कल्माषवभ्रुकपिला | ३९८ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कविं सप्तजिह्वं | ४९२ |
| कष्टः प्लवङ्गो बहुशः प्रजानां | १८० |
| काञ्चीकलापन् पुरगुरु | ५६२ |
| काठिन्यं याति यथा | ३४० |
| कापोतारुणकपिल | १२६ |
| काम्बोजचीनयवनान् सह | १३५ |
| कार्तिकेऽश्वयुजि वा यदि | १५८ |
| कार्तिक्यामनलोपजीवि | १३१ |
| कार्मुकमृगघटसंस्थः | ४६४ |
| कार्मुकरूपे युद्धानि | ८९ |
| कालोद्भवैः सुरभिभिः | २४९ |
| काशियुगन्धरपौरव | ४१६ |
| काश्मीरककान् कौशलकान् | १३१ |
| काश्मीरान् सपुलिन्दचीन | १३४ |
| किञ्चदधदूर्ध्वनिर्मित | ४९० |
| किं वातः परमन्य | ३२७ |
| किन्त्वनिलदहनसुरपति | ४११ |
| किष्किन्धकण्टकस्थल | २५९ |
| कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च | ५७४ |
| कुक्कुटरुतं प्रदोषे | ५३७ |
| कुक्षिकुचजठरजानु | ६०८ |
| कुजविजिते भृगुतनये | ३०२ |
| कुमुद इति कुमुदकान्तिः | २३३ |
| कुम्भे गुरुर्गवि शशी | ४६१ |
| कुम्भेऽन्तर्गिरिजान् सपश्चिम | १२१ |
| कुरुभूमिजाः प्रभासं | २८७ |
| कुर्यादहनि चतुर्थे | ४९१ |
| कुर्याद् गोरोमन्थज | ५६१ |
| कुर्वन्त्येताः पतिताः | ४३१ |
| कुलपांसनहिंसकृतघ्न | २८८ |
| कुवलयवैदूर्याम्बुज | ४०१ |
| कुसुमरसपानमत्त | ५५९ |
| कुहुकावेशपिहितैः | ६२ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| कूर्मवसासृक्क्षारो | ५९२ |
| कृकलासकाककङ्क | ५८५ |
| कृकवाकुजीवजीवक | ५५९ |
| कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं | ६० |
| कृष्णो गलेऽस्य बिन्दुः | ५१० |
| केचिदनन्तकुलोरग | ४४४ |
| केचिद्यथाभिवृष्टम् | ३४५ |
| केचिद्वदन्ति कार्तिक | ३२७ |
| केतुकुजराहुशुक्राः | २९७ |
| केत्वाद्युदयविमुक्तं | ४५५ |
| केशधरचिपिटनासिक | २६३ |
| कैकयवसातियामुन | २६३ |
| कोशभवनाग्निहोत्रि | २८१ |
| कोशलकलिङ्गवङ्गा | ३०२ |
| कोष्ठागारगते भृगुपुत्रे | ५४८ |
| कौरवचित्रकराणाम् | १९६ |
| कौशेयपट्टकम्बलपत्रौर्णिकं | २८५ |
| क्रव्यादकौशिककपोतक | ४९५ |
| क्रियमाणं यदि पत्रं | ५८३ |
| क्रूरग्रहसंयुक्ते | ३३९ |
| क्वचित्त्ववृष्टिः पवनाग्निकोपः | १७५ |
| क्वचिदसितसितैः सितैः | ३५४ |
| क्वणितं मरणायोक्तं | ५८६ |
| क्षतजानलानुरूपाः | २२३ |
| क्षत्रं क्षितौ क्षपितभूरिबलारि | ३१६ |
| क्षमया क्रोध इव जितः | ५६२ |
| क्षामा जुगुप्समानाः | ७२ |
| क्षयमिति युगस्यान्त्य | १८२ |
| क्षारे कदल्या कथितेन युक्ते | ५९४ |
| क्षितिकम्पमाहुरेके | ४१० |
| क्षितितनयदिवसवारः | ३ |
| क्षितिरुत्तमसस्यवत्य | ३१५ |
| क्षुत्म्लानशरीरा | ७२ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| क्षुदनलमृत्युनराधिप | ४३९ |
| क्षुन्मारकृद्घटनिभः | ७८ |
| क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी | ९६ |
| क्षौमं चतुःसूत्रकसन्निबद्धम् | ३६९ |
| क्ष्वेडास्फोटितवादितगीतो | ४३२ |
| खञ्जनको नामायं | ५१० |
| खण्डो वक्रः कृष्णो ह्रस्वः | ५५५ |
| खदिरपलाशोदुम्बर | ५०३ |
| खलिनं हयाय दद्याद् | ५०६ |
| खसमगधशिबिरगिरिमिथि | २५८ |
| गतानि वर्षाणि शकेन्द्र | १७० |
| गत्वा द्वितीयवेदीं | ५७७ |
| गन्धर्वदेवदानव | २५४ |
| गन्धर्वनगरमुत्थित | ४५० |
| गर्भः पुष्टः प्रसवे | ३३९ |
| गर्भयुता जठरे करगे स्याद् | ६११ |
| गर्भसमयेऽतिवृष्टिः | ३३९ |
| गर्भाणां पुष्टिकराः | ३३१ |
| गर्भेष्वपि निष्पन्ना | ७३ |
| गर्भोपधातलिङ्गानि | ३३४ |
| गवि वस्त्रकुसुमगोधूम | ४६६ |
| गान्धारयशोवतिहे | २६३ |
| गान्धारसौवीरकसिन्धुकीरान् | ९४ |
| गार्गीयं शिखिचारम् | २१५ |
| गिरयोऽञ्जनचूर्णसन्निभा | ३८३ |
| गिरिदुर्गपह्लवश्वेत | २८९ |
| गिरिभिः पुरा सपक्षै | ४११ |
| गिरिशिखरकन्दरदरी | २८८ |
| गिरिसलिलदुर्गकोशल | २७९ |
| गीतरवतूर्यशब्दा | ५३५ |
| गीतवादित्रनिर्घोषा | ५४३ |
| गुडपूपपायसाद्यै | ४८८ |
| गुरुणा जिते बुधे म्ले | ३०१ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| गुरुणा जितेऽवनिसुते | ३०० |
| गुरुर्भुगुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः | २०० |
| गुरुसितशनैश्चरोत्थं | ५२० |
| गृहचैत्यतोरणेषु द्वारेषु | ५३७ |
| गृहतरुतोरणमथने | ३९६ |
| गृहपटलेऽर्थभ्रंशो | ५१२ |
| गोगोष्ठसत्समागम | ५११ |
| गोचरपीडायामपि | ४६९ |
| गोजिह्वासंस्थानो | ५८७ |
| गोधूमशालियवधान्यवरेक्षु | ३११ |
| गोपाः पशवोऽथ गोमिनो | ११८ |
| गोप्रवेशसमयेऽग्रतो वृषाः | ३६३ |
| गोलाङ्गलयोः सङ्गे | ५३५ |
| गौरासितक्षितिभवं | ४८१ |
| ग्रन्थतश्चार्थतश्चैतत् | ६२ |
| ग्रन्थोऽन्यथाऽन्यथार्थं | ५१ |
| ग्रसनमिति यदा त्र्यंशः | १२३ |
| ग्रस्तावुदितास्तमितौ | ११४ |
| ग्रस्ते क्रमान्निमित्तैः | १२८ |
| ग्रहणोपगते जीवे | १३० |
| ग्रहसंवर्तसमागम | ३२२ |
| ग्रहांश्च सर्वनक्षत्रे | ५६५ |
| ग्रीष्मे रक्तो भयकृद् | ७७ |
| घ्राणागण्डे वसनहुतदा | ६१६ |
| घ्राणाया दक्षिणे द्वारे | ६११ |
| चक्रधनुःशृङ्गाटक | ३२१ |
| चतुरङ्गुलविस्तारः | ५८२ |
| चतुर्णां च मानानां | ३१ |
| चतुर्दशीं पञ्चदशीं | १९९ |
| चतुष्पदाः स्वयूथेभ्यः | ५३३ |
| चत्वारिंशत् त्रिंशद् | १५४ |
| चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैषां | १७४ |
| चत्वार्यार्यम्णाद्या | ४१३ |
| चत्वार्येतानि चर्माणि | ५७१ |
| चन्दनकुष्टसमङ्गा | ५०२ |
| चन्द्रमा यदि कुजस्य यात्युदक् | ३०६ |
| चन्द्रोऽधःस्थः स्थगयति | १०३ |
| चम्पककुसुमैः कनकम् | ३९३ |
| चम्पोदुम्बरकौशा | २७८ |
| चरपुरुषकुहुकजीवक | २८२ |
| चलयति पवनः शतद्वयं | ४२२ |
| चलिताचलवर्ष्माणो | ४१६ |
| चापं मघोनः कुरुते निशाया | ४४७ |
| चापगते गृह्णीयात् | ४७३ |
| चामीकराशोककुरण्ट | ४८६ |
| चारोदयाः प्रशस्ताः | १४८ |
| चाषशिखिरजततैल | ४३६ |
| चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु | ५४४ |
| चित्रासु कुरुक्षेत्रा | २३८ |
| चित्रास्थे प्रमदाजन | २०९ |
| चित्रोऽथवापि धूम्रो | ७५ |
| चैत्रसितपक्षजाताः | ३२९ |
| चैत्रे मन्दा वृष्टिः | १६५ |
| चैत्र्यां तु चित्रकरलेखक | १३२ |
| छत्रध्वजादर्शफलार्द्ध | ४९३ |
| छत्रभङ्गपतने नृपमृत्यु | ४९५ |
| छित्त्वाग्रे चतुरङ्गुल | ४८२ |
| छिन्द्यात् प्रभातसमये | ४८२ |
| छिन्नभिन्नकृमिखातकण्टकि | ५९६ |
| जगति प्रसारितमिव | ५६ |
| जङ्घामध्ये गुल्फे | ५९० |
| जम्बूभिस्तिलमाषाः | ३९१ |
| जयति जगतः प्रसूतिः | १ |
| जलकेतुरपि च पश्चात् | २३४ |
| जलमध्येऽनावृष्टि | ४४६ |
| जलमांसार्द्रज्वलने | ५२२ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| जातानि कुत्रचिदतोयतया | ३१८ |
| जामित्रकेन्द्रसंस्थौ | ४६२ |
| जारद्रव्यां श्रवणात् | १८५ |
| जिह्वा ग्रीवा पिण्डिके पार्ष्णि | ५९९ |
| जिह्वोपलेढि परितः | १२३ |
| जीवितराज्यविनाशं | ५८३ |
| जीवे शुक्रानिहते | ३०१ |
| ज्ञेयो विशालमूर्तिः | ९३ |
| ज्येष्ठाद्यं पञ्चर्क्षम् | १९२ |
| ज्येष्ठासु नृपपुरोहित | २१० |
| ज्येष्ठे नरेन्द्रद्विजराजपत्न्यः | १३३ |
| ज्यैष्ठसितेऽष्टम्याद्यश् | ३४१ |
| ज्यैष्ठे जातिकुलधन | १६६ |
| ज्यैष्ठ्यां समतीतायां | ३४४ |
| ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं | ८ |
| ज्योतिष्मतीं त्रायमाणाम् | ५६९ |
| ज्योतिषमागमशास्त्रं | १८८ |
| ज्वालाधूमक्वाथा | ५३१ |
| तं विष्णुतेजो भवमष्टचक्रे | ४७७ |
| तक्षशिलमर्तिकावत | २८५ |
| तडिद्धैमकक्ष्यैर्बलाकाग्रदन्तैः | ३५५ |
| ततो वृषस्य योधस्य | ५७१ |
| तत्र गुणाः—शुचिर्दक्षः (गद्यम्) | १७ |
| तत्र ग्रहगणिते (गद्यम्) | १८ |
| तत्र पताकाः श्वेता | ४८४ |
| तत्र सांवत्सरोऽभिजातः (गद्यम्) | १६ |
| तत्रार्द्धमासाः प्रहरैर्विकल्प्या | ३५१ |
| तत्रैव स्वात्याद्ये | ३४१ |
| तथैव फाल्गुने चैत्रे | ३६७ |
| तदलमतिविस्तरेण | ८ |
| तदुपहतमिति प्रचक्षते | २७६ |
| तन्त्रे सुपरिज्ञाते | ५२ |
| तरुणतरुगुल्मवल्ली | ५५९ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| तरुशिखरोपगताः कृकलासाः | ३८३ |
| तल्लक्षणानि मुनिभि | ३२६ |
| तल्लक्षणोऽस्थिकेतुः | २२७ |
| तस्करविलुप्तवित्ता | ७२ |
| तस्माद् द्वितीयो विभवः | १७५ |
| तस्माद्राज्ञाधिगन्तव्यो | ६१ |
| तस्मिन् काले सान्निध्य | १०५ |
| तस्मिन्निधिर्भवति मैथुनमेति | ५१३ |
| तस्मिन्नृक्षे कुर्युः | ३२२ |
| तस्मिन् मण्डलमालिख्य | ५६५ |
| तस्मिन् सन्ध्याकाले | ५५४ |
| तस्य विधानं शुभकर | ४७९ |
| तस्याः कोणेषु दृढान् | ५६९ |
| तस्याः स गद्गगिरं | ४११ |
| ताडयेद्यदि च योगतारकाम् | ३६२ |
| तानवलोक्य यथावत् | ३४८ |
| तापसे शौण्डिके दृष्टे | ६०४ |
| तामसकीलकसंज्ञा | ७० |
| ताम्रः कपिलो वार्कः | ७५ |
| ताम्रा बलपतिमृत्युं | ३९९ |
| तारणं तदनु भूरिवारिदं | १७७ |
| ताराग्रहस्य कुर्यात् | ४४१ |
| तारापुञ्जनिकाशा | २२५ |
| तारा फलपादकरी | ४२५ |
| तारा हस्तं दीर्घा | ४२६ |
| तारोल्कापातकलुषं | ५४२ |
| तारोल्कापातवृत | ४१५ |
| तालभूर्जपटदर्शनेऽशुकम् | ६०१ |
| तालीपत्रलतावितानतरुभिः | ३७५ |
| तिमिसिताम्बुधरं मणितारकं | २४३ |
| तिस्रस्तिस्रस्तासां | १८५ |
| तीक्ष्णं तपत्यदितिजः शिशिरेऽपि | ३०९ |
| तीव्रदिवाकरकिरणाभितापिताः | ३३४ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| तुम्बवनकार्मणयकया | २६० |
| तुरगकरिणस्तृतीये | ४५६ |
| तुरगतुरुगोपचार | २०६ |
| तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून् | १२० |
| ते चार्कमण्डलगताः | ७१ |
| ते रक्तनीलपाण्डुर | ४३५ |
| तेषामुदये रूपा | ७१ |
| तैः संस्तुतः सदेवः | ४७६ |
| तोयानि पद्मकुमुदोत्पलवन्त्य | ३११ |
| तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु | ५७५ |
| तौलिनि तान्तवभाण्डं | ४७३ |
| त्यजतोऽर्कतलं शशिनः | ८४ |
| त्यागो विवासनं दानं | ५३४ |
| त्रयोऽपि योगाः सदृशाः फलेन | ३७२ |
| त्रस्यत्रेष्टो राज्ञः | ५०५ |
| त्रिंशत्यधिकाराहोस्ते | २२४ |
| त्रिचतुर्थसप्तमदिने | ४२२ |
| त्रिविधस्तस्योच्छ्रायो | ५७१ |
| त्रिषु मेषादिषु सूर्यः | ४६३ |
| त्रिष्वाद्यवर्षेषु निकामवर्षी | १७६ |
| त्रैगर्तपोरवाम्बष्ठपारता | २८४ |
| त्वाष्ट्रे भूषणमणिराग | २७० |
| त्वाष्ट्रे युगे सर्वजिदाद्य | १७८ |
| दक्षिणकुक्षिविभेदो | १३७ |
| दक्षिणतो रोहिण्याः | १४७ |
| दक्षिणदिक्स्थः परुषो | २९८ |
| दक्षिणपार्श्वेन गतः शशी | ८५ |
| दक्षिणविषाणमर्द्धोन्नतं | ८८ |
| दक्षिणां ककुभमाश्रितस्तु | ५४९ |
| दण्डे नरेन्द्रमृत्युः | ७३ |
| दत्त्वाऽभयं प्रजानामा | ५७९ |
| दधिकुमुदशशाङ्ककान्तिभृत् | २०४ |
| दधिसदृशाग्रो नीलो | ४०० |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| दन्तैर्नागा गोहयाद्याश्च | ३७० |
| दर्पण इवैकदेशे | १२४ |
| दर्पणवृत्ताकारा विशिखाः | २२० |
| दर्शनमस्तमयो वा न | २१६ |
| दाहो दिशां राजभयाय | ४०८ |
| दिनकरकराभितापाद् | ८० |
| दिनकरमुदयास्तसंस्थितम् | ७९ |
| दिनकररथमार्गविच्छित्तये | २४३ |
| दिनकरादीनां ग्रहाणां | ५६ |
| दिनचतुष्टयमुत्थितमर्चितं | ४९७ |
| दिवसकृतः प्रतिसूर्यो | ८१, ४५२ |
| दिवि भाति यदा तुहिनांशु | ५५० |
| दिवि भुक्तशुभफलानां | ४२४ |
| दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमुल्का | ५१७ |
| दिव्यमपि शममुपैति | ५१८ |
| दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्व | ५४३ |
| दिव्यान्तरिक्षाश्रयमुक्तमादौ | ५४७ |
| दिशि पश्चिमोत्तरस्यां | २६२ |
| दिशो धूमान्धकाराश्च | ५४३ |
| दीप्तमृगविहङ्गमरुतः | ४३७ |
| दीप्तमृगाण्डजविरुता | ३९६ |
| दीप्तविहङ्गशिवामृगघुष्टा | ४०४ |
| दीप्तौजसः प्रचण्डाः | ४१५ |
| दुःखशत्रुनिचयस्य विनाशं | ६१७ |
| दुःस्वप्नदुर्विचिन्तित | ६५ |
| दुर्भिक्षमनावृष्टावतिवृष्टौ | ५२८ |
| दूरगो निकटगोऽथवा शशी | ३६० |
| दूरस्थचिह्नवेधादुदये | ६७ |
| दूर्वाकाण्डश्यामे | १२६ |
| दूर्वाकुशकुसुमाभ्या | ३९४ |
| दृश्यते न यदि रोहिणीयुतः | ३६४ |
| दृश्यन्ते च यतस्ते | ७५ |
| दृश्योऽमावास्यायां | २२८ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| दृष्टे श्रुतेऽप्यशकुने | ६०९ |
| दृष्टेषु यातुधानेषु | ५४० |
| दृष्टोऽनस्तमितेऽर्के | १९४ |
| देवकुमारकुमारीवनिता | ५२० |
| देवपत्न्यश्च या नोक्ता | ५७४ |
| देवानुवाच भगवान् | ४७७ |
| दैवज्ञेन शुभाशुभं दिगुदित | ५९५ |
| दैवतयात्रा शकटाक्ष | ५१९ |
| दैवविदविहितचित्तो | ३२६ |
| द्रविडविदेहान्ध्राश्मक | २८० |
| द्रुमेभ्योऽन्नरसस्नेह | ५४२ |
| द्रोणः पञ्चनिमित्ते | ३३८ |
| द्वादशदशमैकादश | १४३ |
| द्वादश्यामष्टम्यां | ४९९ |
| द्वारि पुरस्य पुरक्षय | ४३१ |
| द्वावपि मयूखयुक्तौ | २९९ |
| द्विजनृपतीनुदगयने | ११७ |
| द्विजो यथालाभमुपाहृतार्घः | २४९ |
| द्विरदमदमहीसरोज | ४८७ |
| द्वैपायनो यवक्रीतो | ५७५ |
| धनदः करोति मेचकम् | ४३६ |
| धनाप्तिं सौभाग्यं शुचमपि | ६१७ |
| धनुःस्थायी रुक्षो रुधिरसदृशः | ५५२ |
| धन्विन्यमात्यवरवाजिविदेह | १२० |
| धात्री घना सुगन्धा | ५६३ |
| धान्यपरिपूर्णपात्रं कुम्भः | ६०३ |
| धान्यहिरण्यत्वक्फल | ५२९ |
| धिष्ण्या कृशाल्पपुच्छा | ४२६ |
| धूपाज्याहुतिमाल्यैर्विबुधान् | ५६७ |
| धूमाकुलीकृताशो | ४१३ |
| धूमाभेऽनावृष्टिस्त्रिदशगुरौ | १६९ |
| धूमावृते शिखिमयं | ४९५ |
| धूमोऽनग्निसमुत्थो | ५२३ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| ध्रुवकेतुरनियतगति | २३२ |
| ध्रुवनायकोपदेशात् | २५२ |
| ध्रुवसौम्येषु नृपाणा | ४३० |
| ध्वजकुम्भहयेभ | ४८७ |
| ध्वजचापनिभे युद्धानि | ७९ |
| ध्वजझषगिरिकरि | ४२७ |
| ध्वजपरिमाणत्र्यंशः | ४९१ |
| ध्वजशस्त्रभवनतरु | २१६ |
| ध्वजातपत्रपर्वत | ४०४ |
| ध्वनिरुच्चरितोऽध्वरेद्यु | ३१५ |
| न कथञ्चिदपि निमित्तैः | १०६ |
| नक्षत्रग्रहघातैस्तद् | ४३० |
| नक्षत्रत्रयवर्गैः | २५७ |
| नक्षत्राणां तारकाः सग्रहाणां | ५५० |
| नक्षत्राणि मुहूर्ताश्च | ५७४ |
| नक्षत्रेण सहोदयम् | १६० |
| नगरचतुष्पादण्डज | ५२३ |
| नगरद्वारलोष्ठस्य | ६३ |
| नगरोत्तरपूर्वदिशि | ४९९ |
| न तत्सहस्रं करिणां | ६४ |
| न तथेच्छति भूपतेः पिता | ६५ |
| नन्दनोऽथ विजयो जयस्तथा | १७८ |
| नपुंसकाख्यं च शिरो ललाटं | ५९९ |
| न पृथक् फलानि तेषां | ७२ |
| नभः प्रसन्नं विमलानि यानि | ४०९ |
| न मित्रभावे सुहृदो व्यवस्थिताः | २०१ |
| नम्रा यतः शिखिशिखाभिसृता | २३९ |
| नरपतिकुमारकुञ्जर | २८१ |
| नरपतिदेशविनाशे | ५४१ |
| नरपतिपत्नीपीडां | ४४१ |
| नरपतिरिममर्घं श्रद्दधानः | २४९ |
| नष्टचन्द्रार्ककिरणम् | ३७८ |
| न सांवत्सरपाठी | ६१ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| नाकारणं विवृणुयात्र विघट्ट | ५८६ |
| नागरकाणामभ्यन्तरस्थिता | ४४२ |
| नागरकृषिकरपारत | २८१ |
| नागरनृपतिजयावह | ४४९ |
| नागगजैरावतवृषभगो | १८४ |
| नागा तु पवनयाम्यानलानि | १८५ |
| नातिद्रुतं न च विलम्बित | ४९५ |
| नातिव्यक्ताः सूक्ष्माः | २२३ |
| नानाचोद्यप्रश्नभेदो | ५० |
| नानाविचित्राम्बुज | २४७ |
| नामाङ्कितैस्तैरुदगादिकुम्भैः | ३५९ |
| नार्यः परस्य विषये | ५३३ |
| नालेऽब्जयवादीनामेकस्मिन् | ५२७ |
| नासांवत्सरिके देशे | ६१ |
| नासौष्ठकपोलहनु | ५८९ |
| नास्ति लोके स उत्पातो | ५८० |
| निगदितमिदं यत्तत् | ६०७ |
| निगदितरूपैर्जलधरजालैः | ३५६ |
| नित्यमधःस्थस्येन्दोः | ८३ |
| निपतति रजनीत्रितयं | ४५५ |
| निर्घातः सुरचापं दण्डश्च | १४० |
| निर्दिशेति गदिते जयाध्वजा | ६०५ |
| निशि सुरचापं सितवर्णाद्यं | ४४७ |
| निष्क्रम्य पुरान्नक्तं | ५६३ |
| निष्पत्तिरग्निकोपो वृष्टिः | ३७३ |
| निष्पन्नशालीक्षुयवादिसस्यां | १७५ |
| निष्पन्नो न छेद्यो निकषैः | ५८७ |
| निहन्ति शुक्रः क्षितिजे | २०२ |
| नीराजने निवृत्ते यया | ५१३ |
| नीलोत्पलालिभिन्नाञ्जन | ४१७ |
| नृपजयदमविध्वस्तं | ४८२ |
| नृपतिरतो दैवज्ञं | ५७८ |
| नृपतिरपि शुभं शुभप्रदेशे | ५१४ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| नृपविपत्तिकरः परिघः | ४०३ |
| नेच्छन्ति विनिर्गमं | ३८४ |
| नैकवर्णमणिवज्रभूषितै | ५०७ |
| नैर्ऋतवायव्यस्थौ | १३७ |
| नैर्ऋत्यां दिशि देशाः | २६१ |
| नोत्पातपरित्यक्तः कदाचित् | १५० |
| न्यग्रोधमधुकतिन्दुक | ६०२ |
| न्यग्रोधेन तु यवकः | ३९१ |
| पक्षैश्चतुर्भिरनिल | ४२१ |
| पक्षौ धुन्वन् शुभः शुभः | ५१२ |
| पङ्के स्वाद्वन्नाप्ति | ५११ |
| पञ्चग्रहसंयोगान्न किल | १०७ |
| पञ्चदशाने पुष्ये | ३४६ |
| पञ्चनदरमठपारततारक्षिति | २६२ |
| पञ्चनिमित्तैः शतयोजनं | ३३८ |
| पञ्चशिखो भूमिपते | ५८३ |
| पट्टः शुभदो राज्ञां | ५८२ |
| परतो न विशेषफलं | ५९१ |
| परदारविवादरताः | २८९ |
| परयोनावभिगमनं | ५३३ |
| परिघ इति मेघरेखा | ५५४ |
| परिधाविनि मध्यदेशनाशाः | १८० |
| परिवेषमण्डलगतो | ४३९ |
| परिवेषो रुक्पीडां दिग्दाहो | १४० |
| पर्यन्तेषु गृहीत्वा मध्ये | १२३ |
| पर्यन्तेषु विमलताबहुलं | १३९ |
| पर्यन्तेषु सुधाशशाङ्क | ३८६ |
| पर्यन्तेष्वतिबहुलं | १२५ |
| पलालधूमसञ्चय | ४०४ |
| पवनः पवनाभिहतो | ४५६ |
| पवनघनवृष्टियुक्ताश् | ३३३ |
| पवनसलिलविद्युद् | ३४० |
| पशुहस्तिमहिषपङ्कज | ६०३ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| पश्चात्तु शूद्राः कृषिजीविनश्च | ४०८ |
| पश्चात् सन्ध्याकाले | २३५ |
| पश्यन् ग्रस्तं सौम्यो | १२८ |
| पांशुविलोहितरूपः | १२६ |
| पाखण्डानां नास्तिकानां च | ५३९ |
| पाञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः | ११८ |
| पादाङ्गुष्ठेन विलिखेद् | ६०१ |
| पापाख्या सावित्रं | १५३ |
| पायसेन मधुनापि भोजयेद् | ५२६ |
| पार्थिवस्त्वां वरयते | ४८१ |
| पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाका | २४५ |
| पिचुमन्दनागंकुसुमैः | ३९३ |
| पिण्डमभिमन्त्र्य दद्यात् | ५०६ |
| पितृपूजापरिवृद्धिर्माघे | १६४ |
| पित्र्यमैत्रपुरुहूतविशाखा | ५५३ |
| पित्र्याद्येऽवष्टब्धो | १९१ |
| पित्र्ये धनधान्याढ्याः | २६९ |
| पिप्पलीमरिचशुण्ठिवारिदै | ६०२ |
| पीडयन्ति यदि कृत्तिकां | ५४८ |
| पीडाकरं फाल्गुनमासि | १३२ |
| पीतो व्याधिं जनयत्यशोक | ४५२ |
| पुंस्त्रीनपुंसकाख्ये | ६१० |
| पुण्याहशङ्खशब्दैराचान्तो | ५७७ |
| पुण्येष्वायतनेषु च | ५६२ |
| पुत्रमरणं धनाप्ति | ५९० |
| पुरपक्षिणो वनचराः | ५३६ |
| पुरादुदग्यत् पुरतोऽपि वा | ३४९ |
| पुरोहितो यथास्थानं | ५६५ |
| पुलहः क्रतुरिति भगवान् | २५४ |
| पुष्यस्नानं नृपतेः कर्तव्यं | ५५१ |
| पुष्यस्नानविमिश्रेण | ५६९ |
| पुष्याग्नेयविशिखा | ४१५ |
| पुष्ये यवगोधूमाः | २६८ |
| पूजा तस्य नरेन्द्रै | ४७९ |
| पूजितवृक्षे ह्यनृतौ | ५२६ |
| पूर्वं चरति देशेषु | ५४५ |
| पूर्वः पूर्वसमुद्रवीचिशिखरः | ३७५ |
| पूर्वात्रयं सानलमग्रजानाम् | २७५ |
| पूर्वाद्यृक्षत्रितयादेकदमपीन्दोः | १५२ |
| पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानां | १७९ |
| पूर्वाभिमुखः श्रीमान् | ५०३ |
| पूर्वेण प्रग्रहणं कृत्वा | १३८ |
| पूर्वेण सलिलपूर्णां करोति | ११७ |
| पूर्वे भागे भगवान् मरीचिः | २५४ |
| पूर्वोत्तरेण वामो | १३६ |
| पूर्वोद्भूताः पश्चादपरोत्थाः | ३३० |
| पूर्वोद्भूतैः सस्यनिष्पत्तिः | ३५८ |
| पृच्छा वृद्धश्रावकसुपरिव्राड् | ६०४ |
| पृथुबहुलस्निग्धघनं | ३३१ |
| पेपीयते मधु मधौ सह | ३१६ |
| पौरः पौरसमेतो यामी | ३२३ |
| पौरन्दरेऽतिशूराः | २७१ |
| पौरमहाधनशब्दार्थवेद | २८४ |
| पौरेतरघ्नमुल्कापसव्यकरणं | ४२८ |
| पौरे पौरेण हते पौराः | २९८ |
| पौषाषाढश्रावणवैशाखेषु | १५८ |
| पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधः | १३१ |
| पौषे समार्गशीर्षे | ३३२ |
| पौष्णाप्यार्द्राश्लेषा | ४१७ |
| पौष्णे सलिलजफल | २७४ |
| प्रचलत्तिमिशुक्तिजशङ्खचितः | २४३ |
| प्रजापतिर्दितिश्चैव | ५७५ |
| प्रतिदिनमर्कहिमाश्वो | ४३८ |
| प्रतिदिवसमहिमकिरणः | ८० |
| प्रतिदिवसमेवमर्कात् | ८४ |
| प्रतिबद्धं गमयति | ५१ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| प्रतिसरया तुरगाणां | ५०० |
| प्रतिसूर्यकः प्रशस्तो | ४५२ |
| प्रत्यन्तान् कुनृपांश्च | ९३ |
| प्रत्यर्कसंज्ञः परिधिस्तु तस्य | ४०७ |
| प्रत्येकग्रहभ्रमण | ३८ |
| प्रथममुनिकथितमवितथ | ३ |
| प्रथितनरेश्वरमरण | ४२० |
| प्रपूरणे चोच्छ्रयणे प्रवेशो | ४९३ |
| प्रविशति यदि खद्योतो | ३८९ |
| प्रव्रजितनग्ननापितरिपु | ५९७ |
| प्रश्नप्रतिप्रश्नकथा | ९ |
| प्रसवविकारे स्त्रीणां | ५३२ |
| प्रस्फुरत्तिमिजलेभजिह्मगः | २४२ |
| प्रहरणसदृशैर्जलदैः | ८० |
| प्रहर हर छिन्धि | ५३९ |
| प्राकृतगत्यामारोग्य | १५५ |
| प्राकृतविमिश्रसंक्षिप्त | १५३ |
| प्राकृतसंज्ञा वायव्य | १५३ |
| प्राक् क्षत्रियाणां | ४०८ |
| प्राक्प्रग्रहणं यस्मिन् | १३८ |
| प्राक्फल्गुनीषु नटयुवति | २६९ |
| प्रागर्द्धरात्रदृश्यो याम्याग्रः | २३० |
| प्रागुक्तरेशाश्च दिशः प्रशस्ताः | ५९७ |
| प्राग्द्वारेषु चरन् रविपुत्रो | ५५१ |
| प्राग्वैश्वानरमार्गे | २२८ |
| प्राङ्नर्मदार्द्धशोणोड्र | २७८ |
| प्राची तत्क्षणमेव नक्तमपरा | ४०६ |
| प्राच्यां चेद् ध्वजवदस्थिता | ५४९ |
| प्राजापत्ये शकटे भिन्ने | १९४ |
| प्राजापत्ये श्रवणे मूले | १४७ |
| प्राजेशमाषाढतमिस्रपक्षे | ३४८ |
| प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि | ५०१ |
| प्रायो ग्रहाणा | ३८८ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकाव | ९७ |
| प्रावृषि शीतकरो | ३८८ |
| प्रासादभवनतोरण | ५२२ |
| प्रीतैः कृतानि विबुधै | ४८९ |
| प्रीतो महेन मघवा | ४७८ |
| प्रेतप्रहरणखरकरभ | ४२६ |
| प्रोक्तस्थानाभावाद् | ९२ |
| प्रोत्प्लुतहंसक्षत्रे | ५६० |
| प्रोत्फुल्लकमलवदनाः | ५६१ |
| फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं | ३९१ |
| फलदधिघृतलाजाक्षौद्र | ४९४ |
| फाल्गुनमासे रूक्षश्चण्डः | ३३३ |
| फाल्गुनवर्षे विन्द्यात् | १६५ |
| फाल्गुनशुक्लसमुत्था | ३२९ |
| फेणगिरियवनमार्ग | २६१ |
| बन्धूकपुष्पाञ्जन | ३९९ |
| बर्हिपुच्छरूपिणी | ४३३ |
| बलदेवपट्टनं दण्डकावन | २६० |
| बहुलास्ये पीड्यन्ते | २०७ |
| बहुबिहगालयकोटर | ४८० |
| बान्धनशकुनिक | २८७ |
| बुद्ध्वा देवविकारं शुचिः | ५२१ |
| बृहस्पतेरुत्तरगे शशाङ्के | ३०६ |
| बृहस्पतौ हन्ति पुरः स्थिते | २०३ |
| ब्रह्मपुरदार्वडामर | २६४ |
| ब्रह्मणो दुहितासि | ३६९ |
| ब्रह्मसुत एक एव | २२१ |
| ब्रह्माणमूत्तुरमरा | ४७७ |
| ब्राह्मणान् परमान्नेन | ५३६ |
| ब्रह्मीं क्षेमामजां चैव | ५७० |
| ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धिः | ११० |
| ब्रूयादर्घविशेषान् | ४७१ |
| भक्ष्यैरन्नैश्च विविधैः | ५६६ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| भगवति जलधरपक्ष्म | ४९९ |
| भगवन्नाम ममैतत्त्वया | ४११ |
| भचतुष्टयमार्द्राद्यं | १९० |
| भद्रपदाद्वयविश्वाम्बुदेव | ३३६ |
| भद्रारिमेदमाण्डव्य | २५७ |
| भद्रासनमेकमतेन | ५७१ |
| भरणीपूर्वं मण्डलमृक्षचतुष्कं | १८९ |
| भवकेतुरेकरात्रं दृश्यः | २३४ |
| भस्मनिभः परुषोऽरुणमूर्तिः | ९७ |
| भस्माङ्गारास्थ्यूषरतुष | ५६३ |
| भाग्यादित्यधनिष्ठा | ४३० |
| भाग्यार्यमोदितो यदि | १४५ |
| भाग्ये युगे दुन्दुभिसंज्ञमाद्यं | १८२ |
| भाग्ये रसविक्रयिणः | २०८ |
| भाग्ये शबरपुलिन्द | १९६ |
| भाद्रपदशुक्लपक्षस्याष्टम्यां | ४८३ |
| भाद्रपदे वल्लीजं | १६७ |
| भानां यथासम्भवमुत्तरेण | ३०५ |
| भानोरलिप्रवेशो | ४५९ |
| भानोरुदये यदि वास्तमये | ५५६ |
| भार्गवस्य यदि यात्युदक् | ३०६ |
| भित्त्वा मघा विशाखां | १४७ |
| भिन्दन् गतोऽनलर्क्षं | १९४ |
| भिन्नः सितेन मगधान् | ९४ |
| भूच्छायां स्वग्रहणे | १०२ |
| भूपा न सम्यगभिपालन | ३१२ |
| भूभगणभ्रमण | ४३ |
| भूयो वराहमिहिरस्य | ५४७ |
| भृगुः सनत्कुमारश्च | ५७४ |
| भृगुतनये राहुगते | १३० |
| भृशमवनामिताङ्ग | ६०६ |
| भेदे वृष्टिविनाशो भेदः | २९५ |
| भेषजभिषक्चतुष्पद | २७८ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| भैरवमुच्चैर्विरुवन् | ३९५ |
| भौमं चरस्थितभवं | ५१७ |
| भौमान्तरिक्षं दिव्यं वा | ५७३ |
| भौमे कुमारबलपति | ४३९ |
| भौमेन हते जीवे | ३०१ |
| भौमेन हते शशिजे | ३०० |
| मकरे तरुगुल्माद्यं | ४६७ |
| मगधान् मथुरां च | ९५ |
| मद्ये वाहननाशः | ५२५ |
| मञ्जिष्ठाभं वरुणः | ४८९ |
| मण्डलपश्चिमभागे | ५६८ |
| मथुरायाः पूर्वार्द्धं | २८२ |
| मधुपर्केण पुरोधा | ५२१ |
| मधुररसकुसुमफल | २७९ |
| मध्यतनुर्वज्राख्यः | ९३ |
| मध्याह्ने नरपतिमध्यदेशहा | ११५ |
| मध्ये तमःप्रविष्टं वितमस्कं | १२५ |
| मध्येन यदि मघानां | १४६ |
| मध्ये पापग्रहयोः सूर्यः | ४६१ |
| मध्ये यदि प्रकाशः | १३९ |
| मनुजानामपचारादपरक्ता | ५१६ |
| मन्त्रिस्थावरलेखक | ४३९ |
| मन्त्रैराग्नेयैः क्षीरवृक्षात् | ५२४ |
| मन्दपवनावघट्टित | ३९७ |
| मन्दाकिनी पयोष्णी | २८० |
| मन्युं हरेन्द्र धात्र्याः | ४११ |
| मयूरशुकचाषचातक | ३८५ |
| महाशान्त्योऽथ बलयो | ५४१ |
| महिषोष्ट्रगर्दभास्थि | ५१२ |
| महेन्द्रार्थमुवाचेदं | ५८० |
| माघसितोत्था गर्भाः | ३२९ |
| माघे तु मातृपितृभक्त | १३२ |
| माघे प्रबलो वायुः | ३३३ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| माञ्जिष्ठाभाः शस्त्राग्नि | ३९९ |
| मातरं जठरे मूर्ध्नि | ६०६ |
| माथुरकोपज्योतिष | २५७ |
| मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणां | ३१३ |
| मार्कण्डेयो दीर्घतपाः | ५७४ |
| मार्गशिरः सितपक्षप्रतिपत् | ३२७ |
| मार्जारो भृशमवनिं | ३८२ |
| मासौदनमद्याद्यैः पिशाच | ५६७ |
| मासत्रयेण विन्द्यात् | ५३४ |
| मिथुनस्थे सर्वरसान् | ४७२ |
| मिथुने प्रवराङ्गना नृपा | ११९ |
| मीने कपालसम्भव | ४६७ |
| मुक्ताराजतनिकाशाः | ३३४ |
| मुक्ते सप्ताहान्तः | १४० |
| मुखपुच्छविभक्ताङ्गं | १०० |
| मुख्यस्थाने जुहुयात् | ५७८ |
| मुदिताः प्रजाश्च तेषां | ४७८ |
| मुनिविरचितमिदं | ३ |
| मुनिनभिजितं ध्रुवं मघवतश्च | ५५१ |
| मुहूर्ततिथिनक्षत्रं | ६१ |
| मूर्धदलकेशहनुशङ्खकर्ण | ६०९ |
| मूलं मनुजाधिपतिः | ५५८ |
| मूलेऽन्ध्रमद्रकपती | २३८ |
| मूले भेषजभिषजो | २७२ |
| मृगघटसंस्थे सवितरि | ४७४ |
| मृगपक्षिविकारेषु | ५३८ |
| मृगमासादिष्वष्टौ षट् | ३३७ |
| मृगशकुनिपवनपरिवेशा | ३९५ |
| मृगशिरसि वत्सयाजक | २०७ |
| मृगशिरसि सुरभिवस्त्र | २६७ |
| मृगशीर्षाद्या गर्भा मन्दफला | ३२९ |
| मृतविकलविभिन्नरोगितः | ५१३ |
| मृदङ्गशङ्खध्वनिहृष्ट | ५०७ |
| मेकलकिरातवटिका | २७८ |
| मेघाः स्निग्धाः संहताश्च | ३४२ |
| मेरुग्रस्तमरीचिमण्डलतले | ३७७ |
| मेषोपगते सूर्ये | ४७१ |
| मैत्रे कुलूततङ्गण | २१० |
| मैत्रे क्षत्रविरोधो | १९७ |
| मैत्रे शौर्यसमेताः | २७१ |
| म्लेच्छान् विदिक्स्थितो | ११७ |
| म्लेच्छा हि यवनास्तेषु | ६२ |
| यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं | १८१ |
| यत्रैते संहितापदार्थाः | ५६ |
| यत्सत्यं सर्ववेदेषु | ३६९ |
| यथा त्वमूर्जस्करणैकरूपैः | ४९२ |
| यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं | १२८ |
| यदा तु विद्युतः श्रेष्ठाः | ३४२ |
| यदा रेणूत्पातैः प्रविचलसटा | ३७६ |
| यदा वह्नौ वायुर्वहति गगने | ३७५ |
| यदा विशाखासु | २१३ |
| यदा स्थिता गृहपटलेषु | ३८४ |
| यदा स्थिता जीवबुधारसूर्यजाः | २०१ |
| यदि कुमुदमृणालहार | ९८ |
| यदि ताः स्युरेकरूपाः | ३४२ |
| यदि तित्तिरपत्र | ३८७ |
| यदि न रिपुकृतं भयं | २९१ |
| यदि मूर्तो भविचारी | १०० |
| यद्यद्येन विभूषणममरेण | ४९० |
| यद्यमलेऽर्के छाया न दृश्यते | ५३० |
| यद्यमोघकिरणा | ३८७ |
| यद्यानीतस्तिष्ठेद् | ५०४ |
| यद्युदयर्क्षाद्वक्रं करोति | १४३ |
| यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं | ११३ |
| यद्येको यदि बहवः | २१६ |
| यद्रोहिणीयोगफलं तदेव | ३६५ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| यद्विस्तरेण कथितं मुनिभिः | ५५६ |
| यन्नक्षत्रमुपगते गर्भः | ३२८ |
| यष्टिं प्रवेशयन्तीं | ४८४ |
| यस्तु सम्यग्विजानाति | ६४ |
| यस्मिन् काले स्निग्ध | ३९४ |
| यस्यां दिशि दृश्यन्ते | ३२१ |
| यस्यां दिशि धूपचयः | ४५४ |
| यस्याश्चिरं तिष्ठति | ४३२ |
| यस्मिन् खांशे दृश्याः | ३२२ |
| यस्मिन् यस्मिन् देशे | ७२ |
| यस्मिन् त्सरुप्रदेशे | ५८८ |
| याति चतुर्षु नरेन्द्रः | ४४० |
| यात्रायां तु तिथिदिवस | ५४ |
| यात्रायां यदभिहितं | ५०३ |
| यात्राविधाने हि शुभाशुभं | ५९८ |
| यानं वाहवियुक्तं यदि | ५३५ |
| यानत्रेरुत्पातान् गर्गः | ५१६ |
| यानीह वृक्षे भूतानि | ४८१ |
| यान्तु देवगणाः सर्वे | ५७८ |
| याम्यं करोत्यवृष्टिं | ११० |
| याम्ये शिक्ये काञ्चनं | ३७० |
| याम्येऽसृक्पिशितभुजः | २७५ |
| यावत एव मुहूर्तान् | २३४, २३५ |
| यावन्त्यहानि दृश्यो | २१७ |
| या व्याख्याता शान्तिः | ५५८ |
| युगमेव याम्यकोट्यां | ८९ |
| युद्धं यथा यदा वा | २९३ |
| युद्धं समागमे वा | २९९ |
| युद्धानि विजानीयात् | ४४० |
| युवराजस्याष्टम्यां | ४४१ |
| ये च न दोषान् जनयन्ति | ५४१ |
| ये च पिबन्ति वितस्ता | २८५ |
| येन चाम्बुहरणेऽपि | २४२ |
| येन धरित्रीमुद्रा जनिता | ३४५ |
| येन सत्येन चन्द्रार्कौ | ३६९ |
| ये येषां द्रव्याणामधिपतयो | ४६५ |
| ये शस्तास्तान् हित्वा | २३६ |
| येषां रथौघार्णवमेघदन्तिनां | ४८७ |
| येषामुदग्गच्छति भग्रहाणां | ३०७ |
| येषु च भेष्वभिवृष्टं | ३४६ |
| योगान्तिकेति मूलं द्वे | १५३ |
| योगो यथानागत एव वाच्यः | ३४८ |
| योऽतीव दीप्त्या कुरुते | ४०८ |
| योऽसावसुरो राहुस्तस्य | १०५ |
| यौधेयान् सचिवान् | ९५ |
| रक्तः श्यामो रूक्षश्च | ४४२ |
| रक्तपद्मारुणा सन्ध्या | ५४२ |
| रक्ताक्षमब्दं कथितं तृतीयं | १८२ |
| रक्ताशोकनिकाशं | ४८९ |
| रक्षःपिशाचगुह्यकः | ५२० |
| रक्षःपिशाचदानवदैत्य | २५५ |
| रजनीद्वयं विसर्पति | ४५४ |
| रज्जूत्संगच्छेदने बालपीडा | ४९६ |
| रत्नानि सर्वगन्धाश्च | ५७० |
| रविकिरणजलदमरुतां | ४०० |
| रविचन्द्रपरीवेषाः | ३४२ |
| रविजस्य शशी प्रदक्षिणं | ३०७ |
| रविजेन सिते विजिते | ३०२ |
| रविरविसुतकेतुपीडिते भे | ३४७ |
| रविरविसुतभोगमागतं | २७६ |
| रविराक्रन्दो मध्ये पौरः | २९७ |
| रविवरुणविश्वदेव | ५०० |
| राजोपकरणरूपैः | ७४ |
| राज्ञीविनाशं पतिता पताका | ४९५ |
| राशेर्यस्य क्रूराः | ४६९ |
| राशेश्चतुर्दशार्थाय | ४६८ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| राशौ राशौ यस्मिन् | ४७४ |
| राष्ट्रविभेदस्त्वनितौ | ५२५ |
| राष्ट्रे यस्यानग्निः | ५२२ |
| राष्ट्रोत्पातोपसर्गेषु | ५८० |
| राहुद्वयं यदि स्यात् | १०१ |
| रुचिरपताकातोरण | ४८३ |
| रुद्धानि सौम्येऽस्तगते | १५८ |
| रुधिरनिभो वियत्यवनि | ८१ |
| रुधिरादिवृष्टिवैकृत | ३३५ |
| रुधिराननमिति वक्त्रं | १४५ |
| रूक्षः श्वेतो विप्रान् | ७६ |
| रूक्षैरल्पैर्मारुताक्षिप्तदेहैः | ३५७ |
| रूपायुधभृद्वैद्यास्त्रीकवि | ४१३ |
| रेवत्यां राजभृताः | २१२ |
| रोगान् करोति परुषः कपिल | २५० |
| रोहिणीशकटमध्यस्थिते | ३६१ |
| रोहिणीशकटमर्कनन्दनो | ५५२ |
| रोहिण्यां सुव्रतपण्य | २६७ |
| रोहिण्योऽनलभं च | १६९ |
| रौद्रादीनि मघान्तान्यु | १५१ |
| रौद्रे वधबन्धानृत | २६८ |
| लक्षणयुक्तं तुरगं | ५०४ |
| लब्धवराः क्षीरोदं | ४७६ |
| लब्धिर्हानिः स्त्रीलब्धयो | ५९१ |
| लब्धेन युक्तं शकभूपकालं | १७० |
| ललाटस्पर्शनाच्छूक | ६०८ |
| लाजाक्षतदधिकुसुमैः | ५६३ |
| लाजाज्याक्षतदधिमधु | ५६८ |
| लाभहिबुकार्थयुक्तैः | ४६१ |
| लूतापटाङ्गशबलं | ५४० |
| लोहित्यः सिन्धुनदः | २८२ |
| वक्रशिखा मृत्युसुता | २२० |
| वक्रानुवक्रास्तमयो | ९ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| वज्राशनिमहीकम्प | ५४१ |
| वडवोष्ट्रकरेणुदुग्धपानं | ५९३ |
| वडवोष्ट्रमहिषगोहस्तिनीषु | ५३२ |
| वनं समाश्रिता येऽपि | ६० |
| वन्दिजनपौरविप्रैः | ५७२ |
| वरुणेशे पाशिकमत्स्य | २७३ |
| वर्गैराग्नेयाद्यैः क्रूरग्रह | २६६ |
| वर्णकैर्विविधैः कृत्वा | ५६६ |
| वर्णेनैकेन यदा बहुलः | ४३७ |
| वर्षत्यपि रटति | ३९० |
| वर्षाकाले वृष्टिं करोति | ७७ |
| वर्षाणि कार्तिकादीनि | १६२ |
| वर्षाप्रश्ने सलिलनिलयं | ३८१ |
| वल्लीनां गगनतलो | ३८५ |
| वसुभे मानोन्मुक्ताः | २७३ |
| वस्त्राविककुतुपानां | ४६५ |
| वातोद्धतश्चरति वह्निरति | ३१२ |
| वातोद्धताम्बुधरवर्जितम | ३१८ |
| वामस्तु कुक्षिभेदो | १३७ |
| वायव्ये भूकम्पे | ४१३ |
| वायव्येष्वेषु नृपतिर्वायुं | ५३६ |
| वायव्योत्थैर्वातवृष्टिः क्वचि | ३५८ |
| वारुणपौरन्दरयोः | ४२० |
| वारुणमर्णवसरिदाश्रित | ४१८ |
| वारुणमवनीशाशुभ | ११० |
| वार्ता जगत्यवितथाविकला | ३१३ |
| वाहिनीं समुपयाति पृष्ठतो | ५५५ |
| विंशत्यधिकमन्यच्छतं | २२४ |
| विकचा नाम गुरुसुताः | २२२ |
| विकसितकमलोदरावदातैः | ३५४ |
| विकृतकुसुमं फलं वा | ५२८ |
| विक्रमः सकललोकनन्दनो | १८० |
| विगतघने वा वियति | ३५८ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| विचरन् भद्वयमिष्टः | १६८ |
| विचरन् मघादिपञ्चकं | १९१ |
| विचरन् श्रवणधनिष्ठा | १५० |
| विच्छिन्नविषमविध्वस्त | ३९७ |
| वित्ताप्तिरनिर्वाणं | ५९१ |
| विदिगुद्भूतं दिक्स्वामिनाशनं | ४४६ |
| विद्युत् सत्त्वत्रासं | ४२५ |
| विधिनानेनैव | ४६३ |
| विनोपघातेन पिपीलिकानां | ३८३ |
| विन्द्याच्च सिन्धुवारेण | ३९३ |
| विपुलविमलमूर्तिः | १४८ |
| विपुलाः प्रदक्षिणचराः | ३३१ |
| विप्रक्षत्रियविट्शूद्रहा | ४४१ |
| विप्रयोगमुरसि स्वगात्रः | ६०० |
| विमलकमणिपीताभो | १२६ |
| वियति चरतां ग्रहाणां | २९३ |
| विरसमुदकं गोनेत्राभं | ३८२ |
| विलम्बिनो द्रुमोपमाः | ४०४ |
| विविर्धर्वियदुन्नतैः पयोदैः | ३१५ |
| विश्वेश्वरे महामात्र | २७२ |
| विश्वेश्वरेऽर्कपुत्रश्चरन् | २११ |
| विष्णुः सुरेज्यो बलभित् | १७३ |
| विसृक्के स्फोटयेज्जिह्वा | ६०८ |
| विस्तरशो निर्दिष्टं | ५८२ |
| वीथीमार्गानपरे कथयन्ति | १८७ |
| वृक्षस्य स्वच्छाया | १०२ |
| वृत्तायामाषाढ्यां | ३७८ |
| वृत्ते ग्रहे यदि तमस्तत् | १२४ |
| वृत्ते तु योगेऽङ्कुरितानि | ३५३ |
| वृश्चिकवृषप्रवेशे | ४५९ |
| वृश्चिकसंस्थादर्कात् | ४६३ |
| वृश्चिकसंस्थे सवितरि | ४७३ |
| वृषनालिकेरचर्मद्वीपाः | २५९ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| वृषस्य वृषदंशस्य | ५७७ |
| वृष्टिं करोत्यवृष्ट्यां | ४४६ |
| वृष्टिः समाद्ये प्रमुखै | १७३ |
| वृष्टिस्त्र्यहेण मासेन | ४३९ |
| वृष्टेऽह्निभागे प्रथमे सुवृष्टिः | ३६६ |
| वेणीमूले त्रीन् सुतान् | ६१२ |
| वेणुमती फल्गुलुका | २६३ |
| वेदव्यासे मन्त्रिणि | ५२० |
| वेलाहीने पर्वणि | १११ |
| वैदूर्यकान्तिविमलः | २१३ |
| वैदूर्यशङ्खमुक्ता | २६० |
| वैदूर्यसदृशमिन्द्रो | ४८९ |
| वैशाखमासे ग्रहणे विनाश | १३३ |
| वैशाखे धर्मरता | १६५ |
| वैश्वे युगे शोकहृदित्यथाद्यः | १७९ |
| व्यभ्रे नभसीन्द्रधनुर्दिवा | ५३० |
| व्याप्तं नभः प्रचलिताचल | ३१० |
| व्यालं त्रयोदशर्क्षाच्चतुर्दशाद् | १४४ |
| व्यालसूकरोपमा | ४३३ |
| शकटानलोपजीवक | १६३ |
| शकयवनदरदपारत | २५५ |
| शक्रकुमार्यः कार्याः | ४८८ |
| शक्रचापपरिघप्रतिसूर्या | ३८६ |
| शक्रध्वजेन्द्रकीलस्तम्भ | ५३९ |
| शक्रायुधपरीवेष | ५४२ |
| शतभिषगाश्लेषार्द्रा | ३३६ |
| शतभिषजि शौण्डिकानां | १९८ |
| शतमभिहितमेक | २२१ |
| शतमेकाधिकमेके | २१६ |
| शनैश्चरे म्लेच्छविडाल | २०२ |
| शरदि कमलोदराभो | ७६ |
| शशरुधिरनिभे भानौ | ७८ |
| शशिकिरणरजतहिम | २२१ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| शशितनयेनापि जिते | ३०१ |
| शशिनि फलमुदक्स्थे यद् | ३०७ |
| शस्ता शान्तद्विजमृगघुष्टा | ५५६ |
| शस्त्रभयातङ्करो दृष्टः | ४०० |
| शाक्योपाध्यायार्हन्निर्ग्रन्थि | ६०४ |
| शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं | १७६ |
| शाखाभङ्गेऽकस्माद्वृक्षाणां | ५२५ |
| शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभः | २५० |
| शान्तपक्षिमृगरावित दिशो | ३५४ |
| शान्तिं राष्ट्रविवृद्ध्यै | ५०६ |
| शालीक्षुमत्यपि चराधरणीधराभ | ३१६ |
| शालेन कलमशाली | ३९१ |
| शिखिगलसमेऽतिवर्षं | ४३७ |
| शिखिभयमनलाभे शस्त्रकोपश्च | २०३ |
| शिरःसन्धिग्रीवा | ६१६ |
| शिरसि स्पृष्टे प्रथमेऽङ्गुले | ५८८ |
| शिरोललाटभ्रूकर्णगण्डं | ६१३ |
| शिशिरादिषु वर्णाः | ४०२ |
| शीतानिलतुषारत्वं | ५४३ |
| शीतोष्णविपर्यासो | ५२८ |
| शुककपोतविलोचनसन्निभो | ३८४ |
| शुकदहनबन्धुजीव | २१९ |
| शुकः सस्यविमर्दं | १२८ |
| शुक्रे बृहस्पतिजिते | ३०२ |
| शुक्लविपुलैकतारा | २२६ |
| शुक्लाः करा दिनकृतो | ३९८ |
| शुक्ला रक्ता पीता कृष्णा | ४२९ |
| शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे प्रवृद्धिं | ९७ |
| शुभकृज्जगतः पौषो | १६४ |
| शुभमध्येऽलिनी सूर्याद् | ४६० |
| शुष्कविरोहे वीर्यान्नसंक्षयः | ५२५ |
| शृङ्गेणैकेनेन्दुर्विलीन | ९२ |
| शेषांस्तु सार्ववर्णिकबलिभिः | ५६७ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| शैलेयकुष्ठमांसीतगर | २८४ |
| शोणस्य नर्मदाया | २८० |
| श्मशानशून्यायतनं चतुष्पथं | ५९७ |
| श्यामारुणा विताराश् | २२५ |
| श्यामेऽर्के कीटभयं | ७८ |
| श्यावारुणनीलासृग् | ४२९ |
| श्येनाः प्ररुदन्त इव द्वारे | ५३७ |
| श्रवणानिलहस्तार्द्रा | २०६ |
| श्रवणे मघानुराधा | ३४६ |
| श्रवणे मायापटवो | २७३ |
| श्रवणे राजाधिकृतान् | २११ |
| श्रवणोदितस्य वक्रं | १४६ |
| श्रावणवर्षे क्षेमं सम्यक् | १६६ |
| श्रीपतिमचिन्त्यमसमं | ४७६ |
| श्रीवृक्षवर्धमाना | ५८६ |
| श्रेष्ठं चतुर्थस्य युगस्य पूर्व | १७७ |
| श्रेष्ठिनः प्रतीपगा | ४३२ |
| श्रेष्ठी सुवर्णपुष्पात् | ३९३ |
| श्रेष्ठोऽर्जुनोऽजकर्णः | ४८१ |
| श्लक्ष्णां पताकामसितां | ३५० |
| श्लेष्मत्यागे शुष्कतिक्तं | ६०९ |
| श्लेष्मातकाक्षकण्टकिकटु | ५५९ |
| श्वभिरस्थिशवावयव | ५३८ |
| श्वेत इति जटाकारो | २३१ |
| श्वेतां सपूर्णकोशां | ५०२ |
| श्वेते क्षेमसुभिक्षं | १२६ |
| श्वेते रजोघनौघे पीडा | ४५४ |
| षट्सप्तमगो हानिं | ४६८ |
| षडनागतानि पौष्णाद् | ८६ |
| षड्भिर्मासैः कम्पो | ४१८ |
| षण्णवतिः कालसुताः | २२६ |
| षण्मासोत्तरवृद्ध्या | १०९ |
| षष्ट्यब्दयुगवर्ष | २५ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| षष्ठं षण्नक्षत्रं | १९२ |
| षष्ठेऽतसीकलायाः | ४६६ |
| षोडशभागाभ्यधिके | ४८८ |
| संक्षिप्तायां पुष्यः पुनर्वसुः | १५३ |
| संख्याविधानात् प्रतिदेश | २४८ |
| संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरो | १७३ |
| संस्थानविधिः कथितो | ९२ |
| संस्पृशती चन्द्रार्कौ | ४२८ |
| संहितापारगश्च | ५६ |
| सकलगगनानुचारी | ४३६ |
| स किङ्किणीजालपरिष्कृतेन | ४७७ |
| सकृदेकयामदृश्यः | २३३ |
| सघृतस्य पायसस्य | ५६८ |
| सतमस्कं पर्व विना | ७० |
| सन्तक्ष्य पुनस्तक्षा | ४८४ |
| सन्ध्याकाले स्निग्धा | ३९७ |
| सन्ध्याद्वयस्य दीप्तिर् | ५३९ |
| सन्ध्याद्वयेऽपि मण्डल | ५३६ |
| सन्ध्यानुरक्ते नभसि | ३५६ |
| सपांशुवर्षाः सापश्च | ३४२ |
| सप्तमुनीन् संस्पृश्य | २२९ |
| सप्तम्यां स्वातियोगे | ३६६ |
| सप्तर्षयः सदाराश्च | ५७४ |
| सममुत्तरेण तारा | ३६६ |
| समशशिनि सुभिक्षक्षेम | ८८ |
| समागमे पतति जलं | ३८९ |
| समुद्रोऽन्तःशैलैर्मकर | २४२ |
| समौ तु संवर्तसमागमाख्यौ | ३२४ |
| सम्पत्त्या योजितादेशस् | ६४ |
| सम्प्रहृष्टनरवाजिकुञ्जरं | ५०८ |
| सम्मूर्छिता रवीन्द्वोः | ४३५ |
| सरत्नतोयौषधिभिश्चतुर्दिशं | ३४९ |
| सरितश्च महाभागा | ५७४ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| सरोनद्युदपानानां | ५४३ |
| सर्जोदुम्बरककुभ | ५०० |
| सर्पत्सु तरुषु जल्पत्सु | ५२६ |
| सर्वत्र भूर्विरलसस्ययुता | ३१० |
| सर्वदिगुत्थं सततोत्थितं | ४४९ |
| सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु | ५७४ |
| सर्वे द्विगुणायामा | ५८२ |
| सलिलममरपाशयोज्झितं | २४७ |
| सलिलमये शशिनि | ८४ |
| सलिलविकारे कुर्यात् | ५३२ |
| सलिलोत्पत्तिरखाते | ५३१ |
| सवज्रमुक्ताफलभूषणोऽथवा | ५०८ |
| सवितरि झषमुपयाते | ४७४ |
| सवितृसहितः सम्पूर्णो वा | ४७५ |
| सविद्युतः सपृषतः | ३४२ |
| सव्यगते तमसि जगत् | १२२ |
| सव्यापसव्यलेहग्रसन | १२२ |
| सव्यासव्योरुसंस्पर्शे | ६१२ |
| सशिखिचातकदर्दुरनिःस्व | ३५६ |
| सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु | ५७४ |
| सस्ये च दृष्ट्वा विकृतिं | ५२८ |
| सहां च सहदेवीं च | ५७० |
| साकेतकङ्ककुरुकालककोटि | २५७ |
| साजे शतभिषजि भिषक् | २११ |
| सामयजुर्भिर्मुनयस् | ५६७ |
| साम्प्रतमयनं सवितुः | ६७ |
| सार्पे जलरुहसर्पाः | २०८ |
| सिंहे पुलिन्दगणमेकल | ११९ |
| सिंहे सुवर्णमणिचर्म | ४२७ |
| सितपक्षभवाः कृष्णे | ३२८ |
| सितरक्तपीतकृष्णा | ६१५ |
| सितवस्त्रोष्णीषधरः | ४८४ |
| सितसितान्तघनावरणं | ४०३ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| सितसुभगतुरगरतिकर | २७९ |
| सिद्धान्तभेदेऽप्ययन | ३३ |
| सिन्धुनदपूर्वभागो | २८४ |
| सुतलाभः कलहो | ५९० |
| सुदेवा इति चैकेन देया | ५३८ |
| सुरचापाटिततनु | ७७ |
| सुरचापमन्द्रगर्जित | ३३१ |
| सुरनिलयशिखरिशिखरे | ३४८ |
| सुरपतिचापप्रतिमा | ४३३ |
| सुरभिकुसुमानुलेपन | २८५ |
| सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु | ५७४ |
| सुस्निग्धव्यक्तशोभाः शिरसि | ६१५ |
| सूक्ष्मैलालवलीलवङ्गनिचयान् | ३७६ |
| सूर्याचन्द्रमसोश्च ग्रहणे | ३७ |
| सूर्यस्य विविधवर्णाः | ४४४ |
| सूर्यात् सप्तमराशौ | १०३ |
| सूर्यादीनां च ग्रहाणां | ३५ |
| सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां | ५३० |
| सेनाङ्गेषु नृपाणां | २३२ |
| सेनापतेर्भयकरो | ४३८ |
| सैकावलीव राजति | २५२ |
| सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते | १४१ |
| सौम्येन पराभूते | ३०३ |
| सौम्यैन्द्रचित्रावसुदैवतानि | २७५ |
| सौम्येऽब्देऽनावृष्टि | १६४ |
| सौम्येशान्योरुदयं | २२२ |
| सौम्योपगतो रससस्य | १९५ |
| सौम्योऽस्तोदययोः पुरो | २०३ |
| सौरादीनां च मानाना | २९ |
| सौरेणारे विजिते जयन्ति | ३०० |
| सौरे मरुभवपुष्कर | १३० |
| स्कन्दः स्वयं केयूरं | ४८९ |
| स्तनहृदयोदरकुक्षिनाभौ | ५८९ |
| स्तनितं निशि | ३८५ |
| स्तोतव्या मन्त्रयोगेन सत्या | ३६९ |
| स्त्रीपुरुषदोषपीड़ित | ६०२ |
| स्त्रीशूद्रान् षष्ठेंऽशे | ११५ |
| स्थानं पुष्पसुहासिभूरिफल | ५९६ |
| स्थालीपाकेन धातारं | ५३४ |
| स्थूलोऽभ्युन्नतकण्ठः | ५१० |
| स्निग्धः स्थूलः समशृङ्गो | ५५३ |
| स्निग्धाः प्रभासमेता | २२२ |
| स्निग्धौ सुभिक्षशिवदा | २३० |
| स्नेहासृङ्मांसवहाः | ५३१ |
| स्पृशन्नुदग्याति यदा शशाङ्क- | ३६० |
| स्पृष्टे वा चालिते वापि | ६०० |
| स्फिक्पार्ष्णिपादजाता | ६१८ |
| स्फुटितो ह्रस्वः कुण्ठो | ५८६ |
| स्मरणादपि पापमपाकुरुते | २४७ |
| स्रग्गन्धधूपाम्बरपूजितस्य | ५२६ |
| स्वरूपमेव तस्य तत् | ५४७ |
| स्वर्तुस्वभावजनितैः | ३३५ |
| स्वातावषाढास्वथ रोहिणीषु | ३७२ |
| स्वातौ खगमृगतुरगा | २७१ |
| स्वातौ निशांशे प्रथमेऽभिवृष्टे | ३६६ |
| स्वातौ प्रभूतवृष्टिर् | १९७ |
| स्वात्याद्यं भत्रितयं | १९१ |
| स्वाहावसानसमये | ४८६ |
| हंसपंक्तिभिरितस्ततो | ५०७ |
| हनुकुक्षिपायुभेदा द्विर्द्वि: | १३६ |
| हन्ति मण्डला पुरं | ४३३ |
| हन्त्यैन्द्रो वायव्यं | ४२० |
| हन्यात् कैकयनाथं | २३८ |
| हन्यात् प्रयागकूलाद्या | २२९ |
| हरार्कवैवस्वतशक्रसोमैः | ४९२ |
| हरिते रोगोल्बणता | १२६ |

| श्लोकांशाः | पृष्ठाङ्काः |
|---|---|
| हस्तविशालं कुण्डक | ३४४ |
| हस्तादीनि चरन् | १५१ |
| हस्ताप्यसौम्यचित्रा | ३४६ |
| हस्ते तस्करकुञ्जररथिक | २७० |
| हस्ते नापितचाक्रिक | २०९ |
| हस्ते नापितचाक्रिक | २०९ |
| हस्त्यश्वपत्तिमदसह्यबलै | ३०९ |
| हस्त्यश्वपुरोहित | २८४ |
| हारमणिहेमरूपाः | २१९ |
| हास्यज्ञदूतकविबालनपुंसकानां | ३१३ |
| हिमपातानिलोत्पाता | ५४४ |
| हीनस्य नाशोऽभ्यधिकस्य | ३७१ |
| हीनातिरिक्तकाले | ११२ |
| हेमकान्तिरथवा शुकवर्णः | १५९ |
| हेमगिरिसिन्धुकालक | २६१ |
| हेमलम्ब इति सप्तमे युगे | १७८ |
| हेमसमीपसिताम्बर | ५११ |
| हैमी प्रधाना रजतेन मध्या | ३७१ |
| होराशास्त्रेऽपि च राशि | ५३ |
| ह्रदिनीविलासिनीनां | ५६० |
| ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः | २१८ |
| ह्लादिमृदूदक्शिवशक्र | ३३१ |

## वस्तुनिष्ठप्रश्नाः

१. सूर्यादिग्रहाः कतिसङ्ख्याकाः?

(अ) नवसङ्ख्याकाः (स) अष्टौ सङ्ख्याकाः

(ब) द्वादशसङ्ख्याकाः (द) दशसङ्ख्याकाः

२. बृहत्संहितायाः रचयिता क आसीत्?

(अ) आर्यभट्टः (स) वराहमिहिरः

(ब) भट्टोत्पलः (द) लल्लः

३. प्रथमुनिः कः?

(अ) वाल्मीकिः (स) नारदः

(ब) वसिष्ठः (द) ब्रह्मा

४. ग्रहेषु आत्मा कः?

(अ) गुरुः (स) बुधः

(ब) सूर्यः (द) भौमः

५. जगदुत्पत्तेः कारणं किम्?

(अ) मूलप्रकृतिः (स) विष्णुः

(ब) कपिलः (द) ब्रह्मा

६. कति स्कन्धाः ज्यौतिषशास्त्रस्य?

(अ) त्रयः (स) पञ्च

(ब) चत्वारः (द) सप्त

७. दुःस्वप्नदुर्विचिन्तितदुश्चेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि किं श्रवणेन नाशं प्रयान्ति?

(अ) शशिनः भसंवादम् (स) गुरोः भसंवादम्

(ब) भास्करस्य भसंवादम् (द) भृगोः भसंवादम्

८. बृहत्संहितायाः पूर्वभागे कतिसङ्ख्याकाः अध्यायाः सन्ति?

(अ) द्विपञ्चाशत्तमाः (स) पञ्चाशत्तमाः

(ब) त्रिपञ्चाशत्तमाः (द) एकपञ्चाशत्तमाः

९. बृहत्संहितायाः पूर्वभागस्य चरमाध्यायस्य किन्नाम?

(अ) पिटकलक्षणाध्यायः (स) ग्रहचाराध्यायः

(ब) वास्तुविद्याध्यायः (द) अङ्गविद्याध्यायः

१०. बृहत्संहितायाः पूर्वभागे द्वितीयाध्यायस्य नाम किमस्ति?

(अ) आदित्यचाराध्यायः (स) चन्द्रचाराध्यायः
(ब) सांवत्सरसूत्राध्यायः (द) राहुचाराध्यायः

**११. बृहत्संहितायां कित्रामाध्यायः आदित्यचाराध्यायः?**
(अ) तृतीयः (स) पञ्चमः
(ब) चतुर्थः (द) द्वितीयः

**१२. कस्यां ऋतौ सूर्यस्य किरणाः हरितवर्णाः भवन्ति?**
(अ) वसन्ततौ (स) ग्रीष्मर्तौ
(ब) वर्षर्तौ (द) हेमन्ततौ

**१३. सूर्यस्य किरणाः पीतवर्णाः कस्यां ऋतौ भवन्ति?**
(अ) शिशिरर्तौ (स) वर्षर्तौ
(ब) हेमन्ततौ (ब) वसन्ततौ

**१४. वर्षर्तौ किंवर्णाः रविकिरणाः?**
(अ) श्वेतवर्णाः (स) हरितवर्णाः
(ब) पीतवर्णाः (द) कमलगर्भसमानवर्णाः

**१५. चन्द्रः कदा अनावृष्टिकरो भवति?**
(अ) बुधवेधिते सति (स) शनिवेधिते सति
(ब) गुरुवेधिते सति (द) भौमवेधिते सति

**१६. केन वेधितश्चन्द्रः सर्वमङ्गलकरो भवति?**
(अ) केतुवेधितः (स) बुधवेधितः
(ब) राहुवेधितः (द) गुरुवेधितः

**१७. अश्वादिवाहनद्वारा योद्धानां विनाशः कदा भवति?**
(अ) मङ्गलवेधितचन्द्रे (स) बुधवेधितचन्द्रे
(ब) सूर्यवेधितचन्द्रे (स) राहुवेधितचन्द्रे

**१८. कीदृशचन्द्रस्य दर्शनेन मङ्गलं भवति जनानाम्?**
(अ) स्वच्छचन्द्रदर्शनेन (स) कृष्णचन्द्रदर्शनेन
(ब) पीतवर्णचन्द्रदर्शनेन (द) रक्तचन्द्रदर्शनेन

**१९. राहोः स्वरूपं कीदृग् विद्यते?**
(अ) अन्धकारमयं (स) मुखपुच्छाभ्यां विभक्तराहुरूपम्
(ब) सर्पाकाररूपम् (द) ग्रहवद्रूपम्

**२०. मनुष्याणां विजयलाभार्थं किदृशः चन्द्रः प्रशस्तः?**
(अ) विकाररहितकिरणवान् (स) मुक्ताहारसमानवर्णः
(ब) तिथिनियमात्क्षयमेति वर्द्धते च (द) अविकृतगतिः

**२१. पञ्चसु ग्रहेषु कस्यानुपस्थितौ ग्रहणं न वदेत्?**

(अ) बुधस्यानुपस्थितौ (स) भौमस्यानुपस्थितौ
(ब) गुरोरनुपस्थितौ (द) चन्द्रस्यानुपस्थितौ

**२२. कस्मिन् पर्वणि ग्रहणे सस्यसम्पद्वृद्धिर्भवति?**

(अ) ब्राह्मपर्वणि (स) ऐन्द्रपर्वणि
(ब) चान्द्रपर्वणि (द) आग्नेयपर्वणि

**२३. कस्मिन् पर्वणि ग्रहणे दुर्भिक्षं धान्यनाशश्च भवति?**

(अ) याम्यपर्वणि (स) ऐन्द्रपर्वणि
(ब) आग्नेयपर्वणि (द) ब्राह्मपर्वणि

**२४. कौवेरपर्वणि ग्रहणे सति किं भवति फलम्?**

(अ) धनक्षति: (स) धान्यनाश:
(ब) दुर्भिक्षम् (द) राज्यनाश:

**२५. मेषराशौ सूर्यचन्द्रमसोर्ग्रहणे कुत्रत्यजनानां पीडा जायते?**

(अ) पञ्चाल-कलिङ्गदेशजनानां (स) मगध-पञ्चालदेशजनानां
(ब) कलिङ्ग-मगधदेशजनानां (द) कोशल-मगधदेशजनानां

**२६. सूर्यचन्द्रमसो: कतिविधा: ग्रासा: भवन्ति?**

(अ) पञ्चविधा: (स) दशविधा:
(ब) सप्तविधा: (द) अष्टौ विधा:

**२७. निरोधनामको ग्रास: कतिसङ्ख्यक:?**

(अ) चतुर्थसङ्ख्यक: (स) तृतीयसङ्ख्यक:
(ब) पञ्चमसङ्ख्यक: (द) सप्तमसङ्ख्यक:

**२८. सप्तमसङ्ख्यक: ग्रास: किन्नामकोऽस्ति?**

(अ) आरोह: (स) मध्यतम:
(ब) आघ्रात: (द) निरोध:

**२९. अपसव्यनामको ग्रास: कतिसङ्ख्यक:?**

(अ) चतु:सङ्ख्यक: (स) द्वितीयसङ्ख्यक:
(ब) पञ्चसङ्ख्यक: (द) षट्सङ्ख्यक:

**३०. तृतीयसङ्ख्यक: ग्रास: किन्नामक:?**

(अ) ग्रसननामक: (स) अवमर्दननामक:
(ब) निरोधनामक: (द) लेहनामक:

**३१. अन्तर्वेधनेपालदेशयोर्नाश: कस्य ग्रस्ते भवति?**

(अ) गुरुग्रस्ते (स) भौमग्रस्ते
(ब) बुधग्रस्ते (द) शुक्रग्रस्ते

**३२. कस्मिन् मासे सूर्यचन्द्रमसो रागे तपस्वीनां पीडा जायते?**
(अ) मार्गशीर्षे (स) माघे
(ब) पौषे (द) फाल्गुने

**३३. कलिङ्गदेशे कदा जायते उपद्रवः?**
(अ) वैशाखे ग्रहणे सति (स) माघे ग्रहणे सति
(ब) चैत्रे ग्रहणे सति (द) ज्येष्ठे ग्रहणे सति

**३४. सूर्यचन्द्रमसो मोक्षाः कतिधा भवन्ति?**
(अ) पञ्चधा (स) सप्तधा
(ब) चतुर्धा (द) दशधा

**३५. दशविधमोक्षेषु दक्षिणकुक्षिनामकः मोक्षः कतिसङ्ख्यकः?**
(अ) द्विसङ्ख्यकः (स) पञ्चसङ्ख्यकः
(ब) त्रिसङ्ख्यकः (द) सप्तसङ्ख्यकः

**३६. मध्यविदरणनामकः मोक्षः कतिसङ्ख्यकः?**
(अ) सप्तसङ्ख्यकः (स) पञ्चसङ्ख्यकः
(ब) नवसङ्ख्यकः (द) एकादशसङ्ख्यकः

**३७. अन्त्यविदरणनामको मोक्षः कतिसङ्ख्यकः?**
(अ) पञ्चसङ्ख्यकः (स) नवसङ्ख्यकः
(ब) सप्तसङ्ख्यकः (द) दशसङ्ख्यकः

**३८. दशविधमोक्षाणामुपयोगः कुत्र भवति?**
(अ) चन्द्रग्रहणे (स) पूर्वस्यां दिशि
(ब) सूर्यग्रहणे (द) पश्चिमायां दिशि

**३९. मङ्गलस्य कियन्ति मुखानि भवन्ति?**
(ब) पञ्च मुखानि (स) अष्टौ मुखानि
(ब) सप्त मुखानि (द) चत्वारि मुखानि

**४०. मङ्गलस्य बालमुखः कतिसङ्ख्यकः?**
(अ) तृतीयसङ्ख्यकः (स) चतुर्थसङ्ख्यकः
(ब) द्वितीयसङ्ख्यकः (द) पञ्चसङ्ख्यकः

**४१. अश्रुमुखो मङ्गलः किं करोति?**
(अ) रसान् दूषयति (स) अनावृष्टिं करोति
(ब) रोगान् वर्द्धयति (द) प्रलयङ्करोति

**४२. कस्मिन्नक्षत्रे सञ्चरन् मङ्गलः मेघान् नाशयति?**

(अ) अश्विन्यां (स) रोहिण्याम्
(ब) मृगशिरसि (द) मूले

**४३. धनिष्ठायां सञ्चरतः बुधस्य किं फलं भवति?**

(अ) अनावृष्टिः (स) रोगवृद्धिः
(ब) महोत्पाताः (द) भयम्

**४४. किन्नाम नक्षत्रे सञ्चरन् बुधः जलजद्रव्यान् घोटकांश्च नाशयति?**

(अ) मृदुसंज्ञकनक्षत्रे (स) उग्रसंज्ञकनक्षत्रे
(ब) ध्रुवसंज्ञकनक्षत्रे (द) क्रूरसंज्ञकनक्षत्रे

**४५. कस्मिन् मासे समुदितो बुधः भयं करोति?**

(अ) आषाढे (स) वैशाखे
(ब) श्रावणे (द) फाल्गुने

**४६. कदा अस्तङ्गतो बुधः शुभं करोति?**

(अ) माघे (स) फाल्गुने
(ब) श्रावणे (द) पौषे

**४७. कतिसङ्ख्यकेऽध्याये बृहस्पतेश्चारो वर्णितः?**

(अ) अष्टमेऽध्याये (स) सप्तमेऽध्याये
(ब) पञ्चमेऽध्याये (द) नवमेऽध्याये

**४८. बृहस्पतेः कस्मिन्मासे रूपवतां पीडा जायते?**

(अ) चैत्रमासे (स) वैशाखमासे
(ब) फाल्गुनमासे (द) ज्येष्ठमासे

**४९. बार्हस्पत्यवर्षः कदाऽऽरभ्यते?**

(अ) यस्मिन्नृक्षे समुदेति गुरुस्तस्मिन्नक्षत्रे वर्षो भवति।
(ब) यस्मिन् राशौ समुदेति गुरुस्तदा वर्षो भवति।
(स) यस्मिन् योगे समुदेति गुरुस्ततः वर्षो भवति।
(द) यस्मिन् करणे समुदेति अङ्गिरसस्ततः वर्षो भवति।

**५०. कतमे वर्षे त्रीणि नक्षत्राणि भुनक्ति गुरुः?**

(अ) पञ्चमे वर्षे (स) अष्टमे वर्षे
(ब) सप्तमे वर्षे (द) नवमे वर्षे

**५१. द्वादशतमो वर्षः कियतां नक्षत्राणां भवति गुरोः?**

(अ) त्रयाणां नक्षत्राणाम् (स) चतुर्णां नक्षत्राणाम्
(ब) पञ्चानां नक्षत्राणाम् (द) सप्तानां नक्षत्राणाम्

**५२. पञ्चमो वर्षः कतीनां नक्षत्राणां भवति?**

(अ) त्रयाणाम् (स) द्वयोः

(ब) चतुर्णाम् (द) पञ्चानाम्

**५३. पौष्टिककर्मणः सिद्धिः गुरोः कस्मिन् वर्षे सिद्ध्यति?**

(अ) कार्तिके वर्षे (स) पौषे वर्षे

(ब) माघे वर्षे (द) भाद्रे वर्षे

**५४. पितृणां पूजावृद्धिः गुरोः कस्मिन् वर्षे भवति?**

(अ) माघे वर्षे (स) कार्तिके वर्षे

(ब) मार्गशीर्षे वर्षे (द) पौषे वर्षे

**५५. अलब्धस्य लाभः लब्धस्य परिरक्षणं गुरोः कस्मिन् वर्षे भवति?**

(अ) श्रावणे वर्षे (स) भाद्रवर्षे

(ब) आषाढे वर्षे (द) आश्वयुजि वर्षे

**५६. प्राणिपुण्यवृद्धिः वृष्टिश्च गुरोः कस्मिन् वर्षे जायते?**

(अ) श्रावणे वर्षे (स) ज्येष्ठवर्षे

(ब) आश्विने वर्षे (द) भाद्रे वर्षे

**५७. गुरोः कस्मिन् वर्णे व्याधिभयं जायते?**

(अ) अग्निवर्णे (स) हरितवर्णे

(ब) पीतवर्णे (द) श्यामवर्णे

**५८. ईश्वरादयो पञ्च संवत्सराः कतमे युगे प्रवर्तन्ते?**

(अ) चतुर्थे (स) द्वितीये

(ब) पञ्चमे (द) तृतीये

**५९. को नामा तृतीयो युगः?**

(अ) ऐन्द्रनामा (स) प्रोष्ठपदनामा

(ब) हुताशनामा (द) पितृसंज्ञकनामा

**६०. विलम्बीसंवत्सरः कतमे युगे समायाति?**

(अ) पञ्चमे (स) तृतीये

(ब) चतुर्थे (द) सप्तमे

**६१. पितृसंज्ञकः युगः कतमः सङ्ख्यकः?**

(अ) पञ्चमसङ्ख्यकः (स) चतुर्थसङ्ख्यकः

(ब) सप्तमसङ्ख्यकः (द) षष्ठसङ्ख्यकः

**६२. क्रोधी नामा संवत्सरः कतमे युगे समायाति?**

(अ) पञ्चमे (स) अष्टमे
(ब) सप्तमे (द) चतुर्थे

**६३. अष्टमयुगस्य नाम किमस्ति?**
(अ) वैश्वः (स) प्रोष्ठपदः
(ब) पितृ (द) त्वाष्ट्रः

**६४. चित्रभानुवर्षः कस्मिन् युगे समायाति?**
(अ) हुताशनामके युगे (स) प्रोष्ठपदनामके युगे
(ब) पितृसंज्ञकयुगे (द) हुताशनामके युगे

**६५. ऐन्द्रे युगे कति वत्सराः भवन्ति?**
(अ) चत्वारः (स) त्रयः
(ब) पञ्च (द) षट्

**६६. विक्रमनामकः संवत्सरः कतमे युगे समायाति?**
(अ) दशमे (स) अष्टमे
(ब) सप्तमे (द) द्वादशतमे

**६७. कतमो युगः सौम्यनामा?**
(अ) दशमो युगः (स) सप्तमो युगः
(ब) नवमो युगः (द) अष्टमो युगः

**६८. समेषां विनाशः किन्नामके संवत्सरे भवति?**
(अ) अनलनामके संवत्सरे (स) प्रमाथीनामके संवत्सरे
(ब) क्षयनामके संवत्सरे (द) परिधावीनामके संवत्सरे

**६९. क्षयनामा संवत्सरः कतमे युगे समायाति?**
(अ) दशमे (स) अष्टमे
(ब) एकादशतमे (द) द्वादशतमे

**७०. शुक्राचार्यस्य कति वीथयो भवन्ति?**
(अ) षष्ठ (स) अष्टौ
(ब) सप्त (द) नव

**७१. कियन्ति मण्डलानि शुक्रस्य भवन्ति?**
(अ) पञ्चमण्डलानि (स) सप्तमण्डलानि
(ब) षण्मण्डलानि (द) अष्टौ मण्डलानि

**७२. स्वाती-भरणी-कृत्तिकानक्षत्राणि कस्यां वीथौ समायान्ति?**
(अ) नागवीथ्याम् (स) गोवीथ्याम्
(ब) गजवीथौ (द) मृगवीथ्याम्

७३. अजनामा वीथि कतिसङ्ख्यका?
(अ) अष्टमी (स) पञ्चमी
(ब) सप्तमी (द) नवमी

७४. नाग-गज-ऐरावतवीथयः कस्मिन् दिङ्मार्गे भवन्ति शुक्रस्य?
(अ) दक्षिणमार्गे (स) उत्तरस्यां दिशि मार्गे
(ब) पूर्वदिङ्मार्गे (द) मध्यमार्गे

७५. ऐरावतः वीथिः कस्मिन् दिङ्मार्गे?
(अ) दक्षिणदिङ्मार्गे (स) मध्यमार्गे
(ब) उत्तरमार्गे (द) मध्यमोत्तरमार्गे

७६. कं दिशमाश्रितः समुदितो शुक्रः सुभिक्षं करोति?
(अ) दक्षिणदिशमाश्रितः (स) मध्यमदिशमाश्रितः
(ब) उत्तरदिशमाश्रितः (द) पूर्वदिशमाश्रितः

७७. शुक्रस्य कियन्ति मण्डलानि भवन्ति?
(अ) चत्वारि (स) षट्
(ब) पञ्च (द) त्रीणि

७८. भरण्यादीनि चत्वारि नक्षत्राणि कियतः मण्डलस्य?
(अ) प्रथममण्डलस्य (स) तृतीयमण्डलस्य
(ब) द्वितीयमण्डलस्य (द) चतुर्थमण्डलस्य

७९. मघादीनि पञ्च नक्षत्राणि कियन्मण्डलस्य?
(अ) तृतीयमण्डलस्य (स) चतुर्थमण्डलस्य
(ब) प्रथममण्डलस्य (द) द्वितीयमण्डलस्य

८०. कियन्ति नक्षत्राणि भवन्ति?
(अ) सप्तविंशतिः (स) चतुर्विंशतिः
(ब) पञ्चविंशतिः (द) अष्टाविंशतिः

८१. चतुर्थ-पञ्चममण्डलगतानि नक्षत्राणि कस्यां दिशि शुभकृतानि?
(अ) पूर्वस्याम् (स) पश्चिमस्याम्
(ब) दक्षिणस्याम् (द) उत्तरस्याम्

८२. कस्मिन् मण्डले समुदीयमानः शुक्रः ब्राह्मणक्षत्रियाणां शुभं करोति?
(अ) तृतीयमण्डले (स) पञ्चममण्डले
(ब) चतुर्थमण्डले (द) द्वितीयमण्डले

८३. कस्मिन् ऋतौ स्थितः शनैश्चरः मध्यदेशीयान् पीडयति?

(अ) भरणीनक्षत्रे (स) मृगशिरसिस्थः
(ब) रोहिणीनक्षत्रे (द) अश्विनीनक्षत्रे

**८४. कस्मिन्नक्षत्रे सञ्चरन् शनैश्चरः कोशलदेशीयान् पीडयति?**
(अ) हस्तनक्षत्रे (स) मघानक्षत्रे
(ब) आश्लेषानक्षत्रे (द) पूर्वफल्गुनीनक्षत्रे

**८५. कस्मिन्नक्षत्रे स्थितः शनैश्चरः कुसुम्भपुष्पाणि नाशयति?**
(अ) अनुराधानक्षत्रे (स) मूलनक्षत्रे
(ब) विशाखानक्षत्रे (द) भरणीनक्षत्रे

**८६. शवर-यवनानां कदा पीडयति शनिः?**
(अ) रेवत्यां गतः (स) ज्येष्ठायाङ्गतः
(ब) मूले गतः (द) उत्तरभद्रपदायाङ्गतः

**८७. प्रजासु कदा अनीतिः समुदेति?**
(अ) कृत्तिकागतो गुरुः (स) स्वात्याङ्गतो गुरुः
(ब) भरणीगतो गुरुः (द) चित्रायाङ्गतो गुरुः

**८८. कतिधा शनैश्चरपुत्रकेतवः?**
(अ) षड्विधा (स) चत्वारिंशद्विधा
(ब) पञ्चाशद्विधा (द) अशीतिविधा

**८९. गुरुपुत्राः केतवः कियन्तः सङ्ख्यकाः?**
(अ) पञ्चषष्टि (स) एकोनसप्तति
(ब) चतुःषष्टि (द) पञ्चपञ्चाशत्

**९०. बुधपुत्राः केतवः कियन्तः सङ्ख्यकाः?**
(अ) चत्वारिंशत् (स) पञ्चचत्वारिंशत्
(ब) पञ्चाशत् (द) अष्टचत्वारिंशत्

**९१. मङ्गलपुत्राः केतवः कतिविधाः?**
(अ) षड्विधाः (स) पञ्चविधाः
(ब) सप्तविधाः (द) चतुर्विधाः

**९२. राहुपुत्राः केतवः कतिविधाः?**
(अ) दशविधाः (स) त्रयस्त्रिंशद्विधाः
(ब) विंशतिविधाः (द) पञ्चविंशतिविधाः

**९३. अग्निपुत्राः केतवः कतिविधाः?**
(अ) शतविधाः (स) नवविधाः
(ब) विंशतित्युत्तरशतविधाः (द) अशीतिविधाः

**९४. वरुणपुत्राः केतवः कतिविधाः?**

(अ) त्रिंशद्विधाः (स) पञ्चत्रिंशद्विधाः
(ब) द्वात्रिंशद्विधाः (द) चतुस्त्रिंशद्विधाः

**९५. कालपुत्राः केतवः कतिविधाः सन्ति?**

(अ) नवविधाः (स) पञ्चनवतिविधाः
(ब) अशीतिविधाः (द) षण्णवतिविधाः

**९६. विदिशः पुत्राः केतवः कतिविधाः?**

(अ) पञ्चविधाः (स) अष्टविधाः
(ब) सप्तविधाः (द) नवविधाः

**९७. सप्तर्षयः कस्यां दिशि दृश्यन्ते?**

(अ) पूर्वस्याम् (स) दक्षिणस्याम्
(ब) पश्चिमायाम् (द) उत्तरस्याम्

**९८. सप्तर्षयः एकस्मिन् नक्षत्रे कियन्ति वर्षाणि निवसन्ति?**

(अ) पञ्चाशद्वर्षाणि (स) शतं वर्षाणि
(ब) अशीतिवर्षाणि (द) नवतिवर्षाणि

**९९. युधिष्ठिरशासनकाले कस्मिन्नक्षत्रे सप्तर्षय आसन् ?**

(अ) भरण्याम् (स) मघायाम्
(ब) आश्लेषायाम् (द) पूर्वाषाढायाम्

**१००. महर्षिर्मरीचिः कस्यां दिशि निवसति?**

(अ) पूर्वस्यां दिशि (स) उत्तरस्यां दिशि
(ब) पश्चिमायां दिशि (द) दक्षिणस्यां दिशि

**१०१. मरीचेः पश्चिमभागे कस्तिष्ठति?**

(अ) अत्रिः (स) वसिष्ठः
(ब) अङ्गिरा (द) क्रतुः

**१०२. वसिष्ठस्य पश्चिमे कस्यर्षेः स्थानम्?**

(अ) अङ्गिरसः (स) पुलस्त्यस्य
(ब) अत्रेः (द) पुलहस्य

**१०३. सप्तर्षीणां मध्यभागे कस्तिष्ठति?**

(अ) अरुन्धती (स) क्रतुः
(ब) वसिष्ठः (द) अङ्गिरा

**१०४. कस्याश्रये स्थिता अरुन्धती?**

(अ) वसिष्ठस्य (स) अङ्गिरस:
(ब) केतो: (द) पुलहस्य

**१०५. कृत्तिकादित्रिषु मध्यवर्गे कति देशा: सन्ति?**
(अ) पञ्चदश (स) चतुस्त्रिंशत्
(ब) चतुर्विंशति: (द) अष्टत्रिंशत्

**१०६. पूर्वस्यां दिशि कति देशा: सन्ति?**
(अ) त्रयस्त्रिंशत् (स) षट्त्रिंशत्
(ब) पञ्चत्रिंशत् (द) चत्वारिंशत्

**१०७. आश्लेषादिवर्गे आग्नेय्यां दिशि कति देशा: सन्ति?**
(अ) सप्तविंशति: (स) एकोनविंशति:
(ब) अष्टाविंशति: (द) विंशति:

**१०८. दक्षिणस्यां दिशि कतिसङ्ख्यका: देशा: सन्ति?**
(अ) पञ्चाशत्तमा: (स) पञ्चपञ्चाशत्तमा:
(ब) त्रिषष्टितमा: (द) षट्पञ्चाशत्तमा:

**१०९. नैर्ऋत्यकोणे कतिसङ्ख्याका: देशा: सन्ति?**
(अ) पञ्चविंशति: (स) सप्तविंशति:
(ब) एकोनत्रिंशत् (द) अष्टाविंशति:

**११०. पश्चिमायां दिशि कति देशा: विद्यन्ते?**
(अ) चतुर्विंशति: (स) अष्टादश
(ब) त्रयोविंशति: (द) विंशति:

**१११. वायव्यकोणे कतिसङ्ख्याका: देशा: सन्ति?**
(अ) विंशति: (स) षोडश
(ब) अष्टादश (द) चतुर्विंशति:

**११२. उत्तरस्यां दिशि कति देशा: सन्ति?**
(अ) पञ्चत्रिंशत् (स) द्वात्रिंशत्
(ब) द्वाविंशति: (द) पञ्चाशत्

**११३. ईशानकोणे कतिसङ्ख्याका: देशा: सन्ति?**
(अ) सप्तविंशति: (स) अष्टादश
(ब) त्रयोविंशति: (द) त्रयस्त्रिंशत्

**११४. पूर्वादीनि त्रीणि नक्षत्राणि केषामधीनानि?**
(अ) विप्राणाम् (स) वैश्यानाम्
(ब) क्षत्रियाणाम् (द) शूद्राणाम्

११५. सितकुसुमाहिताग्निं मन्त्रज्ञसूत्रभाष्याज्ञाः आकरिकनामितद्विजघटकार-पुरोहिताब्दज्ञाः पदार्थाः किन्नक्षत्रगताः?

(अ) कृत्तिकानक्षत्रगताः (स) मृगशिरानक्षत्रगताः
(ब) रोहिणीनक्षत्रगताः (द) आर्द्रानक्षत्रगताः

११६. सुव्रतादयः पदार्थाः किन्नक्षत्रगताः?

(अ) भरणीनक्षत्रगताः (स) अश्विनीनक्षत्रगताः
(ब) कृत्तिकानक्षत्रगताः (द) रोहिणीनक्षत्रगताः

११७. पत्रवाहकाः किन्नक्षत्रगताः?

(अ) आर्द्रानक्षत्रगताः (स) पुनर्वसुनक्षत्रगताः
(ब) मृगशिरानक्षत्रगताः (द) पुष्यनक्षत्रगताः

११८. सत्यवादिनः कस्मिन्नक्षत्रे समुत्पन्नाः भवन्ति?

(अ) पुनर्वसुनक्षत्रे (स) आश्लेषानक्षत्रे
(ब) पुष्यनक्षत्रे (द) मघानक्षत्रे

११९. भगवद्भक्तः सत्यभाषी च किन्नक्षत्रगतः पदार्थः?

(अ) श्रवणनक्षत्रगतपदार्थः (स) शततारकानक्षत्रगतपदार्थः
(ब) धनिष्ठानक्षत्रगतपदार्थः (द) विशाखानक्षत्रगतपदार्थः

१२०. फलाहार-औषधादयो किन्नक्षत्रगतपदार्थाः?

(अ) अनुराधानक्षत्रगतपदार्थाः (स) मूलनक्षत्रगतपदार्थाः
(ब) ज्येष्ठानक्षत्रगतपदार्थाः (द) पूर्वाषाढानक्षत्रगतपदार्थाः

१२१. द्रव्यक्रेतारो विक्रेतारश्च किन्नक्षत्रगताः?

(अ) रेवतीनक्षत्रगताः (स) भरणीनक्षत्रगताः
(ब) अश्विनीनक्षत्रगताः (द) मृगशिरानक्षत्रगताः

१२२. क्रूराः मांसभक्षकाः नीचकुलोत्पन्नाः किन्नक्षत्रगताः?

(अ) कृत्तिकानक्षत्रगताः (स) मघानक्षत्रगताः
(ब) रोहिणीनक्षत्रगताः (द) भरणीनक्षत्रगताः

१२३. सूर्यः कियतां देशानां स्वामी?

(अ) पञ्चाशत् (स) त्रिपञ्चाशत्
(ब) पञ्चपञ्चाशत् (द) चतुःपञ्चाशत्

१२४. कृषक-याज्ञिक-ओषधीनां स्वामी कः?

(अ) सूर्यः (स) भौमः
(ब) शुक्रः (द) चन्द्रः

१२५. शोणस्य पश्चिमदेशीयानां स्वामी कः?
(अ) भौमः (स) बुधः
(ब) चन्द्रः (द) गुरुः

१२६. ऐन्द्रजालिकानां नर्तकानाञ्च स्वामी कः?
(अ) बुधः (स) शुक्रः
(ब) बृहस्पतिः (द) शनिः

१२७. औदिच्यस्थजनानां वस्तूनाञ्च स्वामी कः?
(अ) बुधः (स) भार्गवः
(ब) गुरुः (द) भौमः

१२८. तक्षशिलाददेशानां चन्दनादिवनस्पतीनाञ्च स्वामी कः?
(अ) शुक्रः (स) बुधः
(ब) शनिः (द) राहुः

१२९. आनर्तार्बुद-सौराष्ट्रादिदेशानां स्वामी कः?
(अ) शनैश्चरः (स) बुधः
(ब) शुक्रः (द) गुरुः

१३०. पर्वतशिखरवासिनां जनानां तिलमाषादिवनस्पतीनाञ्च स्वामी कः?
(अ) राहुः (स) शनिः
(ब) केतुः (द) भौमः

१३१. अधार्मिकाणां विजिगीषूणाञ्च स्वामी कः?
(अ) केतुः (स) बुधः
(ब) राहुः (द) सूर्यः

१३२. ग्रहाणां युद्धः कतिधा भवति?
(अ) एकधा (स) त्रिधा
(ब) द्विधा (द) चतुर्धा

१३३. ग्रहाणां कतिधा संज्ञा भवति?
(अ) एकधा (स) त्रिधा
(ब) द्विधा (द) चतुर्धा

१३४. दक्षिणदिक्स्थग्रहः किन्नामकः?
(अ) पराजितः (स) विवर्णः
(ब) वेपथुः (द) सूक्ष्मबिम्बकः

१३५. विपुलो द्युतिमान् ग्रहः किंसंज्ञको भवति?

(अ) पराजितः (स) मन्दः
(ब) विजयी (द) उत्तरदिक्स्थः

**१३६. ग्रहाणां कति योगाः भवन्ति?**

(अ) चतुर्योगाः (स) त्रियोगाः
(ब) पञ्चयोगाः (द) षड्योगाः

**१३७. क्षेत्राधिपतेः मरणं कदा भविष्यति?**

(अ) वृक्षे यमलपुष्पोत्पत्तौ (द) वृक्षे अनेकफलोत्पत्तौ
(ब) वृक्षे यमलफलोत्पत्तौ (द) वृक्षे फलपुष्पानुत्पत्तौ

**१३८. कदा उत्पातभयं जायते?**

(अ) यस्यां दिशि मङ्गलबुधौ दृश्येते।
(ब) यस्यां दिशि बुधभौमशनयो दृश्यन्ते।
(स) यस्यां दिशि गुरुशुक्रशनयो दृश्यन्ते।
(द) यस्यां दिशि गुरुभौमशुक्रशनयो दृश्यन्ते।

**१३९. अल्पशीतः कदा भवति?**

(अ) मार्गशीर्षे (स) पौषे
(ब) कार्तिके (द) माघे

**१४०. कदा वृद्धिङ्गतः गर्भः प्रसवकाले समधिका वृष्टिङ्करोति?**

(अ) पञ्चसु नक्षत्रेषु वृद्धिङ्गतः (स) दशसु नक्षत्रेषु वृद्धिङ्गतः
(ब) सप्तसु नक्षत्रेषु वृद्धिङ्गतः (द) षट्सु नक्षत्रेषु वृद्धिङ्गतः

**१४१. कदा समुत्पन्नः गर्भः बहूनि दिनानि वृष्टिङ्करोति?**

(अ) शतभिषानक्षत्रे समुत्पन्नः गर्भः (स) आश्लेषानक्षत्रे समुत्पन्नः गर्भः
(ब) स्वातीनक्षत्रे समुत्पन्नः गर्भः (द) आर्द्रानक्षत्रे समुत्पन्नो गर्भः

**१४२. कीदृशो गर्भः बहुवृष्टिप्रदो भवति?**

(अ) वायोः शब्दश्चेत् (स) मेघस्य शब्दश्चेत्
(ब) विद्युच्छब्दश्चेत् (द) मेघयुतो गर्भः

**१४३. गर्भधारणकालः कदा भवति?**

(अ) ज्येष्ठकृष्णपक्षे अष्टम्याद्याः चत्वारि दिनानि।
(ब) ज्येष्ठकृष्णपक्षे अष्टम्याद्याः त्रीणि दिनानि।
(स) ज्येष्ठकृष्णपक्षे अष्टम्याद्याः सप्त दिनानि।
(द) ज्येष्ठकृष्णपक्षे अष्टम्याद्याः अष्टौ दिनानि।

**१४४. कदा प्रभृति चत्वारि दिनानि?**

(अ) ज्येष्ठशुक्लाष्टमी (स) श्रावणशुक्लाष्टमी
(ब) आषाढशुक्लाष्टमी (द) भाद्रशुक्लाष्टमी

**१४५. संसारस्य शुभाशुभं कथं ज्ञायते?**

(अ) आषाढकृष्णपक्षे रोहिणी-चन्द्रयोर्योगं विलोक्य।
(ब) श्रावणकृष्णपक्षे रोहिणी-चन्द्रयो: योगं विलोक्य।
(स) भाद्रकृष्णपक्षे चन्द्र-रोहिण्यो: समागमं विलोक्य।
(द) आश्विनकृष्णपक्षे चन्द्र-रोहिण्यो: समागमं विलोक्य।

**१४६. सुवृष्टि: कदा जायते?**

(अ) मेघरहिते गगने सूर्यरश्मय: यदा तीक्ष्णा: भवेयु:।
(ब) रात्रौ निर्मलनक्षत्रयुतं गगनं यदा भवेत्।
(स) विकसिता कुमुदिनीव यदा भवेत्।
(द) शीतलसमीर: यदा प्रवहेत्।

**१४७. धान्यस्योत्तमा निष्पत्ति: कदा भवति?**

(अ) यदा पूर्वस्यां दिशि मेघा: समुत्पन्ना: स्यु:।
(ब) यदा दक्षिणस्यां दिशि मेघा: समुत्पन्ना: स्यु:।
(स) यदा नैर्ऋत्यां दिशि मेघा: समुत्पन्ना: स्यु:।
(द) यदा उत्तरस्यां दिशि मेघा: समुत्पन्ना: स्यु:।

**१४८. जनानां शुभं कदा भविता?**

(अ) यदा पूर्वमुदीयमानश्चन्द्र: स्यात् पश्चाद्रोहिणी भवेत्।
(ब) यदा पूर्वं रोहिणी स्यात् पश्चात् चन्द्रमा भवेत्।
(स) यदा रोहिणी चन्द्रमसो: सहैवोदय: लभेत्।
(द) यदा रोहिणीत: पूर्वं चन्द्रोदय: भवेत्।

**१४९. कस्मिन् वर्षे मनुष्या: स्त्रीवशे भवन्ति?**

(अ) यस्मिन् वर्षे रोहिण्या: पूर्वस्यां दिशि चन्द्र: सञ्चरति।
(ब) यदा रोहिण्या: आग्नेय्यां दिशि चन्द्र: भवति।
(स) यस्मिन् वर्षे रोहिण्या: नैर्ऋत्यां दिशि चन्द्रो भवति।
(द) यस्मिन् वर्षे रोहिण्या: प्रतीच्यां दिशि चन्द्रो भवति।

**१५०. कदा सुवृष्टिर्जायते?**

(अ) रोहिण्या: वायुकोणे चन्द्रसञ्चारे सति
(ब) रोहिण्या उत्तरे चन्द्रसञ्चारे सति
(स) रोहिण्या: पूर्वे चन्द्रसञ्चारे सति
(द) रोहिण्या: ईशानकोणे चन्द्रसञ्चारे सति

**१५१. अनावृष्टिः कदा भवति?**

(अ) यदा वनात्प्रत्यावर्तनकाले रक्तवर्णः पशुरग्रे भवेत्।
(ब) यदा वनात्प्रत्यावर्तनकाले कर्बूरवर्णः वृषभोऽग्रे भवेत्।
(स) यदा वनात्प्रत्यावर्तनकाले ईषत् श्वेतः पशुरग्रे भवेत्।
(द) पशूनां वनाद्गोष्ठं प्रति प्रत्यावर्तनकाले यदि सर्वश्वेतः पशुरग्रे स्यात्।

**१५२. कदा तुलया धान्यपरीक्षणम् ?**

(अ) श्रावणपौर्णमास्याम्
(ब) आषाढी पौर्णमास्याम्
(स) भाद्रपौर्णमास्याम्
(द) ज्येष्ठपौर्णमास्याम्

**१५३. तुलितानां धान्यानां किङ्कर्तव्यम् ?**

(अ) अन्येद्युः तोलनम्
(ब) परेद्युः तोलनम्
(स) पुनस्तोलनम्
(द) द्वितीयदिने तोलनम्

**१५४. तुलदण्डः प्रधाना कीदृशी?**

(अ) हैमी
(ब) रजतनिर्मिता
(स) लौही
(द) खदिरनिर्मिता

**१५५. उत्तमं धान्यं कदा जायते?**

(अ) आषाढी पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदा ऐशानोऽनिलः स्यात्?
(ब) आषाढी पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदा उत्तरस्यानिलः स्यात्।
(स) आषाढी पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदा पश्चिमायाः अनिलः स्यात्।
(द) आषाढी पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदा पूर्वस्याः समीरः स्यात्।

**१५६. पृथिवी कदा सुशोभिता भवति?**

(अ) आषाढी पौर्णमास्यां यदा पूर्वीयसमुद्राद्वायुः प्रचलेत्।
(ब) आषाढी पौर्णमास्यां यदा दक्षिणसमुद्राद्वायुः प्रचलेत्।
(स) आषाढी पौर्णमास्यां यदा समुद्रस्य दक्षिणभागाद्वायुः प्रचलेत्।
(द) आषाढी पौर्णमास्यां यदा समुद्रस्योत्तरभागाद्वायुः प्रचलेत्।

**१५७. पृथिवी कदा रक्तरञ्जिता जायते?**

(अ) आषाढ्यां पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले यदा चक्रवातः प्रचलेत्।
(ब) आषाढ्यां पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले भयङ्करो वायुर्वातिश्चेत्।
(स) आषाढ्यां पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले वर्षा भवति चेत्।
(द) आषाढ्यां पौर्णमास्यां सूर्यास्तकाले विद्युत् विद्योतते चेत्।

**१५८. कदा वर्षा भविता?**

(अ) प्रश्नकाले यदा चन्द्रमा लग्ने जलचरराशौ भवेत्।
(ब) प्रश्नकाले यदा चन्द्रमा लग्ने स्थिरराशौ स्यात्।

(स) प्रश्नकाले यदा चन्द्रमा चरराशिगतो भवेत्।
(द) चन्द्रमा प्रश्नकाले यदा द्विस्वभावराशौ स्यात्।

**१५९. वर्षा कदा भविष्यति?**

(अ) वर्षर्तौ उदयकालिकः सूर्यः यदा तीक्ष्णकिरणमयः स्यात्।
(ब) वर्षर्तौ उदयकालिकः सूर्यः यदा मणिकान्तिमयः भवेत्।
(स) वर्षर्तौ उदयकालिकः सूर्यः यदा गलितसुवर्णकान्तिमान् भवेत्।
(द) वर्षर्तौ उदयकालिकः सूर्यः यदा मध्याह्ने तीक्ष्णकिरणमयः स्यात्।

**१६०. शीघ्रं वृष्टिः कदा ज्ञेया?**

(अ) पिपीलिकानां अण्डोपसङ्क्रान्तिर्यदा भवति।
(ब) मार्गे बालकाः यदा सेतुबन्धं कुर्युः।
(स) वाष्पनिरुद्धकन्दराः यदा भवेयुः।
(द) लोहितचन्द्रकिरणाश्चेत्।

**१६१. कृकलासवृक्षाग्रयोगे समारूह्य उपरि निरीक्षणं करोति चेत् किं भवति?**

(अ) शीघ्रं वर्षा भवति
(ब) विलम्बेन वर्षा भवति
(स) सप्ताहैर्भविता वृष्टिः
(द) कदापि भविता वृष्टिः

**१६२. कदाऽतिवृष्टिर्जायते?**

(अ) यदा गृहपटलेषु स्थितः श्वा रुदति।
(ब) यदा गृहपटलेषु कपोताः कूजन्ति।
(स) यदा गृहपटलेषु स्थित्वा काकः शब्दायते।
(द) यदा गृहपटलेषु स्थित्वा मार्जारः शब्दायते।

**१६३. कीदृशः दिग्दाहः क्षत्रियान् पीडयति?**

(अ) कृष्णवर्णः
(ब) हरितवर्णः
(स) धूम्रवर्णः
(द) रक्तवर्णः

**१६४. कस्यां दिशि स्थितः दिग्दाहः क्षत्रियान् पीडयति?**

(अ) पूर्वस्यां दिशि
(ब) दक्षिणस्यां दिशि
(स) प्रतीच्यां दिशि
(द) उदीच्यां दिशि

**१६५. कस्यां दिग्गतदिग्दाहः क्रूरान् पुनर्भ्वां च पीडयति?**

(अ) पूर्वस्याम्
(ब) प्रतीच्याम्
(स) दक्षिणस्याम्
(द) उत्तरस्याम्

**१६६. चौरान् पीडयति क्व गतः दिग्दाहः?**

(अ) पूर्वस्यां दिशि
(ब) उत्तरस्यां दिशि
(स) पश्चिमायां दिशि
(द) वायव्यकोणगतः

**१६७. कुत्रस्थः दिग्दाहः ब्राह्मणान् पीडयति?**

(अ) ईशानस्थः (स) पूर्वस्थः

(ब) उत्तरस्थः (द) पश्चिमस्थः

**१६८. वरुणस्योपरि पृथ्वी सशैलवनकानना।**
**स्थिता जलजसत्त्वाश्च सक्षोभा चालयन्ति गाम्॥**
**इति कस्य मतम् ?**

(अ) गर्गस्य (स) वशिष्ठस्य

(ब) कश्यपस्य (द) पराशरस्य

**१६९. 'चत्वारो दिङ्नागाः पृथिवीं धारयन्ती'ति कस्य मतम् ?**

(अ) कश्यपस्य (स) गर्गस्य

(ब) वशिष्ठस्य (द) पराशरस्य

**१७०. 'दिङ्नागानां श्वास-प्रश्वासकारणाद्भूकम्पो जायत' इति कस्य मतम्?**

(अ) वशिष्ठस्य (स) गोभिलस्य

(ब) गर्गाचार्यस्य (द) पराशरस्य

**१७१. 'अनिलसङ्घर्षकारणाद्भूकम्पो जायत' इति कस्य मतम् ?**

(अ) वशिष्ठस्य (स) पराशरस्य

(ब) कश्यपस्य (द) गोभिलस्य

**१७२. 'प्रजानामधर्मकारणात् पृथ्वी कम्पत' इति कस्य मतम्?**

(अ) वशिष्ठस्य (स) कश्यपस्य

(ब) वृद्धगर्गस्य (द) भारद्वाजस्य

**१७३. कस्मिन् मण्डले सम्भूतः भूकम्पः शतयोजनं प्रभावयति?**

(अ) वरुणमण्डले (स) ऐन्द्रमण्डले

(ब) वायुमण्डले (द) अग्निमण्डले

**१७४. दशयोजनपर्यन्तां पृथिवीं किम्मण्डलगतभूकम्पः कम्पयति?**

(अ) ऐन्द्रमण्डलगतः (स) वारुणमण्डलगतः

(ब) वायुमण्डलगतः (द) अग्निमण्डलगतः

**१७५. वायुमण्डलगतः भूकम्पः कियद्योजनपर्यन्तां पृथिवीं कम्पयति?**

(अ) दशयोजनपर्यन्ताम् (स) शतयोजनपर्यन्ताम्

(ब) षष्टियोजनपर्यन्ताम् (द) शतद्वययोजनपर्यन्ताम्

**१७६. वायव्ये मण्डले नित्यं योजनानां शतद्वयम्।**
**दशाधिकमथाग्नेय ऐन्द्रे षष्ठाधिकं शतम्।**
**शतं चाशीतिसंयुक्तं वारुणे मण्डले चलेत्॥**
**इति कस्य वचनम्?**

(अ) वशिष्ठस्य (स) पराशरस्य
(ब) गर्गस्य (द) कश्यपस्य

**१७७. दिवि भुक्तशुभफलानां पतता प्राणिनां किंस्वरूपम् ?**
(अ) धिष्ण्या (स) उल्का
(ब) अशनि (द) विद्युत्

**१७८. स्वास्त्राणि संसृज्यन्त्येते शुभाशुभनिवेदिनः ।**
**लोकपाला महात्मानो लोकानां ज्वलितानि तु ॥**
**इति कस्य वचनम्?**
(अ) वशिष्ठस्य (स) पराशरस्य
(ब) गर्गस्य (द) वृद्धगर्गस्य

**१७९. अस्त्राणि लोकपाला लोकाभावाय सन्त्यजन्त्युल्काः ।**
**केषाञ्चित्पुण्यकृतां तत्रोल्का विच्युतिः स्वर्गात् ॥**
**इति वाक्यं कुत्रत्यः?**
(अ) स्वल्पसंहितातः (स) गर्गसंहितातः
(ब) सूतसंहितातः (द) बृहत्संहितातः

**१८०. उल्कापातस्य फलं कियद्भिर्दिवसैः भवति?**
(अ) दशभिर्दिवसैः (स) द्वादशभिर्दिवसैः
(ब) पञ्चदशदिवसैः (द) षोडशदिवसैः

**१८१. का नाम उल्का?**
(अ) क्षीणे पुण्ये स्वर्गात् समागताः जीवाः।
(ब) लोकपालानां परीक्षणाय प्रक्षिप्तान्यस्त्राणि।
(स) इन्द्रस्य वज्रम्।
(द) अशुभसूचकं नभोमण्डलम्।

**१८२. उल्का कतिधा?**
(अ) चतुर्धा (स) द्विधा
(ब) त्रिधा (द) पञ्चधा

**१८३. धिष्ण्याफलं कतिभिः दिवसैः भवति?**
(अ) दशदिवसैः (स) चतुर्दशदिवसैः
(ब) द्वादशदिवसैः (द) पञ्चदशदिवसैः

**१८४. उल्काऽथ पञ्चरूपा धिष्ण्योल्का विद्युतोऽशनिस्तारा ।**
**धिष्ण्योल्के पक्षफले तत्त्रिगुणाश्चाशनिः षडधिकेऽन्ये ॥**
**इति पद्यं कुतः गृहीतमस्ति?**

(अ) भृगुसंहितातः (स) अगस्त्यसंहितातः
(ब) वशिष्ठसंहितातः (द) समाससंहितातः

**१८५. कस्य फलमर्धं भवति?**
(अ) धिष्ण्याफलम् (स) विद्युत्फलम्
(ब) ताराफलम् (द) अशनिफलम्

**१८६. 'अशनिः प्राणिषु निपतति दारयति धरातलं बृहच्छब्दा' इति पद्यं कुत्रास्ति?**
(अ) समाससंहितायाम् (स) वसिष्ठसंहितायाम्
(ब) गर्गसंहितायाम् (द) अगस्त्यसंहितायाम्

**१८७. धिष्ण्या उल्का कियत्परिमाणा दीर्घा?**
(अ) द्विहस्तपरिमिता (स) पञ्चहस्तपरिमिता
(ब) त्रिहस्तपरिमिता (द) चतुर्हस्तपरिमिता

**१८८. विद्युत् कुत्र पतति?**
(अ) प्राणिषु (स) गृहेषु
(ब) वृक्षेषु (द) क्षेत्रेषु

**१८९. कया गत्या विद्युत्पतति?**
(अ) सहसा पतति (स) त्वरितं वतति
(ब) शनैः पतति (द) द्रुतं पतति

**१९०. 'धिष्ण्या सिता द्विहस्ता धनूंषि दश याति कृष्णदेहा' इति पद्यं कुत्राऽस्ति?**
(अ) समाससंहितायाम् (स) गर्गमनोरमायाम्
(ब) अगस्त्यसंहितायाम् (द) बृहत्पाराशरहोराशास्त्रे

**१९१. तारा कति हस्तपरिमिता दीर्घा भवति?**
(अ) द्विहस्तपरिमिता दीर्घा (स) चतुर्हस्तपरिमिता दीर्घा
(ब) त्रिहस्तपरिमिता दीर्घा (द) एकहस्तपरिमिता दीर्घा

**१९२. उल्का कान् विपत्तीं सूचयति?**
(अ) राज्ञां विपत्तीं सूचयति (स) लोकान् विपत्तीं सूचयति
(ब) जनान् विपत्तीं सूचयति (द) सर्वान् विपत्तीं सूचयति

**१९३. किंरूपा उल्का भवति?**
(अ) प्रेतरूपा (स) कपिरूपा
(ब) गर्दभरूपा (द) मृगरूपा

**१९४. कति शिरा उल्का भवति?**
(अ) द्विशिरा (स) चतुःशिरा
(ब) त्रिशिरा (द) पञ्चशिरा

**१९५. किंरूपा उल्का कुशलं सुभिक्षञ्च करोति लोकान्?**

(अ) स्वस्तिकरूपा (स) नारिकेलरूपा

(ब) शङ्खरूपा (द) राजभवनरूपा

**१९६. किंरूपा उल्का द्विजान्नाशयति?**

(अ) शुक्लरूपा (स) रक्तरूपा

(ब) कृष्णरूपा (द) पीतरूपा

**१९७. पुच्छस्था उल्का कान्नाशयति?**

(अ) द्विजान् (स) वैश्यान्

(ब) क्षत्रियान् (द) शूद्रान्

**१९८. कुतः समुद्भूता उल्का शुभफलदा भवति?**

(अ) सूर्यकिरणात्समुद्भूताः

(ब) चन्द्रप्रदक्षिणक्रमेण समागता

(स) सूर्यप्रदक्षिणक्रमेण समागता

(द) सूर्यचन्द्रमसोः प्रदक्षिणक्रमेण समागता

**१९९. आकाशे भ्रममाणा उल्का किं करोति?**

(अ) राज्ञः नाशयति (स) नागरिकान् नाशयति

(ब) लोकान् नाशयति (द) ग्रामीणान् नाशयति

**२००. नक्षत्राणि ग्रहाश्चैव यद्युल्का ध्वस्तधूमिता।**
**तद्देशनाथनाशाय लोकानां सम्भ्रमाय च॥**
**इति वचनं कस्य?**

(अ) कश्यपस्य (स) भारद्वाजस्य

(ब) वशिष्ठस्य (द) विश्वामित्रस्य

**२०१. राजभीतिका उल्का कीदृशी भवति?**

(अ) यस्यानुसङ्गः खे चिरं तिष्ठति (स) या गगने रज्जुबद्धेव विलोक्यते

(ब) या दण्डाकारा विलोक्यते (द) या महेन्द्रध्वजतुल्या दृश्यते

**२०२. कीदृशी उल्का श्रेष्ठिनः विनाशयति?**

(अ) प्रतीपगा (स) तिर्यगा

(ब) ऋजुगा (द) अधोगा

**२०३. ऊर्ध्वगा उल्का कान् पीडयति?**

(अ) ब्राह्मणान् (स) वैश्यान्

(ब) क्षत्रियान् (द) शूद्रान्

**२०४. कोल्का राष्ट्रदोषकारिणी भवति?**

(अ) मण्डलाकृतिः (स) व्यालशूकरोपमा
(ब) वंशगुल्मवत् (द) विस्फुलिङ्गमालिनी

**२०५. सुरपतिचापप्रतिमोल्का कन्नाशयति?**

(अ) राज्यम् (स) जनपदम्
(ब) ग्रामम् (द) मण्डलम्

**२०६. पार्थिवे प्रस्थिते दीप्ता पतत्युल्का महास्वनाः।**
**तां दिशं सिद्ध्यते सिद्धिं विजयं लभतेऽचिरात्॥**
**इति कस्य कथनम् ?**

(अ) कश्यपस्य सत्र. अत्रेः
(ब) वशिष्ठस्य (द) विश्वामित्रस्य

**२०७. इन्द्रकृतः परिवेषः किंवर्णकः?**

(अ) रक्तवर्णकः (स) हरितवर्णकः
(ब) पीतवर्णकः (द) कृष्णवर्णकः

**२०८. वरुणकृतः परिवेषः किंवर्णकः?**

(अ) श्वेतवर्णकः (स) हरितवर्णकः
(ब) कपोतवर्णकः (द) श्यामवर्णकः

**२०९. कुवेरकृतः परिवेषः किंवर्णकः?**

(अ) मयूरकण्ठसदृशः नीलवर्णकः (स) रक्तवर्णकः
(ब) पीतवर्णकः (द) श्वेतवर्णकः

**२१०. सितपीतेन्द्रनीलाभरक्तकापोतबभ्रवः ।**
**शबला बर्हिवर्णाश्च विज्ञेयास्ते शुभप्रदाः॥**
**इति कस्योक्तिः?**

(अ) वशिष्ठस्य (स) यमस्य
(ब) विश्वामित्रस्य (द) कश्यपस्य

**२११. दिवा सूर्ये परिवेषो रात्रौ चन्द्रे यदा भवेत्।**
**एकस्मिंश्चेदहोरात्रे तदा नश्यति पार्थिवः॥**
**इति कस्य वचनम्?**

(अ) गर्गस्य (स) वशिष्ठस्य
(ब) कश्यपस्य (द) विश्वामित्रस्य

**२१२. मयूरकण्ठसदृशनीलवर्णपरिवेषः कः करोति?**

(अ) कुवेरः (स) वायुः
(ब) वरुणः (द) यमः

२१३. प्रतिपदि दृष्टः परिवेषः कन्नाशयति?
(अ) ब्राह्मणान् (स) वैश्यान्
(ब) क्षत्रियान् (द) शूद्रान्

२१४. कस्यान्तिथौ दृष्टः परिवेषः नृपान्नाशयति?
(अ) दशम्याम् (स) नवम्याम्
(ब) एकादश्याम् (द) अष्टम्याम्

२१५. कस्यान्तिथौ समवलोकितः परिवेषः वैश्यान्नाशयति?
(अ) द्वितीयायाम् (स) पञ्चम्याम्
(ब) तृतीयायाम् (द) चतुर्थ्याम्

२१६. क्व गता रेखाः नगरवासिनः पीडयति?
(अ) परिवेषमध्यगताः (स) परिवेषोपरिगताः
(ब) परिवेषबहिर्गताः (द) परिवेषनीचैः गताः

२१७. अनन्तकुलजाता ये पन्नगाः कामरूपिणः।
तेषां विश्वाससम्भूतं इन्द्रचापं प्रचक्षते॥
इति कस्य वचनम्?
(अ) कश्यपस्य (स) वशिष्ठस्य
(ब) गालवस्य (द) विश्वामित्रस्य

२१८. कुत्रत्य इन्द्रधनुः शुभफलदो भवति?
(अ) अवनिगतः (स) विविधवर्णः
(ब) द्युतिमत् (द) प्रतीचिस्थम्

२१९. किंवर्णमिन्द्रायुधं वृष्टिकरम्?
(अ) अविकलम् (स) द्विरुदितम्
(ब) विविधवर्णयुतम् (द) अनुलोमम्

२२०. द्विरुत्तरमविच्छिन्नं स्निग्धमिन्द्रायुधं महत्।
पृष्ठतो विजयाय स्याद्विच्छिन्नं परुषं न तु॥
इति कस्य कथनम्?
(अ) ऋषिपुत्रस्य (स) वसिष्ठस्य
(ब) कश्यपस्य (द) नारदस्य

२२१. नीलताम्रमविच्छिन्नं द्विगुणं सिन्द्धमायतम्।
पृष्ठतः पार्श्वयोर्वापि जयायेन्द्रधनुर्भवेत्॥
इति कस्योक्तिः?
(अ) कश्यपस्य (स) नारदस्य
(ब) बृहस्पतेः (द) गालवस्य

**२२२. पीतवर्णमिन्द्रधनुः किं करोति?**

(अ) शत्रुदोषं करोति
(ब) अग्निदोषं जनयति
(स) वायुदोषं जनयति
(द) जलदोषं जनयति

**२२३. कस्यां दिशि गतमिन्द्रायुधं वृष्टिं करोति?**

(अ) पूर्वस्याम्
(ब) प्रतीच्याम्
(स) दक्षिणगतम्
(द) अग्निकोणगतम्

**२२४. 'बहूदकं सुभिक्षञ्च शिवं सस्यप्रदं भवेत्' इति कस्य वाक्यम्?**

(अ) वसिष्ठस्य
(ब) कश्यपस्य
(स) गर्गस्य
(द) नारदस्य

**२२५. कुत्र विलोकितं गन्धर्वनगरं पुरोहितं विनाशयति?**

(अ) उदीच्याम्
(ब) प्रतीच्याम्
(स) प्राच्याम्
(द) दक्षिणस्याम्

**२२६. कदा नृपं विनाशयति गन्धर्वनगरम्?**

(अ) पूर्वस्याम्
(ब) उत्तरस्याम्
(स) दक्षिणस्याम्
(द) पश्चिमायाम्

**२२७. बहुवर्णपताकाढ्यं गन्धर्वनगरं महत्।**
**दृष्टं प्रजाक्षयकरं संग्रामे लोमहर्षणम्॥**
**इति कस्य वचनम्?**

(अ) वशिष्ठस्य
(ब) कश्यपस्य
(स) गर्गस्य
(द) बृहस्पतेः

**२२८. कुत्रावलोकितः प्रतिसूर्यः वृष्टिं करोति?**

(अ) पूर्वस्यां दिशि
(ब) दक्षिणस्यां दिशि
(स) प्रतीच्यां दिशि
(द) उदीच्यां दिशि

**२२९. याम्ये वातप्रदो ज्ञेय उत्तरे वृद्धिदो रवेः।**
**उभयोः पार्श्वयोर्भाति सलिलं भूरि यच्छति॥**
**इति वाक्यं कस्य?**

(अ) कश्यपस्य
(ब) वशिष्ठस्य
(स) पराशरस्य
(द) गर्गस्य

**२३०. यदान्तरिक्षे बलवान् मरुतो मरुतावृतः।**
**पतत्यधः सनिर्घातो भवेदनिलसम्भवः॥**
**इति केनोक्तम्?**

(अ) वसिष्ठेन
(ब) अत्रिणा
(स) गर्गेण
(द) पराशरेण

२३१. निर्घातोऽहोरात्रेण हन्ति नृपपौरभृत्यराष्ट्रजनान्।
तस्करविप्राश्चार्कोदयाद्दिशं पतति यस्याम्॥
इति वाक्यं कुत्रास्ति ?
(अ) गर्गसंहितायाम् (स) समाससंहितायाम्
(ब) कश्यपसंहितायाम् (द) बृहत्संहितायाम्

२३२. भानोः वृश्चिक-वृषप्रवेशे ग्रीष्मशरत्सस्यानां सदसद्योगा केन प्रोक्ताः?
(अ) पराशरेण (स) वादरायणेन
(ब) वसिष्ठेन (द) अगस्त्येन

२३३. सूर्याद् बुधे द्वितीये शुक्रे वा युगपदेन तयोः।
रिष्फगयोरप्येवं निष्पत्तिर्गुरुदृशाऽतीव॥
इति वचनं केन प्रोक्तम्?
(अ) कश्यपेन (स) गालवेन
(ब) वादरायणेन (द) नारदेन

२३४. क्व गतः सूर्यः धान्यं नाशयति?
(अ) पापमध्यगतः (स) कुम्भगशिगतः
(ब) वृश्चिकराशिगतः (द) शानमङ्गलयोरेकः स्यात्

२३५. सूर्यात् सप्तमस्थः पापोऽन्यः केन्द्रगतश्च हानिकरौ।
सौम्यग्रहनिर्दिष्टौ न तथा.....॥
इति कस्य वाक्यम्?
(अ) वादरायणस्य (स) विश्वामित्रस्य
(ब) वसिष्ठस्य (द) नारदस्य

२३६. वृषे महिषगोवस्त्रशालयः पुष्पसम्भवाः।
मिथुने धान्यशालूकवल्यः कार्पासशारदम्॥
इति कस्योक्तिः?
(अ) वसिष्ठस्य (स) नारदस्य
(ब) कश्यपस्य (द) धौम्यस्य

२३७. 'पद्ममुक्ताफलादीनां द्रव्याणां मीन ईश्वर' इति कस्य कथनम्?
(अ) वसिष्ठस्य (स) कश्यपस्य
(ब) विश्वामित्रस्य (द) नारदस्य

२३८. सिंहराशिगते सूर्ये संगृहीतानि रत्नानि कतिमासानन्तरं विक्रेतव्यानि?
(अ) चतुर्मासानन्तरम् (स) षण्मासानन्तरम्
(ब) पञ्चमासानन्तरम् (द) सप्तमासानन्तरम्

**२३९. राशौ राशौ स्थितः सूर्यः शशी वा मित्रसंयुतः?**
**अधिमित्रेण सन्दृष्टो यथालाभप्रदः स्मृतः ॥**
**इति कस्य वचनम्?**

(अ) कश्यपस्य (स) विश्वामित्रस्य
(ब) नारदस्य (द) गौतमस्य

**२४०. क्षीरोदे देवान् कः केतुं दास्यति?**

(अ) रामः (स) विष्णुः
(ब) कृष्णः (द) केशवः

**२४१. केतुं देवान् स्यतीति क आह?**

(अ) ब्रह्मा (स) शिवः
(ब) विष्णुः (द) नारदः

**२४२. असुरास्तं ध्वजं दृष्ट्वा ध्वजस्तेजःसमाहताः ।**
**विसंज्ञाः समरे भग्नाः पराभूता प्रदुद्रुवुः ॥**
**इति केनोक्तम्?**

(अ) गर्गेण (स) नारदेन
(ब) वसिष्ठेन (द) गौतमेन

**२४३. प्रौष्ठपादे प्रतिपदि ध्वजार्थं पूर्वतो वनम् ।**
**गत्वा वृक्षं परीक्षेत वयःसारगुणान्वितम् ॥**
**इति कस्य महर्षेः वाक्यम्?**

(अ) गर्गस्य (स) अत्रेः
(ब) वसिष्ठस्य (द) पराशरस्य

**२४४. ध्वजार्थं को वृक्षः शुभः?**

(अ) अर्जुनवृक्षः (स) प्रियकः
(ब) उदुम्बरवृक्षः (द) धवः

**२४५. ध्वजार्थं काष्ठं राजा कदा नगरे प्रवेशयेत्?**

(अ) भाद्रशुक्लाष्टम्याम् (स) आषाढशुक्लाष्टम्याम्
(ब) श्रावणशुक्लाष्टम्याम् (द) आश्विनशुक्लाष्टम्याम्

**२४६. प्रोष्ठपादे सिताष्टम्यां ज्येष्ठायोगे स्वलंकृताम् ।**
**यष्टिं पौरन्दरीं राजा नगरं सम्प्रवेशयेत् ॥**
**इति कस्य कथनम्?**

(अ) वसिष्ठस्य (स) नारदस्य
(ब) कश्यपस्य (द) गर्गस्य

**२४७. नगरे किंवर्णिका पताका शुभा?**

(अ) श्वेता (स) हरिता

(ब) रक्ता (द) कृष्णा

**२४८. राजा कदा जागरणं कुर्यात्?**

(अ) एकादश्याम् (स) त्रयोदश्याम्

(ब) दशम्याम् (द) नवम्याम्

**२४९. तत्र श्रवणयोगेन ध्वजोत्थानं प्रशस्यते।**
**द्वादश्यां विजये वाश्वमुहूर्ते वा दिनेऽथ वा॥**
**इति कस्योक्तिः?**

(अ) गर्गस्य (स) गौतमस्य

(ब) गालवस्य (द) अत्रेः

**२५०. ध्वजोपरि शक्रकुमार्यः विधातव्या कति?**

(अ) पञ्च (स) अष्टौ

(ब) सप्त (द) दश

**२५१. ध्वजाय प्रथमाभूषणं केन प्रदत्तम् ?**

(अ) ब्रह्मणा (स) शिवेन

(ब) विश्वकर्मणा (द) विष्णुना

**२५२. नीराजनशान्तिः कदा कर्तव्या?**

(अ) कार्तिकशुक्लाष्टम्याम् (स) कार्तिकशुक्लद्वादश्याम्

(ब) आश्विनशुक्लाष्टम्याम् (द) कार्तिकशुक्लपौर्णमास्याम्

**२५३. शालिजातकसिद्धार्थान् कुष्ठं भल्लातकं तथा।**
**अश्वेषु कण्ठे बध्नीयात् सप्ताहं शान्तिमाचरेत्॥**
**इति वचनं केन भणितम्?**

(अ) कश्यपेन (स) पराशरेण

(ब) वसिष्ठेन (द) विश्वामित्रेण

**२५४. कति हस्तपरिमिता वेदी ब्राह्मणानां यज्ञे विधातव्या?**

(अ) सप्तहस्ता (स) दशहस्ता

(ब) पञ्चहस्ता (द) अष्टहस्ता

**२५५. यज्ञे विवाहे ब्राह्मणानां वेदिमानं किम्?**

(अ) त्रिसप्त हस्ता (स) अष्टौ हस्ता

(ब) दश हस्ता (द) नव हस्ता

**२५६. त्रिसप्तहस्तविस्तारा वेदी केषां कृते?**

(अ) ब्राह्मणानां कृते (स) वैश्यानां कृते
(ब) क्षत्रियाणां कृते (द) शूद्राणां कृते

**२५७. अश्वं समारूह्य राजा कस्यां दिशि प्रस्थानं कुर्यात्?**

(अ) ऐशान्याम् (स) प्रतीच्याम्
(ब) पूर्वस्याम् (द) उदीच्याम्

**२५८. 'नामानुरूपेण फलं विहगानां विनिर्दिशेत्' कति कस्य कथनम्?**

(अ) कश्यपस्य (स) गालवस्य
(ब) गौतमस्य (द) विश्वामित्रस्य

**२५९. मैथुनं कुरुते यत्र तत्र वै निधिमादिशेत्।**
**भुक्तं छर्दयते यत्र तत्र काचमधो भवेत्॥**
**इति कस्योक्तिः?**

(अ) वसिष्ठस्य (स) कश्यपस्य
(ब) गौतमस्य (द) नारदस्य

**२६०. राजानं पुष्यस्नानं कः कारयति?**

(अ) पुरोहितः (स) प्रजा
(ब) ज्योतिषी (द) मन्त्रिणः

**२६१. पुष्यस्नानं कुत्र कर्तव्यम्?**

(अ) शोभने कानने (स) नूतनलतायुते वने
(ब) दुर्गन्धवृक्षरहिते स्थाने (द) अशुभकारकै पक्षिभिः रहिते स्थाने

**२३२. समुद्रतीरे सोद्याने नदीनां सङ्गमे शुभे।**
**महाह्रदेऽथवा तीर्थे देवतायतने तथा॥**
**सर्वर्तुकुसुमोपेते वने द्विजवरैर्युते।**
**गृहे रम्ये विविक्ते वा पुष्यस्नानं समाचरेत्॥**
**इति कस्य वाक्यम्?**

(अ) वसिष्ठस्य (स) वृद्धगर्गस्य
(ब) गर्गस्य (द) शौनकस्य

**२६३. पुष्यस्नानविधौ पुरोहितः किं कुर्यात् ?**

(अ) दध्यक्षतबलिं चरेत् (स) पुण्यक्षेत्रे पुष्पबलिं चरेत्
(ब) पायसबलिं दद्यात् (द) पायसदधिपुष्पयुतं बलिं दद्यात्

**२६४. कस्यां दिशि बलिं चरेत् ?**

(अ) पूर्वस्यां दिशि (स) वायव्यकोणे
(ब) उत्तरस्यां दिशि (द) ऐशान्यां दिशि

**२६५. बलिप्रदानानन्तरं पुरोधा किं कुर्यात् ?**

(अ) आवाहनं कुर्यात् (स) प्रार्थनां कुर्यात्
(ब) मन्त्रान् पठेत् (द) आवाहनसामग्रीं निरीक्षेत्

**२६६. आगच्छन्तु सुराः सर्वे येऽत्र पूजाऽभिलाषिणः ।**
**दिशो नागा द्विजाश्चैव ये चाऽप्यन्येंऽशभागिनः ॥**
**अनेन मन्त्रेण किं कुर्यात् ?**

(अ) आवाहनम् (स) वन्दनम्
(ब) पूजनम् (द) विसर्जनम्

**२६७. 'पूजां प्राप्य प्रयास्यन्ति दत्वा शान्तिं महीपतेः' इदं वाक्य कः कथयति?**

(अ) पुरोहितः (स) आचार्यः
(ब) सचिवः (द) अङ्गरक्षकः

**२६८. आवाहनानन्तरं तदानीं पुरोहितादयः किं कुर्युः?**

(अ) तां रात्रिं तत्रैव व्यतीयुः।
(ब) गच्छन्तु।
(स) केवलं पुरोहितः तां रात्रीं तत्रैव तिष्ठेत्।
(द) सर्वे तत्रैव निवसन्तु।

**२६९. द्वितीयेऽह्नि कस्य वचनं पठितव्यम् ?**

(अ) वसिष्ठस्य (स) शौनकस्य
(ब) पराशरस्य (द) वृद्धगर्गस्य

**२७०. यात्राप्रस्थानकाले कस्य ग्रन्थानुसारं पूजा विधातव्या?**

(अ) यात्रानां पुस्तकानुसारम् (स) कर्मकाण्डप्रदीपानुसारम्
(ब) ग्रहशान्त्यनुसारम् (द) पूजापारिजातानुसारम्

**२७१. नमः शम्भो त्रिनेत्राय रुद्राय वरदाय च ।**
**वामनाय विरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥**
**अयं मन्त्रः कदा पठितव्यः?**

(अ) यात्रायाः पूर्वसन्ध्यायां (स) उत्थाय
(ब) यात्राकाले (द) यात्रातः पूर्वम्

**२७२. ग्रहयज्ञे मण्डलं विधाय कस्य पूजा विधातव्या?**

(अ) देवतानाम् (स) मातृकानाम्
(ब) पितृणाम् (द) लोकपालानाम्

**२७३. यात्राकालिके ग्रहयज्ञे कतिसङ्ख्याकाः कलशाः भवन्ति?**

(अ) चत्वारः कलशाः (स) सप्त कलशाः
(ब) पञ्च कलशाः (द) अष्टौ कलशाः

**२७४. बृहत् रूपे कति कलशाः?**

(अ) अष्टोत्तरशतकलशाः (स) अष्टाविंशतिकलशाः
(ब) अष्टौ कलशाः (द) चतुर्विंशति कलशाः

**२७५. मण्डलस्य कस्यां दिशि वेदी भवेत्?**

(अ) मण्डलस्य पूर्वभागे (स) मण्डलस्य दक्षिणभागे
(ब) मण्डलस्योत्तरभागे (द) मण्डलस्य पश्चिमभागे

**२७६. चतुर्षु कलशेषु कतिविधा औषधयः प्रक्षेपणीयाः?**

(अ) षोडश (स) चतुर्दश
(ब) पञ्चदश (द) सप्तदश

**२७७. अन्यानि मङ्गलद्रव्याणि कियन्ति?**

(अ) त्रीणि (स) चत्वारि
(ब) पञ्च (द) सप्त

**२७८. आसने प्रथमं किं स्तरणीयम् ?**

(अ) वृद्धवृषभचर्म (स) मृगचर्म
(ब) युवावृषभचर्म (द) गजचर्म

**२७९. गोचर्मोपरि किं भवेत् ?**

(अ) युवावृषभचर्म (स) अजाचर्म
(ब) वत्सचर्म (द) सिंहचर्म

**२८०. वृषभचर्मोपरि किं स्तरणीयम् ?**

(अ) सिंहचर्म (स) गजचर्म
(ब) अजाचर्म (द) व्याघ्रचर्म

**२८१. सिंहचर्मोपरि आसने किं स्यात् ?**

(अ) मृगचर्म (स) गजचर्म
(ब) व्याघ्रचर्म (द) अजाचर्म

**२८२. नृपस्यासने कतिविधानि चर्माणि?**

(अ) चतुर्विधानि (स) त्रिविधानि
(ब) पञ्चविधानि (द) षड्विधानि

**२८३. नृपासने चर्मोपरि किं स्तरणीयं भवति?**

(अ) सुवर्णासनम् (स) ताम्रासनम्
(ब) रजतासनम् (द) लौहासनम्

**२८४. राज्ञ आसनं कियद्विस्तृतं भवेत्?**

(अ) सपादहस्तपरिमितम् (स) द्विहस्तपरिमितम्
(ब) सार्धहस्तपरिमितम् (द) सार्धद्विहस्तपरिमितम्

**२८५. नृपासनं कस्योपरि समाच्छदनीयम्?**
(अ) व्याघ्रचर्मोपरि (स) सिंहचर्मोपरि
(ब) गजचर्मोपरि (द) वृषभचर्मोपरि

**२८६. नृपः स्वासने केन सह तिष्ठेत्?**
(अ) मन्त्रिणा सह (स) प्रजाभिः साकम्
(ब) सचिवेन साकम् (द) पुरोधासमम्

**२८७. पुरोधा स्वासनस्थं राजानं केन वस्तुना समभिषिञ्चेत्?**
(अ) घृतेन (स) पयसा
(ब) जलेन (द) पञ्चगव्येन

**२८८. आज्यं तेजःसमुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम्।**
**आज्यं सुराणामाहारं सर्वमाज्ये प्रतिष्ठितम्॥**
**केन पठितोऽयं मन्त्रः?**
(अ) वसिष्ठेन (स) गौतमेन
(ब) गर्गेण (द) वृद्धगर्गेण

**२८९. घृताभिषेककाले केनाच्छादयति राजानम्?**
(अ) कम्बलेन (स) कार्पासवस्त्रेण
(ब) पट्टवस्त्रेण (द) सामान्यवस्त्रेण

**२९०. कियद्भिर्मन्त्रैरभिषिक्तो भवति नृपः?**
(अ) अष्टभिर्मन्त्रैः (स) पञ्चदशमन्त्रैः
(ब) द्वादशमन्त्रैः (द) षोडशमन्त्रैः

**२९१. द्वितीयवेद्यां कीदृगाशनं समास्तीर्यते?**
(अ) वृषभचर्मणः (स) व्याघ्रचर्मणः
(ब) गजचर्मणः (द) सिंहचर्मणः

**२९२. द्वितीयायां वेद्यां वृषभचर्मोपरि किं समास्तीर्यते?**
(अ) गजचर्म (स) कृष्णमृगचर्म
(ब) मार्जारचर्म (द) हरिणचर्म

**२९३. स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः**
**स्निग्धप्रदक्षिणशिखो हुतभुग्नृपस्य।**
**गङ्गादिवाक्करसुताजलचारुहारं**
**भूमिं समुद्रवसनां वशगां करोति॥**
**केनोच्चरितोऽयं मन्त्रः?**

(अ) पुरोहितेन (स) प्रजावर्गेण
(ब) सचिवेन (द) निजसचिवेन

**२९४. दत्वा वित्तं ब्राह्मणेभ्यो गावो हेमपरिष्कृता।**
**वास्तुयुग्मं महीं रूप्यं तेभ्यश्च बहुभोजनम्॥**
**कस्येदं वाक्यम्?**
(अ) वृद्धगर्गस्य (स) वशिष्ठस्य
(ब) गर्गस्य (द) शौनकस्य

**२९५. पुष्यस्नानेन किं फलं प्राप्नोति राजा?**
(अ) सुखं प्राप्नोति (स) यशः प्राप्नोति
(ब) शुभं लभते (द) धनानि लभते

**२९६. पुष्यस्नानमिन्द्राय केनोक्तम्?**
(अ) वसिष्ठेन (स) गर्गेण
(ब) सुराचार्येण (द) विश्वामित्रेण

**२९७. पुष्यस्नानं किं फलं ददाति राजानम्?**
(अ) सौभाग्यं करोति (स) धनं ददाति
(ब) पूजावृद्धिं करोति (द) आयुर्वृद्धिं करोति

**२९८. प्रतिपुष्येण यो राजा स्नायति विधिपूर्वकम्।**
**तस्य राष्ट्रे न सीदन्ति मर्त्या ये जन्तवो मुनिः॥**
**इदं वचनं कस्यास्ति?**
(अ) वसिष्ठस्य (स) पराशरस्य
(ब) गर्गस्य (द) बृहस्पतेः

**२९९. अनेन विधिना केषामन्येषामभिषेको भवति?**
(अ) गजस्य (स) वृषभस्य
(ब) अश्वस्य (द) प्रजावर्गस्य

**३००. कियदङ्गुलपरिमितं मुकुटं राजा अन्यान् परिधापयितुं शक्नोति?**
(अ) द्व्यङ्गुलपरिमितम् (स) चतुरङ्गुलपरिमितम्
(ब) त्र्यङ्गुलपरिमितम् (द) पञ्चाङ्गुलपरिमितम्

**३०१. राजा कियदङ्गुलपरिमितं मुकुटं परिदधाति?**
(अ) अष्टाङ्गुलपरिमितम् (स) पञ्चदशाङ्गुलपरिमितम्
(ब) द्वादशाङ्गुलपरिमितम् (द) नवाङ्गुलपरिमितम्

**३०२. कियत्परिमितं दैर्घ्यं भवति राज्ञः मुकुटम्?**

(अ) षोडशाङ्गुलपरिमितम् (स) चतुर्विंशत्यङ्गुलपरिमितम्
(ब) दशाङ्गुलपरिमितम् (द) विंशत्यङ्गुलपरिमितम्

**३०३. महिष्याः मुकुटस्य कियदङ्गुलपरिमितो विस्तारो भवेत्?**

(अ) सप्ताङ्गुलपरिमितम् (स) अष्टाङ्गुलपरिमितम्
(ब) दशाङ्गुलपरिमितम् (द) एकादशाङ्गुलपरिमितम्

**३०४. राज्ञ्याः मुकुटस्य दैर्घ्यं भवेत्—**

(अ) चतुर्दशाङ्गुलम् (स) सप्तदशाङ्गुलम्
(ब) द्वादशाङ्गुलम् (द) अष्टादशाङ्गुलम्

**३०५. युवराजस्य मुकुटविस्तारो भवेत्—**

(अ) षडङ्गुलम् (स) अष्टाङ्गुलम्
(ब) सप्ताङ्गुलम् (द) दशाङ्गुलम्

**३०६. युवराजस्य मुकुटस्य दैर्घ्यं कियत् परिमितम्भवेत्?**

(अ) दशाङ्गुलम् (स) त्रयोदशाङ्गुलम्
(ब) द्वादशाङ्गुलम् (द) पञ्चदशाङ्गुलम्

**३०७. राज्ञां प्रजाभ्य दीयमानस्य मुकुटस्य विस्तारो भवति?**

(अ) द्व्यङ्गुलम् (स) पञ्चाङ्गुलम्
(ब) चतुरङ्गुलम् (द) त्र्यङ्गुलम्

**३०८. पञ्चशिखं मुकुटं कस्य कृते भवति?**

(अ) राज्ञः (स) राजकुमारस्य
(ब) महिष्याः (द) राजकुमार्याः

**३०९. क्रियमात्रं यदा पत्रं मध्ये स्फुटति भिद्यते।**
**तदा नृपभयं प्रोक्तं यत्स्थाने वा प्रकल्पितम्॥**
**इति कस्य वचनम्?**

(अ) कश्यपस्य (स) वसिष्ठस्य
(ब) गर्गस्य (द) पराशरस्य

**३१०. एकशिखायुतं मुकुटं कस्य कृते?**

(अ) सेनापतेः (स) महिष्याः
(ब) युवराजस्य (द) प्रजायाः

**३११. उत्तमखड्गः कियदङ्गुलपरिमितं भवति?**

(अ) पञ्चाशदङ्गुलपरिमितम् (स) त्रिंशदङ्गुलपरिमितम्
(ब) चत्वारिंशदङ्गुलपरिमितम् (द) चतुश्चत्वारिंशदङ्गुलपरिमितम्

**३१२. मृत्योः सूचकं भवति?**

(अ) खड्गात् शब्दनिःसरणम् (स) खड्गस्य पतनम्
(ब) खड्गस्य कम्पनम् (द) खड्गस्य कुटिलम्

**३१३. खड्गस्य प्रमाणाधिक्यात् किं कर्तव्यम्?**

(अ) कर्तितव्यम् (स) घर्षणीयम्
(ब) वक्रीकर्तव्यम् (द) तापनीयम्

**३१४. तत्र देशे दिशः कालं व्याहारं द्रव्यदर्शनम्।**
**अङ्गप्रत्यङ्गसंस्पर्शं समीक्ष्य फलमादिशेत्॥**
**कस्य वाक्यमिदम्?**

(अ) पराशरस्य (स) वसिष्ठस्य
(ब) गौतमस्य (द) धौम्यस्य

**३१५. प्रश्नः कुत्र कर्तव्यः?**

(अ) जलपूर्णभूमौ (स) फलितवृक्षभूमौ
(ब) अङ्कुरितदूर्वाभूमौ (द) सुगन्धभरितभूमौ

**३१६. वेलाः सर्वाः प्रशस्यन्ते पूर्वाह्णे परिपृच्छताम्।**
**सन्ध्ययोरपराह्णे तु क्षपायान्तु विगर्हिता॥**
**कस्य वाक्यमिदम्?**

(अ) वसिष्ठस्य (स) गर्गस्य
(ब) पराशरस्य (द) शौनकस्य

**३१७. कियन्ति पुरुषसंज्ञकाङ्गानि?**

(अ) एकोनविंशतिः (स) एकविंशतिः
(ब) विंशतिः (द) द्वाविंशतिः

**३१८. पुत्रेच्छुः राजा केन वस्तुना शस्त्रस्नानं कारयेत्?**

(अ) घृतेन (स) जलेन
(ब) दुग्धेन (द) पयसा

**३१९. शस्त्रं राजा जलेन किमर्थं स्नापयति?**

(अ) धनार्थम् (स) विजयार्थम्
(ब) पुत्रार्थम् (द) ऐश्वर्यार्थम्

**३२१. अङ्गुष्ठेन लिखेद् भूमिं क्षेत्रचिन्तां विचिन्तयेत्।**
**हस्तेन पादौ कण्डूयेत् कुर्याद्दाशीकृतां सताम्॥**
**इति कस्य वाक्यम्?**

(अ) पराशरस्य (स) वसिष्ठस्य
(ब) गर्गस्य (द) शौनकस्य

**३२२. कुटुम्बस्य वृद्धिः कदा भवति?**
(अ) प्रश्नकाले धान्यपूर्णपात्रदर्शनात् (स) पय:पूर्णपात्रदर्शनात्
(ब) जलपूर्णकुम्भदर्शनात् (द) घृतपूर्णपात्रदर्शनात्

**३२३. प्रश्नकाले पादाङ्गुष्ठस्पर्शने कश्चौर:?**
(अ) दासश्चौर: (स) दूतश्चौर:
(ब) दासी चौर: (द) भगिनी चौर:

**३२४. हस्ताङ्गुलीस्पर्शने कश्चौर:?**
(अ) निजकन्या (स) निजभार्या
(ब) निजपुत्र: (द) निजमित्रम्

**३२५. प्रश्नकाले दक्षिणोरुस्पर्शने किं फलम्?**
(अ) द्वे कन्यके (स) चतस्र: कन्यका:
(ब) तिस्र: कन्यका: (द) षट् कन्यका:

**३२६. प्रश्नकाले शिर:स्पर्शे कस्मिन् नक्षत्रे बालकस्य जन्म?**
(अ) अश्विनीनक्षत्रे (स) मूलनक्षत्रे
(ब) उत्तराषाढानक्षत्रे (द) हस्तनक्षत्रे

**३२७. प्रश्नकाले केशस्पर्शनात् का सन्ततिसङ्ख्या?**
(अ) त्रय: पुत्रा: (स) द्वौ पुत्रौ
(ब) चतस्र: कन्यका: (द) तिस्र: कन्या:

**३२८. केवलैका कन्यका किं स्पर्शने भवति?**
(अ) पादाङ्गुष्ठस्पर्शने (स) अङ्गुष्ठस्पर्शने
(ब) पार्ष्णियुग्मस्पर्शने (द) तर्जनीस्पर्शने

**३२९. प्रश्नकाले दक्षिणोरुस्पर्शने कति सन्तत्य:?**
(अ) चतस्र: कन्यका: (स) द्वौ पुत्रौ
(ब) पञ्च कन्यका: (द) त्रय: पुत्रा:

**३३०. इदं सम्यग् विजानाति चेत् स: किं लभते?**
(अ) राज्ञ: समादरं लभते (स) समाजत: समादरं लभते
(ब) प्रजाभ्य: समादरं लभते (द) सर्वत: समादरं लभते

**३३१. प्रश्नकाले कर्णस्पर्शात् कति पुत्रा: जायन्ते?**
(अ) पञ्च पुत्रा: (स) षट् पुत्रा:
(ब) चत्वार: पुत्रा: (द) सप्त पुत्रा:

**३३२. हस्तस्पर्शने कति पुत्राः जायन्ते?**

(अ) त्रयः पुत्राः (स) पञ्च पुत्राः

(ब) चत्वारः पुत्राः (द) द्वौ पुत्रौ

**३३३. ललाटमध्ये स्पर्शने कति कन्यकाः जायन्ते?**

(अ) चतस्रः कन्यके (स) पञ्च कन्यके

(ब) तिस्रः कन्यके (द) द्वे कन्यके

**३३४. स्त्रियाः शिरःस्पर्शने कस्मिन्नक्षत्रे सन्ततिर्जायते?**

(अ) कृत्तिकानक्षत्रे (स) मृगशिरानक्षत्रे

(ब) रोहिणीनक्षत्रे (द) आर्द्रानक्षत्रे

**३३५. श्वेतपिटकं कस्य कृते शुभम्?**

(अ) विप्रस्य कृते (स) वैश्यस्य कृते

(ब) क्षत्रियस्य कृते (द) शूद्रस्य कृते

**३३६. क्षत्रियस्य कृते किंवर्णकं पिटकं शुभम्भवति?**

(अ) रक्तवर्णकम् (स) धूम्रवर्णकम्

(ब) श्वेतवर्णकम् (द) कृष्णवर्णकम्

**३३७. अन्त्यजस्य कृते किंवर्णकं पिटकं शुभम्?**

(अ) कृष्णवर्णकम् (स) धूम्रवर्णकम्

(ब) रक्तवर्णकम् (द) सर्ववर्णकम्

**३३८. क्व गतं पिटकं धनलाभाय भवति?**

(अ) हस्तगतम् (स) शिरोगतम्

(ब) पादगतम् (द) ऊरुगतम्

**३३९. नासिकायां पिटकः स्यात्तदा किं लभते?**

(अ) वस्त्रलाभः (स) भोजनलाभः

(ब) धनलाभः (द) मानलाभः

**३४०. यदि गण्डस्थले पिटकः स्यात्तदा को लाभः?**

(अ) पुत्रलाभः (स) कन्यालाभः

(ब) राज्यलाभः (द) धनलाभः

**३४१. नेत्रपुटस्थपिटकः किं ददाति?**

(अ) शोकम् (स) दैन्यम्

(ब) दुःखम् (द) क्लेशम्

**३४२. कराङ्गुलिगतः पिटकः किं ददाति?**

(अ) सौभाग्यम्
(ब) धनम्
(स) अन्नम्
(द) फलानि

**३४३. बाहुगतः पिटकः किं करोति?**

(अ) शोकं ददाति
(ब) सौभाग्यं करोति
(स) शत्रून्नाशयति
(द) मैत्रीं विस्तारयति

**३४४. मणिबन्धगः पिटकः किं करोति?**

(अ) अन्नवस्त्रादिलाभं करोति
(ब) भूषणलाभं करोति
(स) हस्तबन्धनं करोति
(द) शत्रून्नाशयति

**३४५. हृद्गतः पिटकः किं करोति?**

(अ) धनलाभं करोति
(ब) पुत्रलाभं करोति
(स) सौख्यलाभं करोति
(द) मित्रलाभं करोति

**३४६. क्व गतः पिटकः शस्त्रपीडां करोति?**

(अ) शिरोगतः
(ब) हस्तगतः
(स) गलगतः
(द) बाहुगतः

**३४७. नाभिगतः पिटकः किं ददाति?**

(अ) धनधान्यम्
(ब) सौभाग्यम्
(स) विद्याम्
(द) सर्वसौख्यम्

**३४८. क्व गतः पिटकः वनितां ददाति?**

(अ) गलङ्गतः
(ब) नाभिगतः
(स) हस्तगतः
(द) पादगतः

**३४९. जानुगतः पिटकः किं करोति?**

(अ) शत्रुबाधां करोति
(ब) चौरभयं करोति
(स) दस्युभयङ्करोति
(द) राजभयङ्करोति

**३५०. मार्गे क्व गतः पिटकः कष्टं प्रापयति?**

(अ) गुल्फगतः
(ब) पादतलगतः
(स) पार्ष्णिगतः
(द) करगतः

**३५१. पादगतः पिटकः किं करोति?**

(अ) भ्रामयति
(ब) पर्यटनं कारयति
(स) परदेशं गमयति
(द) देशान्तरं प्रापयति

**३५२. अगुष्ठस्थः पिटकः किं करोति?**

(अ) बन्धुभिः पूजयति
(ब) सर्वैः सत्कारयति
(स) सम्मानं ददाति
(द) सर्वत्र पूजां ददाति

**३५३. दक्षिणाङ्गगताः पिटकाः केषां कृते शुभावहाः?**

(अ) स्त्रीणां कृते (स) वैश्यानां कृते

(ब) पुरुषाणां कृते (द) कन्यकानां कृते

**३५४. वामाङ्गे गताः पिटकाः केषां कृते दुःखदा?**

(अ) नारीणां कृते (स) कुमारीणां कृते

(ब) वृद्धानां कृते (द) बालानां कृते

# वस्तुनिष्ठप्रश्नोत्तराणि

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| १. अ | २७. ब | ५३. स | ७९. अ | १०५. स |
| २. स | २८. अ | ५४. अ | ८०. अ | १०६. अ |
| ३. द | २९. स | ५५. ब | ८१. स | १०७. अ |
| ४. ब | ३०. द | ५६. ब | ८२. ब | १०८. ब |
| ५. अ | ३१. ब | ५७. ब | ८३. स | १०९. ब |
| ६. अ | ३२. द | ५८. द | ८४. अ | ११०. स |
| ७. अ | ३३. अ | ५९. अ | ८५. ब | १११. अ |
| ८. अ | ३४. द | ६०. द | ८६. अ | ११२. द |
| ९. अ | ३५. ब | ६१. ब | ८७. अ | ११३. अ |
| १०. ब | ३६. ब | ६२. स | ८८. अ | ११४. अ |
| ११. अ | ३७. द | ६३. अ | ८९. अ | ११५. अ |
| १२. अ | ३८. ब | ६४. अ | ९०. ब | ११६. ब |
| १३. अ | ३९. अ | ६५. ब | ९१. अ | ११७. ब |
| १४. अ | ४०. अ | ६६. अ | ९२. स | ११८. अ |
| १५. अ | ४१. अ | ६७. ब | ९३. ब | ११९. अ |
| १६. अ | ४२. द | ६८. अ | ९४. ब | १२०. स |
| १७. अ | ४३. अ + द | ६९. द | ९५. द | १२१. अ |
| १८. अ | ४४. ब | ७०. द | ९६. द | १२२. द |
| १९. द | ४५. अ | ७१. ब | ९७. द | १२३. स |
| २०. अ | ४६. अ | ७२. अ | ९८. स | १२४. द |
| २१. अ | ४७. अ | ७३. अ | ९९. स | १२५. अ |
| २२. अ | ४८. अ | ७४. स | १००. अ | १२६. अ |
| २३. अ | ४९. अ | ७५. अ | १०१. स | १२७. ब |
| २४. अ | ५०. अ | ७६. ब | १०२. अ | १२८. अ |
| २५. अ | ५१. अ | ७७. स | १०३. अ | १२९. अ |
| २६. स | ५२. अ | ७८. अ | १०४. अ | १३०. अ |

१३१. अ
१३२. द
१३३. स
१३४. अ
१३५. ब
१३६. द
१३७. अ
१३८. द
१३९. अ
१४०. अ ब स द
१४१. द
१४२. द
१४३. अ
१४४. अ
१४५. अ ब स
१४६. अ
१४७. अ
१४८. अ
१४९. अ
१५०. द
१५१. द
१५२. ब
१५३. अ
१५४. अ
१५५. अ
१५६. अ
१५७. अ

१५८. अ
१५९. द
१६०. अ
१६१. अ
१६२. अ
१६३. द
१६४. अ
१६५. स
१६६. द
१६७. ब
१६८. ब
१६९. स
१७०. ब
१७१. अ
१७२. ब
१७३. ब
१७४. द
१७५. द
१७६. द
१७७. स
१७८. ब
१७९. अ
१८०. ब
१८१. अ
१८२. द
१८३. द
१८४. द
१८५. अ
१८६. अ

१८७. अ
१८८. अ
१८९. अ
१९०. अ
१९१. द
१९२. स
१९३. द
१९४. अ
१९५. अ
१९६. अ
१९७. अ
१९८. अ
१९९. अ
२००. अ
२०१. द
२०२. अ
२०३. अ
२०४. ब
२०५. अ
२०६. अ
२०७. अ
२०८. अ
२०९. अ
२१०. द
२११. अ
२१२. अ
२१३. अ
२१४. अ
२१५. ब

२१६. अ
२१७. अ
२१८. द
२१९. स
२२०. अ
२२१. ब
२२२. अ
२२३. अ
२२४. ब
२२५. अ
२२६. अ
२२७. ब
२२८. अ
२२९. अ
२३०. स
२३१. स
२३२. स
२३३. ब
२३४. अ
२३५. अ
२३६. ब
२३७. स
२३८. स
२३९. अ
२४०. द
२४१. अ
२४२. अ
२४३. अ
२४४. द

२४५. अ
२४६. द
२४७. अ
२४८. अ
२४९. अ
२५०. ब
२५१. ब
२५२. द
२५३. अ
२५४. अ
२५५. अ
२५६. अ
२५७. अ
२५८. अ
२५९. स
२६०. अ ब
२६१. अ
२६२. स
२६३. द
२६४. द
२६५. ब
२६६. अ
२६७. अ
२६८. अ
२६९. द
२७०. अ
२७१. द
२७२. अ
२७३. अ

२७४. अ
२७५. स
२७६. अ
२७७. अ
२७८. अ
२७९. अ
२८०. अ
२८१. ब
२८२. द
२८३. अ
२८४. अ
२८५. अ
२८६. अ
२८७. अ
२८८. द
२८९. अ
२९०. द
२९१. अ
२९२. स
२९३. अ
२९४. ब
२९५. अ
२९६. ब
२९७. ब
२९८. ब
२९९. अ
३००. अ
३०१. अ
३०२. अ
३०३. अ
३०४. अ
३०५. अ
३०६. ब
३०७. अ
३०८. अ
३०९. अ
३१०. अ
३११. अ
३१२. अ
३१३. अ
३१४. अ
३१५. ब
३१६. ब
३१७. अ
३१८. अ
३१९. अ
३२०. अ
३२१. अ
३२२. अ
३२३. अ
३२४. अ
३२५. अ
३२६. अ
३२७. अ
३२८. ब
३२९. अ
३३०. अ
३३१. अ
३३२. अ
३३३. अ
३३४. अ
३३५. अ
३३६. अ
३३७. द
३३८. अ
३३९. अ
३४०. अ
३४१. अ
३४२. अ
३४३. ब
३४४. स
३४५. ब
३४६. अ
३४७. अ
३४८. अ
३४९. अ
३५०. अ
३५१. अ
३५२. अ
३५३. अ
३५४. अ